

सत्यार्थप्रकाश का चतुर्थ संस्करण

दो शब्द

‘सत्यार्थप्रकाश’ वर्तमानयुग के उज्ज्वल सूर्य ऋषि दयानन्द के विचारों का सर्वोत्तम तेजःपुञ्ज है, वैदिक धर्म के अगाध सागर को चमकाकर उस का सच्चा रूप दिखाने वाला यह एक विशाल ज्योति-स्तम्भ है, अनेक संप्रदाय वालों के फैलाये पाखण्ड-जाल के अंधेरे को नाश करने वाला यह चमत्कारी वैद्युतिक महाप्रदीप है, यह आदित्य ब्रह्मचारी की अलौकिक तपस्या से प्राप्त ज्ञानमयी गंगा का परम पावन धवल स्रोत है जिसमें निमग्न होकर सत्य, शान्तिमय सुख प्राप्त होता है। इसकी अमर कान्ति अब और आगे भी बराबर फैलती ही रहेगी।

सत्यार्थप्रकाश की अभी तक तीन लाख से अधिक प्रतियां छप कर जनता में प्रचारित हो चुकी हैं तो भी अभी जनता की भारी संख्या ऐसी है, जिसमें सत्यार्थप्रकाश के पहुंचने की अत्यन्त आवश्यकता है, परन्तु निर्धनता से सत्यार्थप्रकाश उन तक नहीं पहुंच सका है। इसकी करोड़ों प्रतियां अभी प्रचार के लिये चाहियें।

ऋषि दयानन्द की निर्वाण-अर्धशताब्दी (१९९० वि० तदनुसार १९३३ ई० की दीपावली) के अवसर पर आर्य-साहित्य मण्डल लिमिटेड ने ही सर्व प्रथम प्रचारार्थ () आने वाला सस्ता संस्करण प्रकाशित किया था, जिसके आकार-प्रकार और सुन्दरता आदि पर जनता इतनी मुग्ध हुई कि २५ सहस्र का संस्करण हाथों हाथ विक गया और ७ महीने के उपरान्त वह संस्करण दुर्लभ हो गया। आर्य जनता के अनुरोध से बाधित होकर मण्डल को वैसे ही सुन्दर आकार-प्रकार का दूसरा और तीसरा संस्करण २०,००० और २१००० छापने पड़े। यह संस्करण भी बहुत शीघ्र समाप्त हो गये और अब चतुर्थ संस्करण २१००० का पुनः जनता के समक्ष प्रस्तुत है। यूरोपीय महायुद्ध के कारण सत्यार्थ प्रकाश में लगने वाले कागज़ का भाव दूने से भी अधिक हो गया है। प्रेस की अन्य सभी वस्तुयें बहुत मंहगी होगई हैं फिर भी हमने इसका मूल्य केवल ॥३॥ ही रक्खा है जो लागत से कुछ कम ही है, आशा है कि जनता इसे अपना कर हमारे उत्साह को बढ़ावेगी।

अथ सत्यार्थप्रकाशस्य सूचीपत्रम् ।

विषयाः	पृ०-पृ०	विषयाः	पृ०-पृ०
भूमिका	१-६	४ समुल्लासः ॥	
१ समुल्लासः		समावर्त्तनविषयः	७४
ईश्वरनामव्याख्या	१-२०	दूरदेशविवाहकरणम्	७५
मङ्गलाचरणसमीक्षा	२०-२२	विवाहे स्त्रीपुरुषपरीक्षा	७६-७७
२ समुल्लासः ॥		अल्पवयसि विवाहनिषेधः	“-८१
बालशिक्षाविषयः	२३-२५	गुणकर्मानुसारेण वर्णः	
भूतप्रेतादिनिषेधः	२५-२६	व्यवस्था	८१-८८
जन्मपत्रसूर्यादिग्रहसमीक्षा	२६-३१	विवाहलक्षणानि	८८-८९
३ समुल्लासः ॥		स्त्रीपुरुषव्यवहारः	८९-९४
अध्ययनाऽध्यापनविषयः	३२-३३	पञ्च महायज्ञाः	९४-९९
गुरुमन्त्रव्याख्या	३३-३५	पाखण्डितिरस्कारः	९९-१००
प्राणायामशिक्षा	३५-३६	प्रातरुधानादि	
यज्ञपात्राकृतयः	३७-३८	धर्मकृत्यम्	१००-१०२
सन्ध्याग्निहोत्रोपदेशः	३८-३९	पाखण्डिलक्षणानि	१०२-१०३
होमफलनिर्णयः	३९-४०	गृहस्थधर्मा	१०३-१०५
उपनयनसमीक्षा	४०-४१	पण्डितलक्षणानि	१०५-१०६
अग्निचर्योपदेशः	४१-४२	मूर्खलक्षणानि	१०६-१०७
अह्नचर्यकृत्यवर्णनम्	४२-५०	विद्यार्थिकृत्यवर्णनम्	१०७-१०८
पञ्चधापरीक्ष्याध्यापनम्	५०-६१	पुनर्विवाहिनियोगविषयः	१०८-१०९
पठनपाठनविशेषविधिः	६१-६६	गृहाश्रमधैर्यम्	१०९-११०
अन्यप्रामाण्याप्रामाण्यवि०	६६-६९	५ समुल्लासः ॥	
स्त्रीशूद्राध्ययनविधिः	६९-७३	वानप्रस्थविधिः	१२१-१२२
		संन्यासाश्रमविधिः	१२२-१२४

इस संस्करण की विशेषताएं

मण्डल द्वारा प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश में निम्नलिखित विशेषताएं हैं—

(१) लम्बाई चौड़ाई व मोटाई अधिक होने से जेब में रखने में असुविधा रहती थी, हमारा सत्यार्थप्रकाश जेब में रख कर कहीं भी ले जा सकते हैं। इस संस्करण में उस मोटाई को काफी कम कर दिया गया है।

(२) अनेक उद्धरणों के पते जो सत्यार्थप्रकाश में नहीं मिलते थे, वे इस संस्करण में दे दिये गये हैं।

(३) सत्यार्थप्रकाश के जितने संस्करण निकले उनके पृष्ठ परस्पर एक समान नहीं होने से सत्यार्थप्रकाश के उद्धरण देने में सुविधा नहीं होती थी, इसलिये इस के प्रथम १२ समुल्लासों को भी १३ वें और १४ वें के समान ही खण्डों (पैराग्राफों) में विभक्त कर दिया है। इस विशेषता से लेखक, उपदेशक और आर्य्य सज्जन सभी लाभ उठावेंगे।

(४) इस संस्करण में प्रश्नों और उत्तरों को भी पृथक् पृथक् कर दिया गया है, जिससे पाठकों को पढ़ने और समझने में सुविधा हो।

(५) आर्य्यभाषा के प्रवाह में जहां ऋषिदयानन्द ने संस्कृत के वाक्यों का प्रयोग किया या किसी प्राचीन ग्रन्थ का कोई उद्धरण दिया है, उस को भी मोटे टाइप में कर दिया है, जिससे वह स्पष्ट पृथक् जान पड़े।

इस प्रकार पुस्तक की सुन्दरता के साथ साथ पढ़ने वालों के लिये भी ग्रन्थ अति रोचक और सरल हो गया है।

परम पिता जगदीश्वर से प्रार्थना है कि वह इस ऋषि-यज्ञ, ज्ञानयज्ञ और देवयज्ञ की हमारी श्रद्धाहुति को स्वीकार करें और हमें इस सद्ब्रह्म में वल, सामर्थ्य और सफलता प्रदान करें।

मधुराप्रसाद शिवहरे

मैनेजिंग डाइरेक्टर

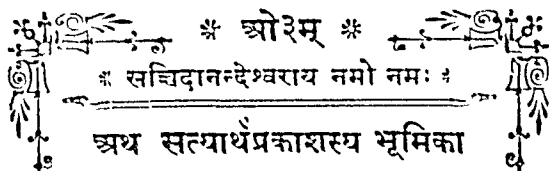
आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड, अजमेर.

अथ सत्यार्थप्रकाशस्य सूचीपत्रम् ।

विषयाः	पृ०-पृ०	विषयाः	पृ०-पृ०
भूमिका	१-६	४ समुद्घातः ॥	
१ समुद्घातः		समावर्तनविषयः	७४
ईश्वरनामव्याख्या ..	१-२०	दूरदेशविवाहकरणम्	७५
मङ्गलाचरणसमीक्षा .	२०-२२	विवाहे स्त्रीपुरुषपरीक्षा	७६-७७
२ समुद्घातः ॥		अल्पवयसि विवाहनिषेधः	“-८१
बालशिक्षाविषयः ..	२३-२५	गुणकर्मानुसारेण वर्ण-	
भूतप्रेतादिनिषेधः .	२५-२६	व्यवस्था	८१-८८
जन्मपत्रसूर्यादिग्रहसमीक्षा	२६-३१	विवाहलक्षणानि	८८-८९
३ समुद्घातः ॥		स्त्रीपुरुषव्यवहारः	८९-९४
अध्ययनाऽध्यापनविषयः	३२-३३	पञ्च महायज्ञाः	९४-९९
गुरुमन्त्रव्याख्या	३३-३५	पाखण्डितिरस्कारः	९९-१००
प्राणायामशिक्षा	३५-३६	प्रातरुत्थानादि	
यज्ञपात्राकृतयः	३७-३८	धर्मकृत्यम्	१००-१०२
सन्ध्याग्निहोत्रोपदेशः	३८-३९	पाखण्डिलक्षणानि	१०२-१०३
होमफलनिर्णय	३९-४०	गृहस्थधर्मा	१०३-१०५
उपनयनसमीक्षा	४०-४१	पण्डितलक्षणानि	१०५-१०६
अष्टचर्योपदेशः	४१-४२	मूर्खलक्षणानि	१०६-१०७
अष्टचर्यकृत्यवर्णनम्	४२-५०	विद्यार्थिकृत्यवर्णनम्	१०७-१०८
पञ्चधापरीक्षाध्यापनम्	५०-६१	पुनर्विवाहनियोगविषयः	१०८-१०९
पठनपाठनविशेषविधिः	६१-६६	गृहाश्रमधैर्यम्	१०९-११०
अन्यप्रामाण्याप्रामाण्यवि०	६६-६९	५ समुद्घातः ॥	
स्त्रीशूद्राप्ययनविधिः	६९-७३	वानप्रस्थविधिः	१२१-१२२
		संन्यासाश्रमविधिः	१२२-१२४

विषयाः	पृ०-पृ०	विषयाः	पृ०पृ०
ब्रह्मचारिसंन्यासि-		१३ समुल्लासः	
समीक्षा	४०६-४११	अनुभूमिका	४८९-४९०
भार्यावर्तीयराजवंशा-		कृत्रीनमतसमीक्षा	४९१-५४२
वली	४११-४१५	तौरेतयात्रापुस्तकम्	५०९-५१३
१२ समुल्लासः		लयव्यवस्थापुस्तकम्	५१३-५१३
अनुभूमिका	४१६-४१७	गणनापुस्तकम्	५१६-५१७
नास्तिकमतसमीक्षा	४१८	समुपलब्ध्यस्य द्वितीयं पुस्तकम्	५१७
चारवाकमतसमीक्षा	४१९-४२१	राज्ञां पुस्तकम्	५१७-५१८
चारवाकादिनास्तिकभेदाः	४२१-४२४	ज्ञवूरपुस्तकम्	५१८
बौद्धसौगतसमीक्षा	४२४-४३०	कालवृत्तस्य १ पुस्तकम्	५१७
सप्तमंगीस्याद्वादः	४३०-४३३	ऐयूबाख्यस्य पुस्तकम्	५१८-५१९
जैनबौद्धयोरैक्यम्	४३३-४३७	उपदेशस्य पुस्तकम्	५१९
आस्तिकनास्तिकसंवादः	४३७-४४१	मत्तीरचितमिञ्जीलाख्यम्	५१९-५३५
जगतोनादित्वसमीक्षा	४४१-४४५	मार्करचितमिळ्जाख्यम्	५३५
जैनमते भूमिपरिमाणम्	४४५-४४७	लूकरचितमिञ्जीलाख्यम्	५३५-५३६
जीवादन्त्यस्य जडत्वं		योहनरचितसुसमाचारः	५३६-५३७
पुद्गलनां पापे प्रयोज-		योहनप्रकाशितवाक्यम्	५३७-५४९
कत्वं च	४४७-४५१	१४ समुल्लासः	
जैनधर्मप्रशंसादि-		अनुभूमिका	५५०
समीक्षा	४५१-४६९	यवनमतकुरानाख्य-	
जैनमतमुक्तिसमीक्षा	४६९-४७१	समीक्षा	५५१-६१८
जैनसाधुलक्षणसमीक्षा	४७२-४७९	अल्लोप्रनिपत् समीक्षा	६१७-६१८
जैनतीर्थंकर२४व्याख्या	४७९-४८७	स्वमन्तव्यामन्तव्य-	
जैनमते जम्बूद्वीपादिवि०	४८७-४८८	प्रकाशः	६१९-६२६

इत्युत्तरार्द्धः



१—जिस समय मैंने यह ग्रन्थ “सत्यार्थप्रकाश” बनाया था उस समय और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने, पठनपाठन में संस्कृत ही बोलने और जन्मभूमि की भाषा गुजराती होने के कारण से मुझको इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था, इससे भाषा अशुद्ध बन गई थी। अब भाषा बोलने और लिखने का अभ्यास होगया है। इसलिये इस ग्रन्थ को भाषान्याकरणानुसार शुद्ध करके दूसरी बार छपवाया है। कहीं कहीं शब्द, वाक्य, रचना का भेद हुआ है तो करना उचित था क्योंकि इसके भेद किये बिना भाषा की परिपाटी सुधरनी कठिन थी, परन्तु अर्थ का भेद नहीं किया गया है, प्रत्युत विशेष तो लिखा गया है। हा जो प्रथम छपने में कहीं २ भूल रही थी वह निम्नलिखित शोध कर ठीक २ कर दी गई है।

२—यह ग्रन्थ १४ (चौदह) समुल्लास अर्थात् चौदह विभागों में रचा गया है। इसमें १० (दश) समुल्लास पूर्वार्ध और ४ (चार) उत्तरार्ध में बने हैं, परन्तु अन्य के दो समुल्लास और पश्चात् स्वसिद्धान्त किसी कारण से प्रथम नहीं छप सके थे अब वे भी छपवा दिये हैं।

(१) प्रथम समुल्लास में ईश्वर के ओंकारादि नामों की व्याख्या।

(२) द्वितीय समुल्लास में सन्तानों की शिक्षा।

(३) तृतीय समुल्लास में ब्रह्मचर्य, पठनपाठन व्यवस्था, सत्यासत्य ग्रन्थों के नाम और पढ़ने पढ़ाने की रीति।

(४) चतुर्थ समुल्लास में विवाह और गृहाश्रम का व्यवहार।

(५) पञ्चम समुल्लास में वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम की विधि।

(६) छठे समुल्लास में राजधर्म।

(७) सप्तम समुल्लास में वेदेश्वर विषय।

(८) अष्टम समुल्लास में जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय।

(९) नवम समुल्लास में विद्या, अधिद्या, वन्ध और मोक्ष की व्याख्या।

(१०) दशवें समुल्लास में आचार, अनाचार और भक्ष्याभक्ष्य विषय।

(११) एकादश समुल्लास में आर्य्यावर्त्तीय मतमतान्तर का मण्डन विषय।

- (१२) द्वादश समुल्लास में चार्वाक, बौद्ध और जैनमत का विषय।
 (१३) त्रयोदश समुल्लास में ईसाईमत का विषय।
 (१४) चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों के मत का विषय। और चौदह समुल्लासों के अन्त में श्रायों के सनातन वेदविहित मत की विशेषतः व्याख्या लिखी है, जिसको मैं भी यथावत् मानता हूँ।

३—मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य-मत्त अर्थ का प्रकाश करना है अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय। किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है इसलिये वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिये विद्वान् भासों का यही मुख्य काम है कि उप देश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें। मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है। तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है। परन्तु इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रक्खी है। और न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है। किन्तु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करे क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।

४—इस ग्रन्थ में जो कहीं २ भूल चूक से अथवा शोधने तथा छापने में भूलचूक रह जाय उसको जानने जनाने पर जैसा वह सत्य होगा वैसा कर दिया जायगा। और जो कोई पक्षपात से अन्यथा शंका वा खण्डन करेगा उस पर ध्यान न दिया जायगा। हाँ, जो वह मनुष्यमात्र ही होकर कुछ जनावेगा उसको सत्य समझने पर उसका मत होगा। यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं। वे ग्रेट सर्वतन्त्र मिद्वान्त, अर्थात् जो २ बातें सब के अनुकूल, सब

में सत्य हैं उनका ग्रहण और जो एक दूसरे से विरुद्ध बातें हैं उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से बर्तें वस्तुवि तो जगत् का पूर्ण हित होवे । क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़ कर अनेकविध दुःख की वृद्धि और सुख की हानि होती है । इस तानि ने, जो कि स्वार्थी मनुष्यों को प्रिय है, सब मनुष्यों को दुःखसागर में डुबा दिया है । इनमें से जो कोई सार्वजनिक हित लक्ष्य में धर प्रवृत्त होता है उससे स्वार्थी लोग विरोध करने में तत्पर होकर अनेक प्रकार विघ्न करते हैं । परन्तु,

सत्यमेव जयते नानृतम् । सत्येन पन्था विततो देवयान ॥

अर्थात्, सर्वदा सत्य का विजय और असत्य का पराजय और सत्य ही से विद्वानों का मार्ग विस्तृत होता है, इस दृढ़ निश्चय के आलम्बन से आस लोग परोपकार करने से उदासीन होकर कभी सत्यार्थ प्रकाश करने से नहीं हटते । यह बड़ा दृढ़ निश्चय है कि—

यत् तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।

यह गीता [अ० १८।३७] का वचन है । इसका अभिप्राय यह है कि जो १ विद्या और धर्मप्राप्ति के कर्म हैं वे प्रथम करने में विष के तुल्य और पश्चात् अमृत के सदृश होते हैं । ऐसी बातों को चित्त में धर के मैंने इस ग्रन्थ को रचा है । श्रोता वा पाठकगण भी प्रथम प्रेम से देख के इस ग्रन्थ का सत्य २ तात्पर्य जानकर यथेष्ट करें । इसमें यह अभिप्राय रक्खा गया है कि जो २ सब मतों में सत्य २ बातें हैं वे १ सब में अविरोध होने से उनका स्वीकार करके जो १ मतमतान्तरों में मिथ्या बातें हैं उन २ का खण्डन किया है । इसमें यह भी अभिप्राय रक्खा है कि जब मतमतान्तरों की गुप्त वा प्रकट पुरी बातों का प्रकाश कर विद्वान्, अविद्वान् सब साधारण मनुष्यों के सामने रक्खा है, जिसमें सबसे सब २ विचार होकर परस्पर प्रेमी हो के एक सत्य मतस्थ होवे । यद्यपि मैं आर्यावर्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूँ तथापि जैसे इस देश के मतमतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर याथातथ्य प्रकाश करता हूँ वैसे ही दूसरे देशस्थ वा मतोज्जतिवालों के साथ भी वर्तता हूँ, जैसा स्वदेशवालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्तता हूँ वैसे विदेशियों के साथ भी, तथा सब सज्जनों को भी वर्तना योग्य है । क्योंकि मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता तो जैसे आजकल के स्वमत की स्तुति, मण्डन और प्रचार करते और दूसरे मत की निन्दा, हानि और घन्द करने में तत्पर होते हैं वैसे मैं भी होता, परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन से बाहर हैं ।

क्योंकि जैसे पशु बलवान् होकर निर्बलों को दुःख देते और मार भी डालते हैं। जब मनुष्य शरीर पाके वैसा ही कर्म करते हैं तो वे मनुष्यस्वभाव युक्त नहीं, किन्तु पशुवत् हैं। और जो बलवान् होकर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवश होकर परहानिमात्र करता रहता है वह जानो पशुओं का भी बड़ा भाई है।

५—अब आर्यावर्तियों के विषय में विशेष कर ११ ग्यारहवें समुह्रास तक लिखा है। इन समुह्रासों में जो कि सत्यमत प्रकाशित किया है वह वेदोक्त होने से मुक्तको सर्वथा मन्तव्य है। और जो नवीन पुराण, तन्त्रादि ग्रन्थोक्त बातों का खण्डन किया है वे त्यक्तव्य हैं। जो १२ बारहवें समुह्रास में दर्शाया चार्वाक का मत यद्यपि इस समय क्षीणास्त सा है और यह चार्वाक बौद्ध जैन से बहुत सम्वन्ध अनीश्वरवादादि में रखता है, यह चार्वाक सबसे बड़ा नास्तिक है। उसकी चेष्टा का रोकना अवश्य है। क्योंकि जो मिथ्या बात न रोकी जाय तो ससार में बहुतसे अनर्थ प्रवृत्त हो जाय। चार्वाक का जो मत है वह तथा बौद्ध और जैन का जो मत है वह भी १२ वे समुह्रास में संक्षेप से लिखा गया है। और बौद्धों तथा जैनियों का भी चार्वाक के मत के साथ मेल है और कुछ थोड़ा सा विरोध भी है। और जैन भी बहुत से अंशों में चार्वाक और बौद्धों के साथ मेल रखता है और थोड़ी सी बातों में भेद है। इसलिये जैनों की भिन्न शाखा गिनी जाती है। वह भेद १२ बारहवें समुह्रास में लिख दिया है, यथायोग्य वहीं समझ लेना। जो इसका भेद है सो १ बारहवें समुह्रास में दिखलाया है, बौद्ध और जैन मत का विषय भी लिखा है। इनमें से बौद्धों के दीपवंशादि प्राचीन ग्रन्थों में बौद्धमतसंग्रह, सर्वदर्शनसंग्रह में दिखलाया है, उसमें से यहां लिखा है। और जैनियों के निम्नलिखित सिद्धान्तों के पुस्तक हैं उनमें से चार मूल सूत्र, जैसे—१ आवश्यकसूत्र, २ विशेष आवश्यकसूत्र, ३ दशवैकालिकसूत्र और ४ पाक्षिकसूत्र ॥ ११ (ग्यारह) अङ्ग, जैसे—१ आचारांगसूत्र, २ सुगढांगसूत्र, ३ थाणांगसूत्र, ४ समवायांगसूत्र, ५ भगवतीसूत्र, ६ ज्ञाताधर्मकथासूत्र, ७ उपासकदशासूत्र, ८ अन्तगड-दशासूत्र, ९ अनुत्तरोववाहसूत्र, १० विपाकसूत्र और ११ प्रश्नव्याकरणसूत्र ॥ १२ (बारह) उपांग, जैसे—१ उपवाहसूत्र, २ रायपसेनीसूत्र, ३ जीवाभिगमसूत्र, ४ पन्नवणासूत्र, ५ जंबुद्वीपपन्नतीसूत्र, ६ चन्द्रपन्नतीसूत्र, ७ सूरपन्नतीसूत्र, ८ निरियावलीसूत्र ९ कप्पियासूत्र, १० कपबद्धीसयासूत्र, ११ पृग्गियामूत्र और १२ पुप्पचूलियासूत्र ॥ ५ (पाँच) कल्पसूत्र, जैसे—

१ उत्तराख्यानसूत्र, २ निशीथसूत्र, ३ कल्पसूत्र, ४ व्यवहार सन और ५ जी(म)नकल्पसूत्र ॥ ६ (छ) छेद, जैसे—१ महानिशीथग्रहवाचनासूत्र, २ महानिशीथलघुवाचनासूत्र, ३ मध्यमवाचनासूत्र, ४ पिण्डनिरुक्तिसूत्र, ५ ओग्निरुक्तिसूत्र, ६ पर्युषणसूत्र ॥ १० (दश) पयन्नासूत्र, जैसे— १ चतुस्तरणसूत्र, २ पञ्चागणमूत्र, ३ तदुल्लेख्यात्मिकसूत्र, ४ भक्तिपरिज्ञानसूत्र, ५ महाप्रत्याख्यानसूत्र, ६ च्छेदविजयसूत्र, ७ गणीविजयसूत्र, ८ भरणसमाधिसूत्र, ९ देवेन्द्रस्तमनसूत्र और १० ससारसूत्र तथा नन्दीसूत्र, योगोद्धारसूत्र भी प्रामाणिक मानते हैं ॥ ५ पञ्चाङ्ग, जैसे— १ पूर्व सब ग्रन्थों की टीका, २ निरुक्ति, ३ चरणी, ४ भाष्य, ये चार अवयव और सब मूल मिलके पञ्चाग कहाते हैं इनमें हलिया अवयवों को नहीं मानते और इनसे भिन्न भी अनेक ग्रन्थ हैं कि जिनको जैनी लोग मानते हैं । इनके मत पर विशेष विचार १२ (चारहवें) समुदास में देख लीजिये ।

६—जैनियों के ग्रन्थों में लाखों पुनरुक्त दोष हैं । और इनका यह भी स्वभाव है कि जो अपना ग्रन्थ दूसरे मतवाले के हाथ में हो वा छपा हो तो कोई १ उस ग्रन्थ को अप्रमाण कहते हैं । यह बात उनकी मिथ्या है क्योंकि जिसको कोई माने, कोई नहीं, इससे वह ग्रन्थ जैनमत से बाहर नहीं हो सकता । हाँ ! जिसको कोई न माने और न कभी किसी जैनी ने माना हो तब तो अग्रह हो सकता है । परन्तु ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं है कि जिसको कोई भी जैनी न मानता हो इसलिये जो जिस ग्रन्थ को मानता होगा उस ग्रन्थस्थ विषयक खण्डन मण्डन भी उसीके लिये समझा जाता है । परन्तु कितने ही ऐसे भी हैं कि उस ग्रन्थ को मानते जानते हों तो भी सभा वा सवाद में बदल जाते हैं इसी हेतु से जैन लोग अपने ग्रन्थों को छिपा रखते हैं । और दूसरे मतस्थ को न देते, न सुनाते और न पढाते, इसलिये कि उनमें ऐसी २ असम्भव बातें भरी हैं जिनका कोई भी उत्तर जैनियों में से नहीं दे सकता । झूठ बात को छोड़ देना ही उत्तर है ।

७—१३ वें समुदास में ईसाइयों का मत लिखा है । ये लोग बाय-को अपना धर्मपुस्तक मानते हैं । इनका विशेष समाचार उसी १३

अम में देखिये । और १४ चौदहवें समुदास में मुसलमान

का है, ये लोग कुरान को अपने मत का मूल

विशेष व्यवहार १४ वें समुदास में

त के विषय में लिखा है ।

८—जो कोई इसे ग्रन्थकर्ता के तात्पर्य से विरुद्ध मनसा से देखेगा उसको कुछ भी अभिप्राय विदित न होगा। क्योंकि वास्त्यार्थ-बोध में चार कारण होते हैं, आकाङ्क्षा, योग्यता, आसक्ति और तात्पर्य। जब इन चारों बातों पर ध्यान देकर जो पुरुष ग्रन्थ को देखता है तब उसको ग्रन्थ का अभिप्राय यथायोग्य विदित होता है। 'आकाङ्क्षा' किसी विषय पर वक्ता की और वाक्यस्थ पदों की आकाङ्क्षा परस्पर होती है। 'योग्यता' वह कहाती है कि जिससे जो होसके, जैसे जल से सींचना। 'आसक्ति' जिस पद के साथ जिसका सन्बन्ध हो उसी के समीप उस पद को बोलना वा लिखना। 'तात्पर्य' जिसके लिये वक्ता ने शब्दोच्चारण वा लेख किया हो उसी के साथ उस वचन वा लेख को युक्त करना। बहुत से हठी, दुराग्रही मनुष्य होते हैं कि जो वक्ता के अभिप्राय से विरुद्ध कल्पना किया करते हैं, विशेष कर मतवाले लोग। क्योंकि मत के आग्रह से उनकी बुद्धि अन्धकार में फँस के नष्ट होजाती है। इसलिये जैसा मैं पुराण, जैनियों के ग्रन्थ, बायबिल और कुरान को प्रथम ही दुरी दृष्टि से न देखकर उनमें से गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग तथा अन्य मनुष्य जाति की उन्नति के लिये प्रयत्न करता हूँ, वैसा सबको करना योग्य है। इन मतों के थोड़े १ ही दोष प्रकाशित किये हैं जिनको देखकर मनुष्य लोग सत्यासत्य मत का निर्णय कर सकें और सत्य का ग्रहण तथा असत्य का त्याग करने कराने में समर्थ होवें। क्योंकि एक मनुष्य जाति में बहका कर, विरुद्ध बुद्धि कराके, एक दूसरे को शत्रु बना, लड़ा मारना विद्वानों के स्वभाव से बहिः है। यद्यपि इस ग्रन्थ को देख कर अविद्वान् लोग अन्यथा ही विचारेगें तथापि बुद्धिमान् लोग यथायोग्य इसका अभिप्राय समझेंगे। इसलिये मैं अपने परिश्रम को सफल समझता और अपना अभिप्राय सब सज्जनों के सामने धरता हूँ। इसको देख दिखला के मेरे श्रम को सफल करें। और इसी प्रकार पक्षपात न करके सत्यार्थ का प्रकाश करना मेरा वा सब महाशयों का मुख्य कर्तव्य काम है। सर्वात्मा, सर्वान्तर्यामी, सच्चिदानन्द परमात्मा अपनी कृपा से इस आशय को विस्तृत और चिरस्थायी करे।

॥ अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वरशिरोमणिषु । इति भूमिका ॥

१.

स्थान —

भिगम-गणाजी का उदयपुर,

७ सूर्य.

११ पुण्ड्रिय.

कृपक्ष संवत् १९३९

दयानन्द सरस्वती

॥ सच्चिदानन्देश्वराय नमो नमः ॥

अथ सत्यार्थप्रकाशः

प्रथमः समुह्वासः

१—ओम् शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्थमा । शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुक्मः ॥ नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यजं ब्रह्मासि । त्वामेव प्रत्यजं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु । अवतु मामवतु वक्तारम् ॥ ओ३म् शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः ॥ १ ॥

२—अर्थ—‘ओ३म्’ यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है, क्योंकि इसमें जो अ, उ और म् तीन अक्षर मिल कर एक ‘ओम्’ समुदाय हुआ है । इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं, जैसे—अकार से विराट्, अग्नि और विधादि । उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तैजसादि । मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है । उसका ऐसा ही वेदादि सत्य शास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान किया है कि प्रकरणानुकूल ये सब नाम परमेश्वर ही के हैं ।

३—(प्रश्न) परमेश्वर से भिन्न अर्थों के वाचक विराट् आदि नाम क्यों नहीं ? ब्रह्माण्ड, पृथिवी आदि भूत, इन्द्रादि देवता और वैद्यकशास्त्र में शुण्ध्यादि ओषधियों के भी ये नाम हैं वा नहीं ?

(उत्तर) हैं, परन्तु परमात्मा के भी हैं ।

(प्रश्न) केवल देवों का ग्रहण इन नामों से करते हो वा नहीं ?

(उत्तर) आपके ग्रहण करने में क्या प्रमाण है ?

(प्रश्न) देव सब प्रसिद्ध और वे उत्तम भी हैं इससे मैं उनका ग्रहण करता हूँ ।

(उत्तर) क्या परमेश्वर अप्रसिद्ध और उससे कोई उत्तम भी है ? पुनः ये नाम परमेश्वर के भी क्यों नहीं मानते ? जब परमेश्वर अप्रसिद्ध और उसके तुल्य भी कोई नहीं तो उससे उत्तम कोई क्योंकर हो सकेगा ? इससे आपका यह कहना सत्य नहीं । क्योंकि आपके इस कहने में बहुत से दोष भी आते हैं जैसे—

उपस्थितं परित्यज्यानुपस्थितं याचत इति बाधितन्यायः ॥

किसी ने किसी के लिये भोजन का पदार्थ रख के कहा कि आप भोजन कीजिये और वह जो उसको छोड़ के अप्राप्त भोजन के लिये जहाँ तहाँ भ्रमण करे, उसको बुद्धिमान् न जानना चाहिये, क्योंकि वह उपस्थित नाम समीप प्राप्त हुए पदार्थ को छोड़ के अनुपस्थित अर्थात् अप्राप्त पदार्थ की प्राप्ति के लिये श्रम करता है । इसलिये जैसा वह पुरुष बुद्धिमान् नहीं वैसा ही आपका कथन हुआ । क्योंकि आप उन विराट् आदि नामों के जो प्रसिद्ध प्रमाणसिद्ध परमेश्वर और ब्रह्माण्डादि उपस्थित अर्थों का परित्याग करके असम्भव और अनुपस्थित देवादि के ग्रहण में श्रम करते हैं । इसमें कोई भी प्रमाण वा युक्ति नहीं । जो आप ऐसा कहे कि जहाँ जिसका प्रकरण है वहाँ उसी का ग्रहण करना योग्य है, जैसे किसी ने किसी से कहा कि 'हे भृत्य ! त्वं सैन्धवमानय' अर्थात् तू सैन्धव को ले आ, तब उसको समय अर्थात् प्रकरण का विचार करना अवश्य है क्योंकि सैन्धव नाम दो पदार्थों का है, एक घोड़े और दूसरे लवण का । जो स्वस्वामी का गमनसमय हो तो घोड़े और भोजन का काल हो तो लवण को ले आना उचित है । और जो गमनसमय में लवण और भोजनसमय में घोड़े को ले आवे तो उसका स्वामी उसपर क्रुद्ध होकर कहेगा कि तू निर्वुद्धि पुरुष है । गमनसमय में लवण और भोजनकाल में घोड़े के लाने का क्या प्रयोजन था ? तू प्रकरणचित् नहीं है, नहीं तो जिस समय में जिसको लाना चाहिये था उसी को लाता । जो तुझ को प्रकरण का विचार करना आवश्यक था वह तूने नहीं किया, इससे तू मूर्ख है मेरे पास से चला जा । इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहाँ जिसका ग्रहण करना उचित हो वहाँ उसी अर्थ का ग्रहण करना चाहिये तो ऐसा ही हम और आप सब लोगों को मानना और करना भी चाहिये ।

४—अथ मन्त्रार्थः

ओ३म् खम्ब्रह्म ॥ १ ॥ यजुः० अ० ४० । मं० १७ ॥

देखिये वेदों में ऐसे १ प्रकरणों में 'ओम्' आदि परमेश्वर के नाम हैं ।

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत ॥ २ ॥

छान्दोग्य उपनिषत् [मं० १]

ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानम् ॥ ३ ॥

माण्डूक्य [मं० १]

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाथंति सर्वाणि च यद्वदन्ति ।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमि-
त्येतत् ॥ ४ ॥

कठोपनिषदि [बल्ली २ । मं० १५]

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि ।

रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम् ॥ ५ ॥

एतमग्निं वदन्त्येके मनुमन्ये प्रजापतिम् ।

इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ६ ॥

[मनु० अ० १२ । श्लो० १२२, १२३]

स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रस्स शिवस्सोऽक्षरस्स परमः स्वराद् ।

स इन्द्रस्स कालाग्निस्स चन्द्रमाः ॥ ७ ॥

कैवल्य उपनिषत् [१ । ८ ॥]

इन्द्रं भित्रं चरुणमग्निमाहुरथो दिव्यस्स सुप्रणो गुरुमान् ।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ ८ ॥

ऋ० मं० १ । सू० १६४ । मं० ४६ ॥

भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य

धूर्वा । पृथिवी यच्छ पृथिवीं दृथंह पृथिवीं मा हिथंसीः ॥ ९ ॥

यजु० अ० १३ । मं० १८ ॥

इन्द्रो महना रोदसी प्रपथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।

इन्द्रेह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे स्वानास इन्दवः ॥ १० ॥

सामवेद प्रपा० ७ । अ० प्र० ३ । त्रिक ८ मं० २ ॥

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशं ।

यो भुतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ११ ॥

अथर्ववेदे काण्ड ११ । अ० २ सू० ४ । मं० १ ॥

अर्थ—यहाँ इन प्रमाणों के लिखने में तात्पर्य यही है कि जो ऐसे प्रमाणों में ओंकारादि नामों से परमात्मा का ग्रहण होता है यह आये। तथा परमेश्वर का कोई भी नाम अनर्थक नहीं। जैसे लोक दरिद्री आदि के धनपति आदि नाम होते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि कहीं गौणिक, कहीं कामिक और कहीं स्वाभाविक अर्थों के वाचक हैं।

५—“ओम्” आदि नाम सार्थक हैं, जैसे (ओम्) आकाशमिव व्यापकत्वात् खम् । सर्वेभ्यो बृहत्त्वाद् ब्रह्म । करने से ‘ओ३म्’, आकाशवत् व्यापक होने से ‘गम्’ और सबसे बड़ा होने से ‘ब्रह्म’ ईश्वर का नाम है ॥१॥ (ओमित्येत०) ‘ओ३म्’ जिसका नाम और जो कभी नष्ट नहीं होता उसी की उपासना करनी योग्य है, अन्य नहीं ॥२॥ (ओमित्येत०) सब वेदादि शास्त्रों में परमेश्वर का प्रधान निज नाम ‘ओ३म्’ को कहा है, अन्य सब गौणिक नाम हैं ॥३॥ (वेदा०) क्योंकि सब वेद, सब धर्मानुष्ठानरूप तत्त्वश्रवण जिसका कथन मान्य करते और जिसकी प्राप्ति की इच्छा करके ब्रह्मचर्याश्रम करते हैं उस नाम “ओम्” है ॥ ४ ॥

६—(प्रशासिता०) जो सबको शिक्षा देने हारा, सूक्ष्म से स्वप्रकाशस्वरूप, समाधिस्थ बुद्धि से जानने योग्य है, उसको परम जानना चाहिये ॥५॥ और स्वप्रकाश होने से ‘अग्नि’, विज्ञानस्वरूप से ‘मनु’, सब का पालन करने से ‘प्रजापति’ और परमेश्वर्यवान् होने से ‘इन्द्र’, सब का जीवनमूल होने से ‘प्राण’, और निरन्तर व्यापक होने परमेश्वर का नाम ‘ब्रह्म’ है ॥ ६ ॥ (स ब्रह्मा स विष्णुः०) सब के बनाने से ‘ब्रह्मा’, सर्वत्र व्यापक होने से ‘विष्णु’, दुष्टोंको दण्ड देने से ‘रुद्र’, महत्त्वमय और सबका कल्याणकर्त्ता होने से ‘शिव’ यः सर्वमश्नुते न क्षरति न विनश्यति तदक्षरम् ॥ १ ॥ यः स्वयं राजते स स्वराट् ॥ २ ॥ योऽग्निरिव कालः प्रलयकर्त्ता स कालाग्निरीश्वरः ॥ ३ ॥ ‘अक्षर’ जो सर्वत्र व्यापक अविनाशी, ‘स्वराट्’ स्वयं प्रकाशस्वरूप और (कालाग्नि०) प्रलयमें सबका और काल का भी काल है इसलिये परमेश्वर का नाम ‘कालाग्नि’ है ॥७॥

७—(इद्रं मित्र०) जो एक अद्वितीय सत्य ब्रह्म वस्तु है उसी इन्द्रादि सब नाम हैं। सुप्तं शुद्धेषु पदार्थेषु भवो दिव्यः । पणानि पालनानि पूरणानि कर्माणि वा यस्य सः । या गुर्वात्मा

गरुत्मान् । यो मातरिश्वा वायुरिव चलवान् स मातरिश्वा ।
दिव्य' जो प्रकृत्यादि दिव्य पदार्थों में व्याप्त, 'सुपर्ण' जिसके उत्तम पालन
और पूर्ण कर्मे हैं, 'गरुत्मान्' जिसका आत्मा अर्थात् स्वरूप मान् है,
मातरिश्वा' जो वायु के समान अनन्त चलवान् है इसलिये परमात्मा के
दिव्य', 'सुपर्ण', 'गरुत्मान्' और 'मातरिश्वा' ये नाम हैं । शेष नामों का
अर्थ आगे लिखेंगे ॥ ८ ॥ (भूमिरस्ति०) "भवन्ति भूतानि यस्यां
ना भूमिः" जिसमें सब भूत, प्राणी होते हैं इसलिये ईश्वर का नाम
'भूमि' है । शेष नामों का अर्थ आगे लिखेंगे ॥ ९ ॥

(इन्द्रो महना०) इस मन्त्र में 'इन्द्र' परमेश्वर ही का नाम है
इसलिये यह प्रमाण लिखा है ॥ १० ॥

(प्राणाय०) जैसे प्राण के वश सब शरीर और इन्द्रियां होती हैं
से परमेश्वर के वश में सब जगत् रहता है ॥ ११ ॥

८—इत्यादि प्रमाणों के ठीक ठीक अर्थों के जानने से इन नामों करके
परमेश्वर ही का ग्रहण होता है । क्योंकि 'ओ३म्' और अन्यादि नामों के मुख्य
अर्थ से परमेश्वर ही का ग्रहण होता है । जैसा कि व्याकरण, निरुक्त, ब्राह्मण,
आदि ऋषि मुनियों के व्याख्यानो से परमेश्वर का ग्रहण देखने में आता
जैसा ग्रहण करना सबको योग्य है, परन्तु 'ओ३म्' यह तो केवल पर-
मा ही का नाम है और अग्नि आदि नामों से परमेश्वर के ग्रहण में प्रक-
और विशेषण नियमकारक हैं । इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहां २
ते, प्रार्थना, उपासना, सर्वज्ञ, व्यापक, शुद्ध, सनातन और सृष्टिकर्ता
दि विशेषण लिखे हैं वही २ इन नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता
। और जहां २ ऐसे प्रकरण हैं कि—

ततो विराड्जायत विराजो अग्नि पुरुषः ॥ ५ ॥

श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखोद्ग्निरजायत ॥ १२ ॥

तेन देवा अयजन्त ॥ ६ ॥ एश्वाद्भूमिमथो पुर ॥ १५ ॥ यजुः अ० ३१

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः । आकाशाद्वायुः ।

पौरग्निः । अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी । पृथिव्या ओषधयः ।

पथिभ्योऽन्नम् । अन्नाद्रेतः । रेतसः पुरुषः । स वा एष

प्रोऽन्नरसमयः ॥ [तै० उप० ब्रह्मा० वही अ० १]

यह तैत्तिरीयोपनिषद् का वचन है । ऐसे प्रमाणों में विराट्, पुरुष,
आकाश, वायु, अग्नि, जल, भूमि आदि नाम लौकिक पदार्थों के होते

हैं। क्योंकि जहां १ उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, अल्पज, जड, दस्य विशेषण भी लिखे हों वहाँ २ परमेश्वर का ग्रहण नहीं होता। वह आदि व्यवहारों से पृथक् है और उपरोक्त मन्त्रों में उत्पत्ति आदि हैं। इसी से यहा विराट् आदि नामों में परमात्मा का ग्रहण न संसारी पदार्थों का ग्रहण होता है। किन्तु जहां १ सर्वज्ञादि विशेषण वहा २ परमात्मा और जहां २ इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञादि विशेषण हों वहा ३ जीव का ग्रहण होता है। ऐसा सर्वत्र चाहिये, क्योंकि परमेश्वर का जन्म मरण कभी नहीं होता। इसमें आदि नाम और जन्मादि विशेषणों से जगत् के जड और जीवादि का ग्रहण करना उचित है, परमेश्वर का नहीं। अब जिस प्रकार विराट् नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता है वह प्रकार नीचे लिखे प्रमाणों से

६—अथ ओङ्कारार्थः । ‘वि’ उपसर्गपूर्वक ‘राज दीप्तौ’ इससे ‘क्विप्’ प्रत्यय करने से ‘विराट्’ शब्द सिद्ध होता है। ‘यो’ नाम चराऽचरं जगद्राजयति प्रकाशयति स विराट्’ अर्थात् जो बहु प्रकार के जगत् को प्रकाशित करे इससे ‘विराट्’ परमेश्वर का ग्रहण होता है। ‘अञ्चु गतिपूजनयोः’ ‘अग, अणि, गत्यर्थक’ धातु हैं इनसे ‘अग्नि’ शब्द सिद्ध होता है। गतेस्त्रयोऽक्षानं गमनं प्राप्तिश्चेति । पूजनं नाम सत्कारः । योऽश्नयतऽगत्यङ्गतेत्येति वा सोऽग्नमग्निः ।’ जो ज्ञानस्वरूप, जानने, प्राप्त होने और पूजा करने योग्य है इससे उस परमेश्वर का ‘अग्नि’ है। ‘विश प्रवेशने’ इस धातु से ‘विश्व’ शब्द सिद्ध होता है। ‘विशन्ति प्रविष्टानि सर्वाण्याकाशादीनि भूतानि यो वाऽऽकाशादिषु सर्वेषु भूतेषु प्रविष्टः स विश्व’ जिसमें आकाशादि सब भूत प्रवेश कर रहे हैं अथवा जो इनमें होकर प्रविष्ट हो रहा है इसलिये उस परमेश्वर का नाम ‘विश्व’ इत्यादि नामों का ग्रहण अकारमात्र से होता है। ‘ज्योतिर्वै तेजा वै हिरण्यमित्यैतेरेये (१।८।१।१॥) शतपथे [६।७।१।] ब्राह्मणे । यो हिरण्यानां सूर्यादीनां तेजसां गर्भ उ च तत्तमधिकरणं स हिरण्यगर्भः । जिसमें सूर्यादि तेज वाले लोक होकरे जिसके आधार रहते हैं। अथवा जो सूर्यादि तेजःस्वरूप ‘गर्भ’ नाम उत्पत्ति और निवासस्थान है इससे उस परमेश्वर का

प्यगर्भ' है। इसमें यजुर्वेद के मन्त्र का प्रमाण है —

रयगर्भः समवर्त्ततात्रै भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
दाधार पृथिवीं धामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

[यजु० अ० १३ । म० ४]

इत्यादि स्थलों में 'रिप्यगर्भ' से परमेश्वर ही का ग्रहण होता है।
गतिगन्धनो.' इस धातु से 'वायु' शब्द सिद्ध होता है। 'गन्धनं
सनम्' । 'यो वाति चराऽचरञ्जगद्धरति वलिनां वलिष्ठ स
युः ।' जो चराऽचर जगत् का धारण, जीवन और प्रलय करता और सब
जानों में चलान् है इससे उस ईश्वर का नाम 'वायु' है। 'तिज
जाने' इस धातु से 'तेज' और इससे तद्धित करने से 'तेजस्' शब्द सिद्ध
ना है। जो आप स्वयंप्रकाश और सूर्यादि तेजस्वी लोकों का प्रकाश करने
वा है इससे उस ईश्वर का नाम 'तेजस्' है। इत्यादि नामार्थ उकार-
प्र से ग्रहण होते हैं। 'ईश ऐश्वर्ये' इस धातु से 'ईश्वर' शब्द सिद्ध
ना है। 'य ईष्टे सर्वैश्वर्यवान् वर्त्तते स ईश्वरः ।' जिसका सत्य
वारशील ज्ञान और अनन्त ऐश्वर्य है इससे उस परमात्मा का नाम
'इश्वर' है। 'दो अवबोधने' इस धातु से 'अदिति' और इससे तद्धित
ने से 'आदित्य' शब्द सिद्ध होता है। 'न विद्यते विनाशो यस्य
'ऽयमदितिः । अदितिरेव आदित्यः ।' जिसका विनाश कभी
हो उसी ईश्वर की 'आदित्य' सत्ता है। 'ज्ञा अवबोधने' 'प्र' पूर्वक इस
से 'प्रज्ञ' और इससे तद्धित करने से 'प्राज्ञ' शब्द सिद्ध होता है।
प्रकृततया चराऽचरस्य जगता व्यवहारं जानाति स प्रज्ञः ।
एव प्राज्ञः । जो निर्वर्तान्त ज्ञानयुक्त सब चराऽचर जगत् के व्यवहार
पथावत् जानता है इससे ईश्वर का नाम 'प्राज्ञ' है। इत्यादि नामार्थ
र से गृहीत होते हैं। जैसे एक १ मात्रा से तीन २ अर्थ बड़ा व्याख्यात
हैं वैसे ही अन्य नामार्थ भी ओंकार में जाने जाते हैं।

१०—जो (शन्नो मित्रः शं ष०) इस मन्त्र में मित्रादि नाम हैं
नि परमेश्वर के हैं क्योंकि स्तुति, प्रार्थना, उपासना श्रेष्ठ ही की जाती
श्रेष्ठ उसको कहते हैं जो गुण, कर्म, स्वभाव और सत्य सत्य व्यवहारों
सब से अधिक हो। उन सब श्रेष्ठों में भी जो अत्यन्त श्रेष्ठ उसको परम-
कहते हैं। जिसके तुल्य कोई न हुआ, न है और न होगा। जब तुल्य
तो उससे अधिक क्योंकर हो सकता है? जैसे परमेश्वर के सत्य न्याय

हैं। क्योंकि जहां १ उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, अल्पज्ञ, जड, दय्य विशेषण भी लिखे हो वहाँ २ परमेश्वर का ग्रहण नहीं होता। वह आदि व्यवहारों से दृश्य है और उपरोक्त मन्त्रों में उत्पत्ति आदि हैं। इसी से यहां विराट् आदि नामों से परमात्मा का ग्रहण संसारी पदार्थों का ग्रहण होता है। किन्तु जहां १ सर्वज्ञादि विशेषण वहां २ परमात्मा और जहां २ इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञादि विशेषण हों वहां ३ जीव का ग्रहण होता है। ऐसा सर्वत्र चाहिये, क्योंकि परमेश्वर का जन्म मरण कभी नहीं होता। इससे आदि नाम और जन्मादि विशेषणों से जगत् के जड और जीवादि का ग्रहण करना उचित है, परमेश्वर का नहीं। अब जिस प्रकार विराट् नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता है वह प्रकार नीचे लिखे प्रमाण

६—अथ ओङ्कारार्थः । 'वि' उपसर्गपूर्वक 'राज दीप्तौ' इत्ये 'क्विप्' प्रत्यय करने से 'विराट्' शब्द सिद्ध होता है। 'यो वि नाम चराऽचरं जगद्राजयति प्रकाशयति स विराट्' अर्थात् जो बहु प्रकार के जगत् को प्रकाशित करे इससे 'विराट्' परमेश्वर का ग्रहण होता है। 'अञ्चु गतिपूजनयो' 'अग, अग्नि, गत्यर्थक' धातु हैं इनसे 'अग्नि' शब्द सिद्ध होता है। गतेस्त्वज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति । पूजनं नाम सत्कारः । योऽश्च्यतऽगत्यङ्गतेत्येति वा सोऽयमग्निः । जो ज्ञानस्वरूप, जानने, प्राप्त होने और पूजा करने योग्य है इससे उस परमेश्वर का 'अग्नि' है। 'विश प्रवेशने' इस धातु से 'विश्व' शब्द सिद्ध होता है। 'विशन्ति प्रविष्टानि सर्वाण्याकाशादीनि भूतानि यो वाऽऽकाशादिषु सर्वेषु भूतेषु प्रविष्टः स विश्व' जिसमें आकाशादि सब भूत प्रवेश कर रहे हैं अथवा जो इनमें होकर प्रविष्ट हो रहा है इसलिये उस परमेश्वर का नाम 'विश्व' इत्यादि नामों का ग्रहण अकारमात्र से होता है। 'ज्योतिर्वै दि तेजा वै हिरण्यमित्यैतेरेये (१।८।९।१॥) शतपथे [६।७।१।] ब्राह्मणे । यो हिरण्यानां सूर्यादीनां तेजसां गर्भ उत्पत्ति उत्तमधिकरण स हिरण्यगर्भः । जिसमें सूर्यादि तेज वाले लोक होकर जिसके आधार रहते हैं। अथवा जो सूर्यादि तेजःस्वरूप पदार्थ 'गर्भ' नाम उत्पत्ति और निवासस्थान है इससे उस परमेश्वर का

रण्यगर्भ' हे । इसमें यजुर्वेद के मन्त्र का प्रमाण है.—

रण्यगर्भः समवर्त्तताम्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।

दाधार पृथिवीं धामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

[यजु० अ० १३ । म० ४]

इत्यादि स्थलो में 'रण्यगर्भ' से परमेश्वर ही का ग्रहण होता है । 'गतिगन्धनशो' इस धातु से 'वायु' शब्द सिद्ध होता है । 'गन्धनं सनम्' । 'यो वाति चराऽचरञ्जगद्धरति वलिनां वलिष्ठः स युः ।' जो चराऽचर जगत् का धारण, जीवन और प्रलय करता और सब जवानों से बलवान् है इससे उस ईश्वर का नाम 'वायु' है । 'तिज ताने' इस धातु से 'तैज' और इससे तद्धित करने से 'तैजस' शब्द सिद्ध होता है । जो आप स्वयंप्रकाश और सूर्यादि तैजस्वी लोकों का प्रकाश करने वाला है इससे उस ईश्वर का नाम 'तैजस' है । इत्यादि नामार्थ उकार-धातु से ग्रहण होते हैं । 'ईश ऐश्वर्ये' इस धातु से 'ईश्वर' शब्द सिद्ध होता है । 'य ईष्टे सर्वैश्वर्यवान् वत्तते स ईश्वरः ।' जिसका सत्य आरशील ज्ञान और अनन्त ऐश्वर्य है इससे उस परमात्मा का नाम 'चर' है । 'यो अववण्डने' इस धातु से 'अदिति' और इससे तद्धित करने से 'आदित्य' शब्द सिद्ध होता है । 'न विद्यते विनाशो यस्य ऽयमदितिः । अदितिरेव आदित्यः ।' जिसका विनाश कभी नहीं होता उसी ईश्वर की 'आदित्य' संज्ञा है । 'ज्ञा अवबोधने' 'प्र' पूर्वक इस धातु से 'प्रज्ञ' और इससे तद्धित करने से 'प्राज्ञ' शब्द सिद्ध होता है । प्रकृततया चराऽचरस्य जगता व्यवहारं जानाति स प्रज्ञः । एव प्राज्ञः । जो निर्भ्रान्त ज्ञानयुक्त सब चराऽचर जगत् के व्यवहार तथावत् जानता है इससे ईश्वर का नाम 'प्राज्ञ' है । इत्यादि नामार्थ र से गृहीत होते हैं । जैसे एक १ मात्रा से तीन ० अर्थ कहा व्याख्यात हैं वैसे ही अन्य नामार्थ भी ओंकार से जाने जाते हैं ।

१०—जो (शन्नो मित्रः शं व०) इस मन्त्र में मित्रादि नाम हैं वे परमेश्वर के हैं क्योंकि स्तुति, प्रार्थना, उपासना श्रेष्ठ ही की जाती श्रेष्ठ उसको कहते हैं जो गुण, कर्म, स्वभाव और सत्य सत्य व्यवहारों सब से अधिक हो । उन सब श्रेष्ठों में भी जो अत्यन्त श्रेष्ठ उसको परमेश्वर कहते हैं । जिसके तुल्य कोई न हुआ, न है और न होगा । जब तुल्य तो उससे अधिक क्योंकर हो सकता है ? जैसे परमेश्वर के सत्य न्याय

दया, सर्वसामर्थ्य और सर्वज्ञत्वादि अनन्त गुण हैं वैसे अन्य किसी पदार्थ वा जीव के नहीं हैं। जो पदार्थ सत्य है, उसके गुण, कर्म, भी सत्य होते हैं इसलिये मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर ही की प्रार्थना और उपासना करे, उससे भिन्न की कभी न करे, क्योंकि विष्णु, महादेव नामक पूर्वज महाशय विद्वान्, दैत्य, दानवादि मनुष्य और अन्य साधारण मनुष्यों ने भी परमेश्वर ही में विश्वास उसी की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करी, उससे भिन्न की नहीं वैसे हम सब को करना योग्य है। इसका विशेष विचार मुक्ति उपासना विषय में किया जायगा।

११—(प्रश्न) मित्रादि नामों से सखा और इन्द्रादि देवों के व्यवहार देखने से उन्हीं का ग्रहण करना चाहिये।

(उत्तर) यहां उनका ग्रहण करना योग्य नहीं क्योंकि जो किसी का मित्र है वहां अन्य का शत्रु और किसी से उदासीन भी में आता है। इससे मुख्यार्थ में सखा आदि का ग्रहण नहीं हो सकिन्तु जैसा परमेश्वर सब जगत् का निश्चित मित्र, न किसी का शत्रु न किसी से उदासीन है, इसमें भिन्न कोई भी जीव इस प्रकार का नहीं हो सकता। इसलिये परमात्मा ही का ग्रहण यहां होता है। गौण अर्थ में मित्रादि शब्द से सुहृदादि मनुष्यों का ग्रहण होता है।

१२—‘निमिदा स्नेहने’ इस धातु से औणादिक ‘क्त्र’ प्रत्यय के ‘मित्र’ शब्द सिद्ध होता है। ‘मेघानि स्निह्यति स्निह्यते वा स मित्रः। सत्रमे ज्ञेह करके और सत्रको प्रीति करने योग्य है इससे उस परमेश्वर को ‘मित्र’ है। ‘वृज् वरणे’, ‘वर ईप्सायाम्’ इन धातुओं से उणादि ‘उनन्’ से ‘वरुण’ शब्द सिद्ध होता है। ‘यः सर्वान् शिष्टान् मुमुक्षुः वृणात्यथवा यः शिष्टैर्ममुक्षुभिर्विजयते वर्ज्यते वा स वरुणः।’ जो आत्मयोगी, विद्वान् मुक्ति की इच्छा करने वाले मुक्त और त्माओं का स्वीकार करता, अथवा जो शिष्ट, मुमुक्षु, मुक्त और से ग्रहण किया जाता है वह ईश्वर ‘वरुण’ संज्ञक है। अथवा ‘वरुणो वरः श्रेष्ठः।’ जिस लिये परमेश्वर सब से श्रेष्ठ है इसीलिये उसका ‘वरुण’ है। ‘क्व गतिप्रापणयो’ इस धातु से ‘यत्’ प्रत्यय करने से शब्द सिद्ध होता है और ‘अर्य्य’ पूर्वक ‘माट् माने’ इस धातु से प्रत्यय होने से ‘अर्यमा’ शब्द सिद्ध होता है। ‘योऽर्यान् स्थापयति’

न्यायाधीशान् मिमीने मान्यान् कर्णानि सोऽर्यमा ।' जो सन्य न्याय के करनेहार मनुष्यों का मान्य और पाप तथा पुण्य करने वालों को पाप और पुण्य के फलों का यथावत् सन्य नियमकर्ता है इसी से उसी परमेश्वर का नाम 'अर्यमा' है । 'इन्द्रि परमेश्वर्ये' इस धातु से 'रन्' प्रत्यय करने से 'इन्द्र' शब्द सिद्ध होता है । 'य इन्द्रनि परमेश्वर्यवान् भवति स इन्द्र. परमेश्वर. ।' जो अपिल ऐश्वर्ययुक्त है इसमें उस परमात्मा का नाम 'इन्द्र' है । 'बृहत्' शब्दपूर्वक 'पारक्षणे' इस धातु से 'डति' प्रत्यय, बृहत् के तकार का लोप और सुडागम होने से 'बृहस्पति, शब्द सिद्ध होता है । 'यो बृहतामाकाशादीना पतिः स्वामी पालयिता स बृहस्पतिः ।' जो बड़ों से भी बड़ा और बड़े आकाशादि ब्रह्माण्डों का स्वामी इसमें उस परमेश्वर का नाम 'बृहस्पति' है 'विष्णु व्याप्तौ' इस धातु से 'नु' प्रत्यय होकर 'विष्णु' शब्द सिद्ध हुआ है । 'वेवेष्टि व्याप्नोति वराऽवरं जगत् स विष्णु ।' चर और अचररूप जगत् में व्यापक होने से परमात्मा नाम 'विष्णु' है । 'उरुर्महान् क्रम. पराक्रमो यम्य स उरुक्रम. !' अनन्त पराक्रमयुक्त होने से परमात्मा का नाम 'उरुक्रम' है ।

१३—जो परमात्मा (उरुक्रम) महापराक्रमयुक्त (मित्रः) सबका बृहत्, अविरोधी है वह (शम्) सुखकारक, वह (वरुण) सर्वोत्तम, वह (शम्) सुखस्वरूप, वह (अर्यमा) न्यायाधीश, वह (शम्) सुखप्रचारक, वह (इन्द्र) जो सकल ऐश्वर्यवान्, वह (शम्) सकल ऐश्वर्यदायक, वह (बृहस्पति.) सबका अधिष्ठाता, (शम्) विद्याप्रद और (विष्णु) जो सब में व्यापक परमेश्वर है वह (नः) हमारा कल्याणकारक (भवतु) हो ।

(वायो ते ब्रह्मणे नमोऽस्तु) 'बृह बृहि बृद्धौ' इन धातुओं से 'ब्रह्म' शब्द सिद्ध होता है । जो सब के ऊपर विराजमान, सबसे बड़ा, अनन्त युक्त परमात्मा है उस ब्रह्म को हम नमस्कार करते हैं । हे परमेश्वर ! त्वमेव प्रत्यक्ष ब्रह्मासि) आप ही अन्तर्यामिरूप से प्रत्यक्ष ब्रह्म हो । त्वामेव प्रत्यक्ष ब्रह्म वदिष्यामि) मैं आप ही को प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूँगा योकि आप सब जगह में व्याप्त होके सब को नित्य ही प्राप्त हैं । (कृतं दिष्यामि) जो आप की वेदस्थ यथार्थ आज्ञा है उसी का मैं सबके लिये पदेश और आचरण भी करूँगा । (सत्य वदिष्यामि) सत्य बोलूँ, सत्य मानूँ और सत्य ही करूँगा । (तन्मामवतु) तो आप मेरी रक्षा लीजिये । (तद्वक्तारमवतु) तो आप मुझ आस, सत्यवक्ता की रक्षा

कीजिये कि जिसमे आप की आज्ञा में मेरी बुद्धि स्थिर होकर विन्द कभी न हो। क्योंकि जो आप की आज्ञा है वही धर्म और जो उसमे विन्द वही अधर्म है। (अवतु मामवतु वक्तारम्) यह दूसरी बार पाठ अधिकार्य के लिये है। जैसे—‘कश्चित् कश्चित् प्रति वदति त्व ग्रामं गच्छ गच्छ’। इसमें दो बार क्रिया के उच्चारण से तू शीघ्र ही ग्राम को जा ऐसा सिद्ध होता है। ऐसे ही यहां कि आप मेरी अवश्य करो अर्थात् धर्म से सुनिश्चित और अधर्म से पूर्ण सदा करू ऐसा सुद्ध पर कीजिये, मैं आपका बड़ा उपकार मानूंगा।

१४—(ओ३म शान्तिः शान्तिः शान्तिः) इसमें तीन बार शान्तिपाठ का प्रयोजन है कि त्रिविध ताप, अर्थात् इस संसार में तीन प्रकार के दुःख हैं एक ‘आयान्मिक’ जो आत्मा शरीर में अविद्या, राग, द्वेष, मूर्धता और ज्ञा पीड़ादि होते हैं। दूसरा ‘आधिभौतिक’ जो शत्रु, व्याघ्र और सर्पादि से प्राप्त होता है। तीसरा ‘आधिदैविक’ अर्थात् जो अतिवृष्टि अतिशीत, अति उष्णता मन और इन्द्रियों की अशान्ति से होता है। इन तीन प्रकार के दुःखों से आप हम लोगों को दूर करके कल्याणकारक कर्मों में सदा प्रवृत्त रखिये। क्योंकि आप ही कल्याणस्वरूप, सब संसार के कल्याणकर्ता और सुसुखों को कल्याण के दाता है। इसलिये आप स्वयं अपनी करुणा से सब जीवों के हृदय में प्रकाशित हूजिये कि जिसमे सब जीव धर्म का और अधर्म को छोड़ के परमानन्द को प्राप्त हो और दुःखों से पृथक् रहें।

१५—‘सूर्य आत्मा जगत्स्तस्थुपश्च’ इस यजुर्वेद [७।४२] ध्वनन में जो जगत् नाम प्राणी चेतन और जंगम अर्थात् जो चलते फिरते ‘तस्थुप’ अप्राणी अर्थात् स्थावर, जड़ अर्थात् पृथिवी आदि हैं उन सब आत्मा होने और स्वप्रकाशरूप सबके प्रकाश करने से परमेश्वर का ‘सूर्य’ है। ‘अत सातत्यगमने’ इस धातु से ‘आत्मा’ शब्द सिद्ध होता है ‘योऽतति व्याप्नोति स आत्मा’ जो सब जीवादि जगत् में निर व्यापक हो रहा है। परश्चात्मावात्मा च य आत्मभ्यो न वे सूक्ष्मेभ्यः परोऽतिसूक्ष्मः स परमात्मा। जो सब जीव आदि सब और जीव, प्रकृति तथा आकाश से भी अतिसूक्ष्म और सब जीवों का र्यामी आत्मा है इसमे ईश्वर का नाम ‘परमात्मा’ है। सामर्थ्यवाले का ‘ईश्वर’ है ‘य ईश्वरेषु समर्थेषु परमः श्रेष्ठः स परमेश्वरः’ जो ईश्वर अर्थात् समर्थों में समर्थ, जिसके तुल्य कोई भी न हो उसका नाम

है। 'पुञ् अभिषवे, पूट् प्राणिगर्भविमोचने' इन धातुओं से 'सविता' शब्द सिद्ध होता है। अभिषवः प्राणिगर्भविमोचन चोत्पादनम्। यश्चराचर जगत् सुनोति सूने चोत्पादयति स सविता परमेश्वरः। जो सब जगत् की उत्पत्ति करता है इसलिये परमेश्वर का नाम 'सविता' है। दिवु क्रीडाविजिगीषान्व्यवहारद्युतिस्तुतिमोदम्वप्रकान्ति-गतिषु' इस धातु से 'देव' शब्द सिद्ध होता है। (क्रीडा) जो शुद्ध जगत् को क्रीडा कराने, (विजिगीषा) धार्मिकों को जिताने की इच्छायुक्त, (व्यवहार) सब चैष्ट के साधनोपसाधनों का दाता, (द्युति) स्वयंप्रकाश-स्वरूप, सत्र का प्रकाशक, (स्तुति) प्रशंसा के योग्य, (मोद) आप आनन्दस्वरूप और दूसरों को आनन्द देनेहारा, (मट) मदोन्मत्तो का ताडनेहारा, (म्वप्र) सब के शयनार्थ रात्रि और प्रलय का करनेहारा, (कान्ति) कामना के योग्य और (गति) ज्ञानस्वरूप है इसलिये उस परमेश्वर का नाम 'देव' है। अथवा 'यो दीव्यति क्रीडति स देवः।' जो अपने स्वरूप में आनन्द से आप ही क्रीडा करे अथवा किसी के सहाय के बिना क्रीडावत् सहज स्वभाव से सब जगत् को बनाता वा सब क्रीडाओं का आधार है। 'विजिगीषते स देवः।' जो सबका जीतनेहारा, स्वयं अजेय अर्थात् जिसको कोई भी न जीत सके। 'व्यवहारयति स देवः।' जो न्याय और अन्यायरूप व्यवहारों का जाननेहारा और उपदेष्टा, 'यश्चराचरं जगत् द्योतयति।' जो सबका प्रकाशक, 'यः स्तूयते स देवः।' जो सब मनुष्यों को प्रशंसा के योग्य हो और निन्दा के योग्य न हो, 'यो मोदयति स देवः।' जो स्वयं आनन्दस्वरूप और दूसरों को आनन्द कराता, जिसको दुःख का लेश भी न हो, 'यो मायति स देवः।' जो सदा हर्षित, शोकरहित और दूसरों को हर्षित करने और दुःखों से पृथक् रखने वाला, 'यः स्वापयति स देवः।' जो प्रलय समय अव्यक्त में सब जीवों को सुलाता, 'यः कामयते काम्यते वा स देवः।' जिसके सब सत्य काम और जिसकी प्राप्ति की कामना सब शिष्ट करते हैं तथा 'यो गच्छति गम्यते वा स देवः।' जो सब में व्याप्त और जानने के योग्य है इससे उस परमेश्वर का नाम 'देव' है।

१६—'कुवि आच्छादने' इस धातु से 'कुवेर' शब्द सिद्ध होता है। 'सर्वः कुवति स्वव्याप्त्याच्छादयति स कुवेरो जगदीश्वरः।' जो अपनी व्याप्ति से सबका आच्छादन करे इससे उस परमेश्वर का नाम

‘कुत्रे’ है। ‘प्रथ विसृतारे’ इस धातु से ‘पृथिवी’ शब्द सिद्ध होता है। ‘यः प्रथत सर्वं जगद्विस्तृणानि स पृथिवी ।’ जो सब जगत् का विस्तार करने वाला है इसलिये उस परमेश्वर का नाम ‘पृथिवी’ है। ‘जल घातने’ इस धातु से ‘जल’ शब्द सिद्ध होता है। ‘जलनि घातयति दुष्टान्, सघातयति श्रव्यं १। १५४ जी तद् ब्रह्म जलम् ।’ जो दुष्टों का ताड़न और अव्यक्त तथा परमाणुओं अन्योन्य संयोग वा वियोग करता है वह परमात्मा ‘जल’ संज्ञक है। ‘काश दीप्तौ’ इस धातु से ‘आकाश’ शब्द सिद्ध होता है। ‘सर्वतः सर्वं जगत् प्रकाशयति स आकाश’ जो सब ओर जगत् का प्रकाशक है इसलिये उस परमात्मा का नाम ‘आकाश’ है। ‘अद भक्षणे’ इस धातु से ‘अन्न’ शब्द सिद्ध होता है।

अद्यतेऽस्ति च भूतानि तस्मादन्न तदुच्यते ॥ १ [तै० उप० ब्र० व० अ० ।
अहमन्नमहमन्नमहमन्नम् । अहमन्नादोहमन्नादोहमन्नादः ॥
नैत्ति० उपनि० [ऋगु वल्ली अनु० १०] अत्ता १। १५५ अ०
[वेदान्तदर्शने अ १। पा० २। सू० ९]

यह व्यासमुनिकृत शारीरक सूत्र है। जो सबको भीतर रखने, सबको ग्रहण करने योग्य, चराचर जगत् का ग्रहण करने वाला है, ईश्वर के ‘अन्न’, ‘अन्नाद’ और ‘अत्ता’ नाम है। और जो इसमें तीन पाठ है सो आदर के लिये है। जैसे गूलर के फल में कृमि उत्पन्न होती उसी में रहते और नष्ट होजाते हैं वैसे परमेश्वर के बीच में सब की अवस्था है। ‘वस निवासे’ इस धातु से ‘वसु’ शब्द सिद्ध होता है। ‘वसन्ति भूतानि यस्मिन्नथवा यः सर्वेषु भूतेषु वसति वसुर्गेश्वर ।’ जिसमें सब आकाशादि भूत वसते हैं और जो सब वास कर रहा है इसलिये उस परमेश्वर का नाम ‘वसु’ है। ‘अश्रुविमोचने’ इस धातु से ‘णिच्’ और ‘रक्’ प्रत्यय होने से ‘रुद्र’ शब्द सिद्ध होता है। ‘यो रोदयत्यन्यायकारिणो जनान् स रुद्र ।’ जो कर्म करनेहारों को रुलाता है इससे उस परमेश्वर का नाम ‘रुद्र’ है।

यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति यद् वाचा वदति कर्मणा करोति यत् कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते ॥

यह यजुर्वेद के ब्राह्मण का वचन है। जीव जिसका मन से करता, उसको वाणी से बोलता, जिसको वाणी से बोलता उसको

करता, जिसको कर्म से करता उसी को प्राप्त होता है। इससे क्या सिद्ध हुआ कि जो जीव जैसा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है। जब दुष्ट कर्म करनेवाले जीव ईश्वर की न्यायस्पी व्यवस्था से दुःखस्वरूप फल पाते तब रोते हैं और इसी प्रकार ईश्वर उनकी रलाता है, इसलिये परमेश्वर का नाम 'रुद्र' है।

१७—आपो नात् इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनव ।

ता यदस्यायनं पूर्व तेन नारायण स्मृत ॥

मनु० [अ० १ । श्लोक १०]

जल और जीवों का नाम 'नारा' है। वे 'अयन' अर्थात् निवासस्थान हैं जिसका इसलिये सब जीवों में व्यापक परमात्मा का नाम 'नारायण' है। चदि आद्यादे' इस धातु से 'चन्द्र' शब्द सिद्ध होता है। 'यश्चन्दति वन्दयति वा स चन्द्रः।' जो आनन्दस्वरूप और सबको आनन्द देनेवाला है इसलिये ईश्वर का नाम 'चन्द्र' है। 'मगि गत्यर्थक' धातु से 'मङ्गेरलच्' इस सूत्र से 'मङ्गल' शब्द सिद्ध होता है। 'यो मङ्गयति मङ्गयति वा स मङ्गलः।' जो आप मङ्गलस्वरूप और सब जीवों के मङ्गल का कारण है इसलिये उस परमेश्वर का नाम 'मङ्गल' है। 'बुध अवगमने' इस धातु से 'बुध' शब्द सिद्ध होता है, यो बुध्यते बोधयति वा स बुधः।' जो स्वयं बोधस्वरूप और सब जीवों के बोध का कारण है इसलिये उस परमेश्वर का नाम 'बुध' है। 'बृहस्पति' शब्द का अर्थ कह दिया। 'ईशुचिर् पृतीभावे' इस धातु से 'शुक्र' शब्द सिद्ध हुआ है। 'यः शुचयति शोचयति वा स शुक्रः।' जो अत्यन्त पवित्र और जिसके सङ्ग से जीव भी पवित्र हो जाता है इसलिये ईश्वर का नाम 'शुक्र' है। 'चर गतिभक्षणयोः' इस धातु से 'शनैस्' अव्यय उपपद होने से 'शनैश्चर' शब्द सिद्ध हुआ है। 'यः शनैश्चरति स शनैश्चरः।' तो सब में सहज से प्राप्त धैर्यवान् है इससे उस परमेश्वर का नाम 'शनैश्चर' है। 'रह त्यागे' इस धातु से 'राहु' शब्द सिद्ध होता है। 'गो रहति परित्यजति दुष्टान् राहयति त्याजयति वा स राहुरीश्वरः।' जो एकान्तस्वरूप, जिसके स्वरूप में दूसरा पदार्थ संयुक्त नहीं, जो दुष्टों को छोड़ने और अन्य को छुटाने हारा है इससे परमेश्वर का नाम 'राहु' है। 'किन निवासे रोगापनयने च' इस धातु से 'केतु' शब्द सिद्ध होता है। 'यः केतयति चिकित्सति वा स केतुरीश्वरः।'

जो सब जगत् का निवासस्थान, सब रोगों से रहित और मुमुक्षुओं मुक्तिसमय में सब रोगों से छुड़ाता है इसलिये उस परमात्मा का 'केतु' है। 'यज देवपूजासन्नतिकरणदानेषु' इस धातु से 'यज्ञ' सिद्ध होता है। 'यज्ञो वै विष्णु' (शत० १३।१।८।८) यह माह्य का वचन है। 'यो यजति विद्वद्भिरिज्यते वा स यज्ञः।' जो जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है और से ले के सब ऋषि मुनियों का पूज्य था, है और होगा इससे उस परमात्मा का नाम 'यज्ञ' है क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है। 'हु दानाऽदनयो, आ चेत्येके' इस धातु से 'होता' शब्द सिद्ध हुआ है। 'यो जुहोति होता।' जो जीवों को देने योग्य पदार्थों का दाता और ग्रहण करने वाला ग्राहक है इससे उस ईश्वर का नाम 'होता' है। 'बन्ध बन्धने' १ 'बन्धु' शब्द सिद्ध होता है। 'य. स्वस्मिन् चराचरं जगद् यन्धु वन्धुवद्धर्मात्मनां सुखाय सहायो वा वर्त्तते स बन्धु।' अपने में सब लोक-लोकान्तरो को नियमों से बद्ध कर रखे और सबों से समान सहायक है इसी से अपनी २ परिधि वा नियम का उल्लंघन कर सकते। जैसे आता भाइयों का सहायकारी होता है वैसे भ्रातृ-पुत्रिभ्यादि लोको का धारण, रक्षण और सुख देने से 'बन्धु' संज्ञक है। 'रक्षणे' इस धातु से 'पिता' शब्द सिद्ध हुआ है। 'यः पाति सर्वान् पिता।' जो सबका रक्षक, जैसे पिता अपने सन्तानों पर सदा कृपाळु उनकी उन्नति चाहता है वैसे ही परमेश्वर सब जीवों की उन्नति चाहता है इससे उसका नाम 'पिता' है। 'यः पितृणां पिता स पितामहः' जो पिताओं का भी पिता है इससे उस परमेश्वर का नाम 'पितामह' है। 'यः पितामहानां पिता स प्रपितामहः।' जो पिताओं के पिता पिता है इससे परमेश्वर का नाम 'प्रपितामह' है। 'यो मिमीते सर्वाजीवान् स माता।' जैसे पूर्णकृपायुक्त जननी अपने सन्तानों सुख और उन्नति चाहती है वैसे परमेश्वर भी सब जीवों की बढ़ती चाहता है इससे परमेश्वर का नाम 'माता' है। 'चर गतिभक्षणयो.' आङ्पूर्वक धातु से 'आचार्य' शब्द सिद्ध होता है। 'य आचारं ग्राहयति स विद्या बोधयति स आचार्य ईश्वरः।' जो सत्य आचार का करानेहारा और सब विद्याओं की प्राप्ति का हेतु होके सब विद्या कराता है इससे परमेश्वर का नाम 'आचार्य' है। 'गृ शब्दे' इस धातु से 'गुरु' शब्द घना है।

यो धर्म्यान् शब्दान् गृणात्युपदिशति स गुरुः ॥'

१ पूर्व नामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ योगसूत्र नमाधि० सू० २६।

यह योगसूत्र है। जो सत्यधर्मप्रतिपादक, सकल विद्यायुक्त वेदों का उपदेश करता, सृष्टि की आदि में अग्नि, वायु, आदित्य, अक्षिरा और आदि गुरुओं का भी गुरु और जिसका नाश कभी नहीं होता इसलिये इस परमेश्वर का नाम 'गुरु' है।

६८—'अज गतिक्षेपणयो', जनी प्रादुर्भावे' इन धातुओं से 'अज' शब्द उत्पन्न होता है। 'योऽजति सृष्टिं प्रति सर्वान् प्रकृत्यादीन् पदार्थान् गच्छति, जानाति वा कदाचिन्न जायते सोऽजः' जो सब प्रकृति के अवयव आकाशादि भूत परमाणुओं को यथायोग्य मिलाता, शरीर के साथ जीवों का सम्बन्ध करके जन्म देता और मृत्यु कभी जन्म नहीं लेता इससे उस ईश्वर का नाम 'अज' है। 'बृह बृहति' इन धातुओं से 'ब्रह्मा' शब्द सिद्ध होता है 'योऽब्रह्म जगन्निर्माणेन बृहति वर्द्धयति स ब्रह्मा।' जो सम्पूर्ण जगत् को रच के बढ़ाता है इसलिये परमेश्वर का नाम 'ब्रह्मा' है। 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।' यह तैत्तिरीयोपनिषद् का उचन है। 'सन्तीति सन्तस्तेषु सन्सु साधु तन्सन्यम्। यज्जानाति चराऽचर जगत्तज्ज्ञानम्। न विद्यतेऽन्तोऽवधिर्मर्यादा यस्य तदनन्तम्। सर्वेभ्यो बृहत्त्वाद् ब्रह्म।' जो पदार्थ हो उनकी 'सर्व' कहते हैं, उनमें साधु होने से परमेश्वर का नाम 'सत्य' है। जो सब जगत् का जानने वाला है इससे परमेश्वर का नाम 'ज्ञान' है। जिसका अन्त, अवधि, मर्यादा अर्थात् इतना लम्बा, चौड़ा, छोटा, बड़ा है ऐसा परिमाण नहीं है इसलिये परमेश्वर का नाम 'अनन्त' है। 'बुद् धातु' से 'आदि' शब्द और नञ् पूर्वक 'अनादि' शब्द सिद्ध होता है। 'यस्मात् पूर्व नास्ति परं चास्ति स आदिरित्युच्यते' [महाभाष्ये १। १। २१] न विद्यते आदि. कारणं यस्य सोऽनादिरीश्वरः। जिसके पूर्व कुछ न हो और परे हो, उसको 'आदि' कहते हैं। जिसका आदि कारण कोई भी नहीं है इसलिये परमेश्वर का नाम 'अनादि' है। 'आनन्द' धातु से 'आनन्द' शब्द सिद्ध होता है। 'आनन्दन्ति सर्वे मुक्ता यस्मिन् यद्वा, यः सर्वाङ्गी-
कृतानानन्दयति स आनन्दः।' जो आनन्दस्वरूप, जिसमें सब मुक्त विषय आनन्द को प्राप्त होते और जो सब धर्मात्मा जीवों को आनन्दयुक्त

करता है इससे ईश्वर का नाम 'आनन्द' है। 'अस भुवि' इस धातु से 'सत्' शब्द सिद्ध होता है। 'यदस्ति त्रिषु कालेषु न बाध्यते तत्सद् ब्रह्म।' जो सदा वर्तमान अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्तमान कालों में बाध न हो उस परमेश्वर को 'सत्' कहते हैं। 'चिती संज्ञाने' इस धातु से 'चित्' शब्द सिद्ध होता है। 'यश्चेतति चेतयति संज्ञापयति सर्वान् मज्जनान् योगिनस्तच्चित्परं ब्रह्म।' जो चेतनस्वरूप सब जीवों में चिताने और सत्याऽसत्य का जनानेहारा है इसलिये उस परमात्मा का नाम 'चित्' है, इन तीनों शब्दों के विशेषण होने से परमेश्वर को 'सच्चिदानन्दस्वरूप' कहते हैं। 'यो नित्यध्रुवोऽवलोक्यनाशी न नित्यः।' जो निश्चल अविनाशी है सो 'नित्य' शब्दवाच्य ईश्वर है। 'शुन्व शुद्धौ' इससे 'शुद्ध' शब्द सिद्ध होता है। 'यः शुन्धति सर्वान् शोधयति वा स शुद्ध ईश्वरः।' जो स्वयं पवित्र, सब अशुद्धियों से पृथक् और सब को शुद्ध करनेवाला है इससे उस ईश्वर का नाम 'शुद्ध' है। 'बुध अवगमने' इस धातु से 'क्त' प्रत्यय होने से 'बुद्ध' शब्द सिद्ध होता है। 'यो बुद्धवान् सदैव ज्ञाताऽस्ति स बुद्धो जगदीश्वरः।' जो सदा सबको जानने हारा है इससे ईश्वर का नाम 'बुद्ध' है। 'मुच्य मोचने' इस धातु से 'मुक्त' शब्द सिद्ध होता है। 'यो मुञ्चति मोचयति वा मुमुक्षून् स मुक्तो जगदीश्वरः।' जो सर्वदा अशुद्धियों से अलग और सब मुमुक्षुओं के क्लेश से छुड़ा देता है इसलिये परमात्मा का नाम 'मुक्त' है। 'नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावा जगदीश्वरः।' इसी कारण से परमेश्वर का स्वभाव नित्य शुद्ध [बुद्ध] मुक्त है। 'निर्' और 'आङ्' पूर्वक 'ह करणे' इस धातु से 'निराकार' शब्द सिद्ध होता है। 'निर्गत आकारा निराकारः।' जिसका आकार कोई भी नहीं और न कभी शरीर धारण करता है इसलिये परमेश्वर का नाम 'निराकार' है। 'अञ्जू व्यक्तिम्लक्षण कान्तिगतिषु' इस धातु से 'अञ्जन' शब्द और 'निर्' उपसर्ग के साथ 'निरञ्जन' शब्द सिद्ध होता है। 'अञ्जनं व्यक्तिम्लक्षणं कु इन्द्रियैः प्राप्तिश्चेत्यस्माद्यो निर्गतः पृथग्भूतः स निरञ्जनः' जो व्यक्ति अर्थात् आकृति, म्लेच्छाचार, दुष्टकामना और चक्षुरादि के विषयों के पथ से पृथक् है इससे ईश्वर का नाम 'निरञ्जन' है। 'गण संख्याने' इस धातु से 'गण' शब्द सिद्ध होता और इसके 'ईग' वा 'पति' शब्द रखने से 'गणेश' और 'गणपति' शब्द सिद्ध होते हैं।

हैं। 'ये प्रकृत्यादयो जडा जीवाश्च गणयन्ते संख्यायन्ते ते गामीणः स्वामी पतिः पालको वा।' जो प्रकृत्यादि जड और सब जीव प्रकृत्यात पदार्थों का स्वामी वा पालन करनेहारा है इससे उस ईश्वर का नाम 'गणेश' वा 'गणपति' है। 'यो विश्वमीप्सु स विश्वेश्वरः।' जो ससार का अधिष्ठाता है इससे उस परमेश्वर का नाम 'विश्वेश्वर' है। 'य कृष्टेऽनेकावधव्यवहारे स्वस्वरूपेणैव निष्ठुनि स कृष्टस्थः परमेश्वर' जो सब व्यवहारों में व्याप्त और सब व्यवहारों का आधार होके भी किसी व्यवहार में अपने स्वरूप को नहीं बदलता इससे परमेश्वर का नाम 'कृष्टस्थ' है। जितने 'देव' शब्द के अर्थ लिये हैं उतने ही 'देवी' शब्द के भी हैं। परमेश्वर के तीनों लिङ्गों में नाम हैं, जैसे — 'ब्रह्म चित्तिरीश्वर-श्चेति' जब ईश्वर का विशेषण होगा तब 'देव', जब चित्ति का होगा तब 'देवी' इससे ईश्वर का नाम 'देवी' है। 'शक्त्य शक्तौ' इस धातु से 'शक्ति' शब्द बनता है। 'यः सर्वं जगत् कर्तुं शक्नोति स शक्तिः' जो सब जगत् के बनाने में समर्थ है इसलिये उस परमेश्वर का नाम 'शक्ति' है। 'श्रिज् सेवयाम्' इस धातु से 'श्री' शब्द सिद्ध होता है। 'यः श्रीयते सेव्यते सर्वेण जगता विद्वद्भिर्योगिभिश्च स श्रीरीश्वर।' जिसका सेवन सब जगत्, विद्वान् और योगीजन करते हैं उस परमात्मा का नाम 'श्री' है। 'लक्ष दर्शनाङ्गनयो' इस धातु से 'लक्ष्मी' शब्द सिद्ध होता है। 'यो लक्षयति पश्यत्यङ्गने चिह्नयति चराचर जगदथवा वेदैरास्यैर्योगिभिश्च यो लक्ष्मणे स लक्ष्मीः सर्वप्रियेश्वरः।' जो सब चराचर जगत् को देखता, चिन्हित अर्थात् दृश्य बनाता, जैसे शरीर के नेत्र, नासिका और वृक्ष के पत्र, पुष्प, फल, मूल, पृथिवी, जल के कृष्ण, रक्त, श्वेत, मृत्तिका, पापाण, चद्र, सूर्यादि चिन्ह बनाता, तथा सब को देखता, सब शोभाओं की शोभा और जो वेदादि शास्त्र वा धार्मिक विद्वान् योगियों का लक्ष्य अर्थात् देखने योग्य है, इसने उस परमेश्वर का नाम 'लक्ष्मी' है।

१६—'सगती' इस धातु से 'सरस्' उससे मतुप् और टीप् प्रत्यय होने से 'सरस्वती' शब्द सिद्ध होता है, 'सरो विविधं ज्ञानं विद्यते यस्यां चितौ सा सरस्वती।' जिसको विविध विज्ञान अर्थात् शब्द और अर्थ का प्रयोग का ज्ञान यथावत् होवे इसने उस परमेश्वर का नाम 'स' 'सर्वाः शक्तयो विद्यन्ते यस्मिन् स सर्वशक्तिमानीश्वरः' कार्य करने में किसी अन्य की सहायता की इच्छा नहीं करना

सामर्थ्य से अपने सब काम पूरा करता है इसलिये उस परमात्मा का नाम 'सर्वशक्तिमान्' है। 'णीन् प्राणेषु' इस धातु से 'न्याय' शब्द सिद्ध होता है। 'प्रमाणैर्गर्थपरीक्षणं न्यायः।' यह वचन न्यायसूत्रों पर वात्स्यायन मुनिकृत भाष्यका है। 'पक्षपातरहित्याचरणं न्यायः।' जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों की परीक्षा से सत्य २ सिद्ध हो तथा पक्षपातरहित धर्मरूप आचरण है वह 'न्याय' कहा जाता है। 'न्यायं कर्तुं गीलमस्य स न्यायकारीश्वरः।' जिसका न्याय अर्थात् पक्षपात रहित धर्म करने ही का स्वभाव है इससे उस ईश्वर का नाम 'न्यायकारी' है। 'व्यदानगतिरक्षणहिंसादानेषु' इस धातु से 'दया' शब्द सिद्ध होता है। 'दयते, ददाति, जानाति, गच्छति, रक्षति, हिनस्ति, यथा सा दया, यद्वा दया विगते यस्य स दयालु परमेश्वरः।' जो अभय का दाता सत्यास्तस्य सर्व विद्याओं को जानने, सब सज्जनों की रक्षा करने और दुष्टों को यथायोग्य दण्ड देने वाला है इससे परमात्मा का नाम 'दयालु' है। 'द्वयोर्भावो द्वाभ्यामित सा द्विता द्वीतं वा, सैव तदेव वा द्वैतम्। न विद्यते द्वैन द्वितीये श्वरभावो यस्मिन्मद्वैतम्।' अर्थात् 'सजातीयविजातीयस्वगत-भेदशून्यं ब्रह्म।' दो का होना वा दोनों से युक्त होना वह द्विता वा द्वीत अथवा द्वैत, इसमें जो रहित है, सजातीय जैसे मनुष्य का सजातीय दूसरा मनुष्य होता है, विजातीय जैसे मनुष्य से भिन्न जाति वाला वृक्ष, पाषाणादि, स्वगत अर्थात् शरीर में जैसे आँख, नाक, कान आदि अवयवों का भेद है वैसे दूसरे स्वजातीय ईश्वर, विजातीय ईश्वर वा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर-वस्तुओं से रहित एक परमेश्वर है। इससे परमात्मा का नाम 'अद्वैत' है।

२०—'गणयन्ते ये ते गुणा वा यैर्गणयन्ति त गुणाः। यो गुणेभ्यो निर्गतः स निर्गुण ईश्वर।' जितने सत्व, रज, तम, रूप, रस, स्पर्श, गन्धादि जड के गुण, अविद्या, अल्पज्ञता, राग, द्वेष और अविद्यादि क्लेश जीव के गुण हैं उनसे जो पृथक् है, इसमें 'अशब्दमस्पर्शमरूप-मव्ययम्।' [कठ उप० ब्रह्मी ३।१५] इत्यादि उपनिषदों का प्रमाण है। जो शब्द, स्पर्श, रूपादि गुण रहित है इससे परमात्मा का नाम 'निर्गुण' है। 'यो गुणैः सह वर्त्तने स सगुणः।' जो सबका ज्ञान, सर्वसुख, पवित्रता, अनन्त बलादि गुणों से युक्त है इसलिये परमेश्वर का नाम 'सगुण' है। जैसे पृथिवी गन्धादि गुणों से 'सगुण' और इच्छादि गुणों से रहित होने से 'निर्गुण' है वैसे जगत् और जीव के गुणों से पृथक् होने से परमेश्वर

‘निर्गुण’ और सर्वज्ञादि गुणों से सहित होने से ‘सगुण’ है। अर्थात् ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है जो सगुणता और निर्गुणता से पृथक् हो। जैसे चेतन के गुणों से पृथक् होने से जड़ पदार्थ निर्गुण और अपने गुणों से सहित होने से सगुण वैसे ही जड़ के गुणों से पृथक् होने से जीव निर्गुण और इच्छादि अपने गुणों से सहित होने से सगुण। ऐसे ही परमेश्वर में भी समझना चाहिये। ‘अन्तयन्तु नियन्तु शील यस्य सोऽयमन्तर्गामी।’ जो सब प्राणि और अप्राणिरूप जगत् के भीतर व्यापक होके सब का नियम करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम ‘अन्तर्यामी’ है। ‘यो धर्मे राजतं न धर्मराज।’ जो धर्म ही में प्रकाशमान और अधर्म से रहित धर्म ही का प्रकाश करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम ‘धर्मराज’ है। ‘यमु उपरमे’ इस धातु से ‘यम’ शब्द सिद्ध होता है। ‘यः सर्वान् प्राणिना नियच्छति स यमः।’ जो सब प्राणियों के कर्मफल देने की व्यवस्था करता और सब अन्यायों से पृथक् रहता है इसलिये परमात्मा का नाम ‘यम’ है। ‘भज सेवायाम्’ इस धातु से ‘भग’ इससे मनुप् होने से ‘भगवान्’ शब्द सिद्ध होता है। ‘भगः सकलैश्वर्यं सेवन वा विद्यते यस्य स भगवान्।’ जो समग्र ऐश्वर्य से युक्त वा भजने के योग्य है इसलिये उस ईश्वर का नाम ‘भगवान्’ है। ‘मन ज्ञाने’ धातु से ‘मनु’ शब्द बनता है। ‘यो मन्यते स मनु।’ जो मनु अर्थात् विज्ञान-शील और मानने योग्य है इसलिये उस ईश्वर का नाम ‘मनु’ है। ‘पृ पालन-पूरणयो’ इस धातु से ‘पुरुष’ शब्द सिद्ध हुआ है। ‘यः स्वव्याप्त्या चराऽचर जगत् पूणाति पूरयति वा स पुरुषः।’ जो सब जगत् में पूर्ण हो रहा है इसलिये उस परमेश्वर का नाम ‘पुरुष’ है। ‘लुभृज् धारण पोषणयो’। ‘विश्व’ पूर्वक इस धातु से ‘विश्वम्भर’ शब्द सिद्ध होता है। ‘या विश्व विभर्त्ति धरति पु णाति वा स विश्वम्भरा जगदीश्वरः।’ जो जगत् का धारण और पोषण करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम ‘विश्वम्भर’ है। ‘कल संख्याने’ इस धातु से ‘काल’ शब्द बना है। ‘व लयति संख्याति सर्वान् पदार्थान् स कालः।’ जो जगत् के सब पदार्थ और जीवों की संख्या करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम ‘काल’ है। ‘शिष्य विशेषणे’ इस धातु से ‘शेष’ शब्द सिद्ध होता है। ‘यः शिष्यते स शेषः।’ जो उत्पत्ति और प्रलय में शेष अर्थात् बच रहा है इसलिये उस परमात्मा का नाम ‘शेष’ है। ‘आप्ठ व्याप्ता’ इस

सामर्थ्य से अपने सब काम पूरा करता है इसलिये उस परमात्मा का नाम 'सर्वशक्तिमान्' है। 'णीन् प्राणो' इस धातु से 'न्याय' शब्द सिद्ध होता है। 'प्रमाणैर्गर्थपरीक्षणं न्यायः।' यह वचन न्यायसूत्रों पर वात्स्यायन मुनिकृत भाष्य का है। 'पक्षपातरहित्याचरणं न्यायः।' जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों की परीक्षा में सत्य २ सिद्ध हो तथा पक्षपातरहित धर्मरूप आचरण है वह 'न्याय' कहा जाता है। 'न्यायं कर्तुं गौलमस्य स न्यायकारीश्वरः।' जिसका न्याय अर्थात् पक्षपात रहित धर्म करने ही का स्वभाव है इससे उन ईश्वर का नाम 'न्यायकारी' है। 'दय दानगतिरक्षणहिंसादानेषु' इस धातु से 'दया' शब्द सिद्ध होता है। 'दयते, ददाति, जानाति, गच्छति, रक्षति, हिनस्ति, यथा सा दया, बह्वी दया विद्यते यस्य स दयालुः परमेश्वरः।' जो अभय का दाता सत्याज्जन्य सर्व विद्याओं को जानने, सब सज्जनों की रक्षा करने और दुष्टों को यथायोग्य दण्ड देने वाला है इससे परमात्मा का नाम 'दयालु' है। 'द्वयोर्भावो द्वाभ्यामित सा द्विता द्वीतं वा, सैव तदेव वा द्वैतम्। न विद्यते द्वैत द्वितीयेश्वरभावो यस्मिन्सद्वैतम्।' अर्थात् 'सजातीयविजातीयस्वगतमेदशून्यं ब्रह्म।' दो का होना वा दोनों से युक्त होना वह द्विता वा द्वौत अथवा द्वैत, इससे जो रहित है, सजातीय जैसे मनुष्य का सजातीय दूसरा मनुष्य होता है, विजातीय जैसे मनुष्य से भिन्न जाति वाला वृक्ष, पाषाणादि, स्वगत अर्थात् शरीर में जैसे आँख, नाक, कान आदि अवयवों का भेद है वैसे दूसरे स्वजातीय ईश्वर, विजातीय ईश्वर वा अपने आत्मा में तत्त्वान्तरवस्तुओं से रहित एक परमेश्वर है' इससे परमात्मा का नाम 'अद्वैत' है।

२०—'गणयन्ते ये ते गुणा वा यैर्गणयन्ति त गुणाः। यो गुणेश्वो निर्गतः स निर्गुण ईश्वर।' जितने सत्व, रज, तम, रूप, रस, स्पर्श, गन्धादि जड के गुण, अविद्या, अल्पज्ञता, राग, द्वेष और अविद्यादि क्लेश जीव के गुण हैं उनसे जो ग्रह्य है, इसमें 'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्।' [कठ उप० ब्रह्मी ३। १५] इत्यादि उपनिषदों का प्रमाण है। जो शब्द, स्पर्श, रूपादि गुण रहित है इससे परमात्मा का नाम 'निर्गुण' है। 'यो गुणैः सह वर्तते स सगुणः।' जो सबका ज्ञान, सर्वसुख, पवित्रता, अनन्त बलादि गुणों से युक्त है इसलिये परमेश्वर का नाम 'सगुण' है। जैसे पृथिवी गन्धादि गुणों से 'सगुण' और इच्छादि गुणों से रहित होने से 'निर्गुण' है वैसे जगत् और जीव के गुणों से ग्रह्य होने से परमेश्वर

‘निर्गुण’ और सर्वज्ञादि गुणों से सहित होने से ‘सगुण’ है। अर्थात् ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है जो सगुणता और निर्गुणता से पृथक् हो। जैसे चेतन के गुणों से पृथक् होने से जड़ पदार्थ निर्गुण और अपने गुणों से सहित होने से सगुण वैसे ही जड़ के गुणों से पृथक् होने से जीव निर्गुण और इच्छादि अपने गुणों से सहित होने से सगुण। ऐसे ही परमेश्वर में भी समझना चाहिये। ‘अन्तयन्तु नियन्तु शील यस्य सोऽयमन्तर्गामी।’ जो सब प्राणि और अप्राणिरूप जगत् के भीतर व्यापक होके सब का नियम करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम ‘अन्तर्यामी’ है। ‘यो धर्मो राजतं न धर्मराज।’ जो धर्म ही में प्रकाशमान और अधर्म से रहित धर्म ही का प्रकाश करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम ‘धर्मराज’ है। ‘यमु उपरमे’ इस धातु से ‘यम’ शब्द सिद्ध होता है। ‘यः सर्वान् प्राणिना नियच्छति स यम।’ जो सब प्राणियों के कर्मफल देने की व्यवस्था करता और सब अन्यायों से पृथक् रहता है इसलिये परमात्मा का नाम ‘यम’ है। ‘भज सेवायान्’ इस धातु से ‘भग’ इससे मनुष्य होने से ‘भगवान्’ शब्द सिद्ध होता है। ‘भग. सकलैश्वर्य्य सेवन वा विद्यते यस्य स भगवान्।’ जो समग्र ऐश्वर्य्य से युक्त वा भजने के योग्य है इसलिये उस ईश्वर का नाम ‘भगवान्’ है। ‘मन ज्ञाने’ धातु से ‘मनु’ शब्द बनता है। ‘यो मन्यते स मनु।’ जो मनु अर्थात् विज्ञान-शील और मानने योग्य है इसलिये उस ईश्वर का नाम ‘मनु’ है। ‘पृ पालन-इरणयो’ इस धातु से ‘पुरुष’ शब्द सिद्ध हुआ है। ‘यः स्वव्याप्त्या वराऽचर जगत् पृणाति पूरयति वा स पुरुषः।’ जो सब जगत् में पूर्ण हो रहा है इसलिये उस परमेश्वर का नाम ‘पुरुष’ है। ‘लुभृज् धारण पोषणयो’ ‘विश्व’ पूर्वक इस धातु से ‘विश्वम्भर’ शब्द सिद्ध होता है। ‘या विश्व विभर्ति धरति पु णाति वा स विश्वम्भरा जगदी-श्वरः।’ जो जगत् का धारण और पोषण करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम ‘विश्वम्भर’ है। ‘कल सूर्याने’ इस धातु से ‘काल’ शब्द बना है। ‘व लयति सूर्याति सर्वान् पदार्थान् स कालः।’ जो जगत् के सब पदार्थ और जीवों की सख्या करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम ‘काल’ है। ‘शिष्य विशेषणे’ इस धातु से ‘शेष’ शब्द सिद्ध होता है। ‘यः शिष्यते स शेषः।’ जो उत्पत्ति और प्रलय से शेष अर्थात् बच रहा है इसलिये उस परमात्मा का नाम ‘शेष’ है। ‘आप्ल व्याप्तौ’ इस

धातु से 'आप्त' शब्द सिद्ध होता है। 'यः सर्वान् धर्मान्मन आप्नोति वा सर्वधर्मान्मभिराप्यते छलादिरहितः स आप्तः।' जो सर्वोपदेशक, सकल विद्यायुक्त, सब धर्मान्माओं को प्राप्त होता और धर्मान्माओं से प्राप्त होने योग्य, छल कटादि से रहित है इसलिये उस परमात्मा का नाम 'आप्त' है। 'डुकृन् करणे', 'जम्' पूर्वक उस धातु से 'शङ्कर' शब्द सिद्ध हुआ है। 'यः शङ्कल्याणं सुख कर्णेति स शङ्करः।' जो कल्याण अर्थात् सुख का करने हारा है इससे उस ईश्वर का नाम 'शङ्कर' है। 'महत्' शब्द पूर्वक 'देव' शब्द से 'महादेव' शब्द सिद्ध होता है। यो महतां देवः स महादेवः जो महान् देवों का देव अर्थात् विद्वानों का भी विद्वान्, सूर्यादि पदार्थों का प्रकाशक है इसलिये उस परमात्मा का नाम 'महादेव' है। 'प्रीन् तर्पणे कान्तो च' इस धातु से 'प्रिय' शब्द सिद्ध होता है। यः पृणानि प्रीयने वा स प्रियः। जो सब धर्मान्माओं, मुमुक्षुओं और शिष्टों को प्रसन्न करता और सबको कामना के योग्य है इसलिये उस ईश्वर का नाम 'प्रिय' है। 'भू सत्तायाम्' 'स्वयं' पूर्वक इस धातु से 'स्वयम्भू' शब्द सिद्ध होता है। 'यः स्वयं भवति स स्वयम्भूरीश्वरः।' जो आप से आप ही है, किसी से कभी उत्पन्न नहीं हुआ है इससे उस परमात्मा का नाम 'स्वयम्भू' है। 'कु शब्दे' इस धातु से 'कवि' शब्द सिद्ध होता है। यः कौन्ति शब्दयति सर्वा विद्याः स कविरीश्वरः। जो वेद द्वारा सब विद्याओं का उपदेष्टा और वेत्ता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम 'कवि' है। 'शिवु कल्याणे' इस धातु से 'शिव' शब्द सिद्ध होता है। 'बहुलमेतन्निर्दर्शनम्।' [व्या०] इससे 'शिव' धातु माना जाता है, जो कल्याणस्वरूप और कल्याण का करने हारा है इसलिये उस परमेश्वर का नाम 'शिव' है।

ये सौ नाम परमेश्वर के लिये हैं। परन्तु इनसे भिन्न परमात्मा असंख्य नाम हैं। क्योंकि जैसे परमेश्वर के अनन्त गुण, कर्म, स्वभाव वैसे उसके अनन्त नाम भी हैं। उनमें से प्रत्येक गुण, कर्म और स्वभाव का एक २ नाम है। इससे ये मेरे लिये नाम समुद्र के सामने विन्दुवत् हैं क्योंकि वेदादि शास्त्रों में परमात्मा के असंख्य गुण, कर्म, स्वभाव व्याख्या किये हैं। उनके पढ़ने पढ़ाने से बोध हो सकता है। और अन्य पदार्थों का ज्ञान भी उन्हीं को पूरा हो सकता है जो वेदादि शास्त्रों को पढ़ते हैं।

२१—(प्रश्न) जैसे अन्य ग्रन्थकार लोग आदि, मध्य और अन्त

मङ्गलाचरण करते हैं वैसे आपने कुछ भी न लिखा, न किया ?

(उत्तर) ऐसा हमको करना योग्य नहीं, क्योंकि जो आदि, मध्य और अन्त में मङ्गल करेगा तो उसके ग्रन्थ में आदि, मध्य तथा अन्त के बीच में जो कुछ लेख होगा वह अमङ्गल ही रहेगा, इसलिये 'मङ्गलाचरणं शिष्टाचारात् फलदर्शनाच्छ्रुतितश्चेति।' यह साय्यशास्त्र [अ. ५। सू० १] का वचन है। इसका यह अभिप्राय है कि जो न्याय, पक्षपातरहित, सत्य वेदोक्त ईश्वर की आज्ञा है इसी का यथावत् सर्वत्र और सदा आचरण करना मङ्गलाचरण कहा जाता है। ग्रन्थ के आरम्भ से ले के समाप्तिपर्यन्त सत्याचार का करना ही मङ्गलाचरण है, न कि कहीं मङ्गल और कहीं अमङ्गल लिखना। देखिये महाशय महर्षियों के लेख को—

यान्यनवधानि कर्माणि तानि संदितव्यानि नो इतराणि ॥

यह तैत्तिरीयोपनिषद् [प्रपाठक ७। अनु० ११] का वचन है। हे सन्तानो ! जो 'अनवद्य' अनिन्दनीय अर्थात् धर्मगुक्त कर्म है वे ही तुमको करने योग्य हैं, अधर्मगुक्त नहीं। इसलिये जो आधुनिक ग्रन्थों में 'श्री गणेशाय नमः', 'सीतारामाभ्या नमः', 'राधाकृष्णाभ्या नमः', 'श्रीगुरुचरणारविन्दाभ्या नमः', 'हनुमते नमः', 'दुर्गायै नमः', 'बटुकाय नमः' 'भैरवाय नमः' 'शिवाय नमः', 'सरस्वत्यै नमः', 'नारायणाय नमः' इत्यादि लेख देखने में आते हैं इनको बुद्धिमान् लोग वेद और शास्त्रों से विरुद्ध होने से मिथ्या ही समझते हैं क्योंकि वेद और ऋषियों के ग्रन्थों में कहीं ऐसा मङ्गलाचरण देखने में नहीं आता और आर्षग्रन्थों में 'ओ३म्' तथा 'अथ' शब्द तो देखने में आता है। देखो—

'अथ शब्दानुशासनम्' अथेत्यय शब्दोऽधिकारार्थः प्रयुज्यते। यह व्याकरणमहाभाष्य।

'अथातो धर्मजिज्ञासा' अथेत्यानन्तर्ये वेदाध्ययनानन्तरम् यह पूर्वमीमांसा।

'अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः' अथेति धर्मकथनानन्तरं धर्मलक्षणं विशेषेण व्याख्यास्यामः। यह वैशेषिकदर्शन।

'अथ योगानुशासनम्' अथेत्ययमधिकारार्थः। यह योगशास्त्र।

'अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः।' सासारिकविषयभोगानन्तरं त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्त्यर्थः प्रयत्नः कर्त्तव्यः। यह साय्यशास्त्र।

‘अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।’ चतुष्टयसाधनसमाप्त्यनन्तरं ब्रह्मजिज्ञास्यम् ।’ यह वेदान्तसूत्र है ।

‘ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत’ । यह छान्दोग्योपनिषद् का वचन है ।

‘ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानम् ।’ यह माण्डूक्य उपनिषद् के आरम्भ का वचन है ।

ऐसे ही अन्य ऋषि मुनियों के ग्रन्थों में ‘ओ३म्’ और ‘अथ’ शब्द लिखे हैं वेमे ही ‘अग्नि’, ‘इष्ट’, ‘अग्नि’, ‘ये त्रिपसाः परियन्ति०’ ये शब्द चारों वेदों के आदि में लिखे हैं । ‘श्रीगणेशाय नमः’ इत्यादि शब्द कहीं नहीं । और जो वैदिक लोग वेद के आरम्भ में ‘हरि ओ३म्’ लिखते और पढ़ते हैं यह पौराणिक और तांत्रिक लोगों की मिथ्या कल्पना से सीखे हैं । वेदादि शास्त्रों में ‘हरि’ शब्द आदि में कहीं नहीं । इसलिये ‘ओ३म्’ वा ‘अथ’ शब्द ही ग्रन्थ के आदि में लिखना चाहिये । यह किञ्चिन्मात्र ईश्वर के विषय में लिखा, इसके आगे शिक्षा के विषय में लिखा जायगा ॥

इति श्रीमद्भगवानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते
ईश्वरनामविषये प्रथमः समुद्रासः सम्पूर्णः ॥

अथ द्वितीयसमुल्लासारम्भः

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामः ॥

१—मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद ॥

यह शतपथ ब्राह्मण [का० १४। ८। ५। २] का वचन है। वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। वह कुल धन्य। वह सन्तान बड़ा भाग्यवान्। जिसके माता और पिता धार्मिक विद्वान् हो। जितना माता से सन्तानो को उपदेश और उपकार पहुँचता है उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानो पर प्रेम [और] उनका हित करना चाहती है उतना अन्य कोई नहीं करता, इसलिये (मातृमान्) अर्थात् 'प्रशस्ता धार्मिकी माता विद्यते यस्य स मातृमान्।' धन्य वह माता है कि जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो तबतक सुशीलता का उपदेश करे ॥

२—माता और पिता को अति उचित है कि गर्भाधान के पूर्व, मध्य और पश्चात् मादक द्रव्य, मद्य, दुर्गन्ध, रूक्ष, बुद्धिनाशक पदार्थों को छोड़ के जो शान्ति, आरोग्य, बल, बुद्धि, पराक्रम और सुशीलता से सभ्यता को प्राप्त करे वैसे घृत, दुग्ध, मिष्ट, अन्नपान आदि श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन करें कि जिससे रजस वीर्य भी दोषों से रहित होकर अत्युत्तम गुणयुक्त हो। जैसा ऋतुगमन का विधि अर्थात् रजोदर्शन के पाँचवें दिवस से छे के सोलहवें दिवस तक ऋतुदान देने का समय है, उन दिनों में से प्रथम के चार दिन त्याज्य हैं, रहे १२ दिन, उनमें एकादशी और त्रयोदशी को छोड़के बाकी १० रात्रियों में गर्भाधान करना उत्तम है। और रजोदर्शन के दिन से छे के १२वीं रात्रि के पश्चात् न समागम करना। पुनः जबतक ऋतुदान का समय पूर्वोक्त न आवे तबतक और गर्भस्थिति के पश्चात् एक वर्ष तक सगुप्त न हो। जब दोनों के शरीर में आरोग्य, परस्पर प्रसन्नता, किसी प्रकार का शोक न हो, जैसा चरक और सुश्रुत में भोजन छादन का विधान और मनुस्मृति में स्त्री पुरुष की प्रसन्नता की रीति लिखी है उसी प्रकार करें और बर्तें। गर्भाधान के पश्चात् स्त्री को बहुत सावधानी से भोजन छादन करना चाहिये। पश्चात् एक वर्ष पर्यन्त स्त्री पुरुष का सङ्ग न करे। बुद्धि, बल, रूप आरोग्य, पराक्रम, शान्ति आदि गुणकारक द्रव्यों ही का सेवन स्त्री करती रहे कि जयतक सन्तान का जन्म न हो।

‘अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।’ चतुष्टयसाधनसमाप्त्यनन्तरं ब्रह्मजिज्ञास्यम् ।’ यह वेदान्तसूत्र है ।

‘ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत’ । यह आन्दोग्योपनिषद् का वचन है ।

‘ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानम् ।’ यह माण्डूक्य उपनिषद् के आरम्भ का वचन है ।

ऐसे ही अन्य ऋषि मुनियों के ग्रन्थों में ‘ओ३म्’ और ‘अय’ शब्द लिखे हैं वेसे ही ‘अग्नि’, ‘इष्ट’, ‘अग्नि’, ‘ये त्रिपसाः परियन्ति०’ ये शब्द चारों वेदों के आदि में लिखे हैं । ‘श्रीगणेशाय नमः’ इत्यादि शब्द कहीं नहीं । और जो वैदिक लोग वेद के आरम्भ में ‘हरि ओ३म्’ लिखते और पढ़ते हैं यह पौराणिक और तांत्रिक लोगों की भ्रष्टा कल्पना से सीखे हैं । वेदादि शास्त्रों में ‘हरि’ शब्द आदि में कहीं नहीं । इसलिये ‘ओ३म्’ वा ‘अय’ शब्द ही ग्रन्थ के आदि में लिखना चाहिये । यह किञ्चिन्मात्र ईश्वर के विषय में लिखा, इसके आगे शिक्षा के विषय में लिखा जायगा ॥

इति श्रीमद्भगवानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते
ईश्वरनामविषये प्रथमः समुद्भासः सम्पूर्णः ॥

अथ द्वितीयसमुल्लासारम्भः

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामः ॥

१—मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद ॥

यह शतपथ ब्राह्मण [का० १४। ८। ५। २] का वचन है। वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। वह कुल धन्य ! वह सन्तान बड़ा भाग्यवान् ! जिसके माता और पिता धार्मिक विद्वान् हो। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम [और] उनका हित करना चाहती है उतना अन्य कोई नहीं करता, इसलिये (मातृमान्) अर्थात् 'प्रशस्ता धार्मिकी माता विद्यते यस्य स मातृमान्।' धन्य वह माता है कि जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो तबतक सुशीलता का उपदेश करे ॥

२—माता और पिता को अति उचित है कि गर्भाधान के पूर्व, मध्य और पश्चात् मादक द्रव्य, मद्य, दुर्गन्ध, रुक्ष, बुद्धिनाशक पदार्थों को छोड़ के जो शान्ति, आरोग्य, बल, बुद्धि, पराक्रम और सुशीलता से सम्यक्ता को प्राप्त करे वैसे घृत, दुग्ध, मिष्ट, अन्नपान आदि श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन करे कि जिससे रजस वीर्य भी दोनों से रहित होकर अत्युत्तम गुणयुक्त हों। जैसा ऋतुगमन का विधि अर्थात् रजोदर्शन के पाँचवें दिवस से ले के सोलहवें दिवस तक ऋतुदान देने का समय है, उन दिनों में से प्रथम के चार दिन त्याज्य हैं, रहे १२ दिन, उनमें एकादशी और त्रयोदशी को छोड़के बाकी १० रात्रियों में गर्भाधान करना उत्तम है। और रजोदर्शन के दिन से ले के १२वीं रात्रि के पश्चात् न समागम करना। पुनः जबतक ऋतुदान का समय पूर्वोक्त न आवे तबतक और गर्भस्थिति के पश्चात् एक वर्ष तक सयुक्त न हो। जब दोनों के शरीर में आरोग्य, परस्पर प्रसन्नता, किसी प्रकार का शोक न हो, जैसा चरक और सुश्रुत में भोजन छादन का विधान और मनुस्मृति में स्त्री पुरुष की प्रसन्नता की रीति लिखी है उसी प्रकार करे और बर्त्ते। गर्भाधान के पश्चात् स्त्री को बहुत सावधानी से भोजन छादन करना चाहिये। पश्चात् एक वर्ष पर्यन्त स्त्री पुरुष का सङ्ग न करे। बुद्धि, बल, रूप आरोग्य, पराक्रम, शान्ति आदि गुणकारक द्रव्यों ही का सेवन स्त्री करती रहे कि जबतक सन्तान का जन्म न हो।

जब जन्म हो तब अच्छे सुगन्धियुक्त जल में बालक को स्नान, नाड़ी छेदन करके सुगन्धियुक्त घृतादि के होम ७ और स्त्री के भी स्नान भोजन का यथायोग्य प्रबन्ध करे कि जिससे बालक और स्त्री का शरीर प्रसन्न आरोग्य और पुष्ट होता जाय। ऐसा पदार्थ उसकी माता या धायी चाहे कि जिससे दूध में भी उत्तम गुण प्राप्त हों। प्रसूता का दूध छः दिन तक बालक को पिलावे पश्चात् धायी पिलाया का, परन्तु धायी को उत्तम पदार्थों का स्नान पान माता पिता करावे। जो कोई दरिद्र हों, धायी को न रख सकें तो वे गाय या बकरी के दूध में उत्तम ओषधि जो कि बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य करने वाली हों उनको शुद्ध जल में भिजो, और छान के दूध के समान बालक को पिलावे। जन्म के पश्चात् बालक और उसकी माता के दूसरे स्थान में जहाँ का वायु शुद्ध हो बहा रहे, सुगन्ध तथा दर्शनीय पदार्थ भी रहें और उस देश में भ्रमण करना उचित है कि जहाँ वायु शुद्ध हो। और जहाँ धायी, गाय, बकरी आदि का दूध न मिल सके वहाँ जैसा उचित समझें वैसा करें। क्योंकि प्रसूता स्त्री के शरीर के अंग से बालक का शरीर होता है इसी से स्त्री प्रसवसमय निर्बल हो जाती है इसलिये प्रसूता स्त्री दूध न पिलावे। दूध रोकने के लिये स्तन के छिद्र पर उस ओषधि का लेप करे जिससे दूध स्रवित न हो। ऐसे करने से दूसरे मास में पुनरपि पुवती होजाती है। तबतक पुरुष ब्रह्मचर्य्य से वीर्य्य का निग्रह रखे। इस प्रकार जो स्त्री या पुरुष करेंगे उनके उत्तम सन्तान, दीर्घायु, बल, पराक्रम की वृद्धि होती ही रहेगी कि जिससे सब सन्तान उत्तम, बल, पराक्रम युक्त, दीर्घायु, धार्मिक हो। स्त्री योनिसङ्कोचन, शोधन और पुरुष वीर्य्य का स्तम्भन करे। पुनः सन्तान जितने होंगे वे भी सब उत्तम होंगे।

३—बालकों को माता सदा उत्तम शिक्षा करे जिससे सन्तान सम्यक् और किसी अङ्ग से कुचेष्टा न करने पायें। जब बोलने लगे तब उसकी माता बालक की जिह्वा जिस प्रकार कोमल होकर स्पष्ट उच्चारण कर सके वैसा उपाय करे कि जो जिस वर्ण का स्थान, प्रयत्न अर्थात् जैसे 'प' ओष्ठ स्थान और स्पृष्ट प्रयत्न, दोनों ओष्ठों को मिलाकर बोलना, दीर्घ, प्लुत अक्षरों को ठीक बोल सकना। मधुर, गम्भीर, सुन्दर, अक्षर, मात्रा, पद, वाक्य, संहिता, अवसान भिन्न श्रवण होवे।

४ बालक के जन्म-समय में 'जातकर्म-संस्कार' होता है उसमें हव-वैशेक्त कर्म होते हैं, वे 'संस्कारविधि' में सविस्तर लिख दिये हैं।

जब वह कुछ १ बोलने और समझने लगे तब सुन्दर वाणी और बड़े, छोटे, मान्य, पिता, माता, राजा, विद्वान् आदि से भाषण, उनसे वर्तमान अर उनके पास बैठने आदि की भी शिक्षा करें जिससे कहीं उनका अयोग्य व्यवहार न हो के सर्वत्र प्रतिष्ठा हुआ करे। जैसे सन्तान जितेन्द्रिय, विद्या-प्रिय और सत्सग में रचि करे वैसा प्रयत्न करते रहे। व्यथ क्रीडा, रोदन, हास्य, लडाई, हर्ष, शोक, किसी पदार्थ में लोलुपता, ईर्ष्या, द्वेषादि न करें। उपस्थेन्द्रिय के स्पर्श और मर्दन से वीर्य क्षीणता, नपुसकता होती और हस्त में दुर्गन्ध भी होता है इससे उसका स्पर्शन करें। सदा सत्यभाषण, शौर्य, धैर्य, प्रसन्नवदन आदि गुणों की प्राप्ति जिस प्रकार हो करावें।

जब पांच २ वर्ष के लडका लडकी हों तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें। अन्य देशीय भाषाओं के अक्षरों का भी। उसके पश्चात् जिनसे अच्छी शिक्षा, विद्या, धर्म, परमेश्वर, माता, पिता, आचार्य, विद्वान्, अतिथि, राजा, प्रजा, कुटुम्ब, बन्धु, भगिनी, भृत्य आदि से कैसे २ वर्तना इन बातों के मन्त्र, श्लोक, सूत्र, गद्य, पद्य भी अर्थसहित कंठस्थ करावे। जिनसे सन्तान किसी धूर्त के बहकाने में न आवें और जो २ विद्याधर्म-विरुद्ध भ्रान्तिजाल में गिराने वाले व्यवहार हैं उनका भी उपदेश करें, जिससे भूत प्रेत आदि मिथ्या बातों का विश्वास न हो।

४ -गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेघं समाचरन्।

प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुध्यति ॥ मनु० [अ० ५।६५]

अर्थ—जब गुरु का प्राणान्त हो तब मृतक-शरीर जिसका नाम 'प्रेत' है उसका दाह करने हारा शिष्य 'प्रेतहार' अर्थात् मृतक को उठाने वालों के साथ दशवें दिन शुद्ध होता है।

और जब उस शरीर का दाह होचुका तब उसका नाम 'भूत' होता है अर्थात् वह अमुकनामा पुरुष था। जितने उत्पन्न हो वर्तमान में आ के न रहें वे भूतस्थ होने से उनका नाम 'भूत' है। ऐसा ब्रह्मा से लेकर आज पर्यन्त के विद्वानों का सिद्धान्त है, परन्तु जिसको शङ्का, कुसंग, कुसम्कार होता है उसको भय और शङ्का रूप भूत, प्रेत, शाकिनी, टाकिनी, आदि अनेक भ्रमजाल दुःखदायक होते हैं।

देखो जब कोई प्राणी मरता है तब उसका जीव पाप, पुण्य के वश होकर परमेश्वर की व्यवस्था से सुख दुःख के फल भोगने के अर्थ जन्मान्तर धारण करता है। क्या इस अविनाशी परमेश्वर की व्यवस्था का कोई भी

नाश कर सकता है ? अज्ञानी लोग बंधकशास्त्र वा पदार्थविद्या के पढ़ने, सुनने और विचार में रहित होकर सन्निपात जगदि नारीसिक और उन्मत्त दकादि मानस रोगों का नाम भूत प्रेत, पि धरने हैं । उनका औषधोपचार और पथ्यादि उचित व्यवहार न करके उन भूत, पागण्डी, महामूर्ख, अनाचारी, स्वार्थी, भङ्गी, चमार, शत्रु, श्रेष्ठ्यादि पर भी विश्वासी होकर अनेक प्रकार के ढोंग, छल, कपट और उच्छिष्ट भोजन, जेरा, धागा आदि निम्न मन्त्र, यन्त्र बांधते बंधवाते फिरते हैं, अपने धन का नाश, सन्तान आदि की दुर्दशा और रोगों को बढ़ाकर दुःख देते फिरते हैं । जब आग के अंश और गाँठ के पूरे उन दुबुद्धि, पापी म्वायियों के पास जाकर पूछते हैं कि 'महाराज ! इस लड़का लड़की, स्त्री और पुरुष को न जाने क्या हो गया है ?' तब, वे बोलते हैं कि 'इसके शरीर में बड़ा भूत, प्रेत, भैरव, शीतल, आदि देवी आगई है, जब तक तुम इसका उपाय न करोगे तबतक ये न छूटेंगे और प्राण भी लेलेंगे । जो तुम मलीया वा इतनी भेट दो तो हम मन्त्र, जप, पुरश्चरण से झाड़ के इनको निकाल देंगे ।' तब वे अंधे और उनके सम्बन्धी बोलते हैं कि 'महाराज ! चाहे हमारा सर्वस्व जाओ, परन्तु इनके अच्छा कर दीजिये ।' तब तो उनकी धन पड़ती है । वे धूर्त कहते हैं 'अच्छा लाओ इतनी सामग्री, इतनी दक्षिणा, देवता को भेट और ग्रहदान कराओ ।' क्षांक्ष, मृदङ्ग, ढोल, थाली लेके उसके सामने बजाते गाते और उनमें से एक पागण्डी उन्मत्त होके नाच कूद के कहता है 'मैं इसका प्राण ही ले लूंगा ।' तब वे अंधे उस भङ्गी चमार आदि नीच के पगों में पड़ के कहते हैं 'आप चाहे सो लीजिये इसकी बचाइये ।' तब वह धूर्त बोलता है 'मैं हनुमान हूँ, लाओ पक्की मिठाई, तेल, सिन्दूर, सया मन का रौ और लाल लंगोट ।' 'मैं देवी वा भैरव हूँ, लाओ पांच बीतल मद्य, चूँ मुर्गी, पांच बकरे, मिठाई और वस्त्र ।' जब वे कहते हैं कि 'जो चाहो सो लो तब तो वह पागल बहुत नाचने कूदने लगता है । परन्तु जो कोई बुद्धिमान् उनकी भेट पांच जूता, ढंडा व चपेटा, लातें मारे तो उसके हनुमान्, देवी और भैरव क्षण प्रसन्न होकर भाग जाते हैं, क्योंकि वह उनका बंधनादि हर्षण करने के प्रयोजनार्थ ढोंग है ।

५.—और जब किसी ग्रहग्रस्त, ग्रहरूप, ज्योतिर्विदाभास के पास जा कहते हैं 'हे महाराज ! इसको क्या है ?' तब वे कहते हैं कि 'इसका क्रूर ग्रह चढ़े हैं । जो तुम इनकी शान्ति, पाठ, पूजा, दान करा-

इसको सुख होजाय, नहीं तो बहुत पीड़ित होकर मर जाय तो भी श्रेय नहीं ।'

(उत्तर) कहिये ज्योतिर्वित् ! जैसी यह पृथिवी जड़ है वैसे ही सूर्यादि लोक हैं । वे ताप और प्रकाशादि से भिन्न कुछ भी नहीं कर सकते । क्या चेतन है जो क्रोधित होके दुःख और शान्त होके सुख दे सकें ?

(प्रश्न) क्या जो यह ससार में राजा प्रजा सुखी दुःखी होरहे है वह फल का फल नहीं है ? (उत्तर) नहीं, ये सब पाप पुण्यो के फल है ।

(प्रश्न) तो क्या ज्योति शास्त्र झूठा है ?

(उत्तर) नहीं, जो उसमें अक, बीज, रेखागणित विद्या है वह सब सत्य, जो फल की लीला है वह सब झूठी है ।

(प्रश्न) क्या जो यह जन्मपत्र है सो निष्फल है ?

(उत्तर) हा, वह जन्मपत्र नहीं किन्तु उसका नाम 'शोकपत्र' रखना चाहिए क्योंकि जब सन्तान का जन्म होता है, तब सबको आनन्द होता है, परन्तु वह आनन्द तबतक होता है कि जबतक जन्मपत्र बन के ग्रहों का फल सुनें, जब पुरोहित जन्मपत्र बनाने को कहता है तब उसके माता पिता रोहित से कहते हैं 'महाराज ! आप बहुत अच्छा जन्मपत्र बनाइये ।' धनाढ्य हो तो बहुत सी लाल पीली रेखाओं से चित्र विचित्र और निर्धन तो साधारण रीति से जन्मपत्र बना के सुनाने को आता है । तब उसके बाप ज्योतिपीजी के सामने बैठ के कहते हैं 'इसका जन्मपत्र अच्छा है ?' ज्योतिपी कहता है 'जो है सो सुना देता हूँ । इसके जन्मग्रह बहुत अच्छे और मित्रग्रह भी बहुत अच्छे हैं जिनका फल धनाढ्य और तिष्ठावान्, जिस सभा में जा बैठेगा तो सब के ऊपर इसका तेज पड़ेगा, शरीर से आरोग्य और राज्यमानी होगा ।' इत्यादि बातें सुनके पिता आदि बोलते हैं 'वाह २ ज्योतिपीजी आप बहुत अच्छे हो ।' ज्योतिपीजी समझते हैं, इन बातों से कार्य सिद्ध नहीं होता । तब ज्योतिपी बोलता है 'यह ग्रह तो बहुत अच्छे हैं, परन्तु ये ग्रह क्रूर हैं अर्थात् फलाने २५ वर्ष के योग से २ वर्ष में इसका मृत्युयोग है ।' इसको सुनके माता पिता पुत्र के जन्म के आनन्द को छोड़ के, शोकसागर में डूबकर ज्योतिपीजी से कहते हैं कि 'महाराजजी ! अब हम क्या करें ?' तब ज्योतिपीजी इतने हैं 'उपाय करो' । गृहस्थ पूछे 'क्या उपाय करें ?' ज्योतिपीजी प्रस्ताव देने लगते हैं कि 'ऐसा २ दान करो । ग्रह के मन्त्र का जप कराओ

और नित्य ब्राह्मणों को भोजन कराओंगे तो अनुमान है कि नवग्रहों विघ्न हट जायेंगे ।' अनुमान शब्द इसलिये है कि जो मर जायगा तो हम क्या करें, परमेश्वर के ऊपर कोई नहीं है, हमने तो बहुतमा यज्ञ और तुमने कराया, उसके कर्म ऐसे ही थे । और जो बच जाय तो हैं कि देखो हमारे मन्त्र, देवता और ब्राह्मणों की कैसी शक्ति है ! लड़के को बचा दिया । यहाँ यह बात होनी चाहिये कि जो इनके जप से कुछ न हो तो दूने तिगुने रुपये उन धूर्तों से ले लेने चाहिये और जाय तो भी ले लेने चाहिये, क्योंकि जैसे ज्योतिषियों ने कहा कि कर्म और परमेश्वर के नियम तोड़ने का सामर्थ्य किसी का नहीं ।' गृहस्थ भी कहे कि 'यह अपने कर्म और परमेश्वर के नियम से तुम्हारे करने से नहीं' और तीसरे, गुरु आदि भी पुण्यदान कराके लेते हैं तो उनको भी वही उत्तर देना, जो ज्योतिषियों को दिया था ।

६—अब रह गई शीतला और मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र आदि । ये भी देंगे मचाते हैं । कोई कहता है कि 'जो हम मन्त्र पढ़ के डोरा बाँधना दें तो हमारे देवता और पीर उस मन्त्र यन्त्र के प्रताप से कोई विघ्न नहीं होने देते ।' इनको वही उत्तर देना चाहिये कि मृत्यु, परमेश्वर के नियम और कर्मफल से भी बचा सकोगे ? तुम्हारे प्रकार करने से भी कितने ही लड़के मर जाते हैं और तुम्हारे घर में मर जाते हैं और क्या तुम मरण से बच सकोगे ? तब वे कुछ भी कह सकते और वे धूर्त जान लेते हैं कि यहाँ हमारी दाल नहीं इससे इन सब मिथ्या व्यवहारों को छोड़कर धार्मिक, सब देश के कारकर्ता, निष्कपटता से सब को विद्या पढ़ाने वाले, उत्तम विद्वान का प्रत्युपकार करना, जैसा वे जगत् का उपकार करते हैं, इस कभी न छोड़ना चाहिये । और जितनी लीला रसायन, मारण, मोहन, टन, वशीकरण आदि करना कहते हैं उनको भी महापाप्म समझना इत्यादि मिथ्या बातों का उपदेश वाल्यावस्था ही में सन्तानों के डाल दें कि जिससे स्वसन्तान किसी के भ्रमजाल में पड़के दुःख न

७—और वीर्य की रक्षा में आनन्द और नाश करने में दुःख भी जना देनी चाहिये । जैसे, 'देखो, जिसके शरीर में सुरक्षित वीर्य है तब उसको आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़ के बहुत सुख की होती है । इसके रक्षण में यही रीति है कि विषयों की कथा,

तेजों का संग, विषयों का ध्यान, रीति का दर्शन, एकान्त सेवन, सभाषण और स्पर्श आदि कर्म से ब्रह्मचारी लोग पृथक् रहकर उत्तम शिक्षा और विद्या को प्राप्त होवें। जिसके शरीर में वीर्य नहीं होता वह नपुंसक, हाकुलक्षणी और जिसको प्रमेह रोग होता है वह दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि, साह, साहस, धैर्य, बल पराक्रमादि गुणों से रहित होकर नष्ट हो जाता। जो तुम लोग सुशिक्षा और विद्या के ग्रहण, वीर्य की रक्षा करने में तत्समय चूकोगे तो पुनः इस जन्म में तुमको यह अमूल्य समय प्राप्त हो ही सकेगा। जबतक हम लोग गृहकर्मों के करने वाले जीते हैं तभी तुमको विद्या ग्रहण और शरीर का बल बढ़ाना चाहिये।” इसी प्रकार अन्य २ शिक्षा भी माता और पिता करें। इसीलिये ‘मातृमान् पितृ-न्’ शब्द का ग्रहण उक्त वचन में किया है अर्थात् जन्म से ५वें वर्ष तक बालकों को माता, ६ठे वर्ष से ८वें वर्ष तक पिता शिक्षा करे और ९ वर्ष के आरम्भ में द्विज अपने सन्तानों का उपनयन करके आचार्य-शाला में अर्थात् जहाँ पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्या-न करने वाली हो वहाँ लड़के और लड़कियों को भेज दें और शूद्रादि का उपनयन किये बिना विद्याभ्यास के लिये गुरुकुल में भेज दें।

८—उन्हीं के सन्तान विद्वान्, सम्य और सुशिक्षित होते हैं जो पढ़ाने सन्तानों को लाटन कभी नहीं करते किन्तु ताड़ना ही करते रहते हैं। इसमें व्याकरण महाभाष्य का प्रमाण है.—

‘मृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विपोक्षितैः।

तानाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः॥ [अ० ८।१।८]

अर्थ—जो माता पिता और आचार्य सन्तान और शिष्यों का ताड़न करते हैं वे जानो अपने सन्तान और शिष्यों को अपने हाथ से अमृत कर रहे हैं और जो सन्तानों वा शिष्यों का लाटन करते हैं वे अपने तानों और शिष्यों का विष पिला के नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं। क्योंकि उन से सन्तान और शिष्य दोषयुक्त तथा ताड़ना से गुणरुक्त होते हैं। सन्तान और शिष्य लोग भी ताड़ना से प्रसन्न और लाटन से अप्रसन्न होकर रहें। परन्तु माता, पिता तथा अध्यापक लोग ईर्ष्या, द्वेष से इन न करें। किन्तु ऊपर से भयप्रदान और भीतर से कृपादृष्टि रखें।

९—जैसी अन्य शिक्षा की वैसी चोरी, जाली, आलस्य, प्रमाद, मादक, मिथ्याभाषण, हिंसा, क्रूरता, ईर्ष्या, द्वेष, मोह आदि दोषों के छोड़ने

और सत्याचार के ग्रहण करने की शिक्षा करें। क्योंकि जिस पुरुष ने सामने एक बार चोरी, जाली, मिथ्याभाषणादि कर्म किया उसकी उसके सामने मृत्युपर्यन्त नहीं होती। जैसी हानि प्रतिज्ञा मिथ्या की होती है वैसी अन्य किसी की नहीं। इसमें जिसके साथ जैसी करनी उसके साथ वैसी ही पूरी करनी चाहिये अर्थात् जैसे किसी ने से कहा कि 'मैं तुमको वा तुम मुझसे अमुक समय में मिलगा वा अथवा अमुक वस्तु अमुक समय में तुमको मैं दूंगा,' इसको वैसे ही पूरी नहीं तो उसका प्रतीति कोई भी न करेगा। इसलिये सदा सत्यभाषण सत्यप्रतिज्ञागुक्त सबको होना चाहिये। किसी को अभिमान न करना

१०—छल, कपट वा कृतघ्नता से अपना ही हृदय दुःखित होता दूसरे की क्या कथा कहनी चाहिये। छल और कपट उसको कहते भीतर और, बाहर और रख दूसरे को मोह में डाल और दूसरे की ध्यान न देकर स्वप्रयोजन सिद्ध करना। 'कृतघ्नता' उसको कहते किसी के किये हुए उपकार को न मानना। क्रोधादि दोष और को छोड़ शान्त और मधुर वचन ही बोले और बहुत बड़वाद न जितना बोलना चाहिये उससे न्यून वा अधिक न बोले। बड़ों को दे, उनके सामने उठकर जा के उच्चासन पर बैठावे, प्रथम 'नमस्ते' उनके सामने उत्तमासन पर न बैठे। सभा में वैसे स्थान में बैठे अपनी योग्यता हो और दूसरा कोई न उठावे। विरोध किसी से न सम्पन्न होकर गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग रखे। संग और दुष्टों का त्याग, अपने माता, पिता और आचार्य की और धनादि उत्तम उत्तम पदार्थों से प्रीतिपूर्वक सेवा करे।

यान्यस्माकथं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो

यह तैत्ति० [प्रपा० ७ अनु० १]

इसका यह अभिप्राय है कि माता पिता आचार्य अपने शिष्यों को सदा सत्य उपदेश करे और यह भी कहें कि जो १ धर्मगुक्त कर्म हैं उन उनका ग्रहण करो और जो २ दुष्ट कर्म हो त्याग कर दिया करो। जो १ सत्य जानें उन २ का प्रकाश और करें। किसी पातण्डी, दुष्टाचारी मनुष्य पर विश्वास न करें और उत्तम कर्म के लिये माता, पिता और आचार्य आज्ञा देंगे उस यथेष्ट पालन करे, जैसे माता पिता ने धर्म, विद्या, अच्छे

श्लोक 'निघण्टु', 'निरुक्त', 'अष्टाध्यायी' अथवा अन्य सूत्र वा वेदमन्त्र कण्ठस्थ कराये हों उन २ का पुनः अर्थ विद्यार्थियों को विदित करावें। जैसे प्रथम समुद्भास में परमेश्वर का व्याख्यान किया है उसी प्रकार मानके उसकी उपासना करे। जिस प्रकार आरोग्य, विद्या और बल प्राप्त हो उसी प्रकार भोजन, छादन और व्यवहार करे, करावे, अर्थात् जितनी क्षुधा हो उससे कुछ न्यून भोजन करे। मद्य मांसादि के सेवन से अलग रहें। अज्ञात गम्भीर जल में प्रवेश न करे क्योंकि जलजन्तु वा किसी अन्य प्रदार्थ से दुःख और जो तरना न जाने तो डूब ही जा सकता है। 'नाविज्ञाते जलाशये' यह मनु० [४। ११९] का वचन है, अविज्ञात जलाशय में प्रविष्ट होके स्नानादि न करे।

दृष्टिपूत न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।

सत्यपूतां वदेद् वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥ मनु० [अ० ६।४६]

अर्थ—नीचे दृष्टि कर ऊंचे नीचे स्थान को देख के चले, वस्त्र से छानके जल पीवे, सत्य से पवित्र करके वचन बोले, मन से विचार के आचरण करे।

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः ।

न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये वको यथा ॥

चाणक्यनीति अध्या० २ । श्लो० ११ ॥

वे माता और पिता अपने सन्तानों के पूर्ण वैरी हैं जिन्होंने उनको या की प्राप्ति न कराई, वे विद्वानों की सभा में वैसे तिरस्कृत और कुशो-त होते हैं जैसे हंसों के बीच में बगुला। यही माता पिता का कर्त्तव्य कर्म, म धर्म और कीर्त्ति का काम है जो अपने सन्तानों को तन, मन, धन से या, धर्म, सभ्यता और उत्तम शिक्षा उक्त करना।

यह बालशिक्षा में थोडासा लिखा, इतने ही से बुद्धिमान लोग बहुत मग्न लेंगे।

इति श्रीमद्भयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते

बालशिक्षाविषये द्वितीय समुद्भास सम्पूर्ण ॥ २ ॥

अथ तृतीयसमुद्धासारम्भः

अथाऽध्ययनाध्यापनविधिं व्याख्यास्यामः

१—अब तीसरे समुद्धास में पढ़ने पढ़ाने का प्रकार लिखते हैं। संसार को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म और स्वभावस्वरूप आभूषणों का करना माता, पिता, आचार्य्य और सन्धन्वियों का मुख्य कर्म है। सोने चांदी, माणिक, मोती, मूंगा आदि रत्नों से युक्त आभूषणों के धारण कराने से मनुष्य का आत्मा सुशुभित कभी नहीं होसकता। क्योंकि आभूषणों के धारण करने से केवल देहाभिमान, विषयासक्ति और चोर [का] भय तथा मृत्यु का भी सम्भव है। संसार में देखने में आता है आभूषणों के योग से बालकादिकों का मृत्यु दुष्टों के हाथ से होता है।

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,

सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः ।

संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,

धन्या नरा विहितकर्मपरोपकाराः ॥

जिन पुरुषों का मन विद्या के विलास में तन्पर रहता, सुन्दर

रहें तब तक सी वा पुरुष का दर्शन, स्पर्शन, एकान्तसेवन, भाषण, विषय-कथा, परस्परकीड़ा, विषय का ध्यान और सज्ञ इन आठ प्रकार के मैथुनो से अलग रहें और अध्यापक लोग उनको इन बातों से बचावें जिससे उत्तम विद्या, शिक्षा, शील, स्वभाव, शरीर और आत्मा से बलयुक्त होके आनन्द को नित्य बड़ा सके। पाठशालाओं से एक योजन अर्थात् चार कोस दूर ग्राम वा नगर रहे। सबको तुल्य वस्त्र, खान, पान, आसन दिये जायें, चाहे वह राजकुमार वा राजकुमारी हो, चाहे दरिद्र के सन्तान हों, सबको तपस्वी होना चाहिये। उनके माता पिता अपने सन्तानों से वा सन्तान अपने माता पिताओं से न मिल सकें और न किसी प्रकार का पत्रव्यवहार एक दूसरे से कर सकें, जिससे संसारी चिन्ता में रहित होकर केवल विद्या बढ़ाने की चिन्ता रखें। जब भ्रमण करने को जायें तब उनके साथ अध्यापक रहे जिससे किसी प्रकार की कुचेष्टा न कर सकें और न भालस्य प्रमाद करे।

कन्यानां सम्प्रदानं च कुमारानां च रक्षणम् ।

मनु० [अ० ७ । श्लोक १५१]

इसका अभिप्राय यह है कि इसमें राजनियम और जातिनियम होना चाहिये कि पाचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रख सके। पाठशाला में अवश्य भेज दें, जो न भेजे वह दण्डनीय हो। प्रथम लड़को का यज्ञोपवीत घर में हो और दूसरा पाठशाला में, आचार्यकुल में हो।

३—पिता माता वा अध्यापक अपने लड़का लड़कियों को अर्थसहित गायत्री मन्त्र का उपदेश करें। वह मन्त्र यह हैः—

ओ३म् भूभुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ [यजु० अ० ३६ । म० ३]

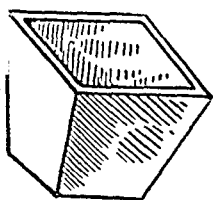
इस मन्त्र में जो प्रथम 'ओ३म्' है उसका अर्थ प्रथम समुदास में कर दिया है, वहीं से जान लेना। अब तीन महाव्याहृतियों के अर्थ संक्षेप से लिखते हैं। (भूरिति वै प्राण । य प्राणयति चराऽचर जगत् स भू स्वयम्भूरीश्वरः) । जो सब जगत् के जीवन का आधार, प्राण से भी प्रिय और स्वयम्भू है उस प्राण का दाचक होके 'भू' परमेश्वर का नाम है। (भुव रित्यपान । यः सर्वं दुःखमपानयति साऽपानः) जो सब दुःखों से रहित, जिसके सङ्ग से जीव सब दुःखों से छूट जाते हैं इसलिये उस परमेश्वर का नाम 'भुव' है। (स्वरिति व्यानः । या विविधं

जगद् व्यानयति व्याप्नाति स व्यानः) जो नानाविध व्यापक होके सब का धारण करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम है । ये तीनों वचन तैत्तिरीय आरण्यक [प्रपा० ७ । अनु० ५] के हैं (सवितुः यः सुनोत्युन्पादयति सर्वं जगत् स सविता तस्य, जो सब जगत् का उत्पादक और सब ऐश्वर्य का दाता है, (देवस्य दीव्यति दीव्यन्त वा स देव.) जो सर्व सुखों का देनेहारा जिसकी प्राप्ति की कामना सब करते हैं उस परमात्मा का जो (वरे वर्तुर्महम्) स्वीकार करने योग्य, अति श्रेष्ठ, (भर्गः शुद्धस्वरूपम शुद्धस्वरूप और पवित्र करनेवाला चेतन ब्रह्मस्वरूप है (तत्) उसी मात्मा के स्वरूप को हम लोग (धीमहि धरेमहि) धारण करें । प्रयोजन के लिये कि (यः जगदीश्वरः) जो सविता देव, (नः अस्माकम्) हमारी (धियः बुद्धीः) बुद्धियों को (प्रचोदयात् प्रेरयेत्) प्रेरणा करे, अर्थात् बुरे कामों से छुड़ा कर अच्छे कामों में प्रवृत्त करे ।

हे परमेश्वर ! हे सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप ! हे बुद्धमुक्तस्वभाव ! हे अज, निरञ्जन, निर्विकार ! हे मिन् ! हे सर्वाधार, जगत्पते ! सकलजगदुत्पादक ! हे अनादे ! विश्वम्भर ! सर्वव्यापिन् ! हे करुणामृतवारिधे ! सवितुर्देवस्य तव यदौ भूर्भुवः स्वर्वरेण्यं भर्गोऽस्ति तद्वयं धीमहि, दधीमहि धरेमहि, ध्यायेम वा । कस्मै प्रयोजनायेत्यत्राह । हे भगवन् ! यः सविता देवः परमेश्वरो भवानस्माकं धियः प्रचोदयात् स एवास्माकं पूज्य उपासनीय इष्टदेवो भवतु नातोऽन्य भवत्तुल्यं भवतोऽधिकं च कञ्चित् कदाचिन्मन्यामहे ।'

हे मनुष्यो ! जो सब समर्थों में समर्थ सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप, शुद्ध, नित्य बुद्ध, नित्य मुक्त स्वभाव वाला, कृपासागर, ठीक २ न्याय करनेहारा, जन्म-मरणादि छेशरहित, आकाररहित, सबके घट २ का वाला, सबका धर्ता, पिता, उत्पादक, अन्नादिसे विश्व का पोषण सकल ऐश्वर्यगुक्त, जगत् का निर्माता, शुद्धस्वरूप और जो प्राप्ति की करने योग्य है उस परमात्मा का जो शुद्ध चेतनस्वरूप है उसी को धारण करें । इस प्रयोजन के लिये कि वह परमेश्वर हमारे आत्मा बुद्धियों का अन्तर्यामिस्वरूप हमको दुष्टाचार अधर्मगुक्त मार्ग से हटा श्रेष्ठाचार सत्य मार्ग में चलावे । उसको छोड़कर दूसरे किसी वस्तु

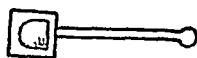
यह मनुस्मृति का वचन है। जंगल में अर्थात् एकान्त देश में जा, सावधान होके, जल के समीप स्थित होके नित्यकर्मको करता हुआ सावित्री अर्थात् गायत्री मन्त्र का उच्चारण, अर्थज्ञान और उसके अनुसार अपने चाल चलन को करे, परन्तु यह जप मन से करना उत्तम है। दूसरा देवयज्ञ जो अग्निहोत्र और विद्वानों का सग सेवादिक से होता है। सन्ध्या और अग्निहोत्र साय प्रात दो ही काल में करे। दो ही रात दिन की सन्धिवेला हैं, अन्य नहीं। न्यून से न्यून एक घण्टा ध्यान अवश्य करे। जैसे समाधिस्थ होकर योगी लोग परमात्मा का ध्यान करते हैं वैसे ही सन्ध्योपासन भी किया करे।



१ वेदी



२-प्रोक्षणीपात्र



३ प्रणीतापात्र



४-आज्यस्थाली चादी या काष्ठ का बनवा के प्रणीता और प्रोक्षणी में जल तथा घृतपात्र में घृत रख के घृत को तपा लेवे। प्रणीता जल रखने और प्रोक्षणी इसलिये कि उसमें हाथ धोने को जल लेना सुगम है। पश्चात् उस घी को अच्छे प्रकार देख लेवे फिर इन मन्त्रों से होम करे।



५-चमसा

ओं भूरभुवः प्रोक्षणी स्वाहा । भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा ।
दित्याय व्यानाय स्वाहा । भूर्भुवः प्रोक्षणी स्वाहा ।
व्यानेभ्यः स्वाहा ।

बाहर रहता है। इसी प्रकार प्राण बाहर अधिक ठहर सकता है। घबराहट हो तब धीरे-धीरे भीतर वायु को ले के फिर भी वैसे ही जाय, जितना सामर्थ्य और इच्छा हो। और मन में 'ओश्म' जप करता जाय। इस प्रकार करने से आत्मा और मन को पवित्रता स्थिरता होती है। एक 'वायव्यविषय' अर्थात् बाहर ही अधिक, दूसरा 'आभ्यन्तर' अर्थात् भीतर जितना प्राण रोका जाय उतना रोक तीसरा 'स्तम्भवृत्ति' अर्थात् एक ही वार जहाँ का तहाँ प्राण को शक्ति रोक देना। चौथा 'वाय्वाभ्यन्तराक्षेपी' अर्थात् जब प्राण बाहर निकलने लगे तब उससे विरुद्ध न निकलने देने के लिये भीतर ले और जब बाहर से भीतर आने लगे तब भीतर से ओर प्राण को धक्का देकर रोकता जाय। ऐसे एक दूसरे के विरुद्ध करें तो दोनों की गति रुककर प्राण अपने वश में होने से मन और भी स्वाधीन होते हैं। बल पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्मरूप की जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण कर इससे मनुष्य शरीर में वीर्य्य वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल, जितेन्द्रियता सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझ कर उपस्थित लेगा। स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करे।

६—भोजन, छादन, बैठने, उठने, बोलने, चालने, बड़े छोटे से योग्य व्यवहार करने का उपदेश करें। सन्योपासन जिसको ब्रह्मपूज कहते हैं। 'आचमन' उतने जल को हथेली में लेकर उसके मूल और में ओष्ठ लगा के करे कि वह जल कण्ठ के नीचे हृदय तक पहुँचे, न अधिक न न्यून। उससे कण्ठस्थ कफ और पित्त की निवृत्ति थोड़ीसी है। पश्चात् 'मार्जन' अर्थात् मध्यमा और अनामिका अंगुली के नेत्रादि अंगों पर जल छिड़के। उससे आलस्य दूर होता है। जो और जल प्राप्त न हो तो न करे। पुनः समन्विक प्राणायाम, क्रमग, उपस्थान, पीठे परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना की सिखलावे। पश्चात् 'अघमर्पण' अर्थात् पाप करने की इच्छा भी करे। यह सन्योपासन एकान्त देश में एकाग्रचित्त से करे।

अपां समीपे नियतो नैत्यिक विधिमास्थितः।

सावित्रीमन्यधीयीत गत्वाऽऽरण्य समाहितः॥

विदित हो जायें और मन्त्रों की आवृत्ति होने से कण्ठस्थ रहें, वेद-पुस्तकों का पठन पाठन और रक्षा भी होवे ।

(प्रश्न) क्या इस होम करने के बिना पाप होता है ।

(उत्तर) हा ! क्योंकि जिस मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न होके वायु और जल को विगाड़ कर रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से प्राणियों को दुःख प्राप्त कराता है उतना ही पाप उस मनुष्य को होता है । इसलिये उस पाप के निवारणार्थ उतना सुगन्ध वा उससे अधिक वायु और जल में फैलाना चाहिये । और खिलाने पिलाने से उसी एक व्यक्ति को सुख विशेष होता है । जितना घृत और सुगन्धादि पदार्थ एक मनुष्य खाता है उतने द्रव्य के होम से लाखों मनुष्यों का उपकार होता है । परन्तु जो मनुष्य लोग घृतादि उत्तम पदार्थ न खावे तो उनके शरीर और भात्मा के बल की उन्नति न होसके, इससे अच्छे पदार्थ खिलाना पिलाना चाहिये, परन्तु उससे होम अधिक करना उचित है इसलिये होम करना अत्यावश्यक है ।

(प्रश्न) प्रत्येक मनुष्य कितनी आहुति करे और एक २ आहुति का कतना परिमाण है ?

(उत्तर) प्रत्येक मनुष्य को सोल्ह २ आहुति और छ २ माशे आदि एक एक आहुति का परिमाण न्यून से न्यून चाहिये और जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा है । इसलिये आर्यवरशिरोमणि महाशय ऋषि, हर्षि, राजे, महाराजे, लोग बहुत सा होम करते और कराते थे । जब-कि इस होम करने का प्रचार रहा तब तक आर्यावर्त्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था, अब भी प्रचार हो तो वैसा ही होजाय । ये दो ज्ञ अर्थात् ब्रह्मयज्ञ जो पढ़ना पढ़ाना, सन्ध्योपासन, ईश्वर की स्तुति, आर्चना, उपासना करना, दूसरा देवयज्ञ जो अग्निहोत्र में छे के अध्वमेध यन्त यज्ञ और विद्वानों की सेवा सग करना परन्तु ब्रह्मचर्य में केवल ब्रह्म-ज्ञ और अग्निहोत्र का ही करना होता है ।

६—ब्राह्मणस्त्रयाणां वर्णानामुपनयनं कर्त्तुमर्हति । राजन्यो-
यस्य । वैश्यो वैश्यस्यैवेति । शूद्रमपि कुलगुणसम्पन्नं मन्त्र-
जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके ।

यह सुश्रुत के सूत्रस्थान के दूसरे अध्याय का वचन है । ब्राह्मण तीनों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, क्षत्रिय क्षत्रिय और वैश्य, तथा वैश्य एक

इत्यादि अग्निहोत्र के प्रत्येक मन्त्र को पढ़कर एक १ आहुति देवे और जो अधिक आहुति देना हो तो.—

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्र तन्न आसुष ॥

[यजु० अ० ३० । ३]

इस मन्त्र और पूर्वोक्त गायत्री मन्त्र से आहुति देवे ।

८—‘ओ’ ‘भू.’ और ‘प्राणः’ आदिये सब नाम परमेश्वर के हैं । इनका अर्थ कह चुके हैं । ‘म्याहा’ शब्द का अर्थ यह है कि जैसा ज्ञान आत्मा में हो वैसा ही जीव से बोले, विपरीत नहीं । जैसे परमेश्वर ने सब प्राणियों के सुख के अर्थ इस सब जगत् के पदार्थ रचे हैं वैसे मनुष्यों को भी पदार्थ उपकार करना चाहिये ।

(प्रश्न) होम से क्या उपकार होता है ?

(उत्तर) सब लोग जानते हैं कि दुर्गन्धयुक्त वायु और जल रोग, रोग से प्राणियों को दुःख, और सुगन्धित वायु तथा जल से आरोग्य और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है ।

(प्रश्न) चन्दनादि घिस के किसी के लगावे या घृतादि खाने को तो बड़ा उपकार हो । अग्नि में डाल के व्यर्थ नष्ट करना बुद्धिमानों का काम नहीं ।

(उत्तर) जो तुम पदार्थ विद्या जानते तो कभी ऐसी बात न क्योंकि किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता । देखो, जहां होम होता है वहां से दूर देश में स्थित पुरुष के नासिका से सुगन्ध का ग्रहण होता है दुर्गन्ध का भी । इतने ही से समझ लो कि अग्नि में डाला हुआ पदार्थ छोटे, फैल के, वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्ध की निवृत्ति करता है ।

(प्रश्न) जब ऐसा ही है तो केशर, कस्तूरी, सुगन्धित पुष्प अतर आदि के घर में रखने से सुगन्धित वायु होकर सुखकारक होगा ।

(उत्तर) उस सुगन्ध का वह सामर्थ्य नहीं है कि गृहस्थ वायु बाहर निकाल कर शुद्ध वायु का प्रवेश करा सके, क्योंकि उसमें शक्ति नहीं है । और अग्नि ही का सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्ध पदार्थों को छिन्न भिन्न और हलका करके, बाहर निकाल कर पवित्र वायु का प्रवेश कर देता है ।

(प्रश्न) तो मन्त्र पढ़ के होम करने का क्या प्रयोजन है ?

(उत्तर) मन्त्रों में वह व्याख्यान है कि जिससे होम करने के

यह छान्दोग्योपनिषद् [प्रपाठक ३ । खण्ड १६] का वचन है ।
 ब्रह्मचर्य तीन प्रकार का होता है । कनिष्ठ मध्यम और उत्तम, उनमें से
 कनिष्ठ—जो पुरुष अन्नरसमय देह और 'पुरि' अर्थात् देह में शयन करने-
 वाला जीवात्मा यज्ञ अर्थात् अतीव शुभगुणों से सन्त और सत्कर्तव्य है ।
 उसको आवश्यक है कि २४ वर्ष पर्यन्त जितेन्द्रिय अर्थात् ब्रह्मचारी रहकर
 शक्ति विद्या और सुशिक्षा का ग्रहण कर और विवाह करके भी लम्पटता
 करे तो उसके शरीर में प्राण बलवान् होकर सब शुभगुणों के वास
 रानेवाले होते हैं । इस प्रथम वय में जो उसको विद्याभ्यास में सन्तस-
 ते और वह आचार्य वैसा ही उपदेश किया करे और ब्रह्मचारी ऐसा
 श्रवण रखे कि जो मैं प्रथम अवस्था में ठीक २ ब्रह्मचारी रहूँगा तो मेरा
 शरीर और आत्मा आरोग्य, बलवान् होके शुभगुणों को चसानेवाले मेरे
 प्राण होंगे । हे मनुष्यो ! तुम इस प्रकार से सुखों का विस्तार करो, जो
 ब्रह्मचर्य का लोप न करू । २४ वर्ष के पश्चात् गृहाश्रम करूँगा तो
 सिद्ध है कि रोगरहित रहूँगा और आयु भी मेरी ७० वा ८० वर्ष तक
 होगी । मध्यम ब्रह्मचर्य यह है—जो मनुष्य ४४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रह-
 कर वेदाभ्यास करता है उसके प्राण, इन्द्रिया, अन्तःकरण और आत्मा
 अनुकूल हो के सब दुष्टों को रूलाने और श्रेष्ठों का पालन करनेहारे होते
 हैं । जो मैं इसी प्रथम वय में जैसा आप कहते हैं कुछ तपश्चर्या करूँ तो
 मैं ये रत्नरूप प्राणयुक्त यह मध्यम ब्रह्मचर्य सिद्ध होगा । हे ब्रह्मचारी
 गो ! तुम इस ब्रह्मचर्य को बढ़ाओ, जैसे मैं इस ब्रह्मचर्य का लोप न
 करके यज्ञस्वरूप होता हूँ और उसी आचार्यकुल से आता और रोगरहित
 जाता हूँ जैसा कि यह ब्रह्मचारी अलग काम करता है वैसा तुम किया करो ।
 तम ब्रह्मचर्य ४८ वर्ष पर्यन्त का तीसरे प्रकार का होता है । जैसे ४८
 वर्ष की जगती वैसे जो ४८ वर्ष पर्यन्त यथावत् ब्रह्मचर्य करता है, उसके
 प्राण अनुकूल होकर सकल विद्याओं का ग्रहण करते हैं । जो आचार्य और
 पिता अपने सन्तानों को प्रथम वय में विद्या और गुणग्रहण के लिये
 स्वीकृत कर और उसी का उपदेश करें और वे सन्तान आप ही आप अल-
 लत ब्रह्मचर्य सेवन से तीसरे उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करके पूर्ण अर्थात्
 १०० वर्ष पर्यन्त आयु को बढ़ावें वैसे तुम भी बढ़ाओ । क्योंकि जो
 मनुष्य इस ब्रह्मचर्य को प्राप्त होकर लोप नहीं करते वे सब प्रकार के रोगों
 रहित होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त होते हैं ।

वैद्य घर्षण का यज्ञोपवीत कमाके पड़ा रहना है। और जो कुम्भीन शुभलक्षण युक्त शुद्ध हो तो उसको मन्त्रसंकिता ग्रीष्म के मय शाय पड़ाने, शुद्ध पड़े पन्थ उसका उपनयन न करे, यह मन अनेक आचार्यों का है। पश्चात् पाँचों का आठवें वर्ष से लड़के लड़कों की पाठशाला में और लड़की लड़कियों की पाठशाला में जावें। और निम्नलिखित नियमाङ्क अध्ययन का आरम्भ करें।

पदत्रिंशदाध्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं प्रथमम् ।

तदधिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिरमेव वा ॥ मनु० [अ० ३।१]

अर्थ—आठवें वर्ष में आगे छत्तीसवें वर्ष पर्यन्त अर्थात् एक वेद के साक्षोपाङ्ग पढ़ने में बारह २ वर्ष मिल के छत्तीस और आठ मिल के चत्वारिंश अथवा अठारह वर्षों का ब्रह्मचर्य और आठ वर्षों के मिल के छत्तीस वा नौ वर्ष तथा जबतक विद्या पूरी ग्रहण न कर लेवे तबतक ब्रह्मचर्य रस्ते।

पुरुषो वाद्ययज्ञस्तस्य यानि चतुर्थिंशं शानि वर्षाणि तत्प्रातः सवनं । चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातःसवनं । तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः । प्राणा वाव वसव एते हीदथं सर्वं वासयन्ति ।

तच्चैदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा वसव इदं मे प्रातःसवनं । माध्यन्दिनथं सवनमनुसन्तनुतेति माहं प्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥ २ ॥

अथ यानि चतुश्चत्वारिंशं शद्वर्षाणि तन्माध्यन्दिनथं सवनं । चतुश्चत्वारिंशदक्षरा त्रिष्टुप् त्रैष्टुभं माध्यन्दिनथं सवनं । तदस्य रुद्रा अन्वायत्ताः । प्राणा वाव रुद्रा एते हीदथं सर्वं थं रे २ ।

तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा रुद्रा इदं मे माध्यन्दिनथं सवनं तृतीयसवनमनुसन्तनुतेति माहं प्राणानां रुद्राणां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥ ३ ॥

अथ यान्यष्टाचत्वारिंशं शद्वर्षाणि तत्तृतीय सत्त्वारिंशदक्षरा जगती जागतं तृतीयसवनं । तदस्यादित्या न्वायत्ताः । प्राणा वावादित्या एते हीदथं सर्वमाददते ॥ ४ ॥

तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात् आदित्या इदं मे तृतीयसवनमायुरनुसन्तनुतेति माह मादित्यानां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥ ५ ॥

यह छान्दोग्योपनिषद् [प्रपाठक ३ । खण्ड १६] का वचन है ।
 अथर्व्य तीन प्रकार का होता है । कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम, उनमें से
 कनिष्ठ—जो पुरुष अन्नरसमय देह और 'पुरि' अर्थात् देह में शयन करने
 वाला जीवात्मा यज्ञ अर्थात् अतीव शुभगुणों से सन्त और सत्कर्तव्य है ।
 इसको आवश्यक है कि १४ वर्ष पर्यन्त जितेन्द्रिय अर्थात् ब्रह्मचारी रहकर
 वेदादि विद्या और सुशिक्षा का ग्रहण कर और विवाह करके भी लम्पटता
 न करे तो उसके शरीर में प्राण बलवान् होकर सब शुभगुणों के वास
 करनेवाले होते हैं । इस प्रथम वय में जो उसको विद्याभ्यास में सन्त
 करे और वह आचार्य वैसा ही उपदेश किया करे और ब्रह्मचारी ऐसा
 निश्चय रखे कि जो मैं प्रथम अवस्था में ठीक १ ब्रह्मचारी रहूँगा तो मेरा
 शरीर और आत्मा आरोग्य, बलवान् होके शुभगुणों को बसानेवाले मेरे
 प्राण होंगे । हे मनुष्यो ! तुम इस प्रकार से सुखो का विस्तार करो, जो
 ब्रह्मचर्य का लोप न करू । १४ वर्ष के पश्चात् गृहाश्रम करूंगा तो
 सिद्ध है कि रोगरहित रहूँगा और आयु भी मेरी ७० वा ८० वर्ष तक
 होगी । मध्यम ब्रह्मचर्य यह है—जो मनुष्य ४४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रह-
 कर वेदाभ्यास करता है उसके प्राण, इन्द्रिया, अन्तःकरण और आत्मा
 प्रसूक्त हो के सब दुष्टों को रूलाने और श्रेष्ठों का पालन करनेहारे होते
 हैं । जो मैं इसी प्रथम वय में वैसा आप कहते हैं कुछ तपश्चर्या करूं तो
 मेरे ये स्वरूप प्राणुक्त यह मध्यम ब्रह्मचर्य सिद्ध होगा । हे ब्रह्मचारी
 भोगो ! तुम इस ब्रह्मचर्य को बढ़ाओ, जैसे मैं इस ब्रह्मचर्य का लोप न
 करके यज्ञस्वरूप होता हूँ और उसी आचार्यकुल से आता और रोगरहित
 होता हूँ वैसा कि यह ब्रह्मचारी अच्छा काम करता है वैसा तुम किया करो ।
 उत्तम ब्रह्मचर्य ४८ वर्ष पर्यन्त का तीसरे प्रकार का होता है । जैसे ४८
 वर्ष की जगती वैसे जो ४८ वर्ष पर्यन्त यथावन् ब्रह्मचर्य करता है, उसके
 प्राण अनुकूल होकर सकल विद्याओं का ग्रहण करते हैं । जो आचार्य और
 पिता अपने सन्तानों को प्रथम वय में विद्या और गुणग्रहण के लिये
 पस्वी कर और उसी का उपदेश करें और वे सन्तान आप ही आप अद्वि-
 त ब्रह्मचर्य सेवन से तीसरे उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करके पूर्ण अर्थात्
 १०० वर्ष पर्यन्त आयु को बढ़ावें वैसे तुम भी बढ़ाओ । क्योंकि जो
 मनुष्य इस ब्रह्मचर्य को प्राप्त होकर लोप नहीं करते वे सब प्रकार के रोगों
 रहित होकर धर्म, अर्थ काम और मोक्ष को प्राप्त होते हैं ।

१०—चतस्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं सम्पूर्णता किं
त्परिहाणिश्चेति । आपोऽशुद्धिः । आपञ्चविंशतेर्यौवनम् ।
आचत्वारिंशतः सम्पूर्णता । ततः किञ्चित्परिहाणिश्चेति ॥

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे ।

समत्वागतवीर्या तौ जानीयात्कुशलो भिषक् ॥

यह सुश्रुत के सूत्रस्थान ३५ अध्याय का वचन है । इस शरीर की
चार अवस्था हैं एक 'वृद्धि' जो १६ वें वर्ष से लेकर २५ वें वर्ष पर्यन्त सब
धातुओं की बढ़ती होती है । दूसरी 'यौवन' जो २५ वें वर्ष के अन्त और
२६ वें वर्ष के आदि में युवावस्था का आरम्भ होता है । तीसरी 'सम्पूर्णता'
जो पच्चीसवें वर्ष से लेकर चालीसवें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की पुष्टि होती है ।
चौथी 'किञ्चित्परिहाणि' जब सब साक्षोपाद्ग शरीरस्थ सकल धातु पुष्ट होकर
पूर्णता को प्राप्त होते हैं । तदनन्तर जो धातु घटता है वह शरीर में नहीं
रहता, किन्तु स्वप्न, प्रस्वेदादि द्वारा बाहर निकल जाता है, वही ४०वां वर्ष
उत्तम समय । विवाह का है अर्थात् उत्तमोत्तम तो अड़तालीसवें वर्ष में
विवाह करना ।

(प्रश्न) क्या यह ब्रह्मचर्य का नियम स्त्री या पुरुष दोनों का तुल्य ही है ?

(उत्तर) नहीं, जो २५ वर्ष पर्यन्त पुरुष ब्रह्मचर्य करे तो १६ (सो
लह) वर्ष पर्यन्त कन्या, जो पुरुष ३० वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रहे तो स्त्री
१७ वर्ष, जो पुरुष ३६ वर्ष तक रहे तो स्त्री १८ वर्ष, जो पुरुष ४० वर्ष
पर्यन्त ब्रह्मचर्य करे तो स्त्री २० वर्ष, जो पुरुष ४४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य
करे तो स्त्री २२ वर्ष, जो पुरुष ४८ वर्ष ब्रह्मचर्य करे तो स्त्री २४ वर्ष पर्यन्त
ब्रह्मचर्य सेवन रखते अर्थात् ४८ वें वर्ष से आगे पुरुष और २४ वें वर्ष से
आगे स्त्री को ब्रह्मचर्य न रखना चाहिये, परन्तु यह नियम विवाह करने
वाले पुरुष और स्त्रियों का है और जो विवाह करना ही न चाहें वे मरण
पर्यन्त ब्रह्मचारी रह सकते हैं तो भले ही रहे, परन्तु यह काम पूर्ण विद्या
वाले, जितेन्द्रिय और निर्दोष योगी स्त्री और पुरुष का है । यह बड़ा कठिन
काम है कि जो काम के वेग को थामके इन्द्रियों को अपने वश में रखना

११—ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च । सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने
च । तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च । दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च
शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च । अग्रयश्च स्वाध्यायप्रवचने च
अग्निहोत्रश्च स्वाध्यायप्रवचने च । अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचने च ।

व । मानुषं च स्वाध्यायप्रवचने च । प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च । प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचने च । प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचने च । यह तैत्तिरीयोपनिषद् [प्रपा० ७ । अनु० ९] का वचन है । पढ़ने पढ़ानेवालों के नियम हैं । (ऋत०) यथार्थ आचरण से पढ़ें और पढ़ावे । (सत्य०) सत्याचार से सत्य विद्याओं को पढ़ें या पढ़ावे । (तपः०) तपस्वी अर्थात् धर्मानुष्ठान करते हुए वेदादि शास्त्रों को पढ़ें और पढ़ावे । (दम०) बाह्य इन्द्रियो को घुरे आचरणों से रोक के पढ़ें और पढ़ाते जायें । (शम०) मन की वृत्ति को सब प्रकार के दोषों से हटा के पढ़ते पढ़ाते जायें । (अभ्रय०) आहवनीयादि अग्नि और विद्युत् आदि को जान के पढ़ते पढ़ाते जायें और (अग्निहोत्र०) अग्निहोत्र करते हुए पठन और पाठन करें करावें । (अतिथय०) अतिथियों की सेवा करते हुए पढ़ें और पढ़ावें । (मानुषं०) मनुष्यसम्बन्धी व्यवहारों को यथायोग्य करते हुए पढ़ते पढ़ाते रहे । (प्रजा०) सन्तान और राज्य का पालन करते हुए पढ़ते पढ़ाते जायें । (प्रजन०) धीर्य की रक्षा और वृद्धि करते हुए पढ़ते पढ़ाते जायें । (प्रजाति०) अपने सन्तान और शिष्य का पालन करते हुए पढ़ते पढ़ाते जायें ।

१२—यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् युधः ।

यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन् ॥

मनु० [अ० ४ । १०४]

यम पांच प्रकार के होते हैं ॥

तत्रार्हिसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥

योग [साधनपादे सू० ३०]

अर्थात् (अहिंसा) वैरत्याग, (सत्य) सत्य मानना, सत्य बोलना और सत्य हो करना, (अस्तेय) अर्थात् मन, वचन, कर्म से चोरी त्याग (ब्रह्मचर्य) अर्थात् उपस्थेन्द्रिय का संयम, (अपरिग्रह) अत्यन्त लोलुपता, स्वत्वाभिमानरहित होना इन पांच यमों का सेवन सदा करें ।

केवल नियमों का सेवन अर्थात्—

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥

योग० [साधनपादे सू० ३१]

(शौच) अर्थात् स्नानादि से पवित्रता, (सन्तोष) सम्यक् प्रसन्न होकर निरुपम रहना सन्तोष नहीं, किन्तु पुरुषार्थ जितना होसके उतना

करना, हानि लाभ में हर्ष या शोक न करना, (तप) अर्घ्यान् कष्टमंत्र से भी धर्मयुक्त कर्मों का अनुष्ठान, (स्वाध्याय) पढ़ना पढ़ाना, (ईश्वर प्रणिधान) ईश्वर की भक्तिविशेष से आत्मा को अर्पित रखना ये पात्र नियम कहाते हैं । यमों के बिना केवल इन नियमों का सेवन न करें, किन्तु इन दोनों का सेवन किया करे । जो यमों का सेवन छोड़ के केवल नियमों का सेवन करता है वह उन्नति को नहीं प्राप्त होता किन्तु अधोगति अर्थात् संसार में गिरा रहता है:—

कामात्मनां न प्रशस्ता न च वेदास्त्यक्रामता ।

काम्यो हि वेदाधिगम कर्मयोगश्च वैदिक ॥ मनु० [अ० २।२८]

अर्थ—अत्यन्त कामातुरता और निष्कामता किसी के लिये भी श्रेष्ठ नहीं, क्योंकि जो कामना न करे तो वेदों का ज्ञान और वेदविहित कर्मों की उत्तम कर्म किसी से न हो सकें, इसलिये:—

१२—स्वाध्यायेन वतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ।

महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीय क्रियते तनः ॥

मनु० [अ० २।२८]

अर्थ—(स्वाध्याय) सकल विद्या पढ़ने पढ़ाने, (व्रत) ब्रह्मचर्य, सत्यभाषणादि नियम पालने, (होम) अग्निहोत्रादि होम, सत्य का ग्रहण, असत्य का त्याग और सत्य विद्याओं का दान देने, (त्रैविद्येन) वेदस्य कर्मोपासना, ज्ञान, विद्या के ग्रहण, (इज्यया) पक्षेष्ट्यादि करने, (सुते) सन्तानोत्पत्ति, (महायज्ञैः) ब्रह्म, देव, पितृ, वैश्वदेव और अतिथियों के सेवनरूप पंचमहायज्ञ और (यज्ञैः) अग्निष्टोमादि तथा शिल्पविद्या, विज्ञानादि यज्ञों के सेवन से इस शरीर को ब्राह्मी अर्थात् वेद और परमेश्वर की भक्ति का आधाररूप ब्राह्मण का शरीर किया जाता है । इतने साधनों के बिना ब्राह्मण-शरीर नहीं बन सकता:—

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिष ।

संयमे यत्नमानिष्ठद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ॥ मनु० [२।२८]

अर्थ—जैसे विद्वान् सारथि घोड़ों को नियम में रखता है वैसे मन और आत्मा को छोटे कामों में खँचनेवाले विषय में विचरती हुई इन्द्रियों के निग्रह में प्रयत्न सब प्रकार से करे । क्योंकि—

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ।

सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नयच्छति ॥ मनु० [२।२९]

अर्थ — जीवात्मा इन्द्रियों के वश होके निश्चित बड़े १ दोषों को प्राप्त होता और जब इन्द्रियों को अपने वश में करता है तभी सिद्धि को प्राप्त होता है — दास्त्यागश्च यदाश्च नियमाश्च तपांसि च ।

विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥ मनु० [२।९६]

जो दुष्टाचारी, अजितेन्द्रिय पुरुष हो उसके वेद, त्याग, यज्ञ, नियम और तप तथा अन्य काम कभी सिद्धि को प्राप्त नहीं होते —

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्तिके ।

नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि ॥ १ ॥

नैतिके नास्त्यनध्यायो ब्रह्मसत्रं हि तत्स्मृतम् ।

ब्रह्माहुतिहुत पुण्यमनध्यायवपदकृतम् ॥ २ ॥

मनु० [२ । १०५, १०६]

वेद के पढ़ने पढ़ाने, सन्ध्योपासनादि पंचमहायज्ञों के करने और होम यज्ञों में अनध्यायविषयक अनुरोध (आग्रह) नहीं है, क्योंकि ॥ १ ॥ नैतिकर्म में अनध्याय नहीं होता, जैसे द्वास्त प्रदवास्त सदा लिये जाते हैं, शब्द नहीं किये जा सकते वैसे नैतिकर्म प्रतिदिन करना चाहिये, न किसी देन छोड़ना, क्योंकि अनध्याय में भी अग्निहोत्रादि उत्तम कर्म किया हुआ पुण्यरूप होता है । जैसे शूठ बोलने में सदा पाप और सत्य बोलने में सदा पुण्य होता है, वैसे ही बुरे कर्म करने में सदा अनध्याय और अच्छे कर्म करने में सदा स्वाध्याय ही होता है ।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।

चत्वारि तस्य वर्द्धन्त आयुर्विद्या यशो बलम् ॥

मनु० [२ । १२१]

जो सदा नम्र, सुशील, विद्वान् और वृद्धों की सेवा करता है उसका आयु, विद्या, कीर्ति और बल ये चार सदा बढ़ते हैं और जो ऐसा नहीं करते उनके आयु आदि चार नहीं बढ़ते ।

अहिसयैव भूताना कार्यं श्रेयोऽनुशासनम् ।

वाक् चैव मधुरा श्लक्षणा प्रयोज्या धर्ममिच्छता ॥ १ ॥

यस्य वाङ्मनसे शुद्ध सम्यग्गुणे च सर्वदा ।

स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम् ॥ २ ॥

मनु० [२ । १५९, १६०]

विद्वान् और विद्यार्थियों को योग्य है कि वैरघुदि छोड़ के सब मनुष्यों

को कल्याण के मार्ग का उपदेश करें और उपदेश सदा मनुष्य, गुप्त वाणी बोलें । जो धर्म की उन्नति चाहे वह सदा सत्य में रहे, सत्य ही का उपदेश करे ॥ १ ॥ जिस मनुष्य के वाणी और मन तथा सुरक्षित सदा रहते हैं वही मन वेदान्त अर्थात् सत्य वेदों के रूप फल को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

१४—समानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेन विषादिव ।

अमृतस्यैव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा ॥ मनु० [१]
वही ब्राह्मण समग्र वेद और परमेश्वर को जानता है जो सत्य सदा ढरता है और अपमान की इच्छा अमृत के समान किया अनेन क्रमयोगेन संस्कृतात्मा द्विजः शनैः ।
गुणै वसन् संचिनुयाद् ब्रह्माधिगमिकं तपः ॥ मनु० [२]
इसी प्रकार से कृतोपनयन द्विज ब्रह्मचारी कुमार और कन्या धीरे २ वेदार्थ के ज्ञानरूप उत्तम तप को बढ़ाते चले जाये ।
योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुत श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रन्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥ मनु० [३]
जो वेद को न पढ़ के अन्यत्र श्रम किया करता है वह अपने पौत्र सहित शूद्रभाव को शीघ्र ही प्राप्त होजाता है ।

१५—वर्जयेन्मधु मांसञ्च गन्ध माल्यं रसान् स्त्रियः ।

शुक्लानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम् ॥ १ ॥

अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्षणोरुपानच्छत्रधारणम् ।

कामं क्रोधं च लोभं च नर्त्तनं गीतवादनम् ॥ २ ॥

धूतं च जनवादनं च परिवानं तथाऽनृतम् ।

स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च ॥ ३ ॥

एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्कचित् ।

कामाद्धि स्कन्दयन् रेतो दिनस्ति व्रतमात्मनः ॥ ४ ॥

मनु० [२ । १७७—१

ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी मधु, मांस, गन्ध, माला, रस, स्त्री पुरुष का सह, सत्र राई, प्राणियों की हिंसा ॥ १ ॥ अश्वों का प्रिना निमित्त उपस्थेन्द्रिय का स्पर्श, आँखों में अञ्जन, जूते और धारण, काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक, ईर्ष्या, द्वेष, नाच, गान बाजा बजाना ॥ ॥ धुत, जिस किसी की कथा, निन्दा,

क्षेयों का दर्शन, आश्रय, दूसरे की हानि आदि कुर्मों को सदा छोड़
 दें ॥ ३ ॥ सर्वत्र एकाकी सोवें वीर्य्य रखलित कभी न करे, जो कामना
 ने वीर्य्य रखलित करदे तो जानो कि अपने ब्रह्मचर्य्यमत का नाश कर दिया ॥ ४ ॥

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति । सत्यं वद । धर्म
 वर । स्वाध्यायान्मा प्रमदः । आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजा-
 त्तुं मा व्यवच्छेत्सीः । सत्यान्न प्रमदितव्यम् । धर्मान्न प्रम-
 दितव्यम् । कुशलान्न प्रमदितव्यम् । भृत्यै न प्रमदितव्यम् ।
 स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् । देवपितृकार्याभ्यां न
 प्रमदितव्यम् । मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्य्यदेवो
 भव । अतिथिदेवो भव । यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवि-
 तव्यानि नो इतराणि । यान्यस्माकथं सुचरितानि तानि
 त्वयोपास्यानि नो इतराणि । ये के चास्मच्छयाऽसौ ब्राह्मणा-
 स्तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम् । श्रद्धया देयम् । अश्रद्धया
 देयम् । श्रिया देयम् । हििया देयम् । भिया देयम् । संविदा
 देयम् । अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा
 स्यात् । ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनो युक्ता अयुक्ता अलूक्ता
 धर्मकामाः स्युर्यथा ते तत्र वर्त्तेरन् । तथा तत्र वर्त्तेथाः । एष
 आदेश एष उपदेश एषा वेदोपनिषत् । एतदनुशासनम् । एव-
 मुपासितव्यम् । एवमु चैतदुपास्यम् ॥

तैत्तिरीय० [प्रपा० ७ । ११ । क० १, २, ३, ४,]

आचार्य्य अन्तेवासी अर्थात् अपने शिष्य और शिष्याओं को इस प्रकार
 उपदेश करे कि तू सदा सत्य बोल, धर्माचरण कर । प्रमादरहित होके
 रद पढ़ा । पूर्ण ब्रह्मचर्य्य से समन्त विद्याओं को ग्रहण और आचार्य्य
 के लिये प्रिय धन देकर, विवाह करके सन्तानोत्पत्ति कर । प्रमाद से सत्य
 को कभी मत छोड़ । प्रमाद से धर्म का त्याग मत कर । प्रमाद से आरोग्य
 और चतुराई को मत छोड़ । प्रमाद से उत्तम ऐश्वर्य्य की वृद्धि को मत
 छोड़ । प्रमाद से पढ़ने और पढ़ाने को कभी मत छोड़ । देव = विद्वान्
 और माता पितादि की सेवा में प्रमाद मत कर । जैसे विद्वान् का सम्कार
 रहे उसी प्रकार माता, पिता, आचार्य्य और अतिथि की सेवा सदा
 किया कर । जो अनिन्दित धर्मयुक्त कर्म हैं उन सत्यभाषणादि की बिया
 प्र, उनसे भिन्न मिथ्याभाषणादि कभी मत कर । जो हमारे सुचरित्र

अर्थात् धर्मनुक्त कर्म हों उनका ग्रहण कर और जो हमारे पापाचरण
 उनको कभी मत कर । जो कोई हमारे मग में उत्तम विद्वान् धर्म
 ब्राह्मण हैं, उन्हीं के समीप बैठ और उन्हीं का निवास किया कर,
 से देना, अश्रद्धा से देना, शोभा से देना, लज्जा से देना, मग से देना
 और प्रतिज्ञा से भी देना चाहिये । जब कभी तुझको कर्म या शील
 उपासना ज्ञान में किसी प्रकार का सशय उत्पन्न हो तो जो वे विद्वान्
 शील पक्षपातरहित योगी, अयोगी, आर्द्रचित्त, धर्म की कामना करने
 धर्मात्मा जन हो जैसे वे धर्ममार्ग में चले द्येये तू भी उसमें वर्त्ता
 यही आदेश, आज्ञा, यही उपदेश, यही चेष्ट की उपनिषत् और
 शिक्षा है । इसी प्रकार वर्त्तना और अपना चालचलन सुधारना चाहिये ।

अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित् ।

यद्यद्धि कुरुते किञ्चित् तत्तत् कामस्य चेष्टितम् ॥

मनु० [२ । १०८, १०९]

मनुष्यों को निश्चय करना चाहिये कि निष्काम पुरुष में नेह
 सकोच विकाश का होना भी सर्वथा असम्भव है इससे यह सिद्ध हो
 है कि जो २ कुछ भी करता है वह २ चेष्टा कामना के बिना नहीं है ।

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च ।

तस्मादस्मिन्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः ॥ १ ॥

आचाराद् विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते ।

आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाग्भवेत् ॥ २ ॥

मनु० [१ । १०८, १०९]

कहने, सुनने, सुनाने, पढ़ने, पढ़ाने का फल यही है कि जो
 और वेदानुकूल स्मृतियों में प्रतिपादित धर्म का आचरण करना, इस
 धर्माचार में सदा युक्त रहे ॥ १ ॥ क्योंकि जो धर्माचरण से रहित है
 वेदप्रतिपादित धर्मजन्य सुखरूप फल को प्राप्त नहीं हो सकता और
 विद्या पद के धर्माचरण करता है वही सम्पूर्ण सुख को प्राप्त होता है ।
 योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः ।

स साधुभिर्घहिष्कार्यो नास्तिको वेदानिन्दकः ॥ मनु० [२ । ११]

जो वेद और वेदानुकूल आस पुरुषों के किये शास्त्रों का अपमान
 करता है उस वेदानिन्दक नास्तिक को जाति, पंक्ति और देश से बाहर
 देना चाहिये, क्योंकि:—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।

एतच्चतर्विधं प्राहुः स्याद्वाङ्मनस्य लक्षणम् ॥ मनु० [२ । १३]

वेद, स्मृति, वेदानुकूल आसोक्त मनुस्मृत्यादि शास्त्र, सत्पुरुषों का आचार जो सनातन अर्थात् वेदद्वारा परमेश्वरप्रतिपादित कर्म और अपने आत्मा में प्रिय अर्थात् जिसकी आत्मा चाहता है जैसा कि सत्यभाषण, ये चार धर्म के लक्षण अर्थात् इन्हीं से धर्माधर्म का निश्चय होता है। जो पक्षपातरहित न्याय, सत्य का ग्रहण, असत्य का सर्वथा परित्यागरूप आचार है उसी का नाम 'धर्म' और इससे विपरीत जो पक्षपातसहित अन्यायाचरण, सत्य का त्याग और असत्य का ग्रहणरूप कर्म है उसी को 'अधर्म' कहते हैं ॥

अर्थकामेष्वसङ्गानां धर्मज्ञान विधीयते ।

धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाण परमं श्रुतिः ॥ मनु० [२ । १३]

जो पुरुष (अर्थ) सुवर्णादि रत्न और (काम) स्त्रीसेवनादि में नहीं फसते हैं उन्हीं को धर्म का ज्ञान प्राप्त होता है। जो धर्म के ज्ञान की इच्छा करें वे वेद द्वारा धर्म का निश्चय करें क्योंकि धर्माधर्म का निश्चय बिना वेद के ठीक २ नहीं होता ।

१६—इस प्रकार आचार्य अपने शिष्य को उपदेश करे और विशेषकर राजा, इतर क्षत्रिय, वैश्य और उत्तम शूद्र जनों को भी विद्या का अभ्यास अवश्य करावें। क्योंकि जो ब्राह्मण हैं वे ही केवल विद्याभ्यास करें और क्षत्रियादि न करें तो विद्या, धर्म, राज्य और धनादि की वृद्धि कभी नहीं हो सकती। क्योंकि ब्राह्मण तो केवल पढ़ने पढ़ाने और क्षत्रियादि से जीविका को प्राप्त होकर जीवन धारण कर सकते हैं। जीविका के आधीन और क्षत्रियादि के आज्ञादाता और यथावत् परीक्षक दण्डदाता न होने से ब्राह्मणादि सब वर्ण पाखण्ड ही में फस जाते हैं और जब क्षत्रियादि विद्वान् होते हैं तब ब्राह्मण भी अधिक विद्याभ्यास और धर्मपथ में चलते हैं और उन क्षत्रियादि विद्वानों के सामने पाखण्ड, झूठा व्यवहार भी नहीं कर सकते और जब क्षत्रियादि अविद्वान् होते हैं तो वे जैसा अपने मन में आता है वैसा ही करते कराते हैं। इसलिये ब्राह्मण भी अपना कल्याण चाहें तो क्षत्रियादि को वेदादि सत्य शास्त्र का अभ्यास अधिक प्रयत्न से करावें। क्योंकि क्षत्रियादि ही विद्या, धर्म, राज्य और लक्ष्मी की वृद्धि करनेवाले हैं। वे कभी भिक्षावृत्ति नहीं करते इसलिये वे विद्याव्यवहार में पक्षपाती भी नहीं हो सकते और जब सब वर्णों में विद्या, सुशिक्षण

होती है तब कोई भी पाण्डुरूप अधर्मयुक्त मिथ्या व्यवहार को नहीं चला सकता। इसमें क्या सिद्ध हुआ कि क्षत्रियादि को नियम में चलाने वाले ब्राह्मण और सन्यासी तथा ब्राह्मण और सन्यासी को सुनियम में चलानेवाले क्षत्रियादि होते हैं। इसलिये सब वर्णों के स्त्री पुरुषों में विद्या और धर्म का प्रचार अवश्य होना चाहिये। अब जो २ पढ़ना पढ़ाना हो वह वह अच्छे प्रकार परीक्षा करके होना योग्य है।

१७—परीक्षा पांच प्रकार से होती है। एक—जो २ ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और वेदों से अनुकूल हो वह २ सत्य और उससे विरुद्ध असत्य है। दूसरी—जो २ सृष्टिक्रम से अनुकूल वह २ सत्य और जो २ सृष्टिक्रम से विरुद्ध है वह सब असत्य है। जैसे कोई कहे कि बिना माता पिता के पोष से लड़का उत्पन्न हुआ। ऐसा कथन सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से सर्वथा असत्य है। तीसरी—‘आप्त’ अर्थात् जो धार्मिक विद्वान्, सत्यवादी, निष्कपटियों का संग उपदेश के अनुकूल है वह १ ब्राह्म और जो २ विरुद्ध वह २ अभ्राह्म है। चौथी—अपने आत्मा की परिश्रिता विद्या के अनुकूल अर्थात् जैसा अपने को सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है वैसे ही सर्वत्र समझ लेना कि मैं भी किसी को दुःख वा सुख दूंगा तो वह भी अप्रसन्न और प्रसन्न होगा। और पांचवीं—आठों प्रमाण अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव।

इनमें से प्रत्यक्ष के लक्षणादि में जो २ सूत्र नीचे लिखेंगे वे १ सव्यायशास्त्र के प्रथम और द्वितीय अध्याय के जानो ॥

१८—इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकप्रत्यक्षम् ॥ न्याय सू० अ० १। आह्निक १। सूत्र ४।

जो श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और घ्राण का शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध के साथ अव्यवहित अर्थात् आवरणरहित सम्वन्ध होता है, इन्द्रियों के साथ मन का और मन के साथ आत्मा के संयोग से ज्ञान उत्पन्न होता है उसको ‘प्रत्यक्ष’ कहते हैं परन्तु जो व्यपदेश्य अर्थात् सज्ञा संज्ञी के सम्वन्ध से उत्पन्न होता है वह ज्ञान न हो। जैसा किसी ने किसी से कहा कि ‘तू जल ले आ,’ वह लाके उसके पास धर के बोला कि ‘यह जल है’ परन्तु वहा ‘जल’ इन दो अक्षरों की संज्ञा छाने वा मंगानेवाला नहीं देख सकता है। किन्तु जिस पदार्थ का नाम जल है वही प्रत्यक्ष होता है और जो शब्द से ज्ञान उत्पन्न होता है वह शब्दप्रमाण

का विषय है। 'अव्यभिचारि' जैसे किसी ने रात्रि में स्वप्ने को देख के पुरुष का निश्चय कर लिया, जयदिन में उसको देखा तो रात्रि का पुरुष-ज्ञान नष्ट होकर स्तम्भज्ञान रहा, ऐसे विनाशी ज्ञान का नाम व्यभिचारी है, सो प्रत्यक्ष नहीं कहाता। 'व्यवसायात्मक' किसी ने दूर से नदी की चाल को देख के कहा कि 'वह बरख सूख रहे हैं, जल है वा और कुछ है 'वह देवदत्त खड़ा है वा यज्ञदत्त'। जबतक एक निश्चय न हो तबतक वह प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है किन्तु जो अव्यपदेश्य, अव्यभिचारि और निश्चयात्मक ज्ञान है उसी को 'प्रत्यक्ष' कहते हैं। दूसरा अनुमान—

अथ तत्पूर्वक त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतो दृष्टञ्च ॥ न्याय० अ० १। आ० १। सू० ५ ॥

जो प्रत्यक्ष पूर्वक अर्थात् जिसका कोई एक देश वा सम्पूर्ण द्रव्य किसी स्थान का काल में प्रत्यक्ष हुआ हो उसका दूर देश से सहचारी एक देश के प्रत्यक्ष होने से अष्ट अवयवी का ज्ञान होने को 'अनुमान' कहते हैं। जैसे पुत्र को देख के पिता, पर्वतादि में धूम को देख के अग्नि, जगत् में सुख दुःख देख के पूर्वजन्म का ज्ञान होता है। वह अनुमान तीन प्रकार का है। एक 'पूर्ववत्' जैसे बादलो को देख के वर्षा, विवाह को देख के सन्तानोत्पत्ति, पढ़ते हुए विद्याधियों को देख के विद्या होने का निश्चय होता है, इत्यादि जहा २ कारण १० देख के कार्य का ज्ञान हो वह 'पूर्ववत्'। दूसरा 'शेषवत्' अर्थात् जहा कार्य को देख के कारण का ज्ञान हो, जैसे नदी के प्रवाह की बढ़ती देख के उपर हुई वर्षा का, पुत्र को देख के पिता का, सृष्टि को देख के अनादि कारण वा तथा कर्त्ता ईश्वर का और सुख दुःख को देख के पाप पुण्य के आचरण का ज्ञान होता ७ इसी को 'शेषवत्' कहते हैं। तीसरा 'सामान्यतोष्ट' जो कोई किसी का कार्य कारण न हो, परन्तु किसी प्रकार का साधर्म्य एक दूसरे के साथ हो। जैसे कोई भी विना चले दूसरे स्थान को नहीं जा सकता वैसे ही दूसरों का भी स्थानान्तर में जाना विना गमन के नहीं हो सकता। अनुमान शब्द का अर्थ यही है कि 'अनु अर्थात् प्रत्यक्षस्य पश्चान्मी-यते ध्यायते येन तदनुमानम्' जो प्रत्यक्ष के पश्चात् उत्पन्न हो, जैसे धूम के प्रत्यक्ष देखे विना अष्ट अग्नि का ज्ञान नहीं हो सकता।

* 'लखक प्रमाः से मूल में पाठ समा ए—और पाप पुण्य के आचरण, देख के सुख दुःख का ज्ञान होता है।'

होती है तब कोई भी पाण्डुरूप अधर्मयुक्त मिथ्या व्यवहार को चला सकता। इसमें क्या सिद्ध हुआ कि क्षत्रियादि को नियम में वाले ब्राह्मण और संन्यासी तथा ब्राह्मण और संन्यासी को चलानेवाले क्षत्रियादि होते हैं। इसलिये सब वर्गों के स्त्री पुरुषों में और धर्म का प्रचार अवश्य होना चाहिये। अब जो २ पढ़ना पढ़ाना वह वह अच्छे प्रकार परीक्षा करके होना योग्य है।

१७—परीक्षा पांच प्रकार से होती है। एक—जो २ ईश्वर के गुण, स्वभाव और वेदों से अनुकूल हो वह १ सत्य और उसमें विरुद्ध असत्य है। दूसरी—जो २ सृष्टिक्रम से अनुकूल वह २ सत्य और जो २ सृष्टिक्रम से विरुद्ध है वह सब असत्य है। जैसे कोई कहे कि बिना माता पिता के बाल से लड़का उत्पन्न हुआ। ऐसा कथन सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से सर्वत्र असत्य है। तीसरी—‘आप्त’ अर्थात् जो धार्मिक विद्वान्, सत्यवादी, विद्वत्पटियों का संग उपदेश के अनुकूल है वह ३ ब्राह्मण और जो २ विरुद्ध वह अभ्राह्मण है। चौथी—अपने आत्मा की परिग्रता विद्या के अनुकूल वह ४ जैसा अपने को सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है वैसे ही सर्वत्र समझ ले कि मैं भी किसी को दुःख वा सुख दूंगा तो वह भी अप्रसन्न और प्रसन्न होगा। और पांचवीं—आठों प्रमाण अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमा, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव।

इनमें से प्रत्यक्ष के लक्षणादि में जो २ सूत्र नीचे लिखेंगे वे १ सत्यायशास्त्र के प्रथम और द्वितीय अध्याय के जानो ॥

१८—इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकमप्रत्यक्षम् ॥ न्याय सू० अ० १। आह्निक १। सूत्र ४।

जो श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और घ्राण का शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध के साथ अव्यवहित अर्थात् आवरणरहित सम्बन्ध होता इन्द्रियों के साथ मन का और मन के साथ आत्मा के संयोग से उत्पन्न होता है उसको ‘प्रत्यक्ष’ कहते हैं परन्तु जो व्यपदेश्य अर्थात् सत्ता संज्ञा के सम्बन्ध से उत्पन्न होता है वह ज्ञान न हो। जैसा किसी ने किसी से कहा कि ‘तू जल ले आ,’ वह लाके उसके पास धर के बोझ कि ‘यह जल है’ परन्तु वहां ‘जल’ इन दो अक्षरों की संज्ञा लाने का मंगानेवाला नहीं देख सकता है। किन्तु जिस पदार्थ का नाम जल है वही प्रत्यक्ष होता है और जो शब्द से ज्ञान उत्पन्न होता है वह शब्दप्रमाण

का विषय है। 'अव्यभिचारि' जैसे किसी ने रात्रि में खम्भे को देख के पुरुष का निश्चय कर लिया, जयदिन में उसको देखा तो रात्रि का पुरुष-ज्ञान नष्ट होकर स्तम्भज्ञान रहा, ऐसे विनाशी ज्ञान का नाम व्यभिचारी है, सो प्रत्यक्ष नहीं कहाता। 'व्यवसायात्मक' किसी ने दूर से नदी की चाल को देख के कहा कि 'वहा बस सूख रहे हैं, जल है वा और कुछ है' 'वह देवदत्त खड़ा है वा यज्ञदत्त'। जयतक एक निश्चय न हो तबतक वह प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है किन्तु जो अव्यपदेश्य, अव्यभिचारि और निश्चयात्मक ज्ञान है उसी को 'प्रत्यक्ष' कहते हैं। दूसरा अनुमान—

अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतो दृष्टञ्च ॥ न्याय० अ० १। आ० १। सू० ५ ॥

जो प्रत्यक्ष पूर्वक अर्थात् जिसका कोई एक देश वा सम्पूर्ण द्रव्य किसी स्थान का काल में प्रत्यक्ष हुआ हो उसका दूर देश से सहचारी एक देश के प्रत्यक्ष होने से अष्ट अवयवी का ज्ञान होने को 'अनुमान' कहते हैं। जैसे पुत्र को देख के पिता, पर्वतादि में धूम को देख के अग्नि, जगत् में सुख दुःख देख के पूर्वजन्म का ज्ञान होता है। वह अनुमान तीन प्रकार का है। एक 'पूर्ववत्' जैसे चादलो को देख के वर्षा, विवाह को देख के सन्तानोत्पत्ति, पढ़ते हुए विद्याथियों को देख के विद्या होने का निश्चय होता है, इत्यादि जहां २ कारण को देख के कार्य का ज्ञान हो वह 'पूर्ववत्'। दूसरा 'शेषवत्' अर्थात् जहां कार्य को देख के कारण का ज्ञान हो, जैसे नदी के प्रवाह की बढती देख के उपर हुई वर्षा का, पुत्र को देख के पिता का, सृष्टि को देख के अनादि कारण का तथा वर्त्ता ईश्वर का और सुख दुःख को देख के पाप पुण्य के आचरण का ज्ञान होता ॥ इसी को 'शेषवत्' कहते हैं। तीसरा 'सामान्यतोष्ट' जो कोई किसी का कार्य कारण न हो, परन्तु किसी प्रकार का साधर्म्य एक दूसरे के साथ हो। जैसे कोई भी विना चले दूसरे स्थान को नहीं जा सकता वैसे ही दूसरों का भी स्थानान्तर में जाना विना गमन के कभी नहीं हो सकता। अनुमान शब्द का अर्थ यही है कि 'अनु अर्थात् प्रत्यक्षस्य पश्चान्मी-यते प्रायते येन तदनुमानम्' जो प्रत्यक्ष के पश्चात् उत्पन्न हो, जैसे धूम के प्रत्यक्ष देखे विना अष्ट अग्नि वा ज्ञान कभी नहीं हो सकता।

* 'लोकक प्रमाः से मूल में पाठ एसा है—और पाप पुण्य के आचरण देख के सुख दुःख का ज्ञान होता है।'

तीसरा उपमान—

प्रसिद्धसाधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानम् ॥

न्याय० । अ० १ । आ० १ । सू० १ ।

जो प्रसिद्ध प्रत्यक्ष साधर्म्य से साध्य अर्थात् सिद्ध करने योग्य श्रुति की सिद्धि करने का साधन हो उसको 'उपमान' कहते हैं। 'उपमाया येन तदुपमानम्।' जैसे किमी ने किमी भृत्य से कहा कि 'तू मेरी को बुला'। वह बोला कि मैंने उसको कभी नहीं देखा। उसके स्वामी ने कहा कि 'जैसा यह देवदत्त है वैसा ही वह विष्णुमित्र है। वा जैसा यह गाय है वैसी ही गवय अर्थात् नीलगाय होती है' जब वह बुलाया गया और देवदत्त के सदृश उसको देखा निश्चय कर लिया कि यही विष्णुमित्र है, उसको ले आया। अथवा किसी जंगल में जिस पशु को पशु के तुल्य देखा उसको निश्चय कर लिया कि इसी का नाम गवय है ॥

चौथा शब्दप्रमाण—

आप्तोपदेशः शब्दः ॥ न्याय० । अ० १ । आ० १ । सू० ७ ॥

जो आप्त अर्थात् पूर्ण विद्वान्, धर्मात्मा, परोपकारप्रिय, सत्यवादी, पुरुषार्थी, जितेन्द्रिय पुरुष जैसा अपने आत्मा में जानता हो और जिससे सुख पाया हो उसी के कथन की इच्छा से प्रेरित सब मनुष्यों के धर्मार्थ उपदेश हो, अर्थात् [जो] जितने पृथिवी से लेकर परमेश्वर तक पदार्थों का ज्ञान प्राप्त होकर उपदेश होता है। जो ऐसे पुरुष और आप्त परमेश्वर के उपदेश वेद हैं उन्हीं को 'शब्द प्रमाण' जानो ॥

पाँचवां ऐतिह्य—

न चतुष्टयमैतिह्यार्थापत्तिसम्भवाभावप्रामाण्यत् ॥

न्याय० । अ० २ । आ० १ । आ० २ । सू० १ ।

जो 'इति ह' अर्थात् इस प्रकार का था, उसने इस प्रकार कि अर्थात् किसी के जीवनचरित्र का नाम 'ऐतिह्य' है ॥

छठा अर्थापत्ति—

'अर्थादापद्यते सा अर्थापत्तिः।' केनचिदुच्यते 'सत्सु धने वृष्टिः । सति वज्रलोकार्थं भवतीति।' किमत्र प्रमज्यते? असत्सु धनेषु वृष्टे वह्न्यति कारणे च कार्यं न भवति ।

जैसे किसी ने किसीको कहा कि 'बहल के होने से वर्षा और कारण होने से कार्य उत्पन्न होता है।' इससे बिना कहे यह दूसरी बात ।

होती है कि बिना बहल वर्षा और बिना कारण के कार्य कभी नहीं हो सकता । सातवा सम्भव—

‘सम्भवति यस्मिन् स सम्भव ।’ कोई कहे कि ‘माता पिता के बिना सन्तानोत्पत्ति, किसी ने मृतक जिलाये, पहाड़ उठाये, समुद्र में पत्थर तराये, चन्द्रमा के टुकड़े किये, परमेश्वर का अवतार हुआ, मनुष्य के सींग देखे और बन्ध्या के पुत्र और पुत्री का विवाह किया’ इत्यादि सब असम्भव है । क्योंकि ये सब बातें सृष्टिक्रम से विरुद्ध है । और जो बात सृष्टिक्रम से अनुकूल हो वही ‘सम्भव’ है ॥

आठवां अभाव—

‘न भवन्ति यस्मिन् सोऽभावः ।’ जैसे किसी ने किसी से कहा कि ‘हाथी ले आ ।’ वह वहां हाथी का अभाव देखकर, जहां हाथी था वहां से ले आया । ये आठ प्रमाण । इनमें से जो शब्द में ऐतिह्य और अनुमान में अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव की गणना करें तो चार प्रमाण रह जाते हैं । इन पांच प्रकार की परीक्षाओं से सत्यासत्य का निश्चय मनुष्य कर सकता है, अन्यथा नहीं ।

१६—धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसम-
वायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्नि श्रेयसम् ॥

वैशेषिक । अ० १ । आ० १ । सू० ४ ॥

जय मनुष्य धर्म के यथायोग्य अनुष्ठान करने से पवित्र होकर ‘साधर्म्य’ अर्थात् जो तुल्य धर्म हैं, जैसा पृथिवी जड़ और जल भी जड़; ‘वैधर्म्य’ अर्थात् पृथ्वी कठोर और जल कोमल इसी प्रकार से द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन छ पदार्थों के तत्त्वज्ञान से अर्थात् स्वरूपज्ञान से (निःश्रेयसम्) मोक्ष को प्राप्त होता है ।

२०—पृथिव्याऽपस्तेजोवायुराकाशं कालो दिशात्मा मन
इति द्रव्याणि ॥

वै० । अ० १ । आ० १ । सू० ५ ॥

पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन ये नव द्रव्य हैं ।

क्रियागुणवत्समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम् ॥

वै० । अ० १ । आ० १ । सू० १५ ॥

क्रियाश्च गुणाश्च विद्यन्ते यस्मिंस्तत् क्रियागुणवत् ।

जिसमें क्रिया, गुण और केवल गुण रहें उसको ‘द्रव्य’ कहते हैं ।

तीसरा उपमान—

प्रसिद्धसाधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानम् ॥

न्याय० । अ० १ । आ० १ । सू० १

जो प्रसिद्ध प्रत्यक्ष साधर्म्य से साध्य अर्थात् सिद्ध करने योग्य की सिद्धि करने का साधन हो उसको 'उपमान' कहते हैं। 'उपमानेन तदुपमानम्।' जैसे किसी ने किसी भृत्य से कहा कि 'तुम्हारे को बुलाला'। वह बोला कि मैंने उसको कभी नहीं देखा। उसके ने कहा कि 'जैसा यह देवदत्त है वैसा ही वह विष्णुमित्र है। वा यह गाय है वैसी ही गवय अर्थात् नीलगाय होती है' जब वह गया और देवदत्त के सट्टन उसको देखा निश्चय कर लिया कि यही मित्र है, उसको ले आया। अथवा किसी जंगल में जिस पशु के के तुल्य देखा उसको निश्चय कर लिया कि इसी का नाम गवय है।

चौथा शब्दप्रमाण—

आप्तोपदेशः शब्दः ॥ न्याय० । अ० १ । आ० १ । सू० ७ ॥

जो आप्त अर्थात् पूर्ण विद्वान्, धर्मात्मा, परोपकारप्रिय, पुरोयार्थी, जितेन्द्रिय पुरुष जैसा अपने आत्मा में जानता हो और सुख पाया हो उसी के कथन की इच्छा से प्रेरित सब मनुष्यों के पार्थ उपदेष्टा हो, अर्थात् [जो] जितने पृथिवी से लेके परमेश्वर पदार्थों का ज्ञान प्राप्त होकर उपदेष्टा होता है। जो ऐसे पुरुष और आप्त परमेश्वर के उपदेश वेद हैं उन्हीं को 'शब्द प्रमाण' जानो ॥

पांचवां ऐतिह्य—

न चतुष्टयमैतिह्यार्थापत्तिसम्भवाभावप्रामाण्यत् ॥

न्याय० । अ० २ । आ० १ । आ० २ । सू० १

जो 'इति ह' अर्थात् इस प्रकार का था, उसने इस प्रकार अर्थात् किसी के जीवनचरित्र का नाम 'ऐतिह्य' है ॥

छठा अर्थापत्ति—

'अर्थादापद्यते सा अर्थापत्तिः।' केनचिदुच्यते 'सत्सु वृष्टिः । सति वज्रलो कार्यं भवतीति।' किमत्र प्रमज्जते असत्सु ग्रनेषु वृष्टे पक्षपति कारणे च कार्यं न भवति ।'

जैसे किसी ने किसीको कहा कि 'बदल के होने से वर्षा और कारण होने से कार्य उत्पन्न होता है।' इससे बिना कहे यह दूसरी बात

होती है कि बिना बहल वर्षा और बिना कारण के कार्यर्य दभी नहीं हो सकता । सातवां सम्भव—

‘सम्भवति यस्मिन् स सम्भवः ।’ कोई कहे कि ‘माता पिता के बिना सन्तानोत्पत्ति, किसी ने मृतक जिलाये, पहाड उठाये, समुद्र में पत्थर तराये, चन्द्रमा के टुकडे किये, परमेश्वर का अवतार हुआ, मनुष्य के सींग देखे और वन्या के पुत्र और पुत्री का विवाह किया’ इत्यादि सब असम्भव है । क्योंकि ये सब बातें सृष्टिक्रम से विरुद्ध है । और जो बात सृष्टिक्रम से अनुकूल हो वही ‘सम्भव’ है ॥

आठवां अभाव—

‘न भवन्ति यस्मिन् सोऽभावः ।’ जैसे किसी ने किसी से कहा कि ‘हाथी ले आ ।’ वह वहां हाथी का अभाव देखकर, जहां हाथी था वहां से ले आया । ये आठ प्रमाण । इनमें से जो शब्द में ऐतिह्य और अनुमान में अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव की गणना करें तो चार प्रमाण रह जाते हैं । इन पांच प्रकार की परीक्षाओं से सत्यासत्य का निश्चय मनुष्य कर सकता है, अन्यथा नहीं ।

१६—धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्या तत्त्वज्ञानान्निश्रेयसम् ॥

वैशेषिक । अ० १ । आ० १ । सू० ४ ॥

जय मनुष्य धर्म के यथायोग्य अनुष्ठान करने से पवित्र होकर ‘साधर्म्य’ अर्थात् जो तुल्य धर्म हैं, जैसा पृथिवी जड़ और जल भी जड़, ‘वैधर्म्य’ अर्थात् पृथ्वी कठोर और जल कोमल इसी प्रकार से द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन छ. पदार्थों के तत्त्वज्ञान से अर्थात् स्वरूपज्ञान से (नि.श्रेयसम्) मोक्ष को प्राप्त होता है ।

२०—पृथिव्याऽपस्तेजोवायुराकाशं कालो दिशात्मा मन इति द्रव्याणि ॥

वै० । अ० १ । आ० १ । सू० ५ ॥

पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन ये नव द्रव्य हैं ।

क्रियागुणवत्समवाधिकारणमिति द्रव्यलक्षणम् ॥

वै० । अ० १ । आ० १ । सू० १५ ॥

क्रियाश्च गुणाश्च विद्यन्ते यस्मिन्स्तत् क्रियागुणवत् ।

जिसमें क्रिया, गुण और केवल गुण रहे उसको ‘द्रव्य’ कहते हैं । ७५

से पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन और आत्मा ये छः 'द्रव्य' क्रिया और गुणवाले हैं। तथा आकाश, काल और दिना ये तीन क्रिया रहित गुणवाले हैं। (समवायि) समवेतुं शीलं यस्य तत् समवायि। प्राग्वृत्तित्वं कारणम्। समवायि च तत्कारणं च समवायिकारणम्। लक्ष्यते येन तल्लक्षणम्। जो मिलने के स्वभावयुक्त कार्य से कारण पूर्वकालस्थ हो उसी को 'द्रव्य' कहते हैं, जिससे लक्ष्य जाना जाय, जैसा आंख से रूप जाना जाता है, उसको 'लक्षण' कहते हैं।

२१—रूपरसगन्धस्पर्शवती पृथिवी ॥

रूप, रस, गन्ध, स्पर्शवाली पृथिवी है। उसमें रूप, रस और स्पर्श अग्नि, जल और वायु के योग से है।

व्यवस्थितः पृथिव्यां गन्धः ॥ वै०। अ० २। आ० १ सू० २ ॥

पृथिवी में गन्ध गुण स्वाभाविक है। वैसे ही जल में रस, अग्नि में रूप, वायु में स्पर्श और आकाश में शब्द स्वाभाविक है।

रूपरसस्पर्शवत्य आपो द्रवाः स्निग्धाः ॥

वै०। अ० २। आ० १। सू० २ ॥

रूप, रस और स्पर्शवान् द्रवीभूत और कोमल जल कहाता है। परन्तु इनमें जल का रस स्वाभाविक गुण तथा रूप, स्पर्श अग्नि और वायु के योग से है।

अप्सु शीतता ॥ वै० अ० १। आ० २। सू० ५ ॥

और जल में शीतलत्व गुण भी स्वाभाविक है

तेजो रूपस्पर्शवत् ॥ वै० अ० २। आ० १। सू० ३ ॥

जो रूप और स्पर्श वाला है वह तेज है। परन्तु इसमें रूप स्वाभाविक और स्पर्श वायु के योग से है।

स्पर्शवान् वायुः ॥ वै०। अ० १। सा० १। सू० ४ ॥

स्पर्श गुणवाला वायु है। परन्तु इसमें भी उष्णता, शीतता, तेज और जल के योग से रहते हैं।

त आकाशे न विद्यन्ते ॥ [वै० अ० ०। आ० १। सू० ५]

रूप, रस, गन्ध और स्पर्श आकाश में नहीं हैं। किन्तु शब्द ही आकाश का गुण है।

निष्क्रमण प्रवेशनमित्याकाशस्य लिङ्गम्।

वै०। अ० २। आ० १। सू० २० ॥

जिसमें प्रवेश और निकलना होता है वह आकाश का लिङ्ग है ।

कार्यान्तराप्रादुर्भावाच्च शब्दः स्पर्शवतामगुणः ॥

वै० अ० २ । आ० १ । सू० २५ ॥

अन्य पृथिवी आदि कार्यों से प्रकट न होने से शब्द, स्पर्श गुणवाले भूमि आदि का गुण नहीं है, किन्तु शब्द आकाश ही का गुण है ।

२२—अपरस्मिन्नपरं युगपच्चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि ॥

वै० । अ० २ । आ० २ । सू० २६ ॥

जिसमें अपर, पर, (युगपत्) एकवार, (चिरम्) विलम्ब, (क्षिप्रम्) शीघ्र इत्यादि प्रयोग होते हैं उसको 'काल' कहते हैं ।

नित्येष्वभावादनित्येषु भावात्कारणे कालाख्येति ॥

वै० । अ० २ । आ० २ । सू० २७ ॥

जो नित्य पदार्थों में न हो और अनित्यो में हो इसलिये कारण में ही 'काल' सज्ञा है ।

२३—इत इदमिति यतस्तदिश्यं लिङ्गम् ॥

वै० । अ० २ । आ० ३ । सू० १० ॥

यहां से यह पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊपर, नीचे जिसमें यह व्यवहार होता है उसी को 'दिशा' कहते हैं ।

आदित्यसंयोगाद् भूतपूर्वाद् भविष्यतो भूताच्च प्राची ॥

वै० । अ० २ । आ० ३ । सू० ११ ॥

जिस ओर प्रथम आदित्य को संयोग हुआ, है, होगा, उसको 'पूर्व' दिशा कहते हैं । और जहां अस्त हो उसको 'पश्चिम' कहते हैं । पूर्वाभिमुख नुष्य के दाहिनी ओर 'दक्षिण' और बाईं ओर 'उत्तर' दिशा कहाती है ।

एतेन दिगन्तरालानि व्याख्यातानि ॥

वै० । अ० २ । आ० ३ । सू० १२ ॥

इससे पूर्व दक्षिण के बीच की दिशा को 'आग्नेयी,' दक्षिण पश्चिम के बीच को 'नैऋति,' पश्चिम उत्तर के बीच को 'वायवी' और उत्तर पूर्व के बीच को 'ऐशानी' दिशा कहते हैं ।

२४—ईच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति ।

न्याय० । अ० १ । सू० १० ॥

जिसमें (इच्छा) राग, (द्वेष) वैर, (प्रयत्न) पुरपार्थ, सुख, दुःख, (ज्ञान) जानना गुण हों वह 'जीवात्मा' [ब्रह्मात्मा] है । वैशेषिक

में इतना विशेष है ।

प्राणाऽपाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तर्विकाराः
सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि ॥

वै० । अ० ३ । आ० २ । सू० ४ ॥

(प्राण) भीतर से वायु को निकालना, (अपान) बाहर से वायु को भीतर लेना, (निमेष) आँख को नीचे ढांकना, (उन्मेष) आँख को ऊपर उठाना, (जीवन) प्राण का धारण करना, (मनः) मनन, विचार अर्थात् ज्ञान, (गति) यथेष्ट गमन करना, (इन्द्रिय) इन्द्रियों को विषयों में चलाना, उनसे विषयों का ग्रहण करना, (अन्तर्विकार) क्षुधा, तृप्ता, ज्वर, पीड़ा आदि विकारों का होना, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न ये सब आत्मा के लिङ्ग अर्थात् कर्म और गुण हैं ।

२५—युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्भनसो लिङ्गम् ॥

न्याय० । अ० १ । आ० १ । सू० ११ ॥

जिससे एक काल में दो पदार्थों का ग्रहण, ज्ञान नहीं होता उससे 'भन' कहते हैं । यह द्रव्य का स्वरूप और लक्षण कहा ।

२६—अयं गुणो को कहते हैं ।

रूपरसगन्धस्पर्शाः संख्याः परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वाऽपरत्वे बुद्धयः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्च गुणाः ॥ वै० । अ० १ । आ० १ । सू० ६ ॥

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्वं, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, गुरुत्व, खेद, संस्कार, धर्म, अधर्म और शब्द ये २४ 'गुण' कहाते हैं ।

द्रव्याश्रय्यगुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्षगुणलक्षणम् ॥ वै० । अ० १ । आ० १ । सू० १६ ॥

गुण उसको कहते हैं कि जो द्रव्य के आश्रय रहे, अन्य गुण धारण न करे, संयोग और विभाग में कारण न हो, 'अनपेक्ष' अर्थात् दूसरे की अपेक्षा न करे ।

श्रोत्रोपलब्धिर्बुद्धिर्निर्ग्राह्यः प्रयोगेणाऽभिज्वलितशदेशः शब्दः ॥ महामाण्ये ॥

जिसकी श्रोत्रों से प्राप्ति, जो बुद्धि से ग्रहण करने योग्य और प्रयोग से प्रकाशित तथा आकाश जिसका देश है वह 'शब्द' कहाता है । नेत्र

जिसका ग्रहण हो वह रूप, जिहा से जिस मिष्टादि अनेक प्रकार का ग्रहण होता है वह 'रस', नासिका से जिसका ग्रहण हो वह 'गन्ध', त्वचा से जिसका ग्रहण होता है वह 'स्पर्श', एक, हि इत्यादि गणना जिससे होती है वह 'संख्या', जिससे तोल अर्थात् हलका भारी विदित होता है वह 'परिमाण', एक दूसरे से अलग होना वह 'पृथक्त्व', एक दूसरे के साथ मिलना वह 'संयोग', एक दूसरे से मिले हुए के अनेक टुकड़े होना वह 'विभाग', इससे यह पर है वह 'पर'. उससे यह उरे है वह 'अपर', जिससे अच्छे उरे का ज्ञान होता है वह 'बुद्धि', आनन्द का नाम 'सुख', क्रोध का नाम 'दुःख', 'इच्छा'-राग, 'द्वेष'-विरोध, 'प्रयत्न' अनेक प्रकार का यत्न, 'सुख', 'गुरुत्व' भारीपन, 'द्रवत्व' पिघल जाना, 'स्नेह' प्रीति और 'कठिनापन', 'संस्कार' दूसरे के योग से वासना का होना, 'धर्म' न्याय-रण और कठिनत्वादि, 'अधर्म' अन्यायाचरण और कठिनता से विरुद्ध मिलता, ये चौबीस (२४) गुण हैं ।

७—उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनप्रसारणं गमनमिति कर्माणि ॥
वै० । अ० १ । आ० १ सू० ७ ॥

(उत्क्षेपण) उपर की चेष्टा करना, (अवक्षेपण) नीचे की चेष्टा करना, आकुञ्चन । सङ्कोच करना, (प्रसारण) फैलाना, (गमन) आना, जाना, मना आदि इनको 'कर्म' कहते हैं । अव कर्म का लक्षण—

एकद्रव्यमगुणं संयोगविभागेष्वनपेक्षकारणमिति कर्म-
लक्षणम् ॥ वै० अ० १ । आ० १ । सू० १७ ॥

'एकद्रव्यलाभय आध्यागे यस्य तदेकद्रव्यं, न विद्यते गुणो
स्य यस्मिन् वा तद्गुण, सयोगेषु विभागेषु चाऽपेक्षारहितं
कारणं तत्कर्मलक्षणम्' अथवा 'यत् क्रियत तत्कर्म, लक्ष्यते येन
लक्षणम्, कर्मणो लक्षणं कर्मलक्षणम् ।' द्रव्य के आधित गुणों से
तत्संयोग और विभाग होने में अपेक्षा रहित कारण हो उसको 'कर्म' कहते हैं ।

२८—द्रव्यगुणकर्मणा द्रव्यं कारणं सामान्यम् ॥

वै० अ० १ । आ० १ । सू० १८ ॥

जो कार्य द्रव्य, गुण और कर्म का कारण द्रव्य है वह सामान्य द्रव्य है ।
द्रव्याणां द्रव्य कार्य सामान्यम् ॥

वै० अ० १ । आ० १ । सू० २३ ॥

जो द्रव्यों का कार्य द्रव्य है वह कार्यपन से सब कार्यों में सामान्य है ।

२६—द्रव्यत्वं गुणत्वं कर्मत्वञ्च सामान्यानि विशेषाश्च ।

वै० अ० १ । आ० २ । सू० ५ ।

द्रव्यों में द्रव्यपन, गुणों में गुणपन, कर्मों में कर्मपन ये सब सामान्य और विशेष कहाते हैं क्योंकि द्रव्यों में द्रव्यत्व सामान्य और गुणत्व, कर्मों में कर्मत्व विशेष है, इसी प्रकार सर्वत्र जानना ।

सामान्यं विशेष इति बुद्ध्यपेक्षम् ॥

वै० । अ० १ । आ० २ । सू० ३ ।

सामान्य और विशेष बुद्धि की अपेक्षा से सिद्ध होने हैं । जैसे—मनुष्य व्यक्तियों में मनुष्यत्व सामान्य और पशुत्वादि से विशेष स्त्रीत्व और पुरुषत्व इनमें ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व, शूद्रत्व भी विशेष हैं । ब्राह्मण व्यक्तियों में ब्राह्मणत्व सामान्य और क्षत्रियादि से विशेष है, इसी प्रकार सर्वत्र जानो ।

३०—इहोदेमिति यतः कार्यकारणयोः स समवायः ॥

वै० । अ० ७ । आ० २ । सू० २१ ।

कारण अर्थात् अवयवों में अवयवी, कार्य में क्रिया क्रियावान्, गुणी, जाति व्यक्ति, कार्य कारण, अवयव अवयवी इनका नित्य सम्बन्ध होने से 'समवाय' कहता है और जो दूसरा द्रव्यों का परस्पर सम्बन्ध होता है वह 'संयोग' अर्थात् अनित्य सम्बन्ध है ।

३१—द्रव्यगुणयोः सजातीयारम्भकत्वं साधर्म्यम्

वै० । अ० १ । आ० १ । सू० ९ ।

जो द्रव्य और गुण का समान जातीयक कार्य का आरम्भ होता उसको 'साधर्म्य' कहते हैं । जैसे पृथिवी में जडत्व धर्म और घटादि का उत्पादकत्व स्वसदृश धर्म है, वैसे ही जल में भी जडत्व और हिम का स्वसदृश कार्य का आरम्भ पृथिवी के साथ जल का और जल के पृथिवी का तुल्य धर्म है अर्थात् 'द्रव्यगुणयोर्विजातयोरारम्भकत्वं साधर्म्यम् ।' यह विदित हुआ है कि जो द्रव्य और गुण का विरुद्ध और कार्य का आरम्भ है उसको 'वेधर्म्य' कहते हैं जैसे पृथिवी में कठिणत्व, शुष्कत्व और गन्धवत्त्व धर्म जल से विरुद्ध और जल का कोमलता और रस गुणयुक्तता पृथिवी से विरुद्ध है ।

३२—कारणभावात् कार्यभावः ॥ वै० । अ० ४ । आ० १ । सू० ३ ।

कारण के होने ही से कार्य होता है ।

न तु कार्याभावात् कारणाभावः ॥

वै० । अ० १ । आ० २ । सू० २ ॥

कार्य के अभाव से कारण का अभाव नहीं होता ।

कारणाऽभावात् कार्याऽभावः ॥ वै० । अ० १ । आ० २ । सू० १ ॥

कारण के न होने से कार्य कभी नहीं होता ।

कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः ॥

वै० । अ० २ । आ० १ । सू० २४ ॥

जैसे कारण में गुण होते हैं वैसे ही कार्य में होते हैं ।

३—परिमाण दो प्रकार का है.—

अणु महदिति तस्मिन् विशेषभावाद् विशेषाभावाच्च ॥

वै० । अ० ७ । आ० १ । सू० ११ ॥

(अणु) सूक्ष्म, (महत्) बड़ा जैसे त्रसरेणु लिक्षा से छोटा और अणु से बड़ा है तथा पहाड़ पृथिवी से छोटे, वृक्षों से बड़े हैं ।

३४—सदिति यतो द्रव्यगुणकर्मसु सा सत्ता

वै० । अ० १ । आ० २ । सू० ७ ॥

जो द्रव्य, गुण और कर्मों में सत् शब्द अन्वित रहता है अर्थात् 'सद् द्रव्यम् । सद् गुणः । सत्कर्म ।' सत् द्रव्य, सत् गुण, सत् कर्म, अर्थात् मान कालवाची शब्द का अन्वय सब के साथ रहता है ।

भावोऽनुवृत्तेरेव हेतुत्वात्सामान्यमेव ॥

वै० । अ० १ । आ० २ । सू० ४ ॥

जो सब के साथ अनुवर्त्तमान होने से सत्ता रूप भाव है सो 'महान्य' कहाता है । यह क्रम भावरूप द्रव्यों का है और जो अभाव है पांच प्रकार का होता है ।

३५—क्रियागुणव्यपदेशाभावात्प्रागसत् ॥

वै० । अ० ९ । आ० १ । सू० १ ॥

क्रिया और गुण के विशेष निमित्त के अभाव से प्राक् अर्थात् पूर्व 'त्' न था, जैसे घट, वस्त्रादि उत्पत्ति के पूर्व नहीं थे, इसका नाम भाव' ॥ दूसरा.—

सदसत् ॥ वै० । अ० ९ । आ० १ । सू० ४ ॥

जो होके न रहे, जैसे घट उत्पन्न होके नष्ट हो जाय, यह 'प्रपञ्चाभाव' का है । तीसरा —

सञ्चासत् ॥ वै० । अ० ९ । आ० १ । सू० ५ ॥

जो हावे और न होवे, जैसे 'अगौरश्वोऽनश्वो गौः' यह घोड़ा नहीं और गाय घोड़ा नहीं, अर्थात् घोड़े में गाय का और गाय में घोड़े अभाव और गाय में गाय, घोड़े में घोड़े का भाव है। यह 'अभाव' कहाता है। चौथाः—

यच्चान्यदसदतस्तदसत् ॥ वै० । अ० ९ । आ० १ । सू० १

जो पूर्वोक्त तीनों अभावों से भिन्न है उसको 'अत्यन्ताभाव' कहते जैसे—'नरशृङ्ग' अर्थात् मनुष्य का सींग 'स्रपुष्प' आकाश का और 'वन्ध्यापुत्र' बन्ध्या का पुत्र, इत्यादि। पांचवां—

नास्ति घटो गेह इति सतो घटस्य गेहसंसर्गप्रतिषेधः

वै० । अ० ९ । आ० १ । सू० १

घर में घड़ा नहीं अर्थात् अन्यत्र है, घर के साथ घड़े का नहीं है, ये पांच अभाव कहाते हैं।

३६—इन्द्रियदोषात् संस्कारदोषाच्चाविद्या ॥

वै० । अ० ९ । आ० २ । सू० १

इन्द्रियों और संस्कार के दोष से 'अविद्या' उत्पन्न होती है।

तदुष्टज्ञानम् ॥ वै० । अ० ९ । आ० २ । सू० ११ ॥

जो दुष्ट अर्थात् विपरीत ज्ञान है उसको 'अविद्या' कहते हैं।

अदुष्टं विद्या ॥ वै० । अ० ९ । आ० २ । सू० १२ ॥

जो अदुष्ट अर्थात् यथार्थ ज्ञान है उसको 'विद्या' कहते हैं।

३७—पृथिव्यादिरूपरसगन्धस्पर्शा नित्यं अनित्यं

वै० । अ० ७ । आ० १ । सू० १

एतेन नित्येषु नित्यत्वमुक्तम् ॥ वै० । अ० ७ । आ० १ । सू० १

जो कार्यरूप पृथिव्यादि पदार्थ और उनमें रूप, रस, गन्ध, गुण हैं ये सब द्रव्यों के अनित्य होने से अनित्य हैं और जो इससे रूप पृथिव्यादि नित्य द्रव्यों में गन्धादि गुण हैं वे नित्य हैं।

सदकारणवन्नित्यम् ॥ वै० । अ० ४ । आ० १ । सू० १

जो विद्यमान हो और जिसका कारण कोई भी न हो वह अर्थात्—'सत्कारणवदनित्यम्' जो कारणवाले कार्यरूप 'अनित्य' कहाते हैं।

३८—अस्येदं कार्यं कारणं संयोगि विरोधि

॥ द्विकम् ॥ वै० । अ० ९ । आ० २ । सू० १ ॥

इसका यह कार्य वा कारण है इत्यादि समवायि, सयोगि, एकार्य मवायि और विरोधि यह चार प्रकार का लैङ्गिक अर्थात् लिङ्गलिङ्गी के म्बन्ध से ज्ञान होता है । 'समवायि' जैसे आकाश परिमाणवाला है । 'योगि' जैसे शरीर त्वचा वाला है, इत्यादि का नित्य संयोग है । 'एकार्य मवायि' एक अर्थ में टोका रहना, जैसे कार्यरूप स्पर्श कार्य का लिङ्ग अर्थात् जाने वाला है । 'विरोधि' जैसे हुई वृष्टि होने वाली वृष्टि का विरोधी लिङ्ग है ।

६—'व्याप्ति'—

नियतधर्मसाहित्यमुभयोरेकतरस्य वा व्याप्तिः ॥ निजश-
ुद्धवमित्याचार्याः ॥ आधेयशक्तियोग इति पञ्चशिखः ॥

सांख्यसूत्र [अ० ५ ।] २९, ३१, ३२ ॥

जो दोनों साध्य साधन अर्थात् सिद्ध करने योग्य और जिससे द किया जाय उन दोनों अथवा एक, साधनमात्र का निश्चित धर्म सहचार है उसी को 'व्याप्ति' कहते हैं जैसे धूम और अग्नि का सह-र है ॥ २९ ॥ तथा व्याप्य जो धूम उसकी निज शक्ति से उत्पन्न होता अर्थात् जब देशान्तर में दूर धूम जाता है तब बिना अग्नियोग के भी स्वयं रहता है । उसी का नाम 'व्याप्ति' है अर्थात् अग्नि के छेदन, न, सामर्थ्य से जलादि पदार्थ धूमरूप प्रकट होता है ॥ ३१ ॥ जैसे तत्त्वादि में प्रकृत्यादि की व्यापकता, बुद्ध्यादि में व्याप्यता धर्म के बन्ध का नाम 'व्याप्ति' है । जैसे शक्ति आधेयरूप और शक्तिमान् गाररूप का सम्बन्ध है ॥ ३२ ॥ इत्यादि शास्त्रों के प्रमाणादि से परीक्षा के पदों और पढ़ावें । अन्यथा विद्यार्थियों को सत्य बोध कभी नहीं होता । जिस १ ग्रन्थ को पढ़ावें उस २ की पूर्वोक्त प्रकार से परीक्षा के जो सत्य ठहरे वह २ ग्रन्थ पढ़ावें जो १ इन परीक्षाओं से विरुद्ध इन १ ग्रन्थों को न पढ़ें न पढ़ावें । क्योंकि —

लक्षणप्रमाणाभ्या वस्तुसिद्धिः ॥

लक्षण जैसा कि 'गन्धवती पृथिवी' जो पृथ्वी है वह गन्धवाली से लक्षण और प्रत्यक्षादि प्रमाण इनसे सब सत्याऽसत्य और पदार्थों नेर्णय हो जाता है, इसके बिना कुछ भी नहीं होता ।

४०—अथ पठनपाठनविधिः ॥

अब पढ़ने पढ़ाने का प्रकार लिखते हैं—प्रथम पाणिनिमुनिकृत शिक्षा

जो कि सूत्ररूप है इसकी रीति अर्थात् इस अक्षर का यह स्थान, प्रयत्न, यह कारण है, जैसे 'प' इसका ओष्ठ स्थान, गृष्ट प्रयत्न और तथा जीभ की क्रिया करना 'करण' कहाता है। उसी प्रकार यथायोग्य अक्षरों का उच्चारण माता, पिता, आचार्य सिग्नलार्थे । तदनन्तर अर्थात् प्रथम अष्टाध्यायी के सूत्रों का पाठ जैसे 'वृद्धिर्गादैच्' फि च्छेद, जैसे 'वृद्धिः, आत्, ऐच् वा आदैच् ।' फिर समास 'ऐच्च आदैच्' और अर्थ जैसे 'आदैच्चां वृद्धिसंज्ञा क्रियते' आ, ऐ, औ की वृद्धि संज्ञा [की जाती] है। 'तः परा यस्मा तपरस्तादपि परस्मपरः' । तकार जिससे परे और जो तकार से हो वह 'तपर' कहाता है। इससे क्या सिद्ध हुआ ? जो आकार त् और त् से परे ऐच् दोनों तपर हैं। तपर का प्रयोजन यह है कि लृप्पुत की वृद्धिसंज्ञा न हुई। उदाहरण 'भाग', यहां 'भज्' 'घज्' प्रत्यय के परे 'घ्, ज्' की इत्संज्ञा होकर लोप होगया, पश्चात् यहां जकार के पूर्व भकारोत्तर अकार को वृद्धिसंज्ञक आकार है, तो 'भाज्', पुनः 'ज्' को ग् हो अकार के साथ मिलके 'भाग' प्रयोग हुआ। 'अध्यायः' यहां 'अधि' पूर्वक 'इट्' धातु के ह्रस्व इ के में 'घज्' के परे 'ऐ' वृद्धि और उसको 'आय्' हो मिल के 'नायक' यहां 'नीज्' धातु के दीर्घ ईकार के स्थान में 'ण्वुल्' परे 'ऐ' वृद्धि और उसको 'आय्' होकर मिलके 'नायकः' । और यहां 'स्तु' धातु से 'ण्वुल्' प्रत्यय होकर ह्रस्व उकार के स्थान में वृद्धि 'आव्' आदेश होकर अकार में मिलगया तो 'स्तावकः' । धातु से आगे 'ण्वुल्' प्रत्यय 'ल्' की इत्संज्ञा होके लोप, स्थान में 'अक' आदेश और ऋकार के स्थान में 'आर्' वृद्धि होकर सिद्ध हुआ। जो १ सूत्र आगे पीछे के प्रयोग में लगे उनका वतलाता जाय और स्लेट अथवा लकड़ी के पट्टे पर दिखला रूप धर के जैसे 'भज् + घज् + सु' इस प्रकार धर के प्रथम फिर 'ज्' का लोप होकर 'भज् + अ + सु' ऐसा रहा। फिर आकार वृद्धि और 'ज्' के स्थान में 'ग्' होने से भाग् + अ + सु अकार में मिल जाने से 'भाग + सु' रहा, अब उकार की के स्थान में 'रु' होकर पुनः उकार की इत्संज्ञा लोप हो जाने 'भागर' ऐसा रहा। अब रेफ के स्थान में (·) विसर्जनीय होकर

ए रूप सिद्ध हुआ । जिस २ सूत्र से जो २ कार्य होता है उस उसको उ पढ़ा के और लिखवा कर कार्य कराता जाय । इस प्रकार पढ़ने पढ़ाने । बहुत शीघ्र हृद बोध होता है । एक बार इसी प्रकार अष्टाध्यायी पढ़ा ५ धातुपाठ अर्थसहित और दश लकारों के रूप तथा प्रक्रिया सहित दूनों के उत्सर्ग अर्थात् सामान्य सूत्र जैसे 'कर्मगयण' कर्म उपपद लगा ने तो धातुमात्र से अण् प्रत्यय हो जैसे 'कुम्भकार.' पश्चात् अपवाद सूत्र जैसे 'आनोऽनुपसर्गे कः' उपसर्गभिन्न कर्म उपपद लगा हो तो आकारान्त धातु से 'क' प्रचय होवे । अर्थात् जो बहुव्यापक जैसा कि कर्मोपपद लगा हो तो सब धातुओं से 'अण्' प्राप्त होता है उससे विशेष अर्थात् रूप विषय उसी पूर्व सूत्र के विषय में से आकारान्त धातु को 'क' प्रत्यय ने ग्रहण कर लिया । जैसे उत्सर्ग के विषय में अपवाद सूत्र की प्रवृत्ति होती है वैसे अपवाद सूत्र के विषय में उत्सर्ग सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती । जैसे चक्रवर्ती राजा के राज्य में माण्डलिक और भूमिवालों की प्रवृत्ति होती है वैसे माण्डलिक राजादि के राज्य में चक्रवर्ती की प्रवृत्ति नहीं होती । इसी प्रकार पाणिनि महर्षि ने सहस्र श्लोकों के बीच में अखिल शब्द, अर्थ और सम्वन्धों की विद्या प्रतिपादित करदी है ।

४१—धातुपाठ के पश्चात् उणादिविण के पढ़ाने में सर्वसुबन्त का विषय उक्त प्रकार पढ़ा के पुन दूसरी बार शब्दा, समाधान, वार्तिक, वारिका, रेखाणा की घटनापूर्वक, अष्टाध्यायी की द्वितीयानुवृत्ति पढ़ावे । तदनन्तर हाभाष्य पढ़ावे । अर्थात् जो बुद्धिमान्, पुरुषार्थी, निष्कपटी, विद्यावृद्धि के लहने वाले निम्न पढ़े पढ़ावे तो डेढ़ वर्ष में अष्टाध्यायी और डेढ़ वर्ष में महाभाष्य पढ़ के तीन वर्ष में पूर्ण व्याकरण होकर वैदिक और लौकिक शब्दों का व्याकरण से बोध वर पुन अन्य शास्त्रों को शीघ्र सहज में पढ़ पढ़ा सकते हैं । किन्तु जैसा बड़ा परिश्रम व्याकरण में होता है वैसा श्रम अन्य शास्त्रों में करना नहीं पड़ता और जितना बोध इनके पढ़ने से तीन वर्षों होता है उतना बोध कुत्रन्थ अर्थात् सारस्वत, चन्द्रिका, कौमुदी, मनोभाषादि के पढ़ने से पचास वर्षों में भी नहीं हो सकता । क्योंकि जो महाभाष्य महर्षि लोगों ने सहजता से महान् विषय अपने ग्रन्थों में प्रकाशित किया है वैसा इन छुद्राशय मनुष्यों के वरिष्ठ ग्रन्थों में क्योंकि हो सकता । महर्षि लोगों का आशय, जहां तक होसके वहां तक सुगम और जिसके लक्षण में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है और छुद्राशय लोगों

की मनसा ऐसी होती है कि जहा तक बने वहां तक कठिन रचना जिसको बड़े परिश्रम से पढ़ के अन्य लाभ उठा सकें, जैसे पहाड़ का कौड़ी का लाभ होना । और आर्थ ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि गोता लगाना, बहुमूल्य मोतियों का पाना ।

व्याकरण की पढ़ के यास्कमुनिकृत निघण्टु और निरुक्त छः माह महीने में सार्थक पढ़े और पढ़ावे । अन्य नास्तिककृत अनेक वर्ष व्यर्थ न खोवें । तदनन्तर पित्रलाचार्यकृत छन्दोग्रन्थ, वैदिक लौकिक छन्दो का परिज्ञान, नवीन रचना और श्लोक बनाने की रीति भी यथावत् सीखे । इस ग्रन्थ और श्लोकों की रचना तथा को चार महीने में सीख पढ़ पढ़ा सकते हैं । और वृत्तरत्नाकर आदि बुद्धिप्रकल्पित ग्रन्थों में अनेक वर्ष न खोवें । तत्पश्चात् मनुस्मृति, कीय रामायण और महाभारत के उद्योगपर्वान्तर्गत विदुरनीति आदि प्रकरण, जिनसे दुष्ट व्यसन दूर हो और उत्तमता, सम्यक्ता प्राप्त हो, को काव्यरीति से अर्थात् पदच्छेद, पदार्थोक्ति, अन्वय, विशेष और भावार्थ को अध्यापक लोग जनावें और विद्यार्थी लोग जानते इनको वर्ष के भीतर पढ़लें । अदनन्तर पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, सांख्य और वेदान्त अर्थात् जहां तक बन सके वहां तक ऋषिकृत सहित अथवा उत्तम विद्वानों की सरल व्याख्यानुक्त छः शास्त्रों को पढ़ावें । परन्तु वेदान्त सूत्रों को पढ़ने के पूर्व ईश, केन, कठ, प्रश्न, साण्डक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक उन दश पदों को पढ़ के छः शास्त्रों के भाष्य वृत्तिसहित सूत्रों को दो वर्ष के पढ़ावें और पढ़ लेवें । पश्चात् छः वर्षों के भीतर चारों ब्राह्मण ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ब्राह्मणों के सहित चारों वेदों के शब्द, अर्थ, सम्बन्ध तथा क्रियासहित पढ़ना योग्य है ।

४२—इसमें प्रमाणः—

स्थाणुरयं भारद्वाजः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थं
योऽर्थं इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप
[निरुक्त १]

यह निरुक्त में मन्त्र है । जो वेद को स्वर और पाठमात्र पढ़ नहीं जानता वह जैसा वृक्ष, डाली, पत्ते, फल, फूल और अन्य धान्य आदि का भार उठाता है वैसे भारवाह अर्थात् भार का ७

है और जो वेद को पढ़ता और उनका यथावत् अर्थ जानता है वही सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होके देहान्त के पश्चात् ज्ञान से पापों को छोड़ पवित्र धर्माचरण के प्रताप से सर्वानन्द को प्राप्त होता है ॥

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् ।
उतो त्वस्मै तन्वं । विसंखे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥

ऋ० म० १० । सू० ७१ । म० ४ ॥

जो अविद्वान् हैं वे सुनते हुए नहीं सुनते, देखते हुए नहीं देखते, बोलते हुए नहीं बोलते अर्थात् अविद्वान् लोग इस विद्या-वाणी के रहस्य को नहीं जान सकते, किन्तु जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध को जाननेवाला है उसके लिये विद्या जैसे सुन्दर वस्त्र-आभूषण धारण करती अपने पति की कामना करती हुई स्त्री अपना शरीर और स्वरूप का प्रकाश पति के सामने करती है वैसे विद्या विद्वान् के लिये अपने स्वरूप का प्रकाश करती है, अविद्वानों के लिये नहीं ॥

ऋचो अत्ररे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अघि विश्वे निपेदुः ।
यस्तन्न वेद किमुचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥

ऋ० म० १ । सू० १२४ । म० ३६ ॥

जिस व्यापक, अविनाशी, सर्वोत्कृष्ट परमेश्वर में सब विद्वान् और पृथिवी, सूर्य आदि सब लोक स्थित हैं कि जिसमें सब वेदों का मुख्य तात्पर्य है उस ब्रह्म को जो नहीं जानता वह ऋग्वेदादि से क्या कुछ सुख को प्राप्त हो सकता है? नहीं, किन्तु जो वेदों को पढ़ के धर्मात्मा, योगी होकर उस ब्रह्म को जानते हैं वे सब परमेश्वर में स्थित होके मुक्तिरूपी परमानन्द को प्राप्त होते हैं । इसलिये जो कुछ पढ़ना वा पढ़ाना हो वह अर्थज्ञान सहित चाहिये ।

४३.—इस प्रकार सब वेदों को पढ़ के आगुर्वेद अर्थात् जो चरक, सुश्रुत आदि ऋषि मुनिप्रणीत वैद्यक शास्त्र हैं उसको अर्थ, क्रिया, शस्त्र, छेदन, भेदन, लेप, चिकित्सा, निदान, औषध, पथ्य, शरीर, देश, काल और वस्तु के गुणज्ञानपूर्वक ४ (चार) वर्ष के भीतर पढ़ें पढ़ावें । तदनन्तर धनुर्वेद अर्थात् जो राजसम्बन्धी काम करना है इसके दो भेद एक निज राजपुरुषसम्बन्धी और दूसरा प्रजासम्बन्धी होता है । राजकार्य में सभा, सेना के अध्यक्ष शस्त्रास्त्रविद्या, नाना प्रकार के व्यूहों का अभ्यास अर्थात् जिसको आजकल 'क्वायद' कहते हैं जो कि शत्रुओं से लड़ाई के समय में क्रिया करनी होती है उनको यथावत् सीखें और जो २ प्रजा के पालन और वृद्धि

करने का प्रकार है उनको सीख के न्यायपूर्वक सब प्रजा को प्रसन्न रखें, दुष्टों को यथायोग्य दण्ड, श्रेष्ठों के पालन का प्रकार सब प्रकार सीखें। इस राजविद्या को दो १ वर्ष में सीखकर गान्धर्ववेद कि जिसको गानविद्या कहते हैं उसमें स्वर, राग, रागिणी, समय, ताल, ग्राम, तान, वादिक, नृत्य, गीत आदि को यथावत् सीखें, परन्तु मुख्य करके सामवेद का वादित्रवादनपूर्वक सीखें और नारदसहिता आदि जो २ आर्ष ग्रन्थ हैं उनको पढ़ें, परन्तु भङ्गवे, वेदया और विषयासक्तिकारक वैरागियों के गर्व शब्दवत् व्यर्थ आलाप कभी न करे। अथर्ववेद कि जिसको शिल्पविद्या कहते हैं उसको पदार्थ-गुण-विज्ञान, क्रियाकौशल, नानाविध पदार्थों का निर्माण पृथिवी से लेकर आकाश पर्यन्त की विद्या को यथावत् सीख के अर्थ अर्वाक्ष जो ऐश्वर्य को बढ़ानेवाला है उस विद्या को सीख के दो वर्ष में ज्योतिष शास्त्र सूर्यसिद्धान्तादि जिसमें बीजगणित, अङ्क, भूगोल, खगोल और भूगर्भ विद्या है इसको यथावत् सीखें। तत्पश्चात् सब प्रकार की हस्तशिल्प, यन्त्रप्रकला आदिको सीखें। परन्तु जितने ग्रह, नक्षत्र, जन्मपत्र, राशि, मुहूर्त आदि के फल के विधायक ग्रन्थ हैं उनको झूठ समझ के कभी न पढ़ें और पढ़ावें। ऐसा प्रयत्न पढ़ने और पढ़ानेवाले करें कि जिससे बीस वा इक्यावन वर्ष के भीतर समग्र विद्या, उत्तम शिक्षा प्राप्त होके मनुष्य लोग कुलकुल होकर सदा आनन्द में रहें। जितनी विद्या इस रीति से बीस वा इक्यावन वर्षों में हो सकती है उतनी अन्य प्रकार से शतवर्ष में भी नहीं हो सकती।

४४—ऋषिप्रणीत ग्रन्थों को इसलिये पढ़ना चाहिये कि बड़े विद्वान् सब शास्त्रवित् और धर्मात्मा थे और अनृषि अर्थात् जो अल्प शास्त्र पढ़े हैं और जिनका आत्मा पक्षपातसहित है उनके बनाये हुए ग्रन्थ भी वैसे ही हैं।

पूर्वमीमांसां पर व्यासमुनिकृत व्याख्या, वैशेषिक पर गौतममुनिकृत न्यायसूत्र पर वात्स्यायनमुनिकृत भाष्य, पतञ्जलिमुनिकृत सूत्र पर व्यास मुनिकृत भाष्य, कपिलमुनिकृत सांख्यसूत्र पर भागुरिमुनिकृत भाष्य, व्यास मुनिकृत वेदान्तसूत्र पर वात्स्यायनमुनिकृत भाष्य अथवा द्यौधायनमुनिकृत भाष्य धृतिसहित पढ़ें पढ़ावें इत्यादि सूत्रों को कल्प अङ्ग में भी गिनना चाहिये। जैसे ऋग्वेद, यजु, साम, और अथर्वचारों वेद ईश्वरकृत हैं वैसे ऐतरेय शतपथ, साम और गोपथ चारों ब्राह्मण, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निघण्टु निरुक्त, छन्द और ज्योतिष छः वेदों के अङ्ग, मीमांसादि छः शास्त्र वेदों के उपानिषद्, आनुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अथर्ववेद ये चार वेदों के उपवेद

इत्यादि सब ऋषि मुनि के किये ग्रन्थ हैं इनमें भी जो १ वेदविरुद्ध प्रतीत हो उस १ को छोड़ देना क्योंकि वेद ईश्वरकृत होने से निर्भ्रान्त, स्वतः-प्रमाण अर्थात् वेद का प्रमाण वेद ही से होता है, ब्राह्मणादि सब ग्रन्थ परत-प्रमाण अर्थात् इनका प्रमाण वेदाधीन है। वेद की विशेष व्याख्या ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में देख लीजिये और इस ग्रन्थ में भी आगे लिखेंगे ॥

४५—अब जो परित्याग के योग्य ग्रन्थ हैं उनका परिगणन संक्षेप से किया जाता है, अर्थात् जो १ नीचे ग्रन्थ लिखेंगे वह १ जालग्रन्थ समझना चाहिये। व्याकरण में कात्तन्त्र, सारस्वत, चन्द्रिका, मुग्धबोध, कौमुदी, शेखर, मनोरमादि। कोश में अमरकोशादि। छन्दोग्रन्थ में वृत्तरत्नाकरादि। शिक्षा में 'अथ शिखां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मन यथा।' इत्यादि। ज्योतिष में शीघ्रबोध, मुहूर्तचिन्तामणि आदि। काव्य में नायिकाभेद, कुवलयानन्द, रघुवंश, माघ, किरातार्जुनीयादि। मीमांसा में धर्मसिन्धु, व्रतार्कादि। वैशेषिक में तर्कसंग्रहादि। न्याय में जागदीशी आदि। योग में हठप्रदीपिकादि। सांख्य में सांख्यतत्त्वकोमुद्यादि। वेदान्त में योगवासिष्ठ पञ्चदश्यादि। वैद्यक में शार्ङ्गधरादि। स्मृतियों में मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक और अन्य सब स्मृति, सब तन्त्र ग्रन्थ सब पुराण, सब उपपुराण, तुलसीदासकृत भाषारामायण, रत्नमणीमङ्गलादि और सर्व भाषाग्रन्थ ये सब कपोलकल्पित मिथ्या ग्रन्थ हैं।

(प्रश्न) क्या इन ग्रन्थों में कुछ भी सत्य नहीं ?

(उत्तर) थोड़ा सत्य तो है, परन्तु इसके साथ बहुत सा असत्य भी है इससे विषममयत्कान्नचत् न्याज्याः' जैसे अत्युत्तम अन्न विष से युक्त होने से छोड़ने योग्य होता है वैसे ये ग्रन्थ हैं।

(प्रश्न) क्या आप पुराण इतिहास को नहीं मानते ?

(उत्तर) हा मानते हैं, परन्तु सत्य को मानते हैं, मिथ्या को नहीं।

(प्रश्न) कौन सत्य और कौन मिथ्या है ?

(उत्तर)—

ब्राह्मणादीनां तद्वाचानां पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरिति ॥

यह गृह्यसूत्रादि का वचन है। जो ऐतरेय, शतपथादि, ब्राह्मण लिख आये उन्हीं के इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी पांच नाम हैं, श्रीमद्भागवतादि का नाम पुराण नहीं।

(प्रश्न) जो त्याज्य ग्रन्थों में सत्य है उसका ग्रहण क्यों नहीं करते ?

(उत्तर) जो १ उनमें सत्य है सो २ वेदादि सत्य शास्त्रों का है मिथ्या उनके घर का है । वेदादि सत्य शास्त्रों के स्वीकार में सब सत्य ग्रहण हो जाता है । जो कोई इन मिथ्या ग्रन्थों से सत्य का ग्रहण चाहे तो मिथ्या भी उसके गले लिपट जावे । इसलिये 'असत्यानि सत्य दूरतस्त्याज्यमिति ।' असत्य से गुप्त ग्रन्थस्य सत्य को भी छोड़ देना चाहिये जैसे विपुक्त अन्न को ।

(प्रश्न) तुम्हारा मत क्या है ?

(उत्तर) वेद अर्थात् जो वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा की है उस का हम यथावत् करना छोड़ना मानते हैं । जिसलिये वेद मान्य है इसलिये हमारा मत 'वेद' है । ऐसा ही मानकर सब मनुष्यों के विशेष आर्थों को ऐकमत्य होकर रहना चाहिये ।

४६—(प्रश्न) जैसा सत्यासत्य और दूसरे ग्रन्थों का परस्पर विरोध है वैसे अन्य शास्त्रों में भी है । जैसा सृष्टिविषय में छः शास्त्रों का विरोध है मीमांसा कर्म, वैशेषिक काल, न्याय परमाणु, योग पुरुषार्थ, सांख्य अहं और वेदान्त ब्रह्म से सृष्टि की उत्पत्ति मानता है क्या यह विरोध नहीं है ?

(उत्तर) प्रथम तो विना साध्य और वेदान्त के दूसरे चार शास्त्रों सृष्टि की उत्पत्ति प्रसिद्ध नहीं लिखी और इनमें विरोध नहीं, क्योंकि विरोधाविरोध का ज्ञान नहीं । मैं तुमसे पूछता हूँ कि विरोध किमर्थ में होता है ? क्या एक विषय में अथवा भिन्न-विषयों में ?

(प्रश्न) एक विषय में अनेकों का परस्पर विरुद्ध कथन हो उसके 'विरोध' कहते हैं । यहा भी सृष्टि एक ही विषय है ।

(उत्तर) क्या विद्या एक है वा दो ? 'एक है ।'

जो एक है तो व्याकरण, वैद्यक, ज्योतिष् आदि का भिन्न २ विषय क्यों है ? जैसा एक विद्या में अनेक विद्या के अवयवों का एकदूसरे से निमित्त प्रतिपादन होता है वैसे ही सृष्टिविद्या के भिन्न १ छः अवयवों का शास्त्रों में प्रतिपादन करने से इनमें कुछ भी विरोध नहीं । जैसे घड़े के बनाने में कर्म, समय, मिट्टी, विचार, संयोग, वियोगादि का पुरुषार्थ, प्रकृति के उद्भव और कुंभार कारण है वैसे ही सृष्टि का जो कर्म कारण है उसकी व्याख्या मीमांसा में, समय की व्याख्या वैशेषिक में, उपादान कारण की व्याख्या न्याय में, पुरुषार्थ की व्याख्या योग में, तत्त्वों के अनुक्रम से परिगणन सांख्य में और निमित्तकारण जो परमेश्वर है उसकी व्याख्या वेदान्त में

शास्त्र में है। इससे कुछ भी विरोध नहीं। जैसे वैद्यकशास्त्र में निदान, चिकित्सा, ओषधि, दान और पथ्य के प्रकरण भिन्न २ कथित हैं परन्तु सबका सिद्धान्त रोग की निवृत्ति है वैसे ही सृष्टि के छ कारण हैं, इनमें से एक २ कारण वी व्याख्या एक २ शास्त्रकार ने की है इसलिये इनमें कुछ भी विरोध नहीं। इसकी विशेष व्याख्या सृष्टिप्रकरण में कहेंगे।

४७—जो विद्या पढ़ने पढ़ाने के विघ्न है उनको छोड़ देवे। जैसा कुसङ्ग अर्थात् दुष्ट विषयी जनों का संग, दुष्टव्यसन जैसा मद्यादितेवन और वेश्या-गमनादि, बाल्यावस्था में विवाह अर्थात् पच्चीसवें वर्ष से पूर्व पुरुष और सोलहवें वर्ष से पूर्व स्त्री का विवाह होजाना, पूर्ण ब्रह्मचर्य्य न होना, राजा, माता, पिता और विद्वानों का प्रेम, वेशादि शास्त्रा के प्रचार में न होना, अतिभोजन, अतिजागरण करना, पढ़ने पढ़ाने, परीक्षा लेने वा देने में आलस्य वा कपट करना, सर्वोपरि विद्या का लाभ न समझना, ब्रह्मचर्य्य से बल, बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य, राज्य, धन की वृद्धि न मानना, ईश्वर का ध्यान छोड़ अन्य पापाणादि जड मूर्ति के दर्शन पूजन में व्यर्थ काल खोना, माता, पिता, अतिथि और आचार्य्य, विद्वान् इनको सत्य मूर्ति मानकर सेवा सत्संग न करना, घर्णाश्रम के धर्म को छोड़ उर्ध्वपुण्ड्र, त्रिपुण्ड्र, तिलक, कंठी, मालाधारण, एकादशी, त्रयोदशी आदि व्रत करना, काश्यादि तीर्थ और राम, कृष्ण, नारायण, शिव, भगवती, गणेशादि के नामस्मरण से पाप दूर होने का विश्वास पाखण्डियों के उपदेश से विद्या पढ़ने में अश्रद्धा का होना, विद्या धर्म, योग, परमेश्वर की उपासना के बिना मिथ्या पुराण नामक भागवतादि की कथादि से मुक्ति का मानना, लोभ से धनादि में प्रवृत्त होकर विद्या में प्रीति न रखना, इधर उधर व्यर्थ घूमते रहना इत्यादि, मिथ्या व्यवहारों में फँस के ब्रह्मचर्य्य और विद्या के लाभ से रहित होकर रोगी और मूर्ख बने रहते हैं।

आजकल के संप्रदायी और स्वार्थी ब्राह्मण आदि जो दूसरों को विद्या सत्संग से हटा और अपने जाल में फँसा के उनका तन, मन, धन, नष्ट कर देते हैं और चाहते हैं कि जो क्षत्रियादि घर्ण पढकर विद्वान् हो जायेंगे तो हमारे पाखण्डजाल से छूट और हमारे छल को जानकर हमारा अपमान करेंगे। इत्यादि विघ्नों को राजा और प्रजा दूर करके अपने लड़कों और लड़कियों को विद्वान् करने के लिये तन, मन, धन, से प्रयत्न किया करे।

४८—(प्रश्न) क्या स्त्री और शूद्र भी वेद पढ़ें? जो ये पढ़ेंगे तो हम फिर

क्या करेंगे ? और इनके पढ़ने में प्रमाण भी नहीं है जैसा यह निषेध है—

स्त्रीशूद्रौ नाभ्यातामिति श्रुतेः ॥

स्त्री और शूद्र न पढ़ें, यह श्रुति है ।

(उत्तर) सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्यमात्र को पढ़ने का अधिकार है । तुम कुआ में पड़ो और यह श्रुति तुम्हारी कपोलकल्पना से हुई है । किसी प्रामाणिक ग्रन्थ की नहीं । और सब मनुष्यों के वेगदि शास्त्र पढ़ने सुनने के अधिकार का प्रमाण यजुर्वेद के छव्यीसवें अध्याय में दूसरा मन्त्र है—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदन्ति जनेभ्यः ।

ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ॥

[यजु० अ० २६।२]

परमेश्वर कहता है कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) सब मनुष्यों के लिये (इमाम्) इस (कल्याणीम्) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देनेहारी (वाचम्) ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का (मावदन्ति) उपदेश करता हूँ वैसे तुम भी किया करो ।

यहां कोई ऐसा प्रश्न करे कि 'जन' शब्द से द्विजों का ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि स्मृत्यादि ग्रन्थों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही के वेदों के पढ़ने का अधिकार लिखा है स्त्री और शूद्रादि वर्णों का नहीं ।

(उत्तर) — (ब्रह्मराजन्याभ्यां इत्यादि) देखो परमेश्वर स्वयं कहता है कि हमने ब्राह्मण, क्षत्रिय, (अर्याय) वैश्य, (शूद्राय) शूद्र और (स्वाय) अपने भृत्य वा स्त्रियादि (अरणाय) और अतिशूद्रादि के लिये भी वेदों का प्रकाश किया है अर्थात् सब मनुष्य वेदों को पढ़ पढ़ा और सुन सुना कर विज्ञान को बढ़ा के अच्छी बातों का ग्रहण और बुरी बातों का त्याग करके दुःखों से छूट कर आनन्द को प्राप्त हों । कहिये अब तुम्हारी बात माँघें या परमेश्वर की ? परमेश्वर की बात अवश्य माननीय है । इतने पर भी जो कोई हमको न मानेगा वह नास्तिक कहावेगा । क्योंकि 'नास्तिको वेदनिन्दकः' वेदों का निन्दक और न मानने वाला 'नास्तिक' कहाता है । क्या परमेश्वर शूद्रों का भला करना नहीं चाहता ? क्या ईश्वर पक्षपाती है कि वेदों के पढ़ने सुनने का शूद्रों के लिये निषेध और द्विजों के लिये विधि करे ? जो परमेश्वर का अभिप्राय शूद्रादि के पढ़ाने सुनाने का न होता तो इनके शरीर में वाक् और श्रोत्र इन्द्रिय क्यों रचता । जैसे परमात्मा ने पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्नादि पदार्थ सब के लिये बनाये

हैं वैसे ही वेद भी सब के लिये प्रकाशित किये हैं । और जहाँ कहीं निषेध किया है उसका यह अभिप्राय है कि जिसको पढ़ने पढ़ाने से कुछ भी न आवे वह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से 'ग्रन्थ' कहाता है । उसका पढ़ना पढ़ाना व्यर्थ है और जो स्त्रियों के पढ़ने का निषेध करते हो वह तुम्हारी मूर्खता, स्वार्थता और निर्बुद्धिता का प्रभाव है । देखो वेद में कन्याओं के पढ़ने का प्रमाण,—

ब्रह्मचर्य्येण कन्याः युवानं विन्दते पतिम् ।

अथर्व० [कां० ११ । प्र० २४ । अ० ३ । मं० १८]

जैसे लड़के ब्रह्मचर्य सेवन से पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त होके युवति, विदुषी, अपने अनुकूल प्रिय सदृश स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं वैसे (कन्या) कुमारी (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़, पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवति होके पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश प्रिय विद्वान् (युवानम्) पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष को (विन्दते) प्राप्त होवे इसलिये स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य और विद्या का ग्रहण अवश्य करना चाहिये ।

४६—(प्रश्न) क्या स्त्री लोग भी वेदों को पढ़ें ?

(उत्तर) अवश्य, देखो श्रौतसूत्रादि में —

इमं मन्त्रं पत्नी पठेत् ॥

अर्थात् स्त्री यज्ञ में इस मन्त्र को पढ़े । जो वेदादि शास्त्रों को न पढ़ी होवे तो यज्ञ में स्वरसहित मन्त्रों का उच्चारण और संस्कृतभाषण कैसे कर सके । भारतवर्ष की स्त्रियों में भूषणरूप गार्गी आदि वेदादि शास्त्रों को पढ़ के पूर्ण विदुषी हुई थीं, यह शतपथ-ब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है । भला जो पुरुष विद्वान् और स्त्री अविदुषी और स्त्री विदुषी और पुरुष अविद्वान् हो तो नित्यप्रति देवासुर-संग्राम घर में मचा रहें, फिर सुख कहा ? इसलिये जो स्त्री न पढ़ें तो कन्याओं की पाठशाला में अध्यापिका क्योंकर हो सकें तथा राजकार्य न्यायाधीशत्वादि, गृहाश्रम का कार्य जो पति को स्त्री और स्त्री को पति प्रसन्न रखना, घर के सब काम स्त्री के आधीन रहना इत्यादि काम बिना विद्या के अच्छे प्रकार कभी ठीक नहीं हो सकते ।

देखो आर्यावर्त के राजपुरुषों की स्त्रियां धनुर्वेद अर्थात् युद्ध विद्या भी अच्छे प्रकार जानती थीं क्योंकि जो न जानती होती तो केकयी आदि दशरथ आदि के साथ युद्ध में क्योंकर जा सकती और युद्ध कर सकती ? इसलिये ब्राह्मणी और क्षत्रिया को सब विद्या, वैश्या को व्यवहार विद्या और

को पाकादि मेवा की विद्या अवश्य पढ़नी चाहिये । जैसे पुरुषों को व्याकरण, धर्म और अपने व्यवहार की विद्या न्यून से न्यून अवश्य पढ़नी चाहिये वैसे स्त्रियों को भी व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्पविद्या तो अवश्य ही सांपनी चाहिये । क्योंकि इनके सांगे बिना सन्यासमत्य का निर्गम्य, पति आदि से अनुकूल वर्तमान, यथायोग्य सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन वद्वन और मुगिक्षा करना, घर के सब कार्यों को जैसा चाहिये वैसा करना करना वैद्यकविद्या से ओषधवन् अन्न पान बनाना और बनवाना नहीं कर सकनी जिसमे घर में रोग कभी न आवे और सब लोग सदा आनन्दित रहें । शिल्प विद्या के जाने बिना घर का बनवाना, वस्त्र आभूषण आदि का बनाना बनवाना, गणितविद्या के बिना सब का हिसाब समझना समझाना, वेदादि शास्त्रविद्या के बिना ईश्वर और धर्म को न जानके अधर्म में कभी नहीं बच सके । इसलिये वे ही धन्यवादाहर्त और कृतकृत्य हैं कि जो अपने सन्तानों को ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या में शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को बढ़ावें । जिसमे वे सन्तानादि मातृ, पितृ, पति, सासु, श्वशुर, राजा, प्रजा, पटोसी, दृष्ट मित्र और सन्तानादि से यथायोग्य धर्म में वर्तें । यही कोश अक्षय है इसको जितना व्यय करे उतना ही बढ़ता जाय, अन्य सब कोश व्यय करने में घट जाते हैं और दायभागी भी निजभाग लेते हैं और विद्या कोश का चोर वा दायभागी कोई भी नहीं हो सकता । इस कोश की रक्षा और वृद्धि करनेवाला विशेष राजा और प्रजा भी हैं ।

१०—कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम् ।

मनु० [७ । १५२]

राजा को योग्य है कि सब कन्या और लड़कों को उक्त समय से उक्त समय तक ब्रह्मचर्य में रखके, विद्वान् कराना । जो कोई आज्ञा को न माने तो उसके माता पिता को दण्ड देना अर्थात् राजा की आज्ञा से आठ वर्ष के पश्चात् लड़का वा लड़की किसी के घर में न रहने पावे किन्तु आचार्य कुल में रहें, जबतक समावर्त्तन का समय न आवे तबतक विवाह न होने पावे ।

स्वैरपामेव दानानां ब्रह्मदान विशिष्यते ।

चार्यज्ञगोमतीवासस्तिलकाञ्जनसर्पिषाम् ॥

[मनु० ४ । २३३]

समार में जितने दान हैं अर्थात् जल, अन्न, गौ, पृथिवी, वस्त्र, तिल, पुवर्ग और घृतादि इन सब दानों से वेदविद्या का दान अतिश्रेष्ठ है । इस

लेये जितना बन सके उतना प्रयत्न तन, मन, धन से विद्या की वृद्धि में किया करें। जिस देश में यथायोग्य ब्रह्मचर्य, विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार होता है वही देश सौभाग्यवान् होता है। यह ब्रह्मचर्याश्रम की शिक्षा संक्षेप से लिखी गई है, इसके आगे चौथे समुद्रास में समावर्तन और गृहाश्रम की शिक्षा लिखी जायगी।

इति श्रीमद्भयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते

शिक्षाविमये तृतीय समुद्रास. सम्पूर्णः ॥ ३ ॥

.

अथ चतुर्थसमुह्वासारम्भः

अथ समावर्त्तनविवाहगृहाश्रमविधिं वक्ष्यामः

१—वेदानधीन्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।

अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ॥ [मनु० ३।१]

जब यथावत् ब्रह्मचर्य [में] आचार्यानुकूल वर्त्तकर, धर्म से चारों तीनों वा दो अथवा एक वेद को सामोपाह्न पढ़ के जिसका ब्रह्मचर्य सन्निह न हुआ हो वह पुरुष वा स्त्री गृहाश्रम में प्रवेश करे ।

तं प्रतीत स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितः ॥

स्रग्विणं तल्प आसीनमर्हयेत्प्रथमं गवा ॥ [मनु० ३।३]

जो स्वधर्म अर्थात् यथावत् आचार्य और शिष्य का धर्म है उससे पुत्र पिता, जनक वा अध्यापक से ब्रह्मदाय अर्थात् विद्यारूप भाग का प्रह्व, माला का धारण करने वाला अपने पलङ्ग में बैठे हुए आचार्य को प्रह्व गोदान से सत्कार करे, वैसे लक्षणयुक्त विद्यार्थी को भी कन्या का पित गोदान से सत्कार करे ।

गुरुणामुमतः स्नान्वा समावर्त्तो यथाविधि ।

उद्धहेत द्विजो भार्या सवर्णा लक्षणान्विताम् ॥

गुरु की आज्ञा ले, स्नान कर गुरुकुल से अनुक्रमपूर्वक आ के ब्राह्म, क्षत्रिय, वैश्य अपने वर्णानुकूल सुन्दर लक्षणयुक्त कन्या से विवाह करे ।

२—असपिण्डा च या मातुरसगात्रा च या पितुः ।

सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारवार्मणि मैथुने ॥ मनु० [३।५]

जो कन्या माता के कुल की छः पीढ़ियों में न हो और पिता के गोत्र की न हो उस कन्या से विवाह करना उचित है । इसका यह प्रयोजन है कि— परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विपः ॥ [गोपय पू० २।२१]

यह निश्चित बात है कि जैसी परोक्ष पदार्थ में प्रीति होती है वैसी प्रत्यक्ष में नहीं । जैसे किसी ने मिश्री के गुण सुने हों और स्वार्थ न हो तो उसका मन उसी में लगा रहता है, जैसे किसी परोक्ष वस्तु की प्रशंसा सुनकर मिलने की उत्कट इच्छा होती है वैसे ही दूरस्थ अर्थात् जो अपने गोत्र वा माता के कुल में निकट सम्बन्ध की न हो उसी कन्या से वर का विवाह होना चाहिये ।

३—निकट और दूर विवाह करने में गुण ये हैंः—

(१) एक—जो बालक बाल्यावस्था से निकट रहते हैं, परस्पर लड़ा, लड़ाई और प्रेम करते, एक दूसरे के गुण, दोष, स्वभाव, बाल्यावस्था से विपरीत आचरण जानते और जो नञ्जे भी एक दूसरे को देखते हैं उनका परस्पर विवाह होने से प्रेम कभी नहीं हो सकता ।

(२) दूसरा—जैसे पानी में पानी मिलाने से विरक्षण गुण नहीं आता वैसे एक गोत्र पितृ वा मातृकुल में विवाह होने में धातुओं के बदल बदल नहीं होने से उत्पत्ति नहीं होती ।

(३) तीसरा—जैसे दूध में मिश्री वा शुंठ्यादि ओषधियों के योग होने से उत्तमता होती है वैसे ही भिन्न गोत्र मातृ पितृकुल से पृथक् वर्त्तमान स्त्री पुरुषों का विवाह होना उत्तम है ।

(४) चौथा—जैसे एक देश में रोगी हो वह दूसरे देश में वायु और पान पान के बदलने से रोगरहित होता है वैसे ही दूर देशस्थों के विवाह होने में उत्तमता है ।

(५) पांचवें—निकट सम्बन्ध करने में एक दूसरे के निकट होने में ख दुःख का भान और विरोध होना भी सम्भव है, दूर देशस्थों में नहीं और दूरस्थों के विवाह में दूर प्रेम की डोरी लम्बी बढ़ जाती है, निकटस्थ विवाह में नहीं ।

(६) छठे—दूर २ देश के वर्त्तमान और पदार्थों की प्राप्ति भी दूर सम्बन्ध होने में सहजता से हो सकती है, निकट विवाह होने में नहीं ।
शीलिये.—

दहिता दहिता दूरे हिता भवतीति ॥ निर० (३ । ४)

कन्या का नाम 'दुहिता' इस कारण से है कि इसका विवाह दूर देश होने से हितकारी होता है, निकट रहने में नहीं ।

(७) सातवें—कन्या के पितृकुल में दारिद्र्य होने का भी सम्भव है कि जय २ कन्या पितृकुल में आवेगी तब तब इसको कुछ न कुछ देना ही होगा ।

(८) आठवा—कोई निकट होने से एक दूसरे को अपने २ पितृ कुल के सहाय का घमण्ड और जय कुछ भी दोनों में वैमनस्य होगा तब तब ही पिता के कुल में चली जायगी । एक दूसरे की निन्दा अधिक होगी और विरोध भी, क्योंकि प्राय स्त्रियों का स्वभाव तीक्ष्ण और मृदु ना है, इत्यादि कारणों से पिता के एक गोत्र, माता की छ. पीढ़ी और पिप देश में विवाह करना अच्छा नहीं ।

४—महान्त्यपि समृद्धानि गोऽजाविधनधान्यतः ।

स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥ मनु० ॥

चाहें किन्ने ही धन धान्य, गाय, अजा, हाथी, घोड़े, राज, आदि से समृद्ध ये कुल हों तो भी विवाहसम्बन्ध में निम्नलिखित दश का त्याग करदे:—

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्चन्द्रो रोमशार्शसम् ।

क्षय्यामयाव्यपस्मारिष्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥ (मनु०)

जो कुल सक्रिया से हीन, सत्पुरुषों से रहित, वेदाध्ययन से शरीर पर बड़े २ लोम, अथवा बवासीर, क्षयी, दमा, साँसी, मिरगी, श्वेतकुष्ठ और गलितकुष्ठयुक्त हों, उन कुलों की कन्या वा साथ विवाह होना न चाहिये क्योंकि ये सब दुर्गुण और रोग करनेवाले के कुल में भी प्रविष्ट हो जाते हैं इसलिये उत्तम कुल के और लड़कियों का आपस में विवाह होना चाहिये ॥

नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाऽधिकांगीं न रोगिणीम् ।

नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटान्न पिङ्गलाम् ॥ मनु०

न पीले वर्णवाली, न अधिकाङ्गी अर्थात् पुरुष से लम्बी चौड़ी, बलवाली, न रोगयुक्ता, न लोमरहित, न बहुत लोमवाली, न करनेहारी और न भूरे नेत्रवाली ।

नक्षत्रवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ।

न पक्ष्यहिम्रेण्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥ मनु० (

न ऋक्ष अर्थात् अश्विनी, भरणी, रोहिणीदेई, रेवतीवाई, चित्ती नक्षत्रनामवाली, तुलसीआ, गेंदा, गुलाबी, चंपा, चमेली आदि नामवाली, गङ्गा, यमुना आदि नदी नामवाली, चाण्डाली आदि नामवाली, चिन्ध्या, हिमालया, पार्वती आदि पर्वत नामवाली, मैना आदि पक्षी नामवाली, नागी, भुजंगी आदि सर्प नामवाली, दासी, मीरादासी आदि प्रेय नामवाली, भीमकुंवारी, चडिका, भीषण नामवाली कन्या के साथ विवाह न करना चाहिये, क्योंकि कुत्सित और अन्य पदार्थों के भी हैं ।

अव्यङ्गाङ्गीसौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ।

तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत्त्रिखयम् ॥ मनु० (

जिसके सरल सूँधे अङ्ग हों, विरुद्ध न हों, जिसका नाम सुन्दर

शोदा, सुखदा आदि हो, हस और हथिनी के तुल्य जिसकी चाल हो, हल लोम, केश और दातयुक्त और जिसके सब अङ्ग कोमल हों वैसी स्त्री ; साथ विवाह करना चाहिये ।

५—(प्रश्न) विवाह का समय और प्रकार कौनसा अच्छा है ?

(उत्तर) सोलहवें वर्ष से लेकर चौबीसवें वर्ष तक कन्या और पच्चीसवें वर्ष से लेकर अठतालीसवें वर्ष तक पुरुष का विवाह समय उत्तम । इसमें जो सोलह और पच्चीस में विवाह करे तो निष्कृष्ट, अठारह बीस तीसरी तीस, पैंतीस वा चालीस वर्ष के पुरुष का मध्यम, चौबीस वर्ष की स्त्री और अठतालीस वर्ष के पुरुष का विवाह होना उत्तम है । जिस देश में इसी प्रकार विवाह की विधि श्रेष्ठ और ब्रह्मचर्य, विद्याभ्यास अधिक होता है वह देश सुखी और जिस देश में ब्रह्मचर्य विद्याग्रहणरहित बाल्यावस्था और अयोग्यता का विवाह होता है वह देश दुःख में डूब जाता है । क्योंकि ब्रह्मचर्य विद्या के ग्रहणपूर्वक विवाह के सुधार ही से सब बातों का सुधार और बिगड़ने से बचाव हो जाता है ।

६—(प्रश्न) अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी ।

दशवर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ १ ॥

माता चैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ।

त्रयस्ते नरक यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ २ ॥

ये श्लोक पाराशरी और शीघ्रबोध में लिखे हैं । अर्थ यह है कि कन्या की आठवें वर्ष विवाह में गौरी, नववें वर्ष रोहिणी, दशवें वर्ष कन्या और उसके भागे रजस्वला सज्ञा होती है ॥ १ ॥ जो दशवें वर्ष तक विवाह न करके रजस्वला कन्या को माता पिता और बड़ा भाई ये तीनों देख के नरक में गिरते हैं ।

(उत्तर)— ब्रह्मोवाच—

एकक्षणा भवेद् गौरी द्विक्षणेयन्तु रोहिणी ।

त्रिक्षणा सा भवेत् कन्या ह्यत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ १ ॥

माता पिता तथा भ्राता मातुलो भगिनी स्वका ।

सर्वे ते नरक यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ २ ॥

यह सद्योनिर्मित ब्रह्मपुराण का घटन है ।

अर्थ—जितने समय में परमाणु एक पलटा खावे उतने समय को 'क्षण' कहते हैं, जब कन्या जन्मे तब एक क्षण में गौरी, दूसरे में रोहिणी, तीसरे में कन्या और चौथे में रजस्वला हो जाती है ॥ १ ॥ उस रजस्वला को देख

के उसके माता, पिता, भाई मामा और बहिन सब नरक को जाते हैं
(प्रश्न) ये श्लोक प्रमाण नहीं ।

(उत्तर) क्यों प्रमाण नहीं ? क्या जो ब्रह्माजी के श्लोक
नो तुम्हारे भी प्रमाण नहीं हो सकते ।

(प्रश्न) वाह २, पराशर और काशीनाथ का भी प्रमाण नहीं

(उत्तर) वाह जी वाह ! क्या तुम ब्रह्माजी का प्रमाण नहीं करते
पराशर, काशीनाथ से ब्रह्माजी बड़े नहीं हैं ? जो तुम ब्रह्माजी के श्लोक
नहीं मानते तो हम भी पराशर, काशीनाथ के श्लोकों को नहीं मानते ।

(प्रश्न) तुम्हारे श्लोक असंभव होने से प्रमाण नहीं, क्योंकि
क्षण जन्म समय ही में बीत जाते हैं तो विवाह कैसे हो सकता है
उस समय विवाह करने का कुछ फल भी नहीं दीखता ।

(उत्तर) जो हमारे श्लोक असंभव हैं तो तुम्हारे भी असंभव हैं क्योंकि
नौ और दशवें वर्ष में भी विवाह करना निःफल है, क्योंकि सोलहवें वर्ष
पश्चात् चौबीसवें वर्ष पर्यन्त विवाह होने से पुरुष का वीर्य परिपक्व,
घलिष्ठ, स्त्री का गर्भाशय पूरा और शरीर भी बलशुक्त होने से सन्तान उत्तम
है । * जैसे आठवें वर्ष की कन्या में सन्तानोत्पत्ति का होना असंभव है

* उचित समय से न्यून आयुवाले स्त्री पुरुष को गर्भाधान में उ-
पवन्तरिजा 'सुश्रुत' में निषेध करते हैं:—

ऊनपेडशवर्षायामप्रातः पञ्चविंशतिम् ।

यथाधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥ १ ॥

जातो वा न चिरञ्जीविवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ।

तस्मादत्यन्तवालाया गर्भाधानं न कारयेत् ॥ २ ॥

सुश्रुत शारीरस्थाने अ० १० । श्लोक ४७, ४८

अर्थ—भोलद वर्ष में न्यून वयवाली स्त्री में पच्चीस वर्ष से न्यून
पुरुष जो गर्भ को स्थापन करे तो वह कुक्षिस्थ हुआ गर्भ विपत्ति को
होता अर्थात् पूर्ण काल तक गर्भाशय में रहकर उत्पन्न नहीं होता ॥ १ ॥

अथवा उत्पन्न हो तो फिर चिरकाल तक न जीवे वा जीवे तो
हो, इस कारण से अतिवाल्यावस्थावाली स्त्री में गर्भ स्थापन न करे ॥ २ ॥

पेमे २ शास्त्रोक्त नियम और मृष्टिक्रम को देखने और बुद्धि से
से यही सिद्ध होता है कि १६ वर्ष से न्यून स्त्री और २५ वर्ष से न्यून
वाला पुरुष कभी गर्भाधान करने के योग्य नहीं होता, इन नियमों से
ज्ञा करते हैं वे दुःखमागी होत हैं ॥ स० दा० ॥

गौरी, रोहिणी नाम देना भी अयुक्त है। यदि गौरी वन्या न हो किन्तु ली हो तो उसका नाम गौरी रखना व्यर्थ है। और गौरी महादेव की स्त्री, रोहिणी वासुदेव की स्त्री थी, उसको तुम पौराणिक लोग मातृसमान मानते हैं। जब वन्यामात्र से गौरी आदि की भावना करते हो तो फिर उनसे विवाह करना कैसे सम्भव और वर्ममुक्त हो सकता है। इसलिये तुम्हारे घर हमारे दो २ श्लोक मिथ्या ही हैं, क्योंकि जैसा हमने 'ब्रह्मोवाच' करके लिखा है वना लिये हैं वैसे वे भी पराशर आदि के नाम से बना लिये हैं। इसलिये उन सबका प्रमाण छोड़ के वेदों के प्रमाण से सब काम किया करो।
 ओ मनु में—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती ।

ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥ मनु० (१।१०)

वन्या रजस्वला हुए पीछे तीन वर्ष पर्यन्त पति की खोज करके अपने पति को प्राप्त होवे। जब प्रतिमास रजोदर्शन होता है तो तीन वर्षों ३७ बार रजस्वला हुए पश्चात् विवाह करना योग्य है, इससे पूर्व नहीं।

काममामरणात्तिष्ठद् गृहे कन्यर्त्तमपि ।

न चैवैना प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥ (मनु० १।८९)

चाहे लडका लडकी मरणपर्यन्त कुमारे रहें परन्तु असदृश अर्थात् पर-
 र विरुद्ध गुण, कर्म स्वाभाववालों का विवाह कभी न होना चाहिये।
 इससे सिद्ध हुआ कि न पूर्वोक्त समय से प्रथम वा असदृशों का विवाह
 न योग्य है।

७—(प्रश्न) विवाह करना माता पिता के आधीन होना चाहिये वा
 लडका लडकी के आधीन रहे ?

(उत्तर) लडका लडकी के आधीन विवाह होना उत्तम है। जो माता
 पिता विवाह करना कभी विचारें तो भी लडका लडकी की प्रसन्नता के बिना
 होना चाहिये क्योंकि एक दूसरे की प्रसन्नता से विवाह होने में विरोध
 बहुत कम होता और सन्तान उत्तम होते हैं। अप्रसन्नता के विवाह में नित्य
 विरोध ही रहता है, विवाह में मुख्य प्रयोजन घर और कन्या का है माता
 पिता का नहीं, क्योंकि जो उनमें परस्पर प्रसन्नता रहे तो उन्हीं को सुख
 और विरोध में उन्हीं को दुःख होता। और—

मन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्ता भार्यया तथैव च ।

स्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥ मनु० (१।२०)

हारी, (नव्यानव्या.) नवीन २ शिक्षा और अवस्था से पूर्ण (भवन्ती.) मान (युवतयः) पूर्ण युवावस्थास्थ स्त्रियां (देवानाम्) ब्राह्मचर्य, तपसों से पूर्ण विद्वानों के (एकम्) अद्वितीय (महत्) बड़े (असुरत्वम्) शास्त्र शिक्षागुक्त, प्रज्ञा में रमण के भावार्थ को प्राप्त होती हुई तरुणियों को प्राप्त होके, (आधुनयन्ताम्) गर्भ धारण करें। कभी भूल के बाल्यावस्था में पुरुष का मन से भी ध्यानान करें क्योंकि यही कर्म इस और परलोक के सुख का साधन है। बाल्यावस्था में विवाह से पुराना पुरुष का नाश उससे अधिक स्त्री का नाश होता है ॥ १ ॥

जैसे (नु) शीघ्र (शश्रमाणा) अत्यन्त श्रम करनेहारे, (वृषणः) सींचने में समर्थ, पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष (पत्नीः) युवावस्थास्थ स्त्रियों को प्रिय स्त्रियों को (जगन्मु.) प्राप्त होकर पूर्ण शतवर्ष वा उससे अधिक आयु को आनन्द से भोगते और पुत्र पौत्रादि से सयुक्त रहते हैं स्त्री पुरुष सदा वर्त्ते, जैसे (पूर्वी) पूर्व वर्त्तमान (शरदः) शरद ऋतुओं और (जरयन्ती) वृद्धावस्था को प्राप्त कराने वाली (उपस.) उत्पत्तिकाल की वेलाओं को (दोषा) रात्री और (वस्तो) दिन (तनूनाम्) शरीरों की (श्रियम्) शोभा को (जरिमा) अतिशय वृद्धपन बल और शोभा को [मिनाति] दूर कर देता है वैसे (अहम्) मैं स्त्री वा पुरुष (उ) उच्छेद प्रकार (अपि) निश्चय करके ब्राह्मचर्य से विद्या शिक्षा शरीर और आत्मा के बल और युवावस्था को प्राप्त हो ही के विवाह करूँ, इससे विरुद्ध ज्ञाना वेदविरुद्ध होने से सुखदायक विवाह कभी नहीं होता ॥ ३ ॥

जबतक इसी प्रकार सब ऋषि मुनि, राजा माहाराजा आर्य लोग ब्राह्मचर्य से विद्या पद ही के स्वयंवर विवाह करते थे तबतक इस देश की प्रजा उन्नति होती थी। जब से यह ब्राह्मचर्य से विद्या का न पढ़ना, बाल्यावस्था में पराधीन अर्थात् माता पिता के आधीन विवाह होने लगा तब से क्रमशः आर्यावर्त्त देश की हानि होती चली आई है। इससे इस देश के काम को छोड़ के सज्जन लोग पूर्वोक्त प्रकार से स्वयंवर विवाह किया करते हैं। सो विवाह वर्णानुक्रम से करें और वर्णव्यवस्था भी गुण, कर्म, स्वभाव अनुसार होनी चाहिये।

८—(प्रश्न) क्या जिसके माता पिता ब्राह्मण हों वह ब्राह्मणी ब्राह्मण होता है और जिसके माता पिता अन्य वर्णस्थ हो उनका सन्तान कभी ब्राह्मण हो सकता है ?

जिस कुल में स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री सदा प्रसन्न रहती है कुल में आनन्द, लक्ष्मी और कीर्ति निवास करती है और जहाँ कलह होता है वहाँ दुःख, दरिद्रता और निन्दा निवास करती है। जैसी स्वयंवर की रीति आर्यावर्त्त में परम्परा से चली आती है वही उत्तम है। जब स्त्री पुरुष विवाह करना चाहें तब विद्या, विनय, रूप, आयु, बल, कुल शरीर का परिमाणादि यथा योग्य होना जबतक इनका मेल नहीं होता तबतक विवाह में कुछ भी सुख नहीं और न बाल्यावस्था में विवाह करने से सुख होता।

युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः
तं धीरासः क्वय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः

ऋ० मं० ३। सू० ८। मं० १

आ धेनवो धुनयन्तामशिश्वीः सवर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः
नव्या नव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २ ॥

ऋ० मं० ३। सू० ५५। मं० ११

पूर्वोऽहं शरदः शश्रमाणा दोषावस्तोरुषसो जरयन्तीः ॥
मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यु नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः ॥

ऋ० मं० १। सू० १७९। मं० १

जो पुरुष (परिवीतः) सब ओर से यज्ञोपवीत, ब्रह्मचर्य सेवक उत्तम शिक्षा और विद्या से युक्त, (सुवासाः) सुन्दर वस्त्र धारण हुआ, ब्रह्मचर्ययुक्त, (युवा) पूर्ण ज्ञान होके विद्या ग्रहण करने में (आगात्) आता है (स उ) वही दूसरे विद्याजन्म में (जायमानः) प्रसिद्ध होकर (श्रेयान्) अतिशय शोभायुक्त मङ्गलकारी (भवति) है। (स्वाध्यः) अच्छे प्रकार ध्यानयुक्त (मनसा) विज्ञान से (देवि) विद्या वृद्धि की कामनायुक्त, (धीरासः) धैर्ययुक्त, (क्वयः) लोग (तम्) उसी पुरुष को (उन्नयन्ति) उन्नति दील करके करते हैं और जो ब्रह्मचर्यधारण, विद्या उत्तम शिक्षा का ग्रहण किये अथवा बाल्यावस्था में विवाह करते हैं वे स्त्री पुरुष नष्ट भ्रष्ट होकर में प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं होते ॥ १ ॥

जो (अप्रदुग्धाः) किसी ने दुही नहीं उन (धेनवः) गौओं समान (अशिश्वीः) बाल्यावस्था से रहित (सवर्दुघाः) सब प्रकार उत्तम व्यवहारों को पूर्ण करने हारी, (शशयाः) कुमारावस्था को

ने हारी, (नव्यानव्या) नवीन २ शिक्षा और अवस्था से पूर्ण (भवन्तीः) मान (युवतयः) पूर्ण युवावस्थास्थ स्त्रियां (देवानाम्) ब्रह्मचर्य, नेपथ्य से पूर्ण विद्वानों के (एकम्) अद्वितीय (महत्) बड़े (असुरत्वम्) ॥ शास्त्र शिक्षायुक्त, प्रज्ञा में रमण के भावार्थ को प्राप्त होती हुई तरुण नियों को प्राप्त होके, (आधुनयन्ताम्) गर्भ धारण करें। कभी भूल के बाल्यावस्था में पुरुष का मन से भी ध्यानान करें क्योंकि यही कर्म इस क और परलोक के सुख का साधन है। बाल्यावस्था में विवाह से तना पुरुष का नाश उससे अधिक स्त्री का नाश होता है ॥ १ ॥

जैसे (तु) शीघ्र (शश्रमाणा) अत्यन्त श्रम करनेवाले, (वृषणः) र्य सींचने में समर्थ, पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष (पत्नी) युवावस्थास्थ स्त्रियों को प्रिय स्त्रियों को (जगन्मु.) प्राप्त होकर पूर्ण शतवर्ष वा उससे अधिक आयु को आनन्द से भोगते और पुत्र पौत्रादि से सयुक्त रहते हैं वे स्त्री पुरुष सदा वर्त्ते, जैसे (पूर्वी.) पूर्व वर्त्तमान (शरदः) शरद ऋतुओं और (जरयन्तीः) वृद्धावस्था को प्राप्त कराने वाली (उपस) त काल की वेलाओं को (दोषा) रात्री और (वस्तो) दिन (तनूनाम्) रीरों की (श्रियम्) शोभा को (जरिमा) अतिशय वृद्धपन बल और शोभा को [मिनाति] दूर कर देता है वैसे (अहम्) मैं स्त्री वा पुरुष (उ) ल्ले प्रकार (अपि) निश्चय करके ब्रह्मचर्य से विद्या शिक्षा शरीर और आत्मा के बल और युवावस्था को प्राप्त हो ही के विवाह करूँ, इससे विरुद्ध करना वेदविरुद्ध होने से सुखदायक विवाह कभी नहीं होता ॥ ३ ॥

जबतक इसी प्रकार सब ऋषि मुनि, राजा माहाराजा आर्य लोग ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ ही के स्वयंवर विवाह करते थे तबतक इस देश की प्रजा उन्नति होती थी। जब से यह ब्रह्मचर्य से विद्या का न पढ़ना, बाल्यावस्था में पराधीन अर्थात् माता पिता के आधीन विवाह होने लगा तब से क्रमशः आर्यावर्त्त देश की हानि होती चली आई है। इससे इस प्रजा का काम को छोड़ के सज्जन लोग पूर्वोक्त प्रकार से स्वयंवर विवाह किया करें। सो विवाह वर्णानुक्रम से करे और वर्णव्यवस्था भी गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार होनी चाहिये।

८—(प्रश्न) क्या जिसके माता पिता ब्राह्मण हों वह ब्राह्मणी ब्राह्मण होता है और जिसके माता पिता अन्य वर्णस्थ हों उनका सन्तान कभी ब्राह्मण हो सकता है ?

(उत्तर) हां, बहुत से होगये, होते हैं और होंगे भी । जैसे अनेक उपनिषद् में जावाल ऋषि अज्ञातकुल, महाभारत में विश्वामित्र, वर्ण और मातंग ऋषि चांडाल कुल से ब्राह्मण होगये थे, अब भी जो विद्या स्वभाववाला है वही ब्राह्मण के योग्य और मूल्य शुद्ध के योग्य है और वैसा ही आगे भी होगा ।

(प्रश्न) भला जो रज वीर्य से शरीर हुआ है वह बदल कर वर्ण के योग्य कैसे हो सकता है ?

(उत्तर) रज वीर्य के योग से ब्राह्मण-शरीर नहीं होता, किन्तु स्वाध्यायेन जपैर्होमैश्चैविद्येनेज्यया सुतैः ।

महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीय क्रियते ननुः ॥ मनु० [११४]

इसका अर्थ रूढ़ कर आये हैं, अब यहाँ भी संक्षेप से कहते हैं । (स्वाध्यायेन पढ़ने पढ़ाने, (जपैः) विचार करने कराने, नानाविध होम के सम्पूर्ण वेदों को शब्द, अर्थ, सम्यन्ध, स्वरोच्चारण सहित पढ़ने (इज्यया) पौर्णमासी, इष्टि आदि के करने, (सुतैः) पूर्वोक्त धर्म से सन्तानोत्पत्ति, (महायज्ञैश्च) पूर्वोक्त ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पित्र्य वैश्वदेवयज्ञ और अतिथियज्ञ, (यज्ञैश्च) अग्निष्टोमादियज्ञ, विद्वानों का सत्कार, सत्यभाषण, परोपकारादि सत्यकर्म और सम्पूर्ण शिल्पविधादि के दुष्टाचार छोड़ श्रेष्ठाचार में वर्तने से (इज्यन्) यह (तनुः) शरीर (ब्राह्मण) ब्राह्मण का (क्रियते) किया जाता है ।

क्या इस श्लोक को तुम नहीं मानते ? मानते हैं ।

फिर क्यों रज वीर्य के योग से वर्णव्यवस्था मानते हो ?

मैं अकेला नहीं मानता किन्तु बहुत से लोग परम्परा से ऐसा ही मानते हैं ।

(प्रश्न) क्या तुम परम्परा का भी खण्डन करोगे ?

(उत्तर) नहीं, परन्तु तुम्हारी उलटी समझ को नहीं मान के खण्डन भी करते हैं ।

(प्रश्न) हमारी उलटी और तुम्हारी सूधी समझ है इसमें क्या प्रमाण ?

(उत्तर) यही प्रमाण है कि जो तुम पांच सात पीढ़ियों के वर्तमान के सनातन व्यवहार मानते हो और हम वेद तथा सृष्टि के आरम्भ से आजपर्यन्त की परम्परा मानते हैं । देखो, जिसका पिता श्रेष्ठ वह पुत्र दुष्ट और जिसका पुत्र श्रेष्ठ वह पिता दुष्ट तथा कहीं दोनों श्रेष्ठ वा दुष्ट देखने में आते इसलिये तुम लोग भ्रम में पड़े हो । देखो, मनु महाराज ने क्या कहा ?

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः ।

तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन् रिप्यते ॥ मनु० [४।१७८]

जिस मार्ग से इसके पिता, पितामह चले हों इसी मार्ग में सन्तान भी लें, परन्तु (सताम्) जो सत्पुरुष पिता पितामह हो उन्हीं के मार्ग में लें और जो पिता, पितामह दुष्ट हों तो उन के मार्ग में कभी न चलें । योंकि उत्तम धर्मात्मा पुरुषों के मार्ग में चलने से दुःख कभी नहीं होता ।

इसको तुम मानते हो वा नहीं ? हा २ मानते हैं ।

और देखो जो परमेश्वर की प्रकाशित वेदोक्त बात है वही सनातन और सके विरुद्ध है सनातन कभी नहीं हो सकती । ऐसा ही सब लोगो को मानना चाहिये वा नहीं ? अवश्य चाहिये ।

जो ऐसा न माने उससे कहो कि किसी का पिता दरिद्र हो और उसका व्रधनाट्य होवे तो क्या अपने पिता के दरिद्रावस्था के अभिमान से धन षे फेंक देवे ! क्या जिस का पिता अन्धा हो उसका पुत्र भी अपनी आँखों से फोड़ लेवे ! जिसका पिता कुकर्मी हो क्या उसका पुत्र भी कुकर्म ही रे ! नहीं २, किन्तु जो जो पुरुषों के उत्तम कर्म हों उनका सेवन और ए कर्मों का त्याग कर देना सब को अत्याचर्यक है । जो कोई राजवीर्य के लोभ से वर्णाश्रम व्यवस्था माने और गुण कर्मों के योग से न माने तो उससे छुना चाहिये कि जो कोई अपने वर्ण को छोड़ नीच, अन्त्यज अथवा कुश्रीन, सलमान हो गया हो उसको भी ब्राह्मण क्यों नहीं मानते ? यहाँ यही होगा कि उसने ब्राह्मण के कर्म छोड़ दिये इसलिये वह ब्राह्मण नहीं है । ससे यह भी सिद्ध होता है कि जो ब्राह्मणादि उत्तम वर्म करते हैं वे ही ब्राह्मणादि और जो नीच भी उत्तम वर्ण के गुण कर्म स्वभाववाला होवे तो सको भी उत्तम वर्ण में और जो उत्तम वर्णस्थ होके नीच काम करे तो सभी नीच वर्ण में गिनना अवश्य चाहिये ।

-(प्रश्न) ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृत ।

ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥

यह यजुर्वेद के ३१ वें अध्याय का ११ वां मन्त्र है । इसका यह अर्थ कि ब्राह्मण ईश्वर के मुख, क्षत्रिय बाहू, वैश्य ऊरु और शूद्र पगों से उत्पन्न आ है इसलिये जैसे मुख न बाहू आदि और बाहू आदि न मुख होते हैं, सी प्रकार ब्राह्मण न क्षत्रियादि और क्षत्रियादि न ब्राह्मण हो सकते ।

(उत्तर) इस मन्त्र का अर्थ जो तुमने किया वह ठीक नहीं, क्योंकि

यहां पुरुष अर्थात् निराकार व्यापक परमात्मा की अनुवृत्ति है। जो निराकार है तो उसके मुखादि अङ्ग नहीं हो सकते, हो मुखादि हो वह पुरुष अर्थात् व्यापक नहीं और जो व्यापक नहीं, वह जगत् का स्रष्टा, धर्ता, प्रलयकर्ता, जीवों के पुण्य पापों की जानके करनेहारा, सर्वज्ञ, अजन्मा, मृत्युरहित आदि विशेषणवाला नहीं हो इसलिये इसका यह अर्थ है कि जो (अम्य) पूर्ण व्यापक परमात्मा सृष्टि में मुख के सदृश सब में मुख्य उत्तम हो वह (ब्राह्मणः) (बाहू) 'बाहुर्वै बलं बाहुर्वै वीर्यम्।' शतपथब्राह्मण [५।४। बल वीर्य का नाम बाहु है, वह जिसमें अधिक हो सो (राज्य) क्षत्रिय। (ऊरु) कटि के अधोभाग और जानु के उपरिस्थ भाग का नाम है। जो सब पदार्थों और सब देशों में ऊरु के बल से जावे प्रवेश करे वह (वैश्यः) वैश्य और (पद्भ्याम्) जो पग के अर्थात् अङ्ग के सदृश मूर्खत्वादि गुण वाला हो वह शूद्र है। अन्यत्र शतपथ में भी इस मंत्र का ऐसा ही अर्थ किया है, जैसे:—

यस्मादेते मुख्यास्तस्मान्मुखतो ह्यसृज्यन्त इत्यादि।

जिससे ये मुख्य हैं इससे मुख से उत्पन्न हुए ऐसा कथन संगत है अर्थात् जैसा मुख सब अङ्गों में श्रेष्ठ है वैसे पूर्ण विद्या और उत्तम कर्म स्वभाव से युक्त होने से मनुष्यजाति में उत्तम ब्राह्मण कहाता है। जो मेखर के निराकार होने से मुखादि अङ्ग ही नहीं हैं तो मुख आदि से होना असम्भव है। जैसा कि बन्ध्या स्त्री के पुत्र का विवाह होना जो मुखादि अङ्गों से ब्राह्मणादि उत्पन्न होते तो उपादान कारण के सदृश णादि की आकृति अवश्य होती। जैसे मुख का आकार गोलमोल है वैसे उनके शरीर का भी गोलमोल मुखाकृति के सामान होना चाहिये। के शरीर भुजा के सदृश, वैश्यों के ऊरु के तुल्य और शूद्रों के शरीर सामान आकार वाले होने चाहियें। ऐसा नहीं होता। और जो कोई प्रश्न करेगा कि जो मुख आदि से उत्पन्न हुए थे उनकी ब्राह्मणादि संज्ञा परन्तु तुम्हारी नहीं क्योंकि जैसे और सब लोग गर्भाशय से उत्पन्न हैं वैसे तुम भी होते हो। तुम मुखादि से उत्पन्न न होकर ब्राह्मणादि का] अभिमान करते हो इसलिये तुम्हारा कहा अर्थ व्यर्थ है और जो अर्थ किया है वह सच्चा है।

ऐसा ही अन्यत्र भी कहा है। जैसा:—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चेति शूद्रताम् ।

क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥ मनु० [१०।६५]

जो शूद्रकुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के सामान गुण, र्म, स्वभाव वाला हो तो वह शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हो जाय, वे ही जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यकुल में उत्पन्न हुआ हो और उसके ग, कर्म, स्वभाव शूद्र के सदृश हों तो वह शूद्र हो जाय, वैसे क्षत्रिय । वैश्य के कुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण ब्राह्मणी वा शूद्र के समान होने से ब्राह्मण और शूद्र भी हो जाता है । अर्थात्, चारों वर्णों में जिस १ वर्ण के दश जो १ पुरुष वा स्त्री हो वह २ उसी वर्ण में गिनी जावे ।

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ । १ ।
धर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जाति-
रिवृत्तौ ॥ २ ॥

ये आपस्तम्ब के सूत्र हैं ।

अर्थ—धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपने से उत्तम १ वर्णों को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जावे कि जिस २ के योग्य होवे ॥ १ ॥

वैसे अधर्माचरण से पूर्व १ अर्थात् उत्तम २ वर्णवाला मनुष्य अपने से निचे वाले वर्णों को प्राप्त होता है और उसी वर्ण में गिना जावे ॥ १ ॥
से पुरुष जिस जिस वर्ण के योग्य होता है वैसे ही स्त्रियों की भी व्यवस्था मिलनी चाहिये । इससे क्या सिद्ध हुआ कि इस प्रकार होनेसे सब वर्ण अपने २ गुण, कर्म स्वभावयुक्त होकर शुद्धता के साथ रहते हैं अर्थात् ब्राह्मण कुल में कोई क्षत्रिय वैश्य और शूद्र के सदृश न रहे और क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र वर्ण भी शुद्ध रहते हैं अर्थात् वर्णसंकरता प्राप्त न होगी । इससे किसी वर्ण की निन्दा वा अयोग्यता भी न होगी ।

१०—(प्रश्न) जो किसी के एक ही पुत्र वा पुत्री हो वह दूसरे वर्ण । प्रविष्ट हो जाय तो उसके मा बाप की सेवा कौन करेगा और वंशच्छेदन भी होजायगा । इसकी क्या व्यवस्था होनी चाहिये ?

(उत्तर) न किसी की सेवा का भद्र और न वंशच्छेदन होगा क्योंकि नको अपने लड़के लड़कियों के बदले स्ववर्ण के योग्य दूसरे संतान विद्या-तमा और राजसभा की व्यवस्था से मिलेंगे, इसलिये कुछ भी अव्यवस्था न होगी । यह गुण कर्मों से वर्णों की व्यवस्था कन्याओं की सोलहवें वर्ष और पुरुषों की पच्चीसवें वर्ष की परीक्षा में नियत करनी चाहिये और इसी

यहां पुरुष अर्थात् निराकार व्यापक परमात्मा की अनुवृत्ति है। निराकार है तो उसके मुखादि अङ्ग नहीं हो सकते, हो मुखादि हो वह पुरुष अर्थात् व्यापक नहीं और जो व्यापक नहीं, वह जगत् का क्षृष्टा, धर्ता, प्रलयकर्ता, जीवों के पुण्य पापों की जानके करनेहारा, सर्वज्ञ, अजन्मा, मृत्युरहित आदि विशेषणवाला नहीं हो इसलिये इसका यह अर्थ है कि जो (अस्य) पूर्ण व्यापक परमात्मा सृष्टि में मुख के सदृश सब में मुख्य उत्तम हो वह (ब्राह्मणः) (बाहू) 'बाहुर्वै बलं बाहुर्वै वीर्यम्।' शतपथब्राह्मण [॥ बल वीर्य का नाम बाहु है, वह जिसमें अधिक हो सो (१) क्षत्रिय। (ऊरु) कटि के अधोभाग और जानु के उपरिस्थ भाग का नाम है। जो सब पदार्थों और सब देशों में ऊरु के बल से जावे प्रवेश करे वह (वैश्यः) वैश्य और (पद्भ्याम्) जो पग के अर्थात् अङ्ग के सदृश मूर्खत्वादि गुण वाला हो वह शूद्र है। अन्यत्र शतपथ में भी इस मंत्र का ऐसा ही अर्थ किया है, जैसे:—

यस्मादेते मुख्यास्तस्मान्मुखतो ह्यसृज्यन्त इत्यादि। जिससे ये मुख्य हैं इससे मुख से उत्पन्न हुए ऐसा कथन संगत है अर्थात् जैसा मुख सब अङ्गों में श्रेष्ठ है वैसे पूर्ण विद्या और उत्तम कर्म स्वभाव से युक्त होने से मनुष्यजाति में उत्तम ब्राह्मण कहाता है। मेश्वर के निराकार होने से मुखादि अङ्ग ही नहीं हैं तो मुख आदि से होना असम्भव है। जैसा कि बन्ध्या स्त्री के पुत्र का विवाह होना! जो मुखादि अङ्गों से ब्राह्मणादि उत्पन्न होते तो उपादान कारण के सदृशणादि की आकृति अवश्य होती। जैसे मुख का आकार गोलमोल है वैसे उनके शरीर का भी गोलमोल मुखाकृति के सामान होना चाहिये। के शरीर भुजा के सदृश, वैश्यों के ऊरु के तुल्य और शूद्रों के शरीर का सामान आकार वाले होने चाहियें। ऐसा नहीं होता। और जो कोई प्रश्न करेगा कि जो २ मुखादि से उत्पन्न हुए थे उनकी ब्राह्मणादि संज्ञा परन्तु तुम्हारी नहीं क्योंकि जैसे ओर सब लोग गर्भाशय से उत्पन्न वैसे तुम भी होते हो। तुम मुखादि से उत्पन्न न होकर ब्राह्मणादि का] अभिमान करते हो इसलिये तुम्हारा कहा अर्थ व्यर्थ है और जो अर्थ किया है वह सच्चा है।

ऐसा ही अन्यत्र भी कहा है। जैसा:—

और निन्दा कभी न करना ॥ २ ॥ ये पन्द्रह कर्म और गुण ब्राह्मण वर्णस्थानुष्यों में अवश्य होने चाहियें ॥

क्षत्रिय—

प्रजाना रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।

विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥ मनु० [१। ८९]

शौर्यं तेजा धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यलायनम् ।

दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ २ ॥

भ० गी० (अध्याय १५ । श्लोक ४३)

न्याय से प्रजा की रक्षा अर्थात् पक्षपात छोड़ के ध्रोष्ठों का सत्कार और दुष्टों का तिरस्कार करना, सब प्रकार से सब का पालन, (दान) वेद्या धर्म की प्रवृत्ति और सुपाम्रों की सेवा में धनादि पदार्थों का व्यय करना, (इज्या) अग्निहोत्रादि यज्ञ करना या कराना, (अध्ययन) वेदादि शास्त्रों का पढ़ना तथा पढ़वाना और, (विषयेषु०) विषयों में न फस कर जितेन्द्रिय रह के सदा शरीर और आत्मा से बलवान् रहना ॥ १ ॥ (शौर्यं) सैकड़ों सहस्रों से भी युद्ध करने में अकेला भय न होना, (तेजः) पदा तेजस्वी अर्थात् दीनतारहित, प्रगल्भ, दृढ़ रहना, (धृतिः) धैर्यवान् होना, (दाक्ष्यं) राजा और प्रजासम्यन्धी व्यवहार और सब शास्त्रों में अति वतुर होना, (युद्धे०) युद्ध में भी दृढ़ निश्चिन्त रहके उससे कभी न हटना, न भागना अर्थात् इस प्रकार से लड़ना कि जिससे निश्चित विजय होवे, आप बचे, जो भागने से वा शत्रुओं को धोखा देने से जीत होती हो तो ऐसा ही करना, (दान) दानशीलता रखना, (ईश्वरभाव) पक्षपातरहित होके सबके साथ यथायोग्य वर्त्तना, विचार के देना, प्रतिज्ञा पूरी करना, उजको कभी भङ्ग होने न देना । ये ग्यारह क्षत्रिय वर्ण के कर्म और गुण हैं ॥ २ ॥

वैश्यः—

पशूना रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।

वणिक्पथ कुत्सीदं च वैश्यस्य कृपिमेव च ॥ मनु० [१। ९०]

(पशुरक्षा) गाय आदि पशुओं का पालन, वर्द्धन करना, (दान)

वेद्या धर्म की वृद्धि करने कराने के लिये धनादि का व्यय करना, (इज्या) अग्निहोत्रादि यज्ञों का करना, (अध्ययन) वेदादि शास्त्रों का पढ़ना, (वणिक्पथ) सब प्रकार के व्यापार करना, (कुत्सीद) एक सैकड़ों में शर, छ, आठ, बारह, सोलह वा बीस आना, से अधिक व्याज और

क्रम से अर्थात् ब्राह्मण वर्ण का ब्राह्मणी, क्षत्रिय वर्ण का क्षत्रिया, वैश्य का वैश्या और शूद्र वर्ण का शूद्रा के साथ विवाह होना चाहिये अपने १ वर्णों के कर्म और परस्पर प्रीति भी यथायोग्य रहेगी ।

११—अब इन चारों वर्णों के कर्त्तव्य कर्म और गुण ये हैं—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजन तथा ।

दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥१॥ मनु० ।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।

ज्ञान विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ २ ॥

भ० गी० (अध्याय १८ श्लोक ४१)

ब्राह्मण के पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, कराना, दान, लेना, देना है । परन्तु 'प्रतिग्रहः प्रत्यवरः ।' मनु० (१० । १०९) अर्थात् (लेना नीच कर्म है ॥ १ ॥ (शमः) मन से घुरे काम की इच्छा भी न और उसको अधर्म में कभी प्रवृत्त न होने देना, (दमः) श्रोत्र और आदि इन्द्रियों को अन्यायाचरण से रोक कर धर्म में चलाना, (तपः) सदा ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय होके कर्मानुष्ठान करना, (शौच)—

अग्निर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति ।

विद्यानपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ॥ मनु०, (५१)

जल से बाहर के अङ्ग, सन्याचार से मन, विद्या और धर्मानुष्ठान जीवात्मा और ज्ञान से बुद्धि पवित्र होती है । भीतर रागद्वेषादि दोष बाहर के मलों को दूर कर शुद्ध रहना अर्थात् सत्याऽसत्य के (सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग से निश्चय पवित्र होता (क्षान्ति) अर्थात् निन्दा, स्तुति, सुख दुःख शीतोष्ण, क्षुधा, तृप्ति, लाम, मानापमान आदि, हर्ष, शोक छोड़ के धर्म में दृढ़ निश्चय (आर्जव) कोमलता, निरभिमान, सरलता, सरल स्वभाव रचना, लतादि दोष छोड़ देना, (ज्ञान) सब वेदादि शास्त्रों को साङ्गोपाङ्ग पढ़ाने का सामर्थ्य, विवेक, सत्य का निर्णय, जो वस्तु जैसा हो अर्थात् को जड़, चेतन को चेतन जानना और मानना, (विज्ञान) पृथिवी लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों को विशेषता से जानकर उनसे उपयोग लेना, (आस्तिक्य) कभी वेद, ईश्वर, मुक्ति, पूर्व परजन्म, विद्या, सत्संग, माता, पिता, आचार्य और अतिथियों की सेवा को न

और निन्दा कभी न करना ॥ २ ॥ ये पन्द्रह कर्म और गुण ब्राह्मण वर्णस्थ पुरुषों में अवश्य होने चाहियें ॥

क्षत्रिय—

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।

विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥ मनु० [१। ८९]

शौर्यं तेजा धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यलायनम् ।

दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ २ ॥

भ० गी० (अध्याय १५ । श्लोक ४३)

न्याय से प्रजा की रक्षा अर्थात् पक्षपात छोड़ के श्रेष्ठों का सत्कार और दुष्टों का तिरस्कार करना, सब प्रकार से सब का पालन, (दान) वेद्या धर्म की प्रवृत्ति और सुपात्रों की सेवा में धनादि पदार्थों का व्यय करना, (इज्या) अग्निहोत्रादि यज्ञ करना वा कराना, (अध्ययन) वेदादि शास्त्रों का पढ़ना तथा पढ़वाना और, (विषयेषु०) विषयों में न फस कर जितेन्द्रिय रह के सदा शरीर और आत्मा से दलवान् रहना ॥ १ ॥ (शौर्यं) सैकड़ों सहस्रों से भी युद्ध करने में अकेला भय न होना, (तेजः) पदा तेजस्वी अर्थात् दीनतारहित, प्रगल्भ, दृढ़ रहना, (धृति) धैर्यवान् होना, (दाक्ष्यं) राजा और प्रजासम्बन्धी व्यवहार और सब शास्त्रों में अति बतुर होना, (युद्धे०) युद्ध में भी दृढ़ निःशंकरहके उससे कभी न हटना, न भागना अर्थात् इस प्रकार से लड़ना कि जिससे निश्चित विजय होवे, आप बचे, जो भागने से वा शत्रुओं को धोखा देने से जीत होती हो तो ऐसा ही करना, (दान) दानशीलता रखना, (ईश्वरभाव) पक्षपातरहित होके सबके साथ यथायोग्य वर्तना, विचार के देना, प्रतिज्ञा पूर्ण करना, उजको कभी भग्न होने न देना । ये ग्यारह क्षत्रिय वर्ण के कर्म और गुण हैं ॥ २ ॥

वैश्य —

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।

वणिक्पथ कुमीदं च वैश्यस्य कृपिमेव च ॥ मनु० [१। ९०]

(पशुरक्षा) गाय आदि पशुओं का पालन, वर्द्धन करना, (दान) वेद्या धर्म की वृद्धि करने कराने के लिये धनादि का व्यय करना, (इज्या) अग्निहोत्रादि यज्ञों का करना, (अध्ययन) वेदादि शास्त्रों का पढ़ना, (वणिक्पथ) सब प्रकार के व्यापार करना, (कुमीदं) एक सैकड़े में चार, छ, आठ, बारह, सोलह वा बीस आनो, से अधिक व्याज और

क्रम से अर्थात् ब्राह्मण वर्ण का ब्राह्मणी, क्षत्रिय वर्ण का क्षत्रिया, का वैश्य और शूद्र वर्ण का शूद्रा के साथ विवाह होना चाहिए अपने १ वर्णों के कर्म और परस्पर प्रीति भी यथायोग्य रहेगी।

११—अब इन चारों वर्णों के कर्तव्य कर्म और गुण ये हैं—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजन तथा ।

दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥१॥ मनु० ।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।

ज्ञान विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ २ ॥

भ० गी० (अध्याय १८ श्लोक ४१)

ब्राह्मण के पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, कराना, दान, लेना, ये हैं । परन्तु 'प्रतिग्रहः प्रत्यवरः' मनु० (१०।१०९) अर्थात् (लेना नीच कर्म है ॥ १ ॥ (शमः) मन से बुरे काम की इच्छा भी न और उसको अधर्म में कभी प्रवृत्त न होने देना, (दमः) शत्रु और आदि इन्द्रियों को अन्यायाचरण से रोक कर धर्म में चलाना, (तपः) सदा ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय होके कर्मानुष्ठान करना, (शौच)—

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति ।

विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥ मनु० (५१)

जल से बाहर के अङ्ग, सत्याचार से मन, विद्या और धर्मानुष्ठान जीवात्मा और ज्ञान से बुद्धि पवित्र होती है । भीतर रागद्वेषादि दोष बाहर के मलों को दूर कर शुद्ध रहना अर्थात् सत्याऽसत्य के विवेक सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग से निश्चय पवित्र होता (क्षान्ति) अर्थात् निन्दा, स्तुति, सुख दुःख शीतोष्ण, क्षुधा, तृप्ति, लाभ, मानापमान आदि, हर्ष, शोक छोड़ के धर्म में दृढ़ निश्चय (आर्जव) कोमलता, निरभिमान, सरलता, सरल स्वभाव रखना, लतादि दोष छोड़ देना, (ज्ञान) सब वेदादि शास्त्रों को साङ्गोपाङ्ग पढ़ाने का सामर्थ्य, विवेक, सत्य का निर्णय, जो वस्तु जैसा हो अर्थात् को लड़, चेतन को चेतन जानना और मानना, (विज्ञान) छोटे परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों को विशेषता से जानकर उनसे उपयोग लेना, (आस्तिक्य) कभी वेद, ईश्वर, मुक्ति, पूर्व परजन्म, विद्या, सत्संग, माता, पिता, आचार्य और अतिथियों की सेवा को न

और निन्दा कभी न करना ॥ २ ॥ ये पन्द्रह कर्म और गुण ब्राह्मण वर्णस्थानुष्यो मे अवश्य होने चाहिये ॥

क्षत्रिय—

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।

विषयेष्वप्रसङ्गिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥ मनु० [१। ८९]

शौर्यं तेजा धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यलायनम् ।

दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ २ ॥

भ० गी० (अध्याय १५ । श्लोक ४३)

न्याय से प्रजा की रक्षा अर्थात् पक्षपात छोड़ के श्रेष्ठों का सत्कार और दुष्टों का तिरस्कार करना, सब प्रकार से सब का पालन, (दान) वेद्या धर्म की प्रवृत्ति और सुपात्रों की सेवा में धनादि पदार्थों का व्यय करना, (इज्या) अग्निहोत्रादि यज्ञ करना वा कराना, (अध्ययन) वेदादि शास्त्रों का पढ़ना तथा पढ़वाना और, (विषयेषु०) विषयों में न फस कर जितेन्द्रिय रह के सदा शरीर और आत्मा से बलवान् रहना ॥ १ ॥ (शौर्य) सैकड़ों सहस्रों से भी युद्ध करने में अकेला भय न होना, (तेजः) पदा तेजस्वी अर्थात् दीनतारहित, प्रगल्भ, दृढ़ रहना, (धृति) धैर्यवान् होना, (दाक्ष्य) राजा और प्रजासम्यन्धी व्यवहार और सब शास्त्रों में अति चतुर होना, (युद्धे०) युद्ध में भी दृढ़ निश्चर रहके उससे कभी न हटना, न भागना अर्थात् इस प्रकार से लड़ना कि जिससे निश्चित विजय होवे, आप बचे, जो भागने से वा शत्रुओं को धोखा देने से जीत होती हो तो ऐसा ही करना, (दान) दानशीलता रखना, (ईश्वरभाव) पक्षपातरहित होके सबके साथ यथायोग्य वर्तना, विचार के देना, प्रतिज्ञा पूरी करना, उजकी कभी भग्न होने न देना । ये ग्यारह क्षत्रिय वर्ण के कर्म और गुण हैं ॥ २ ॥

वैश्य—

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।

वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृपिमेव च ॥ मनु० [१। ९०]

(पशुरक्षा) गाय आदि पशुओं का पालन, वर्द्धन करना, (दान)

वेद्या धर्म की वृद्धि करने कराने के लिये धनादि का व्यय

अग्निहोत्रादि यज्ञों का करना, (अध्ययन) वेदादि

(वणिक्पथ) सब प्रकार के व्यापार करना, (कुसीदं)

चार, छ, आठ, बारह, सोलह वा बीस आनों, से आ

से दूना अर्थात् एक रुपया दिया हो तो सौ वर्ष में भी दो रुपये से न लेना और देना, (कृपि) खेती करना, ये वैश्य के गुण कर्म हैं ॥

शूद्र.—

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ।

एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥ मनु० [अ० १।१।

शूद्र को योग्य है कि निन्दा, ईर्ष्या, अभिमान आदि दोषों को दूर करे, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की सेवा यथावत् करना और अपना जीवन करना यही एक शूद्र का गुण कर्म है ॥

ये संक्षेप से वर्णों के गुण और कर्म लिखे । जिस २ पुरुष में जिस वर्ण के गुण कर्म हों उस १ वर्ण का अधिकार देना । ऐसी व्यवस्था से सब मनुष्य उन्नतिशील होते हैं । क्योंकि उत्तम वर्णों को भय होगा जो हमारे सन्तान मूर्खत्वादि दोषयुक्त होंगे तो शूद्र हो जायेंगे और भी डरते रहेंगे कि जो हम उक्त चाल चलन और विद्या युक्त न होंगे शूद्र होना पड़ेगा । और नीच वर्णों को उत्तम वर्णस्थ होने के लिये बढेगा । विद्या और धर्म के प्रचार का अधिकार ब्राह्मण को देना । पूर्ण विद्यावान् और धार्मिक होने से उस काम को यथायोग्य कर देंगे । क्षत्रियों को राज्य के अधिकार देने से कभी राज्य की हानि नहीं होती । पशुपालनादि का अधिकार वैश्यों को होना योग्य है वे इस काम को अच्छे प्रकार कर सकते हैं । शूद्र को सेवा का अधिकार है इसलिये है कि वह विद्यारहित, मूर्ख होने से विज्ञानसम्बन्धी काम नहीं कर सकता, किन्तु शरीर के काम सब कर सकता है । इस प्रकार वर्णों को अपने अपने अधिकार में प्रवृत्त करना राजा आदि का काम है ।

१२—विवाह के लक्षण ॥

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्पः प्राजापत्यस्तथाऽसुरः ।

गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ मनु० [१।१।

विवाह आठ प्रकार का होता है एक ब्राह्म, दूसरा दैव, तीसरा प्राजापत्य, चौथा प्राजापत्य, पाचवां आसुर, छठा गान्धर्व, सातवां राक्षस, आठवां पैशाच । इनमें से विवाहों की यह व्यवस्था है कि—चर कन्या दोनों पक्षों से पूर्ण, विद्वान्, धार्मिक और सुशील हों, उनका पति प्रसन्नता से विवाह होना 'ब्राह्म' कहा जाता है । विस्तृत यज्ञ करने में कर्म करते हुए जामाता को अलङ्कारयुक्त कन्या का देना 'दैव' ।

कुछ लेकर विवाह होना 'आर्ष'। दोनों का विवाह धर्म की वृद्धि के अर्थ होना 'प्राजापत्य'। वर और कन्या को कुछ देकर विवाह होना 'आसुर'। अनियम, असमय किसी कारण से दोनों को इच्छापूर्वक घर कन्या का परस्पर सयोग होना 'गान्धर्व'। लड़ाई करके बलात्कार अर्थात् छीन झपट वा कपट से कन्या का ग्रहण करना 'राक्षस' शयन वा नचादि पी हुई पागल कन्या से बलात्कार सयोग करना 'पैशाच'। इन सब विवाहों में एक विवाह सर्वोत्कृष्ट, दैव और प्राजापत्य मध्यम, आर्ष, आसुर और गान्धर्व निकृष्ट, राक्षस अधम और पैशाच महाभ्रष्ट है। इसलिये यही निश्चय रखना चाहिये कि कन्या और वर का विवाह के पूर्व एकान्त में मेल न होना चाहिये क्योंकि सुधावस्था में स्त्री पुरुष का एकान्तवास दूषणकारक है। परन्तु जब कन्या वा वर के विवाह का समय हो अर्थात् जब एक वर्ष वा छ महीने ब्रह्मचर्याधम और विद्या पूरी होने में शेष रहे तब उन कन्या और कुमारों का प्रतिबिम्ब अर्थात् जिसको 'फोटोग्राफ' कहते हैं अथवा प्रतिकृति उत्तर के कन्याओं की अध्यापिकाओं के पास कुमारों की, कुमारों के अध्यापकों के पास कन्याओं की प्रतिकृति भेज दें। जिस २ का रूप मिल जाय उस २ के इतिहास अर्थात् जो जन्म से लेकर उस दिन पर्यन्त जन्मचरित्र का पुस्तक हो उनको अध्यापक लोग मंगवा के देखें, जब दोनों के गुण, कर्म, स्वभाव सदृश हों तब जिस २ के साथ जिस २ का विवाह होना योग्य समझें उस २ पुरुष और कन्या का प्रतिबिम्ब और इतिहास कन्या और वर के हाथ में देवे और कहें कि इस में जो तुम्हारा अभिप्राय हो सो हमको विदित कर देना। जब उन दोनों का निश्चय परस्पर विवाह करने का होजाय तब उन दोनों का समनावर्त्तन एक ही समय में होवे। जो वे दोनों अध्यापकों के सामने विवाह करना चाहें तो वरा, नहीं तो कन्या के माता पिता के घर में विवाह होना योग्य है। जय वे समझ हों तब उन अध्यापकों वा कन्या के माता पिता आदि भद्रपुरुषों के सामने उन दोनों की आपस में बात चीत, शास्त्रार्थ कराना और जो कुछ गुप्त व्यवहार पृच्छे सो भी सभा में लिख के एक दूसरे के हाथ में देकर प्रश्नोत्तर कर लें। जब दोनों का दृढ़ प्रेम विवाह करने में होजाय तब से उनके खानपान का उत्तम प्रबन्ध होना चाहिये कि जिससे उनका शरीर जो पूर्व ब्रह्मचर्य और विद्याध्ययनरूप तपश्चर्या और कष्ट से दुर्बल होता है वह चन्द्रमा की कला के समान बढ़ के थोड़े ही दिनों में पुष्ट होजाय। पश्चात् जिस दिन कन्या

रजस्वला होकर जब शुद्ध हो तब वेदी और मण्डप रचके अनेक द्रव्य और घृतादि का होम तथा अनेक विद्वान् पुरुष और स्त्रियों का योग्य सत्कार करे ।

१३—पश्चात् जिस दिन ऋतुदान देना योग्य समझें उसी दिन 'विधि' पुस्तकस्थ विधि के अनुसार सद्य कर्म करके मध्य रात्रि वा दक्ष अति प्रसन्नता से सद्य के सामने पाणिग्रहणपूर्वक विवाह की विधि पूरा करके एकान्तसेवन करें । पुरुष वीर्यस्थापन और स्त्री वीर्याकर्षण जो विधि है उसी के अनुसार दोनों करें । जहां तक बने वहां तक के वीर्य को व्यर्थ न जाने दें क्योंकि उस वीर्य का रज से जो शरीर होता है वह अपूर्व उत्तम सन्तान होता है । जब वीर्य का गर्भ गिरने का समय हो उस समय स्त्री पुरुष दोनों स्थिर और सामने नासिका, नेत्र के सामने नेत्र अर्थात् सूधा शरीर और प्रसन्नचित्त रहे, डिगें नहीं । पुरुष अपने शरीर को ढीला छोड़े और वीर्यप्राप्ति समय अपान वायु को ऊपर खींचे । योनि को ऊपर संकोच वीर्य का ऊपर आकर्षण करके गर्भाशय में स्थिति करे ७ । पश्चात् शुद्ध जल से स्नान करें । गर्भस्थिति होने का परिज्ञान विदुषी स्त्री को उसी समय होजाता है परन्तु इसका निश्चय एक मास के पश्चात् न होने पर सब को होजाता है । सोंठ, केसर, असगन्ध, सफ़ेद और सालममिश्री डाल गर्भ कर रक्ता हुआ जो ठण्डा दूध है यथारुचि दोनों पी के अलग अलग अपनी २ शय्या में शयन करें । विधि जब २ गर्भाधान क्रिया करें तब २ करना उचित है । जब में रजस्वला न होने से गर्भस्थिति का निश्चय हो जाय तब से एक पर्यन्त स्त्री पुरुष का समागम कभी न होना चाहिये । क्योंकि ऐसा से सन्तान उत्तम और पुनः दूसरा सन्तान भी वैसा ही होता है । वीर्य व्यर्थ जाता दोनों की आगु घट जाती और अनेक प्रकार के रोग हैं । परन्तु ऊपर से भाषणादि प्रेमयुक्त व्यवहार अवश्य रखना चाहिये । पुरुष वीर्य की स्थिति और स्त्री गर्भ की रक्षा और भोजन छादव प्रकार का करे कि जिससे पुरुष का वीर्य स्वप्न में भी नष्ट न हो और प्रे वालक का शरीर अत्युत्तम रूप, लावण्य, पुष्टि, बल पराक्रमयुक्त

* यदि बात रहस्य की है श्रमलिये इतने ही से समग्र बातें समझ चाहिये, विशेष लिखना उचित नहीं ।

तब महीने में जन्म होवे । विशेष उसकी रक्षा चौथे महीने से और अति विशेष आठवें महीने से आगे करनी चाहिये । कभी गर्भवती स्त्री रेचक, क्ष, मादक द्रव्य, घुद्धि और बलनाशक पदार्थों के भोजनादि का सेवन न करे किन्तु घी, दूध, उत्तम चावल, गेहूँ, मूँग, उर्द आदि अन्न, पान और श काल का भी सेवन युक्तिपूर्वक करे ।

१४—गर्भ में दो सत्कार एक चौथे महीने में पुंसवन और दूसरा आठवें महीने में सीमन्तोन्नयन विधि के अनुकूल करे । जब सन्तान का जन्म हो तब भी और लडके के शरीर की रक्षा बहुत सावधानी से करे अर्थात् शुष्ठीपाक तथा सौभाग्य-शुष्ठीपाक प्रथम ही बनवा रखे । उस समय सुगन्धियुक्त तिल जल जो कि किञ्चित् उष्ण रहा हो उसी से स्त्री स्नान करे और बालक को भी स्नान करावे । तत्पश्चात् नाडीछेदन, बालक की नाभि के जड में एक कोमल सूत से बांध चार अंगुल छोड़ के ऊपर से काट डाले । उसको पाना बाधे कि जिससे शरीर से रुधिर का एक दिन्दु भी न जाने पावे । पश्चात् उस स्थान को शुद्ध करके उसके द्वार के भीतर सुगन्धादियुक्त घृतादि होम करे । तत्पश्चात् सन्तान के कान में पित्ता 'वेदोसीति' अर्थात् 'वेदों का नाम वेद है' सुनाकर घी और सहत को लेके सोने की शलाका से नाभि पर 'श्रोश्म' अक्षर लिखकर मधु और घृत को उसी शलाका से लगावे । पश्चात् उसकी माता को दूध देवे । जो दूध पीना चाहे तो उसकी माता पिलावे, जो उसकी माता के दूध न हो तो किसी स्त्री की परीक्षा करके उसका दूध पिलावे । पश्चात् दूसरी शुद्ध कोठरी वा कमरे में कि जहाँ वायु शुद्ध हो उसमें सुगन्धित घी का होम प्रातः और सायंकाल किया जाय और उसी में प्रसूता स्त्री तथा बालक को रखे । छ दिन तक माता दूध पिये और स्त्री भी अपने शरीर की पुष्टि के अर्थ अनेक प्रकार के अन्न भोजन करे और योनिस्त्रोचादि भी करे । छठे दिन स्त्री बाहर निकले और सन्तान के दूध पीने के लिये कोई धायी रखे । उसको खान पान अच्छा करावे । वह सन्तान को दूध पिलाया करे और पालन भी करे परन्तु उसकी माता लडके पर पूर्णदृष्टि रखे । किसी प्रकार का अनुचित व्यवहार उसके लक्ष्मण में न हो । स्त्री दूध वन्द करने के अर्थ स्नान के अग्रभाग पर ऐसा होम करे कि जिससे दूध स्रवित न हो । उसी प्रकार खान पान का व्यवहार यथायोग्य रखे । पश्चात् नामकरणादि संस्कार 'संस्कारविधि' की रीति

पश्चात् उसी प्रकार ऋतुदान देवे ।

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा ।

ब्रह्मचार्यैव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥ मनु० [३।५]

जो अपनी ही स्त्री से प्रसन्न और ऋतुगामी होता है वह

ब्रह्मचारी के सदृश है ।

१५-सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।

यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै भुवम् ॥ १ ॥

यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसन्न प्रमोदयेत् ।

अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्त्तते ॥ २ ॥

स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम् ।

तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ॥ ३ ॥

मनु० [३।१०-११]

जिस कुल में भार्या से भर्ता और पति से पत्नी अच्छे प्रकार रहती है उसी कुल में सब सौभाग्य और ऐश्वर्य निवास करते हैं ।

कलह होता है वहां दौर्भाग्य और वारिद्र्य स्थिर होता है ॥ १ ॥

पति से प्रीति और पति को प्रसन्न नहीं करती तो पति के अप्रसन्न काम उत्पन्न नहीं होता ॥ २ ॥ जिस स्त्री की प्रसन्नता में सब कुल

होता उसकी अप्रसन्नता में सब अप्रसन्न अर्थात् दुःखदायक हो जाता है

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा ।

पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ १ ॥

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः ॥ २ ॥

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।

न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धन्ते तद्धि सर्वदा ॥ ३ ॥

तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ।

भूतिकामैर्नैर्नित्यं सत्कारेभ्यस्सवेपु च ॥ ४ ॥

मनु० [३।५५-५७]

पिता, भाई, पति और देवर इनको सत्कारपूर्वक भूषणादि से रक्कों, जिनको बहुत कल्याण की इच्छा हो वे ऐसे करें ॥ १ ॥ जि

में स्त्रियों का सत्कार होता है उसमें विद्यायुक्त पुरुष होके 'देव' संज्ञा के आनन्द से मग्न करते हैं और जिस घर में स्त्रियों का सत्कार

होता वहां सब किया निष्फल होजाती हैं ॥ २ ॥ जिस घर वा कुल में
 ली लोग शोकातुर होकर दुःख पाती हैं वह कुल शीघ्र नष्ट भ्रष्ट होजाता
 है और जिस घर वा कुल में ली लोग आनन्द से उत्साह और प्रसन्नता से
 मरी हुई रहती हैं वह कुल सदैव बढ़ता रहता है ॥ ३ ॥ इसलिये ऐश्वर्य
 की कामना करने वाले मनुष्यों को योग्य है कि सत्कार और उत्सव के समयों
 में भूषण वस्त्र और भोजनादि से स्त्रियों का नित्य प्रति सत्कार करें ॥ ४ ॥
 यह यात सदा ध्यान में रखनी चाहिये कि 'पूजा' शब्द का अर्थ सत्कार
 है, और दिन रात में जब ० प्रथम मिलें वा पृथक् हो तब २ प्रीतिपूर्वक
 'नमस्ते' एक दूसरे से करें ।

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दत्तया ।

सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥ मनु० [५ । १५०]

स्त्री को योग्य है कि अति प्रसन्नता से घर के कामों में चतुराईयुक्त सब
 पदार्थों के उत्तम संस्कार तथा घर की शुद्धि रखे और व्यय में अत्यन्त
 उदार [न] रहे अर्थात् [यथायोग्य खर्च करे और] सब चीजें पवित्र
 और پاک इस प्रकार बनावे जो ओषधिरूप होकर शरीर वा आत्मा में रोग
 को न आने देवे, जो जो व्यय हो उसका हिसाब यथावत् रखके पति आदि
 को सुना दिया करे, घर के नौकर चाकरों से यथायोग्य काम लेवे, घर के
 किसी काम को बिगड़ने न देवे ।

स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या सत्य शौचं सुभाषितम् ।

विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ॥ मनु० [२।२४०]

उत्तम स्त्री, नाना प्रकार के रत्न, विद्या, सत्य, पवित्रता, धेष्टभाषण
 और नाना प्रकार की शिल्पविद्या अर्थात् कारीगरी, सब देश तथा सब मनुष्यों
 से ग्रहण करे ।

सत्य ब्रूयात् प्रिय ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।

प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥ १ ॥

भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद्भद्रमित्येव वा वदेत् ।

शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात्केनचित्सह ॥ २ ॥

मनु० [४ । १३८, १३९]

सदा प्रिय सत्य, दूसरे का हितकारक बोले, अप्रिय सत्य अर्थात् काणे
 को काणा न बोले, अनृत अर्थात् झूठ दूसरे को प्रसन्न करने के अर्थ न
 बोले ॥ १ ॥ सदा भद्र अर्थात् सब के हितकारी पचन बोला करे, शुष्कवैर

अर्थात् बिना अपराध किसी के साथ विरोध वा विवाद न करे । और दूसरे का हितकारक हो और बुरा भी माने तथापि कहे बिना न रहे ॥१॥

पुरुषा बहवो राजन् सतत प्रियवादिनः ।

अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥

[महाभारत] उद्योगपर्व-विदुरनीति० [अ० ३७ श्लो० १०]

हे धृतराष्ट्र ! इस संसार में दूसरे को निरन्तर प्रसन्न करने के लिये प्रिय बोलने वाले प्रशंसक लोग बहुत हैं परन्तु सुनने में अप्रिय विदित हो और वह कल्याण करने वाला वचन हो उसका कहने और सुननेवाला पुरुष दुर्लभ है । क्योंकि सत्पुरुषों को योग्य है कि मुख के सामने दूसरे का दोष कहना और अपना दोष सुनना परोक्ष में दूसरे के गुण सदा कहना और दुष्टों की यही रीति है कि सम्मुख में गुण कहना और परोक्ष में दोषों का प्रकाश करना । जबतक मनुष्य दूसरे से अपने दोष नहीं कहता तबतक मनुष्य दोषों से दृष्टकर गुणी नहीं हो सकता । कभी किसी की निन्दा न करे, जैसे

गुणेषु दोषारोपणमसूया, अर्थात् दोषेषु गुणारोपणमसूया । गुणेषु गुणारोपणं दोषेषु दोषारोपणं च स्तुतिः ।

जो गुणों में दोष, दोषों में गुण लगाना वह 'निन्दा' और गुणों में गुण दोषों में दोषों का कथन करना 'स्तुति' कहाती है अर्थात् मिथ्याभाषण का नाम निन्दा और सत्यभाषण का नाम स्तुति है ।

बुद्धिबुद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च ।

नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान् ॥ १ ॥

यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समाधिगच्छति ।

तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते ॥२॥ मनु० [४।१९, २०]

जो शीघ्र बुद्धि, धन और हित की वृद्धि करने हारे शास्त्र और वेद हैं उन नित्य सुनें और सुनावें, ब्रह्मचर्याश्रम में पढ़ें हों उनको स्त्री पुरुष विचारा और पढ़ाया करें ॥ १ ॥ क्योंकि जैसे २ मनुष्य शास्त्रों को पढ़ा जानता है वैसे १ उस विद्या का विज्ञान बढ़ता जाता और उसी में बढ़ती रहती है ॥ २ ॥

१६—ऋषियज्ञ देवयज्ञ भूतयज्ञ च सर्वदा ।

नृयज्ञ पितृयज्ञ च यथाशक्ति न द्वापयेत् ॥१॥ मनु० [४।२१]

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञश्च तर्पणम् ।

दोमो दैवो बलिर्भातो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥२॥ मनु० [४।२२]

स्वाध्यायेनार्चयेदृषीन् होमैर्देवान् यथाविधि ।

पितृन् श्राद्धैश्च नृनन्नैर्भूतानि त्रलिकर्मणा ॥ ३ ॥ मनु० (३।८१)

दो यज्ञ ब्रह्मचर्य में लिख आये । वे अर्थात् एक वेदादि शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना, सध्यापासन, योगाभ्यास, दूसरा देवयज्ञ, विद्वानों का संग, सेवा, पवित्रता दिव्य गुणों का धारण, दातृत्व विद्या की उन्नति करना है, ये दोनों यज्ञ सायं प्रातः करने होते हैं ।

सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातःप्रातः सौमनुसस्य दाता ॥१॥

प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनुसस्य दाता ॥२॥

अथर्व० का० १९ । अनु० ७ । (सू० ५५) । मं० ३, ४ ॥

तस्मादहोरात्रस्य सयोगे ब्राह्मणः सन्ध्यामुपासीत ।

ब्राह्मणे (पञ्चविंशब्राह्मणे प्र० ४ । ख० ५)

उद्यन्तमस्त यान्तमादित्यमभिध्यायन् ॥ ३ ॥

[तैत्तिरीय आरण्यके प्र० २ । अनु० २॥]

न तिष्ठति तु यः पूर्वा नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् ।

स शूद्रवद् वहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥ ४ ॥ (२।१०३)

जो सन्ध्या २ काल में होम होता है वह हुत द्रव्य प्रातःकाल तक वायुशुद्धि द्वारा सुखकारी होता है ॥१॥ जो अग्नि में प्रातः २ काल में होम किया जाता है वह • हुत द्रव्य सायंकाल पर्यन्त वायु की शुद्धि द्वारा दल शुद्धि और आरोग्यकारक होता है ॥२॥ इसीलिये दिन और रात्रि के सन्धि में अर्थात् सूर्योदय और अस्त समय में परमेश्वर का ध्यान और अग्निहोत्र अवश्य करना चाहिये ॥३॥ और जो ये दोनों काम सायं और प्रातःकाल में न करे उसको सज्जन लोग सब द्विजों के कर्मों से बाहर निकाल देंगे अर्थात् उसे शूद्रवत् समझे ॥४॥

(प्रश्न) त्रिकाल सन्ध्या क्यों नहीं करना ?

(उत्तर) तीन समय में सन्धि नहीं होती, प्रकाश और अन्धकार की सन्धि भी सायं प्रातः दो ही वेला में होती है । जो इसको न मान कर मध्याह्निकाल में तीसरी सन्ध्या माने वह मध्यरात्रि में भी सध्यापासन क्यों न करे ? जो मध्यरात्रि में भी करना चाहे तो प्रहर २, घटी २, पल २ और क्षण २ की भी सन्धि होती है, उनमें भी सन्ध्यापासन किया करे । जो ऐसा भी करना चाहे तो हो ही नहीं सकता और किसी शास्त्र का

मध्याह्न संध्या में प्रमाण भी नहीं, इसलिये दोनों कालों में संध्या और होत्र करना समुचित है, तीसरे काल में नहीं। और जो तीन काल होते। वे भूत, भविष्यत् और वर्तमान के भेद से हैं, संध्योपासन के भेद से नहीं।

१७—तीसरा 'पितृयज्ञ' अर्थात् जिसमें देव जो विद्वान्, ऋषि जो पद पढाने वाले, पितर जो माता पिता आदि वृद्ध ज्ञानी और परम योगियों की सेवा करनी।

पितृयज्ञ के दो भेद हैं एक श्राद्ध और दूसरा तर्पण। श्राद्ध कर्म 'श्रत्' सत्य का नाम है 'श्रत्सत्य दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा। श्रद्धया यत् क्रियते तच्छाद्धम्।' जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जाय उसको 'श्रद्धा' और जो श्रद्धा से कर्म किया जाय उसका नाम 'श्राद्ध' है। और 'तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितृन् तत्तर्पणम्।' जिस कर्म से तृप्त अर्थात् विद्यमान माता पितादि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किये जायें उसका नाम 'तर्पण' है, परन्तु यह जीवितों के लिए है मृतकों के लिये नहीं।

१८—ओं ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम्। ब्रह्मादिदेवपत्न्यस्तृप्यन्ताम्। ब्रह्मादिदेवसुनास्तृप्यन्ताम्। ब्रह्मादिदेवगणास्तृप्यन्ताम् ॥ इति देवतर्पणम् ॥

'विद्वत्सो हि देवाः' यह शतपथ ब्राह्मण [३।७।३।१०] का वचन है—जो विद्वान् हैं उन्हीं को 'देव' कहते हैं। जो साङ्गोपाङ्ग चारों ओर के जानने वाले हों उनका नाम 'ब्रह्मा' और जो उनसे न्यून पडे हों उनका नाम 'देव' अर्थात् विद्वान् है। उनके सदृश उनकी विदुषी स्त्री ब्रह्मा 'देवी' और उनके तुल्य पुत्र और शिष्य तथा उनके सदृश उनके गण अर्थात् सेवक हों उनकी सेवा करना है, उसका नाम 'श्राद्ध' और 'तर्पण' है।

अथर्पितर्पणम्

ओं मरीच्यादय ऋषयस्तृप्यन्ताम्। मरीच्याद्यृषिपत्न्यस्तृप्यन्ताम्। मरीच्याद्यृषिसुतास्तृप्यन्ताम्। मरीच्याद्यृषिगणास्तृप्यन्ताम् ॥ इति ऋषितर्पणम् ॥

जो ब्रह्मा के प्रपौत्र मरीचिवत् विद्वान् होकर पदावें और जो उनके सदृश विद्यापुक्त उनकी स्त्रियाँ कन्याओं को विद्यादान दें, उनके तुल्य पुत्र और शिष्य तथा उनके समान उनके सेवक हों, उनका सेवन और सेवा करना 'ऋषितर्पण' है।

२०—सथ पितृर्पणम् ।

ओं सोमसदः पितरस्तृप्यन्ताम् । अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम् । वह्निपदः पितरस्तृप्यन्ताम् । सोमपाः पितरस्तृप्यन्ताम् । हविर्भुजः पितरस्तृप्यन्ताम् । आज्यपाः पितरस्तृप्यन्ताम् । [सुकालिनः पितरस्तृप्यन्ताम् ।] यमादिभ्यो नमः यमादींस्तर्पयामि । पित्रे स्वधा नमः पितरं तर्पयामि । पितामहाय स्वधा नमः पितामहं तर्पयामि । [प्रपितामहाय स्वधा नमः प्रपितामहं तर्पयामि ।] मात्रे स्वधा नमो मातरं तर्पयामि । पितामह्यै स्वधा नमः पितामह्यौ तर्पयामि । [प्रपितामह्यै स्वधा नमः प्रपितामह्यौ तर्पयामि ।] स्वपत्न्यै स्वधा नमः स्वपत्नीं तर्पयामि । सम्बन्धिभ्यः स्वधा नमः सम्बन्धिनस्तर्पयामि । सगोत्रेभ्यः स्वधा नमः सगोत्रांस्तर्पयामि ॥ इति पितृर्पणम् ॥

‘ये सोमे जगदीश्वरे पदार्थविद्यायां च सीदन्ति ते सोमसदः ।’ जो परमात्मा और पदार्थविद्या में निपुण हो वे ‘सोमसदः’ । ‘यैरग्नेर्विद्युता विद्या गृहीता ते अग्निष्वात्ताः ।’ जो अग्नि अर्थात् वेधुदादि पदार्थों के जानने वाले हों वे ‘अग्निष्वात्तः’ । ‘ये वह्निपि उत्तमे व्यवहारे सीदन्ति ते वह्निपदः ।’ जो उत्तम विद्यावृद्धिदुक्त व्यवहार में न्यत हों वे ‘वह्निपदः’ । ये सोममैश्वर्यमोषधिरस वा पान्ति पिवन्ति वा ते सोमपाः ।’ जो ऐश्वर्य के रक्षक और महौषधि रस का गान करने से रोगरहित और अन्य के ऐश्वर्य के रक्षक, औषधों को देके रोग नाशक हों वे ‘सोमपा’ । ‘ये हविर्होतुमत्तमर्हं भुञ्जते भोजयन्ति वा ते हविर्भुजः ।’ जो मादक और हिताकारक द्रव्यों को छोड़ के भोजन करने छोड़ें वे ‘हविर्भुजः’ । ये आज्यं ज्ञातुं प्राप्तुं वा योग्यं रक्षन्ति वा पिवन्ति ते आज्यपाः ।’ जो जानने के योग्य वस्तु के रक्षक और दूध दुग्धादि खाने और पीने छोड़ें वे ‘आज्यपा’ । ‘शोभनः कालो विद्यते येषान्ते सुकालिनः ।’ जिनका अच्छा धर्म करने का सुखरूप समय हो वे ‘सुकालिनः’ । ‘ये दुष्टान् यच्छान्ति निगृह्णन्ति ते यमा न्यायवीशाः ।’ जो दुष्टों को दण्ड और धैर्यों का पालन करने छोड़ें न्यायकारी हों वे ‘यमः’ । ‘यः पाति स पिता ।’ जो सन्तानों का अन्न और सत्कार से रक्षक वा जनक हो वह ‘पिता’ । पितृः पिता पितामहः । पितामहस्य पिता प्रपितामहः ।’ जो पिता का पिता हो वह ‘पितामहः’ और जो पित

मह का पिता हो वह 'प्रपितामह' । 'या मानयति सा माता' । जो और सत्कारों से सन्तानों का मान्य करे वह 'माता' । 'या पितुर्महः प्रपितामही' । पितामहस्य माना प्रपितामही । जो पिता की-सी हो वह 'पितामही' और पितामह की माता हो वह 'प्रपितामही' । स्त्री तथा भगिनी सन्पन्धी और एक गोत्र के तथा अन्य कोई भद्र पुत्र वृद्ध हो उन सब को अत्यन्त श्रद्धा से उत्तम अन्न, वस्त्र, सुन्दर यान देकर अच्छे प्रकार जो तृप्त करना अर्थात् जिस १ कर्म से उनका तृप्त और शरीर स्वस्थ रहे उस १ कर्म से प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा वह 'श्राद्ध' और 'तर्पण' कहाता है ।

२१—चौथा वैश्वदेव—अर्थात् जब भोजन सिद्ध हो तब जो पुनः नार्थ बने उसमें से खट्टा, लवणान्न और क्षार को छोड़ के घृत लेकर चूल्हे से अग्नि अलग धर निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति और भाग वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृहाऽग्नौ विधिपूर्वकम् ।

आभ्यः कुर्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ॥ (मनु० ३)

जो कुछ पाकशाला में भोजनार्थ सिद्ध हो उसका दिव्य गुणों वाली उसी पाकाग्नि में निम्नलिखित मन्त्रों से विधिपूर्वक होम नित्य करे—
होम करने के मन्त्र

ओं अग्नये स्वाहा । सोमाय स्वाहा । अग्नीषोमि स्वाहा । विश्वेभ्यो देवभ्यः स्वाहा । धन्वन्तरये स्वाहा । अनुमत्यै स्वाहा । प्रजापतये स्वाहा । सहस्रं पृथिवीभ्या स्वाहा । स्विष्टकृते स्वाहा ॥

इन प्रत्येक मन्त्रों से एक २ बार आहुति प्रज्वलित अग्नि पश्चात् थाली अथवा भूमि में पत्ता रख के पूर्व दिशादि क्रमानुसार क्रम इन मन्त्रों से भाग रखे—

ओं सानुगायेन्द्राय नमः । सानुगाय यमाय नमः । गाय वरुणाय नमः । सानुगाय सोमाय नमः । मरुद्भ्यो नमः । वनस्पतिभ्यो नमः । श्रियै नमः । भूतभ्यो नमः । ब्रह्मपतये नमः । वास्तुपतये नमः । विश्वेभ्यो नमः । दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः । नक्तञ्चारिभ्यो नमः । सर्वात्मभूतये नमः ।

इन भागों को जो कोई अतिथि हो तो उसको जिमा देवे ।

। छोड़ देवे । इसके अनन्तर लवणान्न अर्थात् दाल, भात, शाक, रोटी आदि लेकर छः भाग भूमि में धरे । इसमें प्रमाण —

गुनां च पतिताना च श्वपचां पापरोगिणाम् ।

वायसानां कृमीणा च शनकैर्निर्वपेद्भुवि ॥ मनु० [३।१२]

इस प्रकार 'श्वभ्यो नमः । पतितेभ्यो नमः । श्वपगृभ्यो नमः । पापरोगिभ्यो नमः । वायसेभ्यो नमः । कृमिभ्यो नमः ।' धरकर श्वात् किसी दुःखी, बुभुक्षित प्राणी अथवा कुत्ते, कौवे आदि को देवे । यहाँ 'नमः' शब्द का अर्थ अन्न अर्थात् कुत्ते, पापी, चाडाल, पापरोगी, कौवे और कृमि अर्थात् चीटी आदि को अन्न देना यह मनुस्मृति ३ आदि की विधि है । हवन करने का प्रयोजन यह है कि पाकशालास्थ वागु का शुद्ध होना और जो अज्ञात अदृष्ट जीवों की हत्या होती है उसका प्रत्युपकार कर देना ।

२२—अब पांचवीं अतिथि सेवा—अतिथि उसको कहते हैं कि जिसकी कोई तिथि निश्चित न हो अर्थात् अकस्मात् धार्मिक, सत्योपदेशक, सब के उपकारार्थ सर्वत्र घूमनेवाला, पूर्ण विद्वान्, परमयोगी, संन्यासी गृहस्थ के बिहा आवे तो उसको प्रथम पाद्य, अर्घ और आचमनीय तीन प्रकार का जल लेकर पश्चात् आसन पर सत्कारपूर्वक विठाल कर खान पान आदि उत्तमोत्तम आदार्थों से सेवा-शुश्रूषा करके उसको प्रसन्न करे । पश्चात् सत्सङ्ग कर उनसे विज्ञान विज्ञान आदि जिनसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होवे ऐसे ऐसे उपदेशों का श्रवण करे और अपना चाल चलन भी उनके सदुपदेशानुसार करे । समय पाके गृहस्थ और राजादि भी अतिथिवत् सत्कार करने योग्य हैं । परन्तु—

आपण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालवृत्तिकान् शठान् ।

द्वैतुकान् चकवृत्तींश्च बाह्यमात्रेणापि नार्चयेत् ॥ मनु० [४।३०]

(पाण्डी) अर्थात् वेदनिन्दक, वेद-विरुद्ध आचरण करने हारा, (विकर्मस्थ) जो वेदविरुद्ध कर्म का कर्त्ता, मिथ्या भाषणादि युक्त जैसे वैडाल छिप और स्थिर रहकर ताकता ९ छपट से मूँपे आदि प्राणियों को मार अपना पेट भरता है वैसे जनों का नाम वैडालवृत्तिक, (शठ) अर्थात् हठी, दुष्टाग्रही, अभिमानी, आप जानें नहीं, औरों का कहा माने नहीं,

* मनु० श्र० ३ । ८४-६२ ॥

१ 'वैडालवृत्तिकाञ्छठान्' ऐसा वर्तमान मनुस्मृति में पाठ है । स० ।

(हेतुक) कुतर्की, व्यर्थ बकने वाले जैसे कि आजकल के वेदान्ती हम ब्रह्म और जगत् मिथ्या है, वेदादि शास्त्र और ईश्वर भी कल्पित है गपोड़ा हांकने वाले, (वकवृत्ति) जैसे वक एक पैर ठठा समान होकर झट मच्छी के प्राण हरके अपना स्वार्थ सिद्ध करता है आजकल के वैरागी और खाकी आदि हठी, दुराग्रही, वेदविरोधी हैं। का सत्कार वाणीमात्र से भी न करना चाहिये । क्योंकि इनका ये वृद्धि को पाकर संसार को अधर्मयुक्त करते हैं । आप तो अवनति करते ही हैं परन्तु साथ में सेवक को भी अविद्यारूपी महासागर में डुबो

२३—इन पांच महायज्ञों का फल यह है कि ब्रह्मयज्ञ के करने से शिक्षा, धर्म, सभ्यता आदि शुभ गुणों की वृद्धि । अग्निहोत्र से वायु, जल की शुद्धि होकर वृष्टि द्वारा संसार को सुख प्राप्त होना अर्थात् वायु का श्वासास्पर्श, खान पान से आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम व धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का अनुष्ठान पूरा होना, इसीलिये इसको 'यज्ञ' कहते हैं । पितृयज्ञ से जब माता पिता और ज्ञानी महात्माओं सेवा करेगा तब उनका ज्ञान बढ़ेगा । उससे सत्यासत्य का निर्णय सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करके सुखी रहेगा । दूसरा अर्थात् जैसी सेवा माता और आचार्य ने सन्तान और शिष्यों की उसका बदला देना उचित ही है । बलिवैश्वदेव का भी फल जो पूर्ण आये वही है । जयतक उत्तम अतिथि जगत् में नहीं होते तबतक भी नहीं होती । उनके सब देशों में घूमने और सत्योपदेश करने से की वृद्धि नहीं होती और सर्वत्र गृहस्थों को सहज से सत्य प्राप्ति हांती रहती है और मनुष्यमात्र में एक ही धर्म स्थिर रहता है । अतिथियों के सन्देहनिवृत्ति नहीं होती, सन्देहनिवृत्ति के बिना निश्चय भी नहीं होता । निश्चय के बिना सुख कहां ?

२४—ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्मायौ चानुचिन्तयेत् ।

कायकलेशाश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च ॥ मनु० [१]

रात्रि के चौथे पहर अथवा घार घटी रात से उठे, आवश्यक हरके धर्म और अर्थ, शरीर के रोगों का निदान और परमात्मा का हरे, कभी अधर्म का आचरण न करे । क्योंकि —
ताधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलाति गौरिव ।

एतैर्गावर्त्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति ॥ मनु० [४ । १०२]

किया हुआ अधर्म निष्फल कभी नहीं होता, परन्तु जिस समय अधर्म है उसी समय फल भी नहीं होता, इसलिये अज्ञानी लोग अधर्म से डरते, तथापि निश्चय जानो कि वह अधर्माचरण धीरे २ तुम्हारे सुख को काटता चला जाता है। इस क्रम से—

मैर्णधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति ।

सपत्नाञ्जयति समलस्तु विनश्यति ॥ मनु० [४ । १७४]
जब अधर्मात्मा मनुष्य धर्म की मर्यादा छोड़ (जैसा तालाब के बंध तोड़ जल चारों ओर फैल जाता है वैसे) मिथ्याभाषण, कपट, पाखण्ड व रक्षा करनेवाले वेदों का खण्डन और विश्वासघातादि कर्मों से पदार्थों को लेकर प्रथम बढ़ता है, पश्चात् धनादि ऐश्वर्य से खान, दख, आभूषण, यान, स्थान, मान, प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है, अन्याय हुआ का भी जीतता है, पश्चात् शीघ्र नष्ट होजाता है, जैसे ङाड़ काटा घुस नष्ट हो जाता है वैसे अधर्मी नष्ट भ्रष्ट हो जाता है ॥

धर्मायवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा ।

पांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्व्याहृदरसंयतः ॥ मनु० [४ । १७५]
जो [विद्वान्] वेदोक्त सत्य धर्म अर्थात् पक्षपातरहित होकर सत्य के १ और असत्य के परित्याग, न्यायरूप वेदोक्त धर्मादि आर्य * अर्थात् मे चलते हुए के समान धर्म से शिष्यों को शिक्षा किया करे ॥

वेक्पुरोहिताचार्यैर्मातुलातिथिसन्धितैः ।

वृद्धातुरैर्वैद्यैर्ज्ञातिसम्बन्धिवान्धवैः ॥ १ ॥

तापितृभ्यां यामीभिर्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया । मनु०—

त्रा दासवर्गेण विवाद न समाचरेत् ॥ २ ॥ (४ । १७९, १८०)

(ऋषिद्) यज्ञ का करनेहारा, (पुरोहित) सदा उत्तम चाल चलन शोक्षाकारक, (आचार्य) विद्या पढानेहारा, (मातुल) मामा, (अतिथि) जिसकी कोई आने जाने की निश्चित तिथि न हो, (सन्धित) आश्रित, (बाल) बालक, (वृद्ध) बुढ़ा, (आतुर) पीडित, (वैद्य) रोग का ज्ञाता, (ज्ञाति) स्वगोत्र वा स्ववर्णस्थ, (सम्बन्धी) श्वशुर व, (बान्धव) मित्र ॥ १ ॥ (माता) माता, (पिता) पिता, (यामी)

* [वृत्तों में चार (शौच) अर्थात् शुद्धता में ही सदा तुल्य माने, और १, बाहु और पेट इनको भयम न रखत हुए अधर्माधर्म में चलते स शिष्यों का शिक्षा किया करे । सम्पा० ॥

बहिन, (भ्राता) भाई, (भार्या) स्त्री, (दुहिता) पुत्री और लोगो से विवाद अर्थात् विरुद्ध लड़ाई-बखेडा कभी न करे ।

अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः ।

अम्भस्यश्मप्लवेनैवे सह तेनैव मज्जति ॥ मनु० [४]

एक (अतपाः) ब्रह्मचर्य्य, सत्यभाषणादि तपरहित, दूसरा (विना पढा हुआ, तीसरा (प्रतिग्रहरुचि.) अत्यन्त धर्मार्थ दूसरों से लेनेवाला, ये तीनों पत्थर की नौका से समुद्र में तरने के समान कर्मों के साथ ही दुःखसागर में डूबते हैं । वे नो डूबते ही हैं को साथ डूबा लेते हैं:—

त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितं धनम् ।

दातुर्भवन्त्यनर्थाय परत्रादातुरेव च ॥ मनु० [४] १९३

जो धर्म से प्राप्त हुए धनका उक्त तीनों को देना है वह दान दाता इसी जन्म और लेनेवाले का नाश परजन्म में करता है ॥

जो वे ऐसे हों तो क्या हो. —

अथा प्लवेनौपलन निभाज्जन्युदके तरन् ।

अथा निमज्जतोऽधस्तादक्षौ दातृप्रतीच्छकौ मनु० [४] १९४

जैसे पत्थर की नौका में बैठ के जल में तरनेवाला डूब जाता ज्ञानी दाता और ग्रहीता दोनों अधोगति अर्थात् दुःख को प्राप्त होते

२५—पाखण्डियों के लक्षण

मिध्वजी सदालुब्धश्छात्रिको लोकदम्भकः ।

विडालव्रतिको क्षेयो हिंस्रः सर्वाभिसन्धकः ॥ १ ॥

अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः । मनु०

उठो मिथ्याधिनीतश्च वक्रव्रतचरो द्विजः ॥ २ ॥ [४] १९५

(धर्मध्वजी) धर्म कुछ भी न करे परन्तु धर्म के नाम से लगे, (सदालुब्धः) सर्वदा लोभ से युक्त, (छात्रिक) कपटी, (दम्भक.) संसारी मनुष्य के सामने अपनी बड़ाई के गपोडे मारनेवाला, (हिंस्र.) प्राणियों का घातक, अन्य से वैरबुद्धि रखनेवाला, (सर्वाभिसन्धक.) सब अच्छे और बुरा से भी मेल रखने, उसको वैडालव्रतिक विडाले के समान धूर्त और नीच समजो ॥ १ ॥ (अधोदृष्टि.) कीलिये नीचे दृष्टि रखने, (नैष्कृतिक.) ईर्ष्यक, किसी ने उस का पसंद अपराध किया हो तो उसका बदला प्राण तक लेने को तत्पर रहे, (

धन०॥) चाहैं कपट, अधम, विश्वासघात क्यों न हो, अपना प्रयोजन धने में चतुर, (शठ) चाहैं अपनी बात झूठी क्यों न हो, परन्तु हठ भी न छोड़े, (मिथ्याविनीतः) झूठ मूठ उपर से शील, संतोष और साधुता बलावे, उसको (वक्रघत) बगुले के समान नीच समझो, ऐसे २ विणो वाले पाखण्डी होते हैं, उनका विश्वास वा सेवा कभी न करें ॥

—धर्म शनैः सञ्चिनुयाद् वल्मीकं च पुत्तिकाः ।

लोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ १ ॥

मुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।

पुत्रदार न ज्ञातिर्धमस्तिष्ठति केवल ॥ २ ॥

धः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।

मनु०—

कोनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥ ३ ॥ [४।२३८-२४०]

एकः पापानि कुरुते फलं भुङ्क्ते महाजनः ।

भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्त्ता दोषेण लिप्यते ॥ ४ ॥

[महाभारते उद्योग प० प्रजागर प० ॥ अ० ३३ । ४२]

न शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ ।

मुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥५॥ मनु०(५।२४१)

स्त्री और पुरुष को चाहिये कि जैसे पुत्तिका अर्थात् दीमक, वल्मीक अर्थात् बिल्ली को बनाती है वैसे सब भूतों को पीडा न देकर परलोक अर्थात् जन्म के सुखार्थ धीरे २ धर्म का सचय करे ॥ १ ॥ क्योंकि परलोक में माता, न पिता, न पुत्र, न स्त्री, न ज्ञाति सहाय कर सकते हैं किन्तु धर्म ही सहायक होता है ॥ २ ॥ देखिये, अकेला ही जीव जन्म और मरण को प्राप्त होता, एक ही धर्म का फल जो सुख और अधर्म का जो दुःखरूप फल उसको भोगता है । ३ ॥ यह भी समझ लो कि कुटुम्ब में एक पुरुष पाप करके पदार्थ लाता है और महाजन अर्थात् सब कुटुम्ब उसको भोगता है, भोगनेवाले दोषभागी नहीं होते, किन्तु अधर्म का कर्त्ता ही दाप भागी होता है ॥ ४ ॥ जब कोई किसी का सन्बन्धी मर जाता है, उसको शरीर के डेले के समान भूमि में छोड़ कर पीठ दे बन्धुवर्ग विमुख होकर चले जाते हैं, कोई उनके साथ जानेवाला नहीं होता, किन्तु एक धर्म ही उसका सहायक होता है ५ ॥

स्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं सञ्चिनुयाच्छनैः ।

धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ॥ ६ ॥

धर्मप्रधान पुरुषं तपसा हनकिरिवपम् ।

परलोकं नयत्याशु भास्वन्तं खशरीरिणम् ॥ २ ॥ (४।१४२, १)

उस हेतु से परलोक अर्थात् परजन्म में सुख और जन्म के सत्य नित्य धर्म का सञ्चय धीरे २ करता जाय क्योंकि धर्म ही के सहान में बड़े दुस्तर दुःखसागर को जीव तर सकता है ॥ १ ॥ किन्तु जो ही को प्रधान समझता, जिसका धर्म के अनुष्ठान से कर्तव्य पाप होगया उसको प्रकाशस्वरूप और आकाश जिसका शरीरवत् है उस लोक अर्थात् परमदर्शनीय परमात्मा को धर्म ही शीघ्र प्राप्त कराता है इसलिये:—

दृढकारी मृदुर्दान्तः क्राचारैरसंवसन् ।

अहिंस्रो दमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गं तथाव्रतः ॥ १ ॥

वान्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः ।

तान्तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः ॥ २ ॥

आचारात्तभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः । मनु०—

आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ ३ ॥ (४।१४२, १)

सदा दृढकारी, कोमल स्वभाव, जितेन्द्रिय, हिंसक, क्रूर, दुष्ट पुरुषों से पृथक् रहनेहारा धर्मात्मा मन को जीत और विद्यादि दान सुख को प्राप्त होवे ॥ १ ॥ परन्तु यह भी ध्यान में रखे कि जिस में सब अर्थ अर्थात् व्यवहार निश्चित होते हैं वह वाणी ही उनका वाणी ही से सब व्यवहार सिद्ध होते हैं उस वाणी को जो चोरता मिथ्याभाषण करता है वह सब चोरी आदि पापों का करनेवाला है ॥ इसलिये मिथ्याभाषणादिरूप अधर्म को छोड़ जो धर्माचार अर्थात् जितेन्द्रियता से पूर्ण आयु और धर्माचार से उत्तम प्रजा तथा धन को प्राप्त होता है तथा जो धर्माचार में वर्तकर दुष्ट लक्षणों का करता है उसके आचरण को सदा क्रिया करे क्योंकि—

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।

दुःखभागी च सनतं व्याधिनोऽल्पायुरेव च ॥ मनु० [४।१]

जो दुराचारी पुरुष है वह संसार में सज्जनों के मध्य में निन्दित प्राप्त, दुःखभागी और निरन्तर व्याधियुक्त होकर अल्पायु का भी न हारा होता है । इसलिये ऐसा प्रयत्न करे:—

यद्यत्परमेशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् ।

यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सवेत यत्नतः ॥ १ ॥

यं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् । मनु०—

तद्विद्यात्समाम्नेन लक्षणं सुखदुःखयो ॥२॥ (४ । १५९, १६०)

जो १ पराधीन कर्म हो उस २ का प्रयत्न से त्याग और जो २ स्वाधीन म हो उस २ का प्रयत्न के साथ सेवन करे ॥ १ ॥ क्योंकि जो २ परा-
नता है वह २ सब दु ख और जो २ स्वाधीनता है वह २ सब सुख,
ही संक्षेप से सुख और दु ख का लक्षण जानना चाहिये ॥ २ ॥ परन्तु
। एक दूसरे के आधीन काम है वह २ आधीनता से ही करना चाहिये
सा कि स्त्री और पुरुष का एक दूसरे के आधीन व्यवहार, अर्थात् स्त्री
रूप का और पुरुष स्त्री का परस्पर प्रियाचरण, अनुकूल रहना, व्यभिचार
। विरोध कभी न करना, पुरुष की आज्ञानुकूल घर के काम स्त्री और
हर के काम पुत्र के आधीन रहना, दुष्ट व्यसन में फँसने से एक दूसरे
से रोकना, अर्थात् यही निश्चय जानना, जब विवाह होवे तब स्त्री के साथ
रूप और पुरुष के साथ स्त्री विक तुकी अर्थात् जो स्त्री और पुरुष के साथ
त्व, भाव, नखशिखाग्रपर्यन्त जो कुछ है वह वीर्यादि एक दूसरे के आधीन
जाता है । स्त्री वा पुरुष प्रसन्नता के बिना कोई भी व्यवहार न करें ।
न में बड़े अभिग्रकारक व्यभिचार, वेश्या, परपुरुषगमनादि काम हैं ।
नको छोड़ के अपने पति के साथ स्त्री और स्त्री के साथ पति सदा प्रसन्न
हैं । जो ब्राह्मणवर्गस्थ हों तो पुरुष लटकों को पड़ावे तथा सुशिक्षिता स्त्री
पट्टियों को पड़ावे । नानाविध उपदेश और वक्तृत्व करके उनको विद्वान्
में । स्त्री का पूजनीय देव पति और पुरुष की पूजनीय अर्थात् सत्कार करने
योग्य देवी स्त्री है ।

२७—जयतक गुरुकुल में रहे तबतक माता पिता के समान अध्यापको
के समक्ष और अध्यापक अपने सन्तानों के समान शिष्यों को समक्ष ।

पढानेहारे अध्यापक और अध्यापिका कैसे होने चाहिये—

प्रात्मज्ञानं समारम्भास्तितिक्षा धर्मनित्यता ।

अमर्था नापकर्षन्ति स वै परिडित उच्यते ॥ १ ॥

नेपचते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते ।

अनास्तिकः श्रद्धधान एतत्परिडितलक्षणम् ॥ २ ॥

क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति विज्ञाय चार्थं भजते न कामात् ।

नासम्पृष्टो ह्युपयुङ्क्ते परार्थे तत्प्रज्ञानं प्रथमं परिडितस्य ॥ ३ ॥

नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितम् ।

आपत्सु च न मुह्यन्ति नरा पण्डितबुद्धयः ॥ ४ ॥

प्रवृत्तवाक् चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान् ।

आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते ॥ ५ ॥

श्रुतं प्रज्ञानुग यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा ।

असंभिनार्यमर्यादः पण्डिताख्या लभेत सः ॥ ६ ॥

ये सब महाभारत उद्योगपर्व, विदुरप्रजागर [अध्याय ३३] के [१६ (५, ६), २२, २३, २८, २९] हैं ।

अर्थ—जिसको आत्मज्ञान, सम्यक् आरम्भ अर्थात् जो आलसी कभी न रहे, सुख, दुःख, हानि लाभ, मानापमान, स्तुति में हर्ष शोक कभी न करे, धर्म ही में नित्य निश्चित रहे, मन को उत्तम २ पदार्थ अर्थात् विषयसम्वन्धी वस्तु आकर्षण न करे वही पण्डित कहाता है ॥ १ ॥ सदा धर्मयुक्त कर्मों का सेवन, कामों का त्याग, ईश्वर, वेद, सत्याचार की निन्दा न करने हारा, आदि में अत्यन्त श्रद्धालु हो यही पण्डित का कर्तव्याकर्तव्य कर्म है ॥ जो कठिन विषय को भी शीघ्र जान सके, बहुत कालपर्यन्त शास्त्रों को सुने और विचारे, जो कुठ जाने उसको परोपकार में प्रयुक्त करे, स्वार्थ के लिये कोई काम न करे, विना पूछे वा विना योग्य समय जाने के अर्थ में सम्मति न दे वही प्रथम प्रज्ञान पण्डित [का] होना चाहिये जो प्राप्ति के अयोग्य की इच्छा कभी न करे, नष्ट हुए पदार्थ पर, आपत्काल में मोह को न प्राप्त अर्थात् व्याकुल न हो वही पण्डित है ॥ ४ ॥ जिसकी वाणी सब विद्याओं और प्रश्नोत्तरों में अतिनिपुण, विचित्र, शास्त्रों के प्रकरणों का वक्ता, यथायोग्य तर्क स्मृतिमान् ग्रन्थों के यथार्थ अर्थ का शीघ्र वक्ता हो वही पण्डित है ॥ ५ ॥ जिसकी प्रज्ञा सुने हुए सत्य अर्थ के अनुकूल और श्रवण बुद्धि के अनुसार हो, जो कभी आर्य अर्थात् श्रेष्ठ, धार्मिक उ-मर्यादा का छेदन न करे वही पण्डित संज्ञा को प्राप्त होवे ॥ ६ ॥ ऐसे ऐसे स्त्री पुरुष पढ़ानेवाले होते हैं वहाँ विद्या, धर्म और उत्तमा बुद्धि होकर प्रतिदिन आनन्द ही बढ़ता रहता है ।

२८—पढ़ने में अयोग्य और मूर्ख के लक्षणः—

अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः ।

अर्थश्चाऽकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः ॥ १ ॥

अनाहृतः प्रविशति ह्यपृष्टो बहु भाषते ।

अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराधमः ॥ २ ॥

ये श्लोक भी महाभारत उद्योगपर्व विदुरप्रजागर [अ० ३३।३०, ३६] के हैं।

अर्थ—जिसने कोई शास्त्र न पढ़ा, न सुना और अतीव घमण्डी, दरिद्र कर बड़े २ मनोरथ करनेहारा, बिना कर्म से पदार्थों की प्राप्ति की इच्छा बिना हो उसी को बुद्धिमान् लोग मूढ कहते हैं ॥ १ ॥ जो बिना गये सभा व किसी के घर में प्रविष्ट हो, उच्च आसन पर बैठना चाहे, ना पूछे सभा में बहुतसा बड़े, विश्वास के आयोग्य वस्तु वा मनुष्य में विश्वास करे वही मूढ़ और सब मनुष्यों में नीच मनुष्य कहाता है ॥ २ ॥ हां ऐसे पुरुष अध्यापक, उपदेशक, गुरु और माननीय होते हैं वहां अविद्या, अज्ञान, असम्यक्ता, कलह, विरोध और फूट बड़ के दुःख ही बढ़ जाता है ।

२६—अब विद्यार्थियों के लक्षण—

आलस्यं मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च ।

स्तब्धता चाभिमानित्वं तथाऽत्यागित्वमेव च ।

एते वै सप्त दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः ॥ १ ॥

सुखार्थिनः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम् ।

सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत्सुखम् ॥ २ ॥

ये भी विदुरप्रजागर [अध्याय ३९*] के श्लोक हैं ।

अर्थ - (आलस्य) अर्थात् शरीर और बुद्धि में जडता, नशा, मोह, ली वस्तु में फँसावट, चपलता और इधर उधर की व्यर्थ कथा करना, पढ़ते पढ़ाते रुक जाना, अभिमानी, अत्यागी होना ये सात दोष विद्यार्थियों में होते हैं ॥ १ ॥ जो ऐसे हैं उनको विद्या कभी नहीं आती । व भोगने की इच्छा करने वाले को विद्या कहाँ ? और विद्या पढ़नेवाले सुख कहाँ ? क्योंकि विषयसुखार्थी विद्या को और विद्यार्थी विषयसुख छोड़ दे ॥ २ ॥ ऐसे किये बिना विद्या कभी नहीं हो सकती और,

३०—ऐसे को विद्या होती है—

स्ये रतानां सततं दान्तानामूर्ध्वरेतसाम् ।

प्रचर्य दहेद्राजन् सर्वपापान्युपासितम् ॥ महाभा० अनु० ११०।३०॥

जो सदा सत्याचार में प्रवृत्त, जितेन्द्रिय और जिनका धर्म अधः-

* अध्याय ४० । श्लोक ५, ६ ॥

स्खलित कभी न हो उन्हा का ब्रह्मचर्य सच्चा और वे ही विद्वान् होने हैं इसलिये शुभ लक्षणयुक्त अध्यापक और विद्यार्थियों को ह.ना अध्यापक लोग ऐसा बल किया करें जिससे विद्यार्थी लोग सत्यवादी, मानी, सत्यकारी, सभ्यता, जितेन्द्रियता, सुशीलतादि शुभगुणयुक्त और आत्मा का पूर्ण बल बढ़ा के समग्र वेदादि शास्त्रों में विद्वान् हों, उनकी कुचेष्टा छुड़ाने में और विद्या पढ़ाने में चेष्टा किया करें। लोग सदा जितेन्द्रिय, शान्त, पढ़नेवालों में प्रेम, विचारशील, होकर ऐसा पुरुषार्थ करें जिससे पूर्ण विद्या, पूर्ण आयु, परिपूर्ण धन पुरुषार्थ करना आजाय, इत्यादि ब्राह्मण वर्णों के काम हैं।

३१—क्षत्रियों का कर्म राजधर्म में कहेंगे।

[वैश्यों के कर्म ब्रह्मचर्यादि से वेदादि विद्या] पढ़ [विवाह देशों की भाषा, नाना प्रकार के व्यापार की रीति, उनके भाव बेचना, खरीदना, द्वीपद्वीपान्तर में जाना आना, लाभार्थ काम करना, पशुपालन और खेती की उन्नति चतुराई से करनी करानी, बढ़ाना, विद्या और धर्म की उन्नति में व्यय करना, सत्यवादी, होकर सत्यता से सब व्यवहार करना, सब वस्तुओं का रक्षा ऐसी जिससे कोई नष्ट न होने पावे।

३२—शूद्र सब सेवाओं में चतुर, पाकविद्या में निपुण, अतिप्रेम की सेवा और उन्हीं से अपनी उपजाविका करे और द्विज लोग पान, वस्त्र, स्थान, विवाहादि में जो कुछ व्यय हो सब कुछ देवें। मासिक कर दें। चारों वर्णों को परस्पर प्रीति, उपकार, सज्जनता, दुःख, हानि, लाभ, में ऐकमत्य रहकर राज्य और प्रजा की उन्नति में मन, धन का व्यय करते रहना।

३३—स्त्री और पुरुष का वियोग कभी न होना चाहिये पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहाऽटनम्।

स्वर्णोऽन्यगोहवासश्च नागीसन्दूषणानि षट् ॥ मनु० [१]

मद्य, भांग आदि मादक द्रव्यों का पीना, दुष्ट पुरुषों का संग, वियोग, अकेली जहा तहा व्यर्थ पाखण्डी आदि के दर्शन के मिस से रद्दना और पराये घर में जाके शयन करना वा घास, ये छ' स्त्री के करने वाले दुर्गुण हैं और ये पुरुषों के भी हैं।

पति और स्त्री का वियोग दो प्रकार का होता है, कहीं कार्याय

ना और दूसरा मृत्यु से वियोग होना, इनमें से प्रथम का उपाय यही दूर देश में यात्रार्थ जावे तो स्त्री को भी साथ रखवे, इसका प्रयोजन कि बहुत समय तक वियोग न रहना चाहिये ।

(प्रश्न) स्त्री और पुरुष का बहुविवाह होने योग्य है वा नहीं ?

उत्तर) गुणपत् न, अर्थात् एक समय में नहीं ।

प्रश्न) क्या समयान्तर में अनेक विवाह होने चाहियें ।

उत्तर) हा, जैसे—

दक्षतयोनिः स्याद् गतप्रत्यागतापि वा ।

वेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति ॥ मनु० [१।१७६]

इस स्त्री वा पुरुष का पाणिग्रहणमात्र संस्कार हुआ हो और संयोग हो अर्थात् अक्षतयोनि स्त्री और अक्षतवीर्य पुरुष हो उनका अन्य पुरुष के साथ पुनर्विवाह होना चाहिये, किन्तु ग्राहण, क्षत्रिय और णों में क्षतयोनि स्त्री, क्षतवीर्य पुरुष का पुनर्विवाह न होना चाहिये ।

प्रश्न) पुनर्विवाह में क्या दोष है ?

(पहिला) स्त्री पुरुष में प्रेम न्यून होना, क्योंकि जब चाहे प को स्त्री और स्त्री को पुरुष छोड़ कर दूसरे के साथ सम्बन्ध कर ले ।

दूसरा) जब स्त्री वा पुरुष पति व स्त्री के मरने के पश्चात् दूसरा करना चाहे तब प्रथम स्त्री वा पूर्व पति के पदार्थों को उड़ा लेजाना, जैसे कुटुम्ब वालों का उनसे क्षगडा करना ।

तीसरा) बहुत से भद्रकुल का नाम वा चिह्न भी न रहकर उसके छेन्न भिन्न हो जाना ।

चौथा) पतिव्रत और स्त्रीव्रत धर्म नष्ट होना इत्यादि दोषों के अर्थ पुनर्विवाह वा अनेक विवाह कभी न होना चाहिये ।

प्रश्न) जब वशाच्छेदन हो जाय तब भी उसका कुल नष्ट हो जायगा । पुरुष व्यभिचारादि कर्म करके गर्भपातनादि बहुत दुष्ट कर्म करेंगे पुनर्विवाह होना अच्छा है ।

उत्तर) नहीं २, क्योंकि जो स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य में स्थित रहना कोई भी उपद्रव न होगा और जो कुल की परम्परा रखने के लिये अपने स्वजाति का लटका गोद ले लेंगे उससे कुल चलेगा और भी न होगा और जो ब्रह्मचर्य न रख सकें तो नियोग कर के पति करलें ।

३५—(प्रश्न) पुनर्विवाह और नियोग में क्या भेद है ?

(उत्तर) (पहिला) जैसे विवाह करने में कन्या अपने घर छोड़ पति के घर को प्राप्त होती है और पिता से विशेष रहता और विधवा स्त्री उसी विवाहित पति के घर में रहती है।

(दूसरा) उसी विवाहिता स्त्री के लड़के उसी विवाहित दायभागी होते हैं। और विधवा स्त्री के लड़के वीर्यदाता के न पुत्र न उसका गोत्र होता, न उसका स्वत्व उन लड़कों पर रहता, मृतपति के पुत्र बजते, उसी का गोत्र रहता और उसी के दायभागी होकर उसी घर में रहते हैं।

(तीसरा) विवाहित स्त्री पुरुष को परस्पर सेवा और पालन अवश्य है और नियुक्त स्त्री पुरुष का कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता।

(चौथा) विवाहित स्त्री पुरुष का सम्बन्ध मरणपर्यन्त नियुक्त स्त्री पुरुष का कार्य के पश्चात् छूट जाता है।

(पांचवां) विवाहित स्त्री पुरुष आपस में गृह के कार्यों में यत्न किया करते और नियुक्त स्त्री पुरुष अपने २ घर के

(प्रश्न) विवाह और नियोग के नियम एक से हैं वा

(उत्तर) कुछ थोड़ा सा भेद है। जितने पूर्व कह आये विवाहित स्त्री पुरुष एक पति और एक ही स्त्री मिल के दश कर सकते हैं और नियुक्त स्त्री पुरुष दो वा चार से अधिक नहीं कर सकते अर्थात् जैसा कुमार कुमारी ही का विवाह हो जिसकी स्त्री वा पुरुष मर जाता है उन्हीं का नियोग होता का नहीं। जैसे विवाहित स्त्री पुरुष सदा सङ्ग में रहते हैं वैसे पुरुष का व्यवहार नहीं, किन्तु विना ऋतुदान के समय एक

जो स्त्री अपने लिये नियोग करे तो जब दूसरा गर्भ रहे स्त्री पुरुष का सम्बन्ध छूट जाय। और जो पुरुष अपने लिये करे गर्भ रहने से सम्बन्ध छूट जाय। परन्तु वही नियुक्त स्त्री दो तीन उन लड़कों का पालन करके नियुक्त पुरुष को दे देवे। ऐसे एक दो अपने लिए और दो २ अन्य चार नियुक्त पुरुषों के लिए सकती और एक मृतस्त्रीक पुरुष भी दो अपने लिये और दो चार विधवाओं के लिये पुत्र उत्पन्न कर सकता है ऐसे सन्नानोत्पत्ति की आज्ञा वेद में है।

इमां त्वमिन्द्र मीद्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु ।
दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि ॥

प्र० मं० १० सू० ८५ । म० ४५ ॥

हे (मीद्व इन्द्र) वीर्य सिंचने में समर्थ ऐश्वर्ययुक्त पुरुष । तू इस विहित स्त्री वा विधवा स्त्रियों को श्रेष्ठपुत्र और सौभाग्य युक्त कर, विवाह स्त्री में दश पुत्र उत्पन्न कर और ग्यारहवीं स्त्री को मान । हे स्त्री । तू भी विहित पुरुष वा निजुक्त पुरुषों से दश सन्तान उत्पन्न कर और ग्यारहवें को समस्त । इस वेद की आज्ञा से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यवर्णस्थ पुरुष दश दश सन्तान से अधिक उत्पन्न न करें । क्योंकि अधिक से सन्तान निर्बल, निर्बुद्धि, अल्पायु होते हैं और स्त्री तथा पुरुष भी, अल्पायु और रोगी होकर वृद्धावस्था में बहुत से दुःख पाते हैं ।

४—(प्रश्न) यह नियोग की बात व्यभिचार के समान दीखती है ।
उत्तर) जैसे विना विवाहितों का व्यभिचार होता है वैसे विना निजुक्तों के व्यभिचार कहा जाता है । इससे यह सिद्ध हुआ कि जैसा नियम से विवाह व्यभिचार नहीं कहा जाता तो नियमपूर्वक नियोग होने से व्यभिचार होगा । जैसे—दूसरे की कन्या का दूसरे के कुमार के साथ शाखोक्त पूर्वक विवाह होने पर समागम में व्यभिचार वा पाप लज्जा नहीं होती । वेदशास्त्रोक्त नियोग में व्यभिचार, पाप, लज्जा न मानना चाहिये ।

प्रश्न) है तो ठीक, परन्तु यह वेदया के सदृश कर्म दीखता है ।

उत्तर) नहीं, क्योंकि वेदया के समागम में किसी निश्चित पुरुष का नियम नहीं है और नियोग में विवाह के समान नियम हैं । जैसे लो लडकी देने, दूसरे के साथ समागम करने में विवाहपूर्वक लज्जा होती वैसे ही नियोग में भी न होनी चाहिये । क्या जो व्यभिचारी पुरुष स्त्री होते हैं वे विवाह होने पर भी कुकर्म से बचते हैं ?

प्रश्न) हम को नियोग की बात में पाप मालूम पड़ता है ।

उत्तर) जो नियोग की बात में पाप मानते हो तो विवाह में पाप क्यों मानते ? पाप तो नियोग के रोकने में है । क्योंकि ईश्वर के सृष्टिप्रमाण स्त्री पुरुष का स्वाभाविक व्यवहार एक ही नहीं सकना, सिवाय पानू, पूर्ण विद्वान् योगियों के ? क्या गर्भपातनरूप भ्रूणहत्या और स्त्री और मृतकस्त्री पुरुषों के महासन्ताप को पाप नहीं गिनते हो ? जबतक वे युवावस्था में हैं, मन में सन्तानोत्पत्ति और विषय की चाहना

होनेवालों को किसी राज्यव्यवहार वा जातिव्यवहार से रूकावट कुकर्म बुरी चाल से होते रहते हैं। इस व्यभिचार और कुकर्म एक यही श्रेष्ठ उपाय है कि जो जितेन्द्रिय रह सकें वे विवाह भी न करें तो ठीक है। परन्तु जो ऐसे नहीं हैं उनका आपत्काल में नियोग अवश्य होना चाहिये। इससे व्यभिचार होना, प्रेम से उत्तम सन्तान होकर मनुष्यों की वृद्धि होना गर्भहत्या सर्वथा छूट जाती है। नीच पुरुषों से उत्तम स्त्री और नीच स्त्रियों से उत्तम पुरुषों का व्यभिचाररूप कुकर्म, उत्तम वंश का उच्छेद, स्त्री पुरुषों को सन्ताप और गर्भहत्यादि कुकर्म, नियोग से निवृत्त होते हैं इसलिये नियोग करना चाहिये ?

३६—(प्रश्न) नियोग में क्या २ बात होनी चाहिये ?

(उत्तर) जैसे प्रसिद्धि से विवाह, वैसे ही प्रसिद्धि से जिस प्रकार विवाह में भद्र पुरुषों की अनुमति और कन्या वर की होती है वैसे नियोग में भी। अर्थात् जब स्त्री पुरुष का नियोग तब अपने कुटुम्ब में पुरुष स्त्रियों के सामने [प्रकट करें कि] नियोग सन्तानोत्पत्ति के लिये करते हैं। जब नियोग का नियम तब हम संयोग न करेंगे। जो अन्यथा करे तो पापी और के दण्डनीय हों। महीने २ में एक बार गर्भाधान का काम पश्चात् एक वर्ष पर्यन्त पृथक् रहेंगे।

(प्रश्न) नियोग अपने वर्ण में होना चाहिये वा अन्य वर्णों के

(उत्तर) अपने वर्ण में वा अपने से उत्तम वर्णस्थ अर्थात् वैश्य स्त्री वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण के साथ, और ब्राह्मण के साथ, ब्राह्मणी ब्राह्मण के साथ नियोग कर इसका तात्पर्य यह है कि वीर्य सम वा उत्तम वर्ण का चाहिये, नीचे के वर्ण का नहीं। स्त्री और पुरुष की सृष्टि का यही कि धर्म से अर्थात् वेदोक्त रीति से विवाह वा नियोग से सन्तान

(प्रश्न) पुरुष को नियोग करने की क्या आवश्यकता है दूसरा विवाह करेगा ?

(उत्तर) हम लिख आये हैं, द्विजों में स्त्री और पुरुष का विवाह होना वेदादि शास्त्रों में लिखा है, द्वितीयवार नहीं। कुमारी का ही विवाह होने में न्याय और विधवा स्त्री के साथ

र कुमारी स्त्री के साथ मृतस्त्रीक पुरुष के विवाह होने में अन्याय अर्थात् धर्म है। जैसे विधवा स्त्री के साथ पुरुष विवाह नहीं किया चाहता वैसे विवाह और स्त्री से समागम किये हुए पुरुष के साथ विवाह करने की वृत्ति कुमारी भी न करेगी। जब विवाह किये हुए पुरुष को कोई कुमारी न्या और विधवा स्त्री का ग्रहण कोई कुमार पुरुष न करेगा तब पुरुष और स्त्री को नियोग करने की आवश्यकता होगी। और यही धर्म है कि जैसे के पति वैसे ही का सम्बन्ध होना चाहिये।

३७—(प्रश्न) जैसे विवाह में वेदादि शास्त्रों का प्रमाण है वैसे नियोग प्रमाण है वा नहीं ?

(उत्तर) इस विषय में बहुत प्रमाण हैं, देखो और सुनो—

कुहस्विदोषा कुह वस्तो रश्विना कुह भिषित्वं करतः कुहोपतुः ।
को वां शयुत्रा विध्वं व देवरं मर्यं न योषां कृणुतं सधस्थ आ ॥

ऋ० ॥ म० १० सू० ४० । मं० २ ॥

हे (अश्विना) स्त्री और पुरुषो ! जैसे (देवर विधवेव) देवर को विधवा र (योषा मर्यज्ञ) विवाहिता स्त्री अपने पति को (सधस्थे) समान मान, शय्या में एकत्र होकर सन्तानोत्पत्ति को (आ, कृणुते) सब प्रकार से पालन करती है वैसे तुम दोनों स्त्री पुरुष (कुहस्विदोषा) कहां रात्रि और कुह वस्त) कहां दिन में वसे थे ? (कुहभिषित्वम्) कहा पदार्थों की सि (करतः) की ? और (कुहोपतु) किस समय कहां वास करते ? (को वां शयुत्रा) तुम्हारा शयनस्थान कहा है तथा कौन वा किस के रहनेवाले हो ? इससे यह सिद्ध हुआ कि देश विदेश में स्त्री पुरुष ही में रहे। और विवाहित पति के समान निजुक्त पति को ग्रहण करके विधवा स्त्री भी सन्तानोत्पत्ति कर लेवे।

(प्रश्न) यदि किसी का छोटा भाई ही न हो तो विधवा नियोग उसके साथ करे ?

(उत्तर) देवर के साथ, परन्तु 'देवर' शब्द का अर्थ जैसा तुम कहते हो वैसा नहीं, देखो निरुक्त में—

मरः कस्मान्न द्वितीयो वर उच्यते ॥ निरु० अ० ३ । ख० १५ ॥

'देवर' उसको कहते हैं कि जो विधवा का दूसरा पति होता है। चाहे छोटा भाई वा बड़ा भाई, अथवा अपने वर्ण वा अपने से उत्तम वर्ण वाला, जिससे नियोग करे उसी का नाम 'देवर' है ॥

उदीर्ष्व नार्यभिर्जीवलोकं गतासुमेतमुप शेषं परि ।
हस्तग्राभस्य दिधिपोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूय ।

ऋ० ॥ मं० १० । सू० १८ । मं० ८ ॥

हे (नारी) विधवे ! तू (एतं गतासुम्) इस मेरे हुए पति
आशा छोड़ के (शेषे) बाकी पुरुषों में से (अभि, जीवलोकम्) जैने
दूसरे पति को (उपैहि) प्राप्त हो और (उदीर्ष्व) इस बात का
और निश्चय रख कि जो (हस्तग्राभस्य दिधिपोः) तुझ विधवा के
पाणिग्रहण करने वाले निचुक्त पति के सम्बन्ध के लिये नियोग हो
(इदम्) यह (जनित्वम्) जना हुआ बालक उसी निचुक्त
का होगा और जो तू अपने लिये नियोग करेगी तो यह सन्तान
तेरा होगा । ऐसे निश्चययुक्त (अभि सन् बभूय) हो और निचुक्त
भी इसी नियम का पालन करे ॥

अपतिघ्न्यपतिघ्नी हौर्धि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः ।
प्रजावती वीरसूदेवकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्यं ॥

अथर्व० ॥ का० १४ । अनु० २ । [सू० ० ।] मं० १८

हे (अपतिघ्न्यपतिघ्नी) पति और देवर को दुःख न देने वाली
तू (इह) इस गृहाश्रम में (पशुभ्यः) पशुओं के लिये (शिवा)
करनेहारी, (सुयमा) अच्छे प्रकार धर्म नियम में चलने, (सुवर्चाः)
रूप और सर्व शास्त्र विद्यायुक्त, (प्रजावती) उत्तम पुत्र पौत्रों
सहित, (वीरसूः) शूरवीर पुत्रों को जनने (देवकामा) देवर की
करने वाली, (स्योना) और सुख देनेहारी पति वा देवर को
प्राप्त होके (इमम्) इस (गार्हपत्यम्) गृहस्थसम्बन्धी
अग्निहोत्र को (सपर्यं) सेवन किया कर ॥

तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः ॥ मनु० [१ । १९]
जो अक्षतयोनि स्त्री विधवा हो जाय तो पति का निज छोटा भाई
उससे विवाह कर सकता है ।

३८—(प्रश्न) एक स्त्री वा पुरुष कितने नियोग कर सकते हैं
विवाहित निचुक्त पतियों का नाम क्या होता है ?

(उत्तर) सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः ।

(तृतीयो अग्निं पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥

ऋ० ॥ मं० १० । सू० १५ । मं० १९

अर्थ—हे स्त्रि ! जो (ते) तेरा (प्रथम) पहिला विवाहित (पतिः) तुझ को (विविदे) प्राप्त होता है उसका नाम (सोमः) सुकुमारतादि युक्त होने से 'सोम', जो दूसरा नियोग से (विविदे) प्राप्त होता वह गन्धर्वः) एक स्त्री से सम्भोग करने से 'गन्धर्व', जो (तृतीय उत्तर) दो पश्चात् तीसरा पति होता है वह (अग्नि) अलुप्यतायुक्त होने से 'अग्नि' सज्जक और जो (ते) तेरे (तुरीय) चौथे से लेके ग्यारहवें तक योग से पति होते हैं वे (मनुष्यजा) 'मनुष्य' नाम से कहाते हैं। जैसा मा त्वमिन्द्र०) इस मन्त्र से ग्यारहवें पुरुष तक स्त्री नियोग कर सकती वैसे पुरुष भी ग्यारहवीं स्त्री तक नियोग कर सकता है।

(प्रथम) 'एकादश' शब्द से दश पुत्र और ग्यारहवें पति को क्यों न गिनें ? (उत्तर) जो ऐसा अर्थ करे तो 'विधवेव देवरम्', 'देवरः स्नाद् द्वितीयो वर उच्यते', 'अदेवृक्षि, और 'गन्धर्वा विविद उत्तरः' इत्यादि वेदप्रमाणों से विरुद्धार्थ होगा। क्योंकि तुम्हारे अर्थ से तू भी पति प्राप्त नहीं हो सकता।

देवराष्ट्रा सपिण्डाश्च स्त्रिया सम्यङ् नियुक्तया ।

प्रजेषिताधिगन्तव्या सन्तानस्य परित्तये ॥ १ ॥

ज्येष्ठो यवीयसो भार्या यवीयान्वाग्रजस्त्रियम् ।

पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि ॥ २ ॥

औरसः क्षेत्रजश्चैव ॥ ३ ॥ मनु० [९। ५९, ५८, १५९]

इत्यादि, मनुजी ने लिखा है कि 'सपिण्ड' अर्थात् पति की छुट्टियों में पति का छोटा वा बड़ा भाई अथवा स्वजातीय तथा अपने से कम जातिस्थ पुरुष से विधवा स्त्री का नियोग होना चाहिये। परन्तु जो मृतस्त्रीक पुरुष और विधवा स्त्री सन्तानोत्पत्ति की इच्छा करती हो तो योग होना उचित है। और जब सन्तान वा सर्वथा क्षय हो तब नियोग वे। जो आपत्काल अर्थात् सन्तानों के होने की इच्छा न होने में बड़े भाई की स्त्री से छोटे का और छोटे की स्त्री से बड़े भाई का नियोग होकर सन्तानोत्पत्ति होजाने पर भी पुनः वे नियुक्त आपस में समागम करें तो तत्त होजायें अर्थात् एक नियोग में दूसरे पुत्र के गर्भ रहने तक नियोग अवधि है इससे पश्चात् समागम न करें। और जो दोनों के लिये योग हुआ हो तो चौथे गर्भ तक अर्थात् पूर्वोक्त रीति से दश १ हो सकते हैं। पश्चात् विषयासक्ति गिनी जाती है, इससे वे

गिने जाते हैं। और जो विवाहित स्त्री पुरुष भी दशवर्ष गर्भ से समागम करे तो कामी और निन्दित होते हैं अर्थात् विवाह वा सन्तानों ही के अर्थ किये जाते हैं, पशुवत् कामक्रीडा के लिये नहीं।

३६—(प्रश्न) नियोग मरे पीछे ही होता है वा जीते पति से ?

(उत्तर) जीते भी होता है—

अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥ ऋ० मं० १० । सू० १० । [मं० १]

जब पति सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे तब अपनी स्त्री को देवे कि हे सुभगे ! सौभाग्य की इच्छा करने हारी स्त्री ! तू (मत्) से (अन्यम्) दूसरे पति की (इच्छस्व) इच्छा कर क्योंकि अब सन्तानोत्पत्ति न हो सकेगी। तब स्त्री दूसरे से नियोग करके सन्तान करे। परन्तु उस विवाहित महाशय पति की सेवा में तत्पर रहे। स्त्री भी जब रोगादि दोषों से ग्रस्त होकर सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ अपने पति को आज्ञा देवे कि हे स्वामी ! आप सन्तानोत्पत्ति की इच्छा छोड़ के किसी दूसरी विधवा स्त्री से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति जैसा कि पाण्डु राजा की स्त्री कुन्ती और माद्री आदि ने किया और व्यासजी ने विव्राङ्गद और विचित्रवीर्य के मर जाने पश्चात् उन अपने स्त्री स्त्रियों से नियोग करके अम्बिका में धृतराष्ट्र और अम्बालिका में पाण्डु दासी में विदुर की उत्पत्ति की इत्यादि इतिहास भी इस बात में प्रस्ताव प्रोपिनो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽप्री नरः समाः ।

य पद् यशोर्थं वा कामार्थं त्रीस्तु वत्सरान् ॥ १ ॥

॥ १ ॥ धिमेऽधि वेद्यावे दशमे तु मृतप्रजा ।

एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥ २ ॥ मनु० [१११]

विवाहित स्त्री जो विवाहित पति धर्म के अर्थ परदेश गया हो तो वर्ष, विद्या और कीर्ति के लिये गया हो तो छ. और धनार्थ के लिये गया हो तो तीन वर्ष तक वाट देस के पश्चात् नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करले, जब विवाहित पति आवे तब निरुक्त पति हट जावे। वैसे ही पुरुष के लिये भी नियम है कि बन्ध्या हो तो आठवें (विवाह आठ वर्ष तक स्त्री को गर्भ न रहे), सन्तान होकर मरजावे तो दश वर्ष तक ही नये बन्ध्या ही होवें, पुत्र न हों तो ग्यारहवें वर्ष तक ही अप्रिय बोलने वाली हो तो मद्यः उस स्त्री को छोड़ के दूसरी नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर लेवे ॥ २ ॥ वैसे ही जो पुरुष

दुःखदायक हो तो स्त्री को उचित है कि उसको छोड़ के दूसरे पुरुष से नियोग कर सन्तानोत्पत्ति करके उसी विवाहित पति के दायभागी सन्तान कर लेवे। इत्यादि प्रमाण और पुक्तियों से स्वयंवर विवाह और नियोग से अपने २ कुल की उत्पत्ति करे। जैसा 'औरस' अर्थात् विवाहित पति से उत्पन्न हुआ पुत्र पिता के पदार्थों का स्वामी होता है वैसे ही 'क्षेत्रज' अर्थात् नियोग से उत्पन्न हुए पुत्र भी मृत पिता के दायभागी होते हैं।

४०—अब इस पर स्त्री और पुरुष को ध्यान रखना चाहिये कि वीर्य और रज को अमूल्य समझे। जो कोई इस अमूल्य पदार्थ को परस्त्री, वेश्या वा दुष्ट पुरुषों के सङ्ग में खोते हैं वे महामूर्ख होते हैं। क्योंकि किसान वा माली मूर्ख होकर भी अपने खेत वा वाटिका के बिना अन्यत्र बीज नहीं बोते। जोकि साधारण बीज और मूर्ख का ऐसा वर्तमान है तो जो सर्वोत्तम मनुष्य शरीररूप वृक्ष के बीज को कुक्षेत्र में खोना है वह महामूर्ख कहाता है क्योंकि उसका फल उसको नहीं मिलता और 'आत्मा वै जायते पुत्रः' † यह ब्राह्मण ग्रन्थों का वचन है ॥ †

अङ्गादङ्गात्सम्भवांसु हृदयादधिजायसे।

आत्मा वै पुत्रतामसि स जीव शरद शतम् ॥ *

निरुक्त अ० ३। खं० ४ ॥

हे पुत्र ! तू अङ्ग २ से उत्पन्न हुए वीर्य में और हृदय से उत्पन्न होता है इसलिये तू मेरा आत्मा है, मुझ से पूर्व मत मरे किन्तु सौ वर्ष तक जी। जिससे ऐसे २ महात्मा और महाशयों के शरीर उत्पन्न होते हैं इसको वेश्यादि दुष्टक्षेत्र में बोना वा दुष्टबीज अच्छे क्षेत्र में बुवाना महापाप वा वाम है ?

४१—(प्रश्न) विवाह क्यों बरना ? क्योंकि इससे स्त्री पुरुष को बन्धन में पड़के बहुत सक्रोच करना और दुःख भोगना पड़ता है इसलिये जिसके साथ जिसकी प्रीति हो तबतक वे मिले रहें, जब प्रीति छूट जाय तो छोड़ दें।

(उत्तर) यह पशु पक्षियों का व्यवहार है, मनुष्यों का नहीं। जो मनुष्यों में विवाह का नियम न रहे तो सब गृहाश्रम के अच्छे २ व्यवहार सब नष्ट भ्रष्ट होजाय। कोई किसी की सेवा भी न करे और महाव्यभिचार बढ़ कर सब रोगी, निर्बल और अस्वास्थ होकर दीर्घ २ मरजायें। कोई किसी से भय वा लज्जा न करे। दृढावस्था में कोई किसी की सेवा भी नहीं

गिने जाते हैं। और जो विवाहित स्त्री पुरुष भी दसवें गर्भ समागम करें तो कामी और निन्दित होते हैं अर्थात् विवाह का सन्तानों ही के अर्थ किये जाते हैं, पशुवत् कामक्रीडा के लिये नहीं।

३६—(प्रश्न) नियोग मरे पीछे ही होता है वा जीते पति के (उत्तर) जीते भी होता है—

अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥ ऋ० मं० १०। सू० १०। [मं०।

जब पति सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे तब अपनी स्त्री को देवे कि हे सुभगे ! सौभाग्य की इच्छा करने वाली स्त्री ! तू (मा) से (अन्यम्) दूसरे पति की (इच्छस्व) इच्छा कर क्योंकि अब सन्तानोत्पत्ति न हो सकेगी। तब स्त्री दूसरे से नियोग करके करे। परन्तु उस विवाहित महाशय पति की सेवा में तत्पर रहे। स्त्री भी जब रोगादि दोषों से ग्रस्त होकर सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ अपने पति को आज्ञा देवे कि हे स्वामी ! आप सन्तानोत्पत्ति की छोड़ के किसी दूसरी विधवा स्त्री से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति जैसा कि पाण्डु राजा की स्त्री कुन्ती और माद्री आदि ने किया और व्यासजी ने विचित्राक्ष और विचित्रवीर्य के मर जाने पश्चात् उन की स्त्रियों से नियोग करके अम्बिका में धृतराष्ट्र और अम्बालिका में दासी में विदुर की उत्पत्ति की इत्यादि इतिहास भी इस बात में प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽप्यौ नरः समाः। विद्यार्थं पद् यशोर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान् ॥ १ ॥ वन्ध्याष्टमेऽधिप्रेक्षावदे दशमे तु मृतप्रजा।

एकादशे स्त्रीजननी मद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥ २ ॥ मनु० [१०।

विवाहित स्त्री जो विवाहित पति धर्म के अर्थ परदेश गया हो वर्ष, विद्या और कीर्ति के लिये गया हो तो छः और धनार्थ के लिये गया हो तो तीन वर्ष तक बाट देख के पश्चात् नियोग करके उत्पत्ति करले, जब विवाहित पति आवे तब निरुक्त पति हट जावे वैसे ही पुरुष के लिये भी नियम है कि वन्ध्या हो तो आठवें (आठ वर्ष तक स्त्री को गर्भ न रहे), सन्तान होकर मरजावे तो जब हो तब तब कन्या ही होवे, पुत्र न हों तो ग्यारहवें वर्ष तक अप्रिय बोलने वाली हो तो सद्यः उस स्त्री को छोड़ के दूसरे नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर लेवे ॥ २ ॥ वैसे ही जो पुरुष

दुःखदायक हो तो स्त्री को उचित है कि उसको छोड़ के दूसरे पुरुष से नियोग कर सन्तानोत्पत्ति करके उसी विवाहित पति के दायभागी सन्तान कर लेवे। इत्यादि प्रमाण और चुक्तियों से स्वयंवर विवाह और नियोग से अपने २ कुल की उन्नति करे। जैसा 'औरस' अर्थात् विवाहित पति से उत्पन्न हुआ पुत्र पिता के पदार्थों का स्वामी होता है वैसे ही 'क्षेत्रज' अर्थात् नियोग से उत्पन्न हुए पुत्र भी मृत पिता के दायभागी होते हैं।

५०—अब इस पर स्त्री और पुरुष को ध्यान रखना चाहिये कि वीर्य और रज को अमूल्य समझे। जो कोई इस अमूल्य पदार्थ को परस्त्री, वैश्या वा दुष्ट पुरुषों के सङ्ग में खोते हैं वे महामूर्ख होते हैं। क्योंकि किसान वा माली मूर्ख होकर भी अपने खेत वा वाटिका के बिना अन्यत्र बीज नहीं बोते। जोकि साधारण बीज और मूर्ख का ऐसा वर्तमान है तो जो सर्वोत्तम मनुष्य शरीररूप वृक्ष के बीज को कुक्षेत्र में खोता है वह महामूर्ख कहाता है क्योंकि उसका फल उसको नहीं मिलता और 'आत्मा वै जायते पुत्रः' † यह ब्राह्मण ग्रन्थों का वचन है ॥ †

श्रद्धाद्दङ्गात्सम्भवात्स हृदयादधिजायसे।

आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरद शतम् ॥ *

निरुक्त अ० ३। खं० ४ ॥

हे पुत्र ! तू अङ्ग २ से उत्पन्न हुए वीर्य से और हृदय से उत्पन्न होता है इसलिये तू मेरा आत्मा है, मुझ से पूर्व मत मरे किन्तु सौ वर्ष तक जी। जिससे ऐसे २ महात्मा और महाशयो के शरीर उत्पन्न होते हैं इसको वैश्यादि दुष्टक्षेत्र में बोना वा दुष्टबीज अच्छे क्षेत्र में बुवाना महापाप का काम है ?

४१—(प्रश्न) विवाह क्यों करना ? क्योंकि इससे स्त्री पुरुष को बन्धन में पड़के बहुत सकोच करना और दुःख भोगना पड़ता है इसलिये जिसके साथ जिसकी प्रीति हो तबतक वे मिले रहे, जब प्रीति छूट जाय तो छोड़ दें।

(उत्तर) यह पशु पक्षियों का व्यवहार है, मनुष्यों का नहीं। जो मनुष्यों में विवाह का नियम न रहे तो सब गृहाश्रम के अच्छे २ व्यवहार सब नष्ट भ्रष्ट होजाय। कोई किसी की सेवा भी न करे और महाव्यभिचार बढ़ कर सब रोगी, निर्बल और अत्पातु होकर शीघ्र २ मरजायें। कोई किसी से भय वा लज्जा न करे। हृद्रावस्था में कोई किसी की सेवा भी नहीं

गिने जाते हैं। और जो विवाहित स्त्री पुरुष भी दशवर्ष सम्म समागम करें तो कामी और निन्दित होते हैं अर्थात् विवाह वा सन्तानों ही के अर्थ किये जाते हैं, पशुवत् कामझीडा के लिये नहीं।

३६—(प्रश्न) नियोग मरे पीछे ही होता है वा जीते पति

(उत्तर) जीते भी होता है—

अन्यामिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥ ऋ० मं० १०। सू० १०। [मं०]

जब पति सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे तब अपनी स्त्री को देवे कि हे सुभगे ! सौभाग्य की इच्छा करने हारी स्त्री ! तू (मा) से (अन्यम्) दूसरे पति की (इच्छस्व) इच्छा कर क्योंकि अब सन्तानोत्पत्ति न हो सकेगी। तब स्त्री दूसरे से नियोग करके करे। परन्तु उस विवाहित महाशय पति की सेवा में तत्पर रहे। स्त्री भी जब रोगादि दोषों से ग्रस्त होकर सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ अपने पति को आज्ञा देवे कि हे स्वामी ! आप सन्तानोत्पत्ति की छोड़ के किसी दूसरी विधवा स्त्री से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति जैसा कि पाण्डु राजा की स्त्री कुन्ती और माद्री आदि ने किया और व्यासजी ने चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य के मर जाने पश्चात् उन की स्त्रियों से नियोग करके अम्बिका में धृतराष्ट्र और अम्बालिका में दासी में विदुर की उत्पत्ति की इत्यादि इतिहास भी इस बात में प्रोपिनो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः। विद्यार्थं पद् यशोर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान् ॥ १ ॥ वन्ध्याष्टमेऽधिब्रेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा।

एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥ २ ॥ मनु० [१।१।

विवाहित स्त्री जो विवाहित पति धर्म के अर्थ परदेश गया हो वर्ष, विद्या और कीर्ति के लिये गया हो तो छः और धनार्थ के लिये गया हो तो तीन वर्ष तक बाट देख के पश्चात् नियोग कर ले, तत्पत्ति करले, जब विवाहित पति आवे तब निरुक्त पति छूट जावे। वैसे ही पुरुष के लिये भी नियम है कि वन्ध्या हो तो आठवें (आठ वर्ष तक स्त्री को गर्भ न रहे), सन्तान होकर मरजावे तो दश वर्ष हो तब तब वन्ध्या ही होवे, पुत्र न हों तो ग्यारहवें वर्ष तक अप्रिय बोलने वाली हो तो सद्यः उस स्त्री को छोड़ के दूसरी नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर लेवे ॥ २ ॥ वैसे ही जो पुरुष

दुःखदायक हो तो स्त्री को उचित है कि उसको छोड़ के दूसरे पुरुष से नियोग कर सन्तानोत्पत्ति करके उसी विवाहित पति के दायभागी सन्तान कर लेवे। इत्यादि प्रमाण और पुक्तियों से स्वयंवर विवाह और नियोग से अपने २ कुल की उन्नति करे। जैसा 'औरस' अर्थात् विवाहित पति से उत्पन्न हुआ पुत्र पिता के पदार्थों का स्वामी होता है वैसे ही 'क्षेत्रज' अर्थात् नियोग से उत्पन्न हुए पुत्र भी मृत पिता के दायभागी होते हैं।

५०—अब इस पर स्त्री और पुरुष को ध्यान रखना चाहिये कि वीर्य और रज को अमूल्य समझे। जो कोई इस अमूल्य पदार्थ को परस्त्री, वेश्या वा दुष्ट पुरुषों के सङ्ग में खोते हैं वे महामूर्ख होते हैं। क्योंकि किसान वा माली मूर्ख होकर भी अपने खेत वा बाटिका के बिना अन्यत्र बीज नहीं बोते। जोकि साधारण बीज और मूर्ख का ऐसा वर्तमान है तो जो सर्वोत्तम मनुष्य शरीररूप वृक्ष के बीज को कुक्षेत्र में खोता है वह महामूर्ख कहाता है क्योंकि उसका फल उसको नहीं मिलता और 'आत्मा वै जायते पुत्रः' † यह ब्राह्मण ग्रन्थों का वचन है ॥ १

अङ्गादङ्गात्सम्भवासु हृदयादधिजायसे ।

आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥ *

निरुक्त अ० ३ । खं० ४ ॥

हे पुत्र ! तू अङ्ग २ से उत्पन्न हुए वीर्य में और हृदय से उत्पन्न होता है इसलिये तू मेरा आत्मा है, मुझ से पूर्व मत मरे किन्तु सौ वर्ष तक जी। जिससे ऐसे २ महात्मा और महाशयो के शरीर उत्पन्न होते हैं इसको वेश्यादि दुष्टक्षेत्र में बोना वा दुष्टबीज अच्छे क्षेत्र में डुबाना महापाप का काम है ?

४१—(प्रश्न) विवाह क्यों करना ? क्योंकि इससे स्त्री पुरुष को बन्धन में पड़के बहुत सकोच करना और दुःख भोगना पड़ता है इसलिये जिसके साथ जिसकी प्रीति हो तबतक वे मिले रहे, जब प्रीति छूट जाय तो छोड़ दें।

(उत्तर) यह पशु पक्षियों का व्यवहार है, मनुष्यों का नहीं। जो मनुष्यों में विवाह का नियम न रहे तो सब गृहाश्रम के अच्छे २ व्यवहार सब नष्ट भ्रष्ट होजाय। कोई किसी की सेवा भी न करे और महाव्यभिचार बढ़ कर सब रोगी, निर्बल और अल्पायु होकर दीघ २ मरजायें। कोई किसी से भय वा लज्जा न करे। दुर्भावस्था में कोई किसी की सेवा भी नहीं

[जैसे] गोपालों को पालनीय होती है वैसे कुम्हार आदि को गधही पालनीय नहीं होती ? और यह दृष्टान्त भी विषम है क्योंकि द्विज और शूद्र मनुष्य जाति, गाय और गधही भिन्न जाति हैं, कथञ्चित् पशु जाति से दृष्टान्त का एकदेश दार्ष्टान्त में मिल भी जावे तो भी इसका आशय अचुन होने से यह श्लोक विद्वानों के माननीय कभी नहीं हो सकते ॥ १ ॥

जब अध्यात्म अर्थात् घोड़े को मार के अधवा (गवालम्भ) गाय को मार के होम करना ही वेदविहित नहीं है तो उसका कलियुग में निषेध करना वेदविरुद्ध क्यों नहीं ? जो कलियुग में इस नीच कर्म का निषेध माना जाय तो त्रेता आदि में विधि आ जाय, तो इसमें ऐसे दुष्ट काम का श्रेष्ठ युग में होना सर्वथा असम्भव है । और संन्यास की वेदादि शास्त्रों में विधि है । उसका निषेध करना निर्मूल है । जब मास का निषेध है तो सर्वदा ही निषेध है । जब देवर से पुत्रोत्पत्ति करना वेदों में लिखा है तो यह श्लोककर्त्ता क्यों भूलता है ? ॥ २ ॥

यदि (नष्टे) अर्थात् पति किसी देश देशान्तर को चला गया हो, घर में स्त्री नियोग कर लेवे उसी समय विवाहित पति आजाय तो वह किस की स्त्री हो ? कोई कहे विवाहित पति की, हमने माना परन्तु ऐसी व्यवस्था पाराशरी में तो नहीं लिखी । क्या स्त्री के पांच ही आपत्काल हैं ? जो रोगी पड़ा हो वा लड़ाई होगई हो इत्यादि आपत्काल पांच से भी अधिक हैं, इसलिये ऐसे २ श्लोकों को कभी न मानना चाहिये ॥३॥

(प्रश्न) क्यों जी तुम पराशर मुनि के वचन को भी नहीं मानते ?

(उत्तर) चाहे किसी का वचन हो, परन्तु वेदविरुद्ध होने से नहीं मानते और यह तो पराशर का वचन भी नहीं है क्योंकि जैसे 'ब्रह्मोवाच, वशिष्ठ उवाच, राम उवाच, शिव उवाच, विष्णुरुवाच, देवयुवाच' इत्यादि श्रेष्ठों का नाम लिख के ग्रन्थरचना इसलिये करते हैं कि सर्वमान्य के नाम से इन ग्रन्थों को सब सत्कार मान लेवे और हमारी पुष्कल जीविका भी हो । इसलिये अनर्थ गाथायुक्त ग्रन्थ बनाते हैं । कुछ २ प्रक्षिप्त श्लोकों को छोड़ के मनुस्मृति ही वेदानुकूल है अन्य स्मृति नहीं । ऐसे ही अन्य जालग्रन्थों की व्यवस्था समझलो ।

४४—(प्रश्न) गृहाध्रम सबसे छोटा वा बड़ा है ?

(उत्तर) अपने २ कर्त्तव्य-कर्मों में सब बड़े हैं परन्तु —

अथ पञ्चमसमुह्यासारम्भः

अथ वानप्रस्थसंन्यासविधिं वक्ष्यामः

१—ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भवेद् गृही भूत्वा वनी
त्वेद् वनी भूत्वा प्रव्रजेत् ॥ ॐ शत० का० १४ ॥

मनुष्यों को उचित है कि ब्रह्मचर्याश्रम को समाप्त करके गृहस्थ होकर
नप्रस्थ और वानप्रस्थ होके संन्यासी होवे अर्थात् यह अनुक्रम से आश्रम
विधान है ।

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवन्स्नातको द्विजः ।

वने वसेत्तु नियतो यथावद् विजितेन्द्रियः ॥ १ ॥

गृहस्थस्तु यदा पश्येद् वलीपलिनमात्मनः ।

अरन्त्यस्यैव चापत्य तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ २ ॥

संत्यज्य ग्राम्यमाहार सर्वं चैव परिच्छेदम् ।

पुत्रं पुत्र्यां निःक्षिप्य वनं गच्छेत् सहव वा ॥ ३ ॥

अग्निहोत्र समादाय गृह्य चाग्निपरिच्छेदम् ।

ग्रामादारण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः ॥ ४ ॥

मुन्यत्रैर्विविधैर्मन्त्रैः शाकमूलफलेन वा ।

एतानेव महायज्ञान्निर्वपेद् विधिपूर्वकम् ॥ ५ ॥ मनु० [१।१-५]

इस प्रकार स्नातक अर्थात् ब्रह्मचर्यपूर्वक ब्रह्मश्रम का कर्ता द्विज अर्थात्
क्षण, क्षत्रिय और वैश्य गृहाश्रम में ठहर कर निश्चितात्मा और यथावत्
न्द्रियों को जीत के वन में वसे ॥ १ ॥ परन्तु जब गृहस्थ शिर के श्वेत
भा और त्वचा टोली हो जाय और लटके का लडका भी हो गया हो तब
में जाके वसे ॥ २ ॥ सत्र ग्राम के आहार और वस्त्रादि सब उत्तमोत्तम
श्यों को छोड़ पुत्रों के पास रखी वी रख घा अपने साथ ले के वन में
वास करे ॥ ३ ॥ साहोपाह्न अग्निहोत्र को ले के ग्राम से निकल, दृढेन्द्रिय
कर अरण्य में जाके वसे ॥ ४ ॥ नाना प्रकार के सामा आदि अन्न, सुन्दर
न्दर शाक, मूल, फल, फूल वंदादि से पूर्वोक्त पंच महायज्ञों को करे और
सी से अतिथिसेवा और आप भी निर्वाह करे ॥ ५ ॥

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम् ।
 तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥१॥ मनु० [१।१०]
 यथा चायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः ।
 तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥ २ ॥
 यस्मात्त्रयोप्याश्रमिणो दानेनाग्नेन चान्वदम् ।
 गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥ ३ ॥ मनु०-
 स संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता ।

सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्वलेन्द्रियैः ॥४॥ [३।००-०१]
 जैसे नदी और बड़े २ नद तब तक भ्रमते ही रहते हैं जबतक समुद्र
 को प्राप्त नहीं होने, वैसे गृहस्थ ही के आश्रय से सब आश्रम स्थिर रहते
 हैं, बिना इस आश्रम के किसी आश्रम का कोई व्यवहार सिद्ध नहीं होता।
 जिससे ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी तीन आश्रमों को दान और
 अन्नादि दे के प्रतिदिन गृहस्थ ही धारण करता है इससे गृहस्थ ज्येष्ठाश्रम
 है अर्थात् सब व्यवहारों में धुरन्वर कहाता है इसलिये जो मोक्ष और
 संसार के सुख की इच्छा करता हो वह प्रयत्न से गृहाश्रम का धारण करे। जो
 दुर्वलेन्द्रिय अर्थात् भीरु और निर्बल पुरुषों से धारण करने अयोग्य
 है उसको अच्छे प्रकार धारण करे। इसलिये जितना कुछ व्यवहार संसार
 में है उसका आधार गृहाश्रम है। जो यह गृहाश्रम न होता तो सन्तानो-
 त्पत्ति के न होने से ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम कहां से हो
 सकते? जो कोई गृहाश्रम की निन्दा करता है वही निन्दनीय है और जो
 प्रशंसा करता है वही प्रशंसनीय है। परन्तु तभी गृहाश्रम में सुख होता है
 स्त्री और पुरुष दोनों परस्पर प्रसन्न, विद्वान्, पुरुषार्थी और सब प्रकार
 के व्यवहारों के ज्ञाता हों। इसलिये गृहाश्रम के सुख का मुख्य कारण
 और पूर्वोक्त स्वयंवर विवाह है। यह संक्षेप से समावर्तन विवाह
 गृहाश्रम के विषय में शिक्षा लिय दी। इसके आगे वानप्रस्थ और
 संन्यास के विषय में लिखा जायगा।

इति श्रीमद्भगवानन्दमरम्बतीश्वरमिहने सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते
 सामानाश्रम-विवाह-गृहाश्रम विषये चतुर्थः समुदासः सम्पूर्णः ॥२॥

(प्रश्न) गृहाश्रम और वानप्रस्थाश्रम न करके संन्यासाश्रम करे
को पाप होता है वा नहीं ?

(उत्तर) होता है और नहीं भी होता ।

(प्रश्न) यह दो प्रकार की घात क्यों कहते हो ?

(उत्तर) दो प्रकार की नहीं, क्योंकि जो ब्रह्मावस्था में विरक्त होकर
योंमेंसे वह महापापी और जो न फँसे वह महापुण्यात्मा, सत्पुरुष है ।

यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेद् वनाद् वा

गृहाद् वा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत् [जाबाल उप० ४ ॥]

ये ब्राह्मण ग्रन्थ के वचन हैं । जिस दिन वैराग्य प्राप्त हो उसी दिन
वा वन से संन्यास ग्रहण करलेवे । पहिले संन्यास का पक्षक्रम कहा और
में विकल्प अर्थात् वानप्रस्थ न करे, गृहस्थाश्रम ही से संन्यास ग्रहण
। और तृतीय पक्ष यह है कि जो पूर्ण विद्वान्, जितेन्द्रियविषयभोग की
मना से रहित, परोपकार करने की इच्छा से युक्त पुरुष हो वह ब्रह्म-
श्रम ही से संन्यास लेवे और वेदों में भी 'यतयः', 'ब्राह्मणस्य'
[जानतः] इत्यादि पदों से संन्यास का विधान है, परन्तु—

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः । कठ० । बली २ ।

नाशातमानसो चापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥ मं० २३ ॥

जो दुराचार से पृथक् नहीं, जिसको शान्ति नहीं है, जिसका आत्मा
भी नहीं और जिसका मन शान्त नहीं वह संन्यास ले के भी प्रज्ञान से
मात्मा को प्राप्त नहीं होता । इसलिये—

यच्छेद् बाङ्मनसी प्राप्तस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि ।

ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत् तद् यच्छेच्छान्त आत्मनि ॥

कठ० । बली ३ । मं० १३ ॥

संन्यासी बुद्धिमान् वाणी और मन को अधर्म से रोक के उनको ज्ञान और
मा में लगावे और उस ज्ञानस्वात्मा को परमात्मा में लगावे और उस
ज्ञान को शान्तस्वरूप आत्मा में स्थिर करे ।

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो

निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन ।

तद्विज्ञानाय स गुरुमेवाभिगच्छेत्

मुण्ड०-

समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥

खं० २ । मं० १२ ॥

सब लौकिक भोगों को कर्म से संचित हुए देखकर ब्राह्मण अर्थात्

लोक में प्रतिष्ठा या लाभ, धन से भोग, या मान्य पुत्रादि के मोह से ग हो के संन्यासी लोग भिक्षुक होकर रात दिन मोक्ष के साधनों में र रहते हैं ।

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं तस्यां सर्ववेदसं

हुत्वा ब्राह्मणः प्रव्रजेत् ॥ १ ॥ यजुर्वेदब्राह्मणे ॥

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ।

आन्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात् ॥ २ ॥

यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात् ।

तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥ ३ ॥

मनु० [अ० १ । ३८, ३९]

प्राजापति अर्थात् परमेश्वर की प्राप्ति के अर्थ इष्टि अर्थात् यज्ञ करके में यज्ञोपवीत शिखादि चिन्हों को छोड़, आहवनीयादि पांच अग्नियों प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान इन पांच प्राणों में आरोपण के ब्राह्मण ब्रह्मवित् घर से निकल कर संन्यासी हो जावे ॥१॥२॥ जो भूत प्राणिमात्र को अभयदान देकर घर से निकल के संन्यासी होता उस ब्रह्मवादी अर्थात् परमेश्वरप्रकाशित वेदोक्त धर्मादि विद्याओं के उप- करने वाले संन्यासी के लिये प्रकाशमय अर्थात् मुक्ति का आनन्द- रूप लोक प्राप्त होता है ।

३—(प्रश्न) संन्यासियों का क्या धर्म है ?

(उत्तर) धर्म तो पक्षपातरहित न्यायाचरण, सत्य का ग्रहण, असत्य परित्याग, वेदोक्त ईश्वर की आज्ञा का पालन, परोपकार, सत्यभाषणादि अण सब आश्रमियों का अर्थात् सब मनुष्यमात्र का एक ही है परन्तु सासी का विशेष धर्म यह है कि. —

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।

सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥ १ ॥

क्रुद्धघन्तं न प्रतिकुध्येदात्मनः कुशलं वदेत् ।

सप्तद्वारावकीर्णं च न वाचमनं वदेत् ॥ २ ॥

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः ।

आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ॥ ३ ॥

क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुम्भवान् ।

विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ ४ ॥

न करे, किन्तु सदा उसके कल्याणार्थ उपदेश ही करे और एक मुख दो नसिका के, दो आंख के और दो कान के छिद्रों में बिखरी हुई नी को किसी कारण से मिथ्या कभी न बोले ॥ २ ॥ अपने आत्मा और आत्मा में स्थिर, अपेक्षारहित, मद्य मांसादि वर्जित होकर, आत्मा ही नहाय से सुखार्थी होकर, इस सत्सार में धर्म और विद्या के बढ़ाने में तेज के लिये सदा विचरता रहे ॥ ३ ॥ केश, नख, डाढ़ी, मूछ को न करवावे, सुन्दर पात्र, दण्ड और कुसुम्भ आदि से रंगे हुए वस्त्रों को न करके निश्चिन्तात्मा सब भूतों को पीडा न देकर सर्वत्र विचरे ॥ ४ ॥ द्रव्यों को अधर्माचरण से रोक, रागद्वेष को छोड़ सब प्राणियों से निर्वैर कर मोक्ष के लिये सामर्थ्य बढ़ाया करे ॥ ५ ॥ कोई संसार में उसको त वा भूषित करे तो भी जिस किसी आश्रम में वर्त्तता हुआ पुरुष त् सन्यासी सब प्राणियों में पक्षपातरहित होकर स्वयं धर्मात्मा और गों को धर्मात्मा करने में प्रयत्न किया करे । और यह अपने मन में धृत जाने कि दण्ड, कमण्डलु और काषाय वस्त्र आदि चिह्न धारण धर्म कारण नहीं हैं, सब मनुष्यादि प्राणियों के सत्योपदेश और विद्या दान उन्नति करना संन्यासी का मुख्य कर्म है ॥ ६ ॥ क्योंकि यद्यपि निर्मली का फल पीस के गदरे जल में डालने से जल का शोधक होता है पि विना [उसके] टाले उसके नाम कथन वा श्रवणमात्र से जल शुद्ध हो सकता ॥ ७ ॥ इसलिये ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मविद् सन्यासी को त है कि ओंकारपूर्वक सप्तव्याहृतियों से विधिपूर्वक प्राणायाम, जितनी के हो उतने करे परन्तु तीन से तो न्यून प्राणायाम कभी न करे, यही प्राप्ती का परम तप है ॥ ८ ॥ क्योंकि जैसे अग्नि में तपाने और ने से धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं वैसे ही प्राणों के निग्रह से मन द्रव्यों के दोष भस्मीभूत होते हैं ॥ ९ ॥ इसलिये सन्यासी लोग नित्य- प्राणायामों से आत्मा, अन्तःकरण और इन्द्रियों के दोष, धारणाओं पाप, प्रत्याहार से सगदोष, ध्यान से अनीश्वर के गुणों अर्थात् हर्ष, शोक र अविद्यादि जीव के दोषों को भस्मीभूत करे ॥ १० ॥ इसी ध्यानयोग जो अयोगी अविद्वानों को दुःख से जानने योग्य छोटे बड़े पदार्थों में आत्मा की व्याप्ति उसकी और अपने आत्मा और अन्तर्यामी परमेश्वर की को देखे ॥ ११ ॥ सब भूतों से निर्वैर, इन्द्रियों के विषयों या त्याग, क्त कर्म, और अत्युग्र तपश्चरण से इस सत्सार में मोक्षपद को पूर्वोक्त

—(प्रश्न) संन्यासग्रहण करना ब्राह्मण ही का धर्म है वा क्षत्रियादिका भी ?

(उत्तर) ब्राह्मण ही को अधिकार है क्योंकि जो सब वर्णों में पूर्ण ज्ञान, धार्मिक, परोपकारप्रिय मनुष्य है उसी का 'ब्राह्मण' नाम है । विना पूर्ण विद्या के धर्म, परमेश्वर की निष्ठा और वैराग्य के संन्यास ग्रहण करने सत्सार का विशेष उपकार नहीं हो सकता, इसीलिये लोकश्रुति है कि ब्राह्मण ही संन्यास का अधिकार है अन्य को नहीं । यह मनु का प्रमाण भी है :—
य एवोऽभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः ।

एयोऽक्षयफलः प्रेत्य राजधर्मान् निबोधत ॥ मनु० ६ । ९७ ॥

यह मनुजी महाराज कहते हैं कि हे ऋषियो ! यह चार प्रकार अर्थात् ब्रह्मचर्य, [गृहस्थ], वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम करना ब्राह्मण का धर्म । यहा वर्तमान में पुण्यस्वरूप और शरीर छोड़े पश्चात् मुक्तिरूप अक्षय आनन्द का देनेवाला संन्यास धर्म है । इसके आगे राजाओं का धर्म मुझ सुनो । इससे यह सिद्ध हुआ कि संन्यासग्रहण का अधिकार मुख्य रूप से ब्राह्मण का है और क्षत्रियादि का ब्रह्मचर्याश्रम है ।

५—(प्रश्न) संन्यासग्रहण की आवश्यकता क्या है ?

(उत्तर) जैसे शरीर में शिर की आवश्यकता वैसे ही आश्रमों में संन्यासाश्रम की आवश्यकता है क्योंकि इस के विना विद्या, धर्म कभी नहीं बढ़ सकता और दूसरे आश्रमों को विद्याग्रहण, गृहकृत्य और तपश्चर्यादि का सम्यग्ध होने से अवकाश बहुत कम मिलता है । पक्षपात छोड़ कर वर्तमान दूसरे आश्रमों को दुष्कर है जैसा संन्यासी सर्वतोमुक्त होकर जगत् का उपकार करता है वैसा अन्य आश्रमी नहीं कर सकता, क्योंकि संन्यासी को सत्यविद्या से पदार्थों के विज्ञान की उन्नति का जितना अवकाश मिलता है उतना अन्य आश्रमी को नहीं मिल सकता । परन्तु जो ब्रह्मचर्य से संन्यासी होकर जगत् को सत्य शिक्षा करके जितनी उन्नति कर सकता है उतनी गृहस्थ वा वानप्रस्थ आश्रम करके संन्यासाश्रमी नहीं कर सकता ।

(प्रश्न) संन्यास ग्रहण करना ईश्वर के अभिप्राय से विरुद्ध है क्योंकि ईश्वर का अभिप्राय मनुष्यों की बढ़ती करने में है । जब गृहाश्रम नहीं रहेगा तो उससे सन्तान ही न होंगे । जब संन्यासाश्रम ही मुख्य है और जब मनुष्य करें तो मनुष्यों का मूलच्छेदन हो जायगा ।

(उत्तर) अच्छा, विद्या करके भी बहुतों के सन्तान नहीं होते यवा हो शीघ्र नष्ट हो जाते हैं फिर वह भी ईश्वर के अभिप्राय

मिथ्यारूप और पाप के बढाने हारे पापी हैं । जो कुछ शरीरादि से कर्म या जाता है वह सब आत्मा ही का और उसके फल का भोगने वाला भी आत्मा है । जो जीव को ब्रह्म मतलाते हैं वे अविद्या निद्रा में सोते हैं । तोंकि जीव अल्प, अल्पज्ञ और ब्रह्म सर्वव्यापक, सर्वज्ञ है, ब्रह्म नित्य, शुद्ध, द्र, मुक्तस्वभावयुक्त है और जीव कभी बद्ध, कभी मुक्त रहता है । ब्रह्म । सर्वव्यापक सर्वज्ञ होने से भ्रम वा अविद्या कभी नहीं हो सकती और जीव को कभी विद्या और कभी अविद्या होती है, ब्रह्म जन्ममरण दुःख को कभी ही प्राप्त होता और जीव प्राप्त होता है इसलिये वह उनका उपदेश मिथ्या है ।

(प्रश्न) संन्यासी सर्वकर्मविनाशी और अग्नि तथा धातु को स्पर्श ही करते यह बात सच्ची है वा नहीं ?

(उत्तर) नहीं । 'सम्यङ् नित्यमास्ते यस्मिन्, यद्वा सम्यङ् प्रस्यान्ति दुःखानि कर्माणि येन स संन्यासः, स प्रशस्तो विद्यते यस्य स संन्यासी ।' जो ब्रह्म और जिससे दुष्ट कर्मों का त्याग किया जाय वह उत्तम स्वभाव जिस में हो वह संन्यासी कहाता है, इसमें सुकर्म । कर्ता और दुष्ट कर्मोंका नाश करनेवाला संन्यासी कहाता है ।

७—(प्रश्न) अध्यापन और उपदेश गृहस्थ किया करते हैं, पुनः संन्यासी का क्या प्रयोजन है ?

(उत्तर) सत्योपदेश सब आश्रमी करे और सुनें, परन्तु जितना अवकाश और निष्पक्षपातता संन्यासी को होती है उतना गृहस्थ को नहीं । हा, जो ब्राह्मण हैं उनका यही काम है कि पुरुष पुरुषों को और स्त्री स्त्रियों को सत्योपदेश और पढाया करें । जितना भ्रमण का अवकाश संन्यासी को मिलता है उतना गृहस्थ ब्राह्मणादिकों को कभी नहीं मिल सकता । जब ब्राह्मण वेदविरुद्ध आचरण करे तब उनका नियन्ता संन्यासी होता है । इसलिये संन्यास का होना उचित है ।

(प्रश्न) "एकरात्रि वसेद् ग्रामे" इत्यादि वचनों से संन्यासी को एकत्र एक रात्रिमात्र रहना अधिक निवास न करना चाहिये ।

(उत्तर) यह बात थोड़े से अज्ञ में तो अच्छी है कि एकत्र वास करने से जगत् का उपकार अधिक नहीं हो सकता और स्थानान्तर का भी अभिमान होता है, राग द्वेष भी अधिक होता है, परन्तु जो विशेष उपकार एकत्र रहने से होता हो तो रहे । जैसे जनक राजा के यहां चार चार माहिने तक पञ्चशिखादि और अन्य संन्यासी दिनने ही वर्षों तक निवास करते थे ।

(प्रश्न) लोग कहते हैं कि श्राद्ध में संन्यासी आवे वा जिमावे तो उसके पितर भाग जायें और नरक में गिरें ।

(उत्तर) प्रथम तो मरे हुए पित्रो का आना और किया हुआ श्राद्ध ते हुए पितरों को पहुचाना ही असम्भव, वेद और युक्तिविरुद्ध होने से मथ्या है। और जब आते ही नहीं तो भाग कौन जायेंगे ? जब अपने पाप पुण्य के अनुसार ईश्वर की व्यवस्था से मरण के पश्चात् जीव जन्म लेते हैं तो उनका आना कैसे हो सकता है ? इसलिये यह भी बात पेटार्थी, पुराणी और वैरागियों की मिथ्या कल्पी हुई है। यह तो ठीक है कि जहां संन्यासी जायेंगे वहां यह मृतक श्राद्ध करना वेदादि शास्त्रों से विरुद्ध होने से ग्राखण्ड दूर भाग जायगा ।

९—(प्रश्न) जो ब्रह्मचर्य्य से संन्यास लेवेगा उसका निर्वाह कठिनता से होगा और काम का रोकना भी अति कठिन है इसलिये गृहधर्म, वान-प्रस्थ होकर जब बृद्ध हो जाय तभी संन्यास लेना अच्छा है ।

(उत्तर) जो निर्वाह न कर सके, इन्द्रियों को न रोक सके वह ब्रह्मचर्य्य से संन्यास न लेवे, परन्तु जो रोक सके वह क्यों न लेवे ? जिस पुरुष ने विषय के दोष और वीर्य्यसंरक्षण के गुण जाने हैं वाह विषयासक्त कभी नहीं होता और उनका वीर्य्य विचारामि का हन्धनवत् है अर्थात् उसी में व्यय हो जाता है। जैसे वैद्य और औषधों की आवश्यकता रोगी के लिये होती है वैसी नीरोग के लिये नहीं। इसी प्रकार जिस पुरुष वा स्त्री को विद्या, धर्मवृद्धि और सब संसार का उपकार करना ही प्रयोजन हो वह विवाह न करे। जैसे पंचशिखादि पुरुष और गार्गी आदि स्त्रियां हुई थीं इसलिये संन्यासी का होना अधिकारियों को उचित है और जो अनधिकारो संन्यास ग्रहण करेगा तो आप हूवेगा, औरों को भी हुवावेगा। जैसे “सम्राट्” चक्रवर्ती राजा होता है वैसे “परिग्राट्” संन्यासी होता है। प्रस्युत राजा अपने देश में वा न्यसम्बन्धियों में सत्कार पाता है और संन्यासी सर्वत्र पूजित होता है ।

विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्ये कदाचन ।

स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ॥ १ ॥

[यह] चाणक्य नीतिशास्त्र का श्लोक है। विद्वान् और राजा कभी तुल्यता नहीं हो सकती, क्योंकि राजा अपने राज्य ही में मान सत्कार पाता है और विद्वान् सर्वत्र मान और प्रतिष्ठा को प्राप्त होता

अथ षष्ठसमुह्यासारम्भः

अथ राजधर्मान् व्याख्यास्यामः

-राजधर्मान् प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः ।

संभवश्च यथा तस्य सिद्धिश्च परमा यथा ॥ १ ॥

ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि ।

सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्त्तव्यं परिरक्षणम् ॥ २ ॥

मनु० [७ । १, २]

अब मनुजी महाराज ऋषियो से कहते हैं कि चारों वर्ण और चारों
धर्मों के व्यवहार कथन के पश्चात् राजधर्मों को कहेंगे कि किस प्रकार
राजा होना चाहिये और जैसे इसके होने का सम्भव तथा जैसे इसको
सिद्धि प्राप्त होवे उसको सब प्रकार कहते हैं ॥ १ ॥ कि जैसा परम
आज्ञा प्राप्त होता है वैसा विद्वान् सुशिक्षित होकर क्षत्रिय को योग्य है
इस सब राज्य की रक्षा न्याय से यथावत् करे ॥ २ ॥

उसका प्रकार यह है ।—

ए राजाना विदथे पुरुणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ।

ऋ० ॥ मं० ३ । सू० ३८ । मं० ६ ॥

ईश्वर उपदेश करता है कि (राजाना) राजा और प्रजा के पुरुष
के (विदथे) सुखप्राप्ति और विज्ञानवृद्धिकारक राजा प्रजा के
अन्यरूप व्यवहार में (प्रीणि सदांसि) तीन सभा अर्थात् विद्यार्यसभा,
व्यसभा, राजार्यसभा नियत करके (पुरुणि) बहुत प्रकार के
प्राणि) समग्र प्रजासम्वन्धी मनुष्यादि प्राणियों को (परिभूषथ)
और विद्या, स्वातन्त्र्य, धर्म, सुशिक्षा और धनादि से अलंकृत करें ।
तं सभा च समितिश्च सेना च ॥ १ ॥

अथर्व० का० १५ । अनु० १ । व० ९ । मं० २ ॥

सभ्यं सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ॥ २ ॥^३

अथर्व० कां० १९ । अनु० ७ । व० ५५ । मं० ६ ॥

(तन्) उस राजधर्म को (सभा च) तीनों सभा (समितिश्च)

अथर्व० का० १५ । सू० ६ । मं० २ । २ सभ्यं सभां इति सति । ।

अथर्व० का० १६ । सू० २५ । मं० ६ ॥

इसलिये विद्या पढ़ने, सुशिक्षा लेने और बलवान् होने आदि
 प्रह्लादचर्य, सब प्रकार के उत्तम व्यवहार सिद्ध करने के अर्थ
 ध्यान और विज्ञान बढ़ाने, तपश्चर्या करने के लिये
 सत्यशास्त्रों का प्रचार, धर्म व्यवहार का ग्रहण और दुष्ट व्यवहार
 सत्योपदेश और सब को निःसंदेह करने आदि के लिये
 परन्तु जो इस संन्यास के मुख्य धर्म सत्योपदेशादि नहीं करते
 और नरकगामी हैं। इससे संन्यासियों को उचित है कि
 समाधान, वेदादि सत्यशास्त्रों का अध्यापन और वेदोक्त धर्म
 प्रयत्न से करके सब संसार की उन्नति किया करें।

१० - (प्रश्न) जो संन्यासी से अन्य साधु, वैरागी,
 आदि हैं वे भी संन्यासाश्रम में गिने जायेंगे वा नहीं ?

(उत्तर) नहीं, क्योंकि उनमें संन्यास का एक भी लक्षण
 वेदविरुद्ध मार्ग से प्रवृत्त होकर वेद से [अधिक] अपने सम्प्रदाय
 चार्यों के वचन मानते और अपने ही मत की प्रशंसा करते,
 मैं फँसकर अपने स्वार्थ के लिये दूसरों को अपने २ मत में
 सुधार करना तो दूर रहा, उसके बदले मैं संसार को बहका कर
 को प्राप्त कराते और अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं इसलिये
 मैं नहीं गिन सकते किन्तु ये स्वार्थाश्रमी तो पक्के हैं !
 नहीं । जो स्वयं धर्म में चलकर सब संसार को चलाते हैं
 आप और सब संसार को इस लोक अर्थात् वर्त्तमान जन्म
 अर्थात् दूसरे जन्म में स्वर्ग अर्थात् सुख का भोग करते कराते
 धर्मात्मा जन संन्यासी और महात्मा हैं ।
 यह संक्षेप से संन्यासाश्रम की शिक्षा लिखी । अब इसके
 प्रतीक विषय लिखा जायगा ।

इति श्रीमद्व्याससंस्कृतसंन्यासश्रमविषये पञ्चमः समुद्धासः सम्पूर्णः ॥

अर्गीय, (चोपसयः) समीप जाने और शरण लेने योग्य, (नमस्य) का माननीय (भव) होवे उसी को सभापति राजा करे ।
इमन्देवा असपत्नं सुवध्वं महते क्षत्राय महते
ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय ॥

यजु० अ० ९ । मं० ४० ॥

हे (देवाः) विद्वानो ! राजप्रजाजनो ! तुम (इमम्) इस प्रकार के
। का (महते क्षत्राय) बड़े चक्रवर्ति राज्य (महते ज्यैष्ठ्याय) सब
बड़े होने, (महते जानराज्याय) बड़े १ विद्वानो से युक्त राज्य पालने
। (इन्द्रस्येन्द्रियाय) परम ऐश्वर्ययुक्त राज्य और धन के पालने के
प्रे, (असपत्नं सुवध्वम्) सम्मति करके सर्वप्र पक्षपातरहित, पूर्ण
या विनययुक्त, सब के मित्र सभापति राजा को सर्वाधीश मान के सब
गोल शत्रुरहित करो और—

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कमे ।

युष्माकमस्तु तविपी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ॥

ऋ० ॥ मं० १ । सू० ३९ । मं० २ ॥

इंशर उपदेश करता है कि हे राजपुरुषो ! (व.) तुम्हारे (आयुधा)
मेयादि अस्त्र और शतानी अर्थात् तोप, भुशुण्डी अर्थात् बन्दूक, धनुष,
ग, तलवार आदि शस्त्र शत्रुओं के (पराणुदे) पराजय करने (उत
प्रतिष्कमे) और रोकने के लिये (वीळू) प्रशंसित और (स्थिरा) दृढ़
पन्तु) हों । (युष्माकम्) और तुम्हारी (तविपी) सेना (पनीयसी)
सनीय (अस्तु) होवे कि जिससे तुम सदा विजयी होओ, परन्तु
ग मर्त्यस्य मायिन) जो निन्दित अन्यायरूप काम करता है उसके लिये
वस्तु मत हों अर्थात् जब तक मनुष्य धार्मिक रहते हैं तभी तक राज्य
ता रहता है और जब दुष्टाचारी होते हैं तब नष्ट भ्रष्ट हो जाता है ।
विद्वानों को विद्यासभाधिकारी, धार्मिक विद्वानों को धर्मसभाधि-
रि, प्रशसनीय, धार्मिक पुरुषों को राजसभा के सभासद् और जो उन
में सर्वोत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त महान् पुरष हो उस को राजसभा
पतिरूप मान के सब प्रकार से उन्नति करें । तीनों सभाओं की सम्मति
राजनीति के उत्तम नियम और नियमों के आधीन सब लोग बतें, सब
हितकारक कामों में सम्मति करें, सर्वहित करने के लिये परतन्त्र और
युक्त कामों में अर्थात् जो १ निज के काम हैं उन २ में स्वतन्त्र रहें ।

तस्याहुः संप्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम् ।
 समीक्ष्यकारिणं प्राप्तं धर्मकामार्थकोविदम् ॥ ६ ॥
 त राजा प्रणयन्सम्यक् त्रिवर्गेणाभिवर्धते ।
 कामात्मा विपमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते ॥ ७ ॥
 दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चाकृतात्माभिः ।
 धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सवान्धवम् ॥ ८ ॥
 सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृतबुद्धिना ।
 न शक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च ॥ ९ ॥
 शुचिना सत्यसन्धेन यथाशास्त्रानुसारिणा ।
 प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता ॥ १० ॥

मनु० [अ० ७ ॥ १७-१९, २४-२८, ३०, ३१]

जो दण्ड है वही पुरुष, राजा, वही न्याय का प्रचारकर्त्ता और सबका
 सनकर्त्ता, वही चार वर्ण और चार आश्रमों के धर्म का प्रतिभू अर्थात्
 भूमेन है ॥ १ ॥ वही प्रजा का शासनकर्त्ता, सब प्रजा का रक्षक, सोते
 प्रजास्थ मनुष्यों में जागता है इसीलिये बुद्धिमान् लोग दण्ड ही
 धर्म कहते हैं ॥ २ ॥ जो दण्ड अच्छे प्रकार विचार से धारण किया
 तो वह सब प्रजा को आनन्दित कर देता है और जो बिना विचारे
 गया जाय तो सब ओर से राजा का विनाश कर देता है ॥ ३ ॥ बिना
 के सब वर्ण दूषित और सब मर्यादा छिन्न भिन्न होजायें । दण्ड के
 बल न होने से सब लोगों का प्रकोप होजावे ॥ ४ ॥ जहां कृष्णवर्ण,
 नेत्र, भयङ्कर पुरुष के समान पापों का नाश करनेहारा दण्ड विचरता है
 प्रजा मोह को प्राप्त न होके आनन्दित होती है परन्तु जो दण्ड का
 चला देनेवाला पक्षपातरहित विद्वान् हो तो ॥ ५ ॥ जो उस दण्ड का चला-
 ला सत्यवादी, विचार के करनेहारा, बुद्धिमान्, धर्म, अर्थ और काम
 सिद्धि करने में पण्डित राजा है उसी को उस दण्ड का चला देनेहारा
 लोग कहते हैं ॥ ६ ॥ जो दण्ड को अच्छे प्रकार राजा चलाता है
 धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि को बढ़ाता है और जो विषय में
 दण्ड, डेढा, ईर्ष्या करनेहारा, क्षुद्र, नीचबुद्धि न्यायाधीश राजा होता है,
 दण्ड ने ही मारा जाता है ॥ ७ ॥ जब दण्ड बड़ा तेजोमय है उसको
 विद्वान्, अधर्मात्मा धारण नहीं कर सकता, तब वह दण्ड धर्म से रहित
 असहिता राजा ही का नाश कर देता है ॥ ८ ॥ क्योंकि जो अज्ञ

य वह सभा [हो] कि जिसमें दश विद्वानों से न्यून न होने
 यें । ३ ॥ और जिस सभा में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद के जानने
 तीन सभासद् हो के व्यवस्था करें उस सभा की की हुई व्यवस्था को
 कोई उल्लंघन न करे ॥ ४ ॥ यदि एक अकेला सब वेदों का जानने-
 १. द्विजों में उत्तम सन्यासी जिस धर्म की व्यवस्था करे वही श्रेष्ठ धर्म
 योंकि अज्ञानियों के सहस्रों, लाखों, कड़ों मिल के जो कुछ व्यवस्था
 उसको कभी न मानना चाहिये ॥ ५ ॥ जो ब्रह्मचर्य, सत्यभाषणादि
 , वेदविद्या या विचार से रहित जन्ममात्र से शूद्रवत् वर्त्तमान हैं उन
 को मनुष्यों के मिलने से भी सभा नहीं कहाती ॥ ६ ॥ जो अविद्या-
 , मूर्ख, वेदों के न जानने वाले मनुष्य जिस धर्म को कहें उसको कभी
 मानना चाहिये क्योंकि जो मूर्खों के कहे हुए धर्म के अनुसार चलते हैं
 के पीछे सैकड़ों प्रकार के पाप लग जाते हैं ॥ ७ ॥ इसलिये तीनों
 विद्यासभा, धर्मसभा और राजसभाओं में मूर्खों को कभी भरती न
 किन्तु सदा विद्वान् और धार्मिक पुरुषों का स्थापन करे ।

७—और सब लोग ऐसे —

त्रैविद्येभ्यस्त्रिधा विद्यां दण्डनीति च शाश्वतीम् ।

आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां वार्त्तारम्भांश्च लोकतः ॥ १ ॥

इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्विद्वानिदम् ।

जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः ॥ २ ॥

दश कामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च ।

व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ ३ ॥

कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः ।

वियुज्यतेऽर्धधर्माभ्यां क्रोधजेष्व्वात्मनैव तु ॥ ४ ॥

मृगयाजो दिवास्वप्नः परीषादः स्त्रियो मदः ।

तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः ॥ ५ ॥

पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासुयार्थदूषणम् ।

चाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ॥ ६ ॥

द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः ।

तं यत्नेन जयेन्नोभं तज्जावेतावुभौ गणौ ॥ ७ ॥

पानमत्ताः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम् ।

एतत्कष्टतमं विद्याश्चतुष्कं कामजे गणौ ॥ ८ ॥

मे गुण, गुणों में दोषारोपण करना, 'अर्थदूषण' अर्थात् अधर्मगुण वुरे में धनादि का व्यय करना, कठोर वचन बोलना और बिना अपराध वचन वा विशेष दण्ड देना ये आठ दुर्गुण क्रोध से उत्पन्न होते हैं ॥ जो सब विद्वान् लोग कामज और क्रोधजों का मूल जानते हैं कि ये ये सब दुर्गुण मनुष्य को प्राप्त होते हैं उस लोभ को प्रयत्न से छोड़े ॥ काम के व्यसनों में बड़े दुर्गुण एक मद्यादि अर्थात् मदकारक द्रव्यों सेवन, दूसरा पासों आदि से जुआ खेलना, तीसरा स्त्रियों का विशेष चौथा मृगया खेलना ये चार महादुष्ट व्यसन हैं ॥ ८ ॥ और क्रोधजों में अपराध दण्ड देना, कठोर वचन बोलना और धनादि का अन्याय व्यय करना ये तीन क्रोध से उत्पन्न हुए बड़े दुःखदायक दोष हैं ॥ ९ ॥ ये ७ दुर्गुण दोनों कामज और क्रोधज दोषों में गिने हैं इनमें से पूर्व २ दोषों का व्यर्थ व्यय से कठोर वचन, कठोर वचन से [अन्याय], अन्याय से दण्ड देना, इससे मृगया खेलना, इससे स्त्रियों का अत्यन्त सङ्ग, इससे मद्यादि सेवन करना और इससे भी मद्यादि सेवन करना बड़ा दुष्ट व्यसन है ॥ १० ॥ इसमें यह निश्चय है कि दुष्ट व्यसन में फँसने से मर जायगा अच्छा है क्योंकि जो दुष्टाचारी पुरुष है वह अधिक जियेगा तो वह २ पाप करके नीच २ गति अर्थात् अधिक दुःख को प्राप्त होता जायगा और जो किसी व्यसन में नहीं फँसा वह मर भी जायगा तो भी दुष्ट को प्राप्त होता जायगा, इसलिये विशेष राजा और सब मनुष्यों को यह बात है कि कभी मृगया और मद्यपानादि दुष्ट कामों में न फँसे और दुष्ट व्यसनों से पृथक् होकर धर्म युक्त गुण, कर्म स्वभावों में सदा वर्त के अच्छे काम किया करें ॥ १ ॥

८—राजसभासद् और मन्त्री कैसे होने चाहियें:—

मौलान् शास्त्रविदः शूरास्त्वल्बलज्ञान् कुलोद्गतान् ।

सचिवान्सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् ॥ १ ॥

अपि यत्सुकर कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ।

विशेषतोऽसहायेन किन्तु राज्यं मदोदयम् ॥ २ ॥

तैः सार्द्धं चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं सन्धिविग्रहम् ।

स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च ॥ ३ ॥

तेषां स्वं स्वमभिप्रायमुपलभ्य पृथक् पृथक् ।

समस्तानाञ्च कार्येषु विदध्याद्धितमात्मनः ॥ ४ ॥

दण्डस्य पातनं चैव वाक्पाठप्यार्थदूषणे ।
 क्रोधजेऽपि गणे विद्यात्कथमेतत् त्रिकं सदा ॥ ६ ॥
 सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रैवानुपज्ञिणः ।
 पूर्वं पूर्वं गुरुतरं विद्याद् व्यसनमात्मवान् ॥ १० ॥
 व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते ।
 व्यसन्यधोघो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः ॥ ११ ॥
 मनु० [७।४३]

राजा और राजसभा के सभासद् तब हो सकते हैं कि जब वे
 वेदों की कर्मोपासना, ज्ञान, विद्याओं के जानने वालों से तीनों
 सनातन दण्डनीति, न्यायविद्या, आत्मविद्या अर्थात् परमात्मा के गुण,
 स्वभावरूप को यथावत् जानने रूप ब्रह्मविद्या और लोक से
 आरम्भ (कहना और पूछना) सीखकर सभासद् वा सभापति
 ॥ १ ॥ सब सभासद् और सभापति इन्द्रियो को जीतने अर्थात्
 वश में रख के सदा धर्म में वृत्त और अधर्म से हटे हटाए रहें,
 रातदिन नियत समय में योगाभ्यास भी करते रहें, क्योंकि जो
 कि अपनी इन्द्रियों (जो मन, प्राण और शरीर प्रजा है इस)
 बिना बाहर की प्रजा को अपने वश में स्थापन करने को समर्थ
 हो सकता ॥ २ ॥ दृढ़ोत्साही होकर जो काम से दश और क्रोध के
 दुष्ट व्यसन कि जिन में फँसा हुआ मनुष्य कठिनता से निकल सकें,
 प्रयत्न से छोड़ और छुड़ा देंगे ॥ ३ ॥ क्योंकि जो राजा काम से
 दश दुष्ट व्यसनों में फँसता है वह अर्थ अर्थात् राज्य धनादि और
 रहित हो जाना है और जो क्रोध से उत्पन्न हुए आठ बुरे व्यसनों में
 है वह शरीर से भी रहित हो जाता है ॥ ४ ॥ काम से उत्पन्न
 गिनाते हैं देवो—मृगया खेलना, 'अक्ष' अर्थात् चौपट खेलना
 खेलनादि, दिन में सोना, कामकथा वा दूसरे की निन्दा किया करना
 का अनिसंग, मादक द्रव्य अर्थात् मद्य, अफीम, भाग, गाजा, धूम्र
 का सेवन, शाना, बजाना, नाचना वा नाच कराना, सुनना और
 बृथा इधर इधर घूमते रहना, ये दश कामोत्पन्न व्यसन हैं ॥ ५ ॥
 से उत्पन्न व्यसनों को गिनाते हैं—'पञ्चुष्यम्' अर्थात् चुगली
 बिना बिचारे बलात्कार से किसी की स्त्री से बुरा काम करना, ५
 इन्द्रिया अर्थात् दमरु की बराबरी वा उत्पत्ति देकर जला करना,

त नौकर करे ॥ १ ॥ इनके आधीन शूरवीर बलवान्, कुलोत्पन्न
प्रभृत्यों को यष्टे २ कर्मों में और भीरु, डरने वालों को भीतर के कर्मों
नेयुक्त करे ॥ ७ ॥ जो प्रशंसित कुल में उत्पन्न, चतुर, पवित्र, हावभाव
चेष्टा से भीतर हृदय और भविष्यत् में होने वाली बात को जानने
वाला, सब शास्त्रों में विशारद, चतुर है, उस दूत को भी रखे ॥ ८ ॥
ऐसा हो कि राजकाम में अत्यन्त उत्साह प्रीतियुक्त, निष्कपटी, पवित्रा-
चतुर, बहुत समय की बात को भी न भूलने वाला, देश और काल-
लक्ष्यमान का कर्ता, सुन्दर रूपयुक्त, निर्भय और बड़ा वक्ता हो यही
॥ का दूत होने में प्रशस्त है ॥ ९ ॥

९—किन्तु १ को क्या २ अधिकार देना योग्य है:—

अमात्ये दण्ड आयात्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया ।

नृपतौ कोशराष्ट्रे च दूते सन्धिपर्ययौ ॥ १ ॥

दूत एव हि संघत्ते भिनत्येव च संहतान् ।

दूतस्तत्कुरुते कर्म भिद्यन्ते येन वा न वा ॥ २ ॥

बुद्ध्वा च सर्वे तत्त्वेन परराजचिकीर्षितम् ।

तथा प्रयत्नमातिष्ठेद् यथात्मानं न पीडयेत् ॥ ३ ॥

धनुर्दुर्गे महीदुर्गमब्दुर्गे चार्द्धमेव वा ।

नृदुर्गे गिरिदुर्गे वा समाश्रित्य वसेत्पुरम् ॥ ४ ॥

एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः ।

शतं दश सहस्राणि तस्माद् दुर्गं विधीयते ॥ ५ ॥

तत्स्यादायुधसम्पन्नं धनधान्येन वाहनैः ।

ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च ॥ ६ ॥

तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद् गृहमात्मनः ।

गुप्तं सर्वर्तुकं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम् ॥ ७ ॥

तदध्यास्योद्वहेद्भार्या सवर्णा लक्ष्णान्विताम् ।

कुले महति सम्भूतां हृद्यां रूपगुणान्विताम् ॥ ८ ॥

पुरोहितं प्रकुर्वीत वृणुयादेव चार्त्विजम् ।

तेऽस्य गृहाणि कर्माणि कुर्युर्वैतानिकानि च ॥ ९ ॥

मनु० [७ ॥ १५, १६, १८, १०, ७४-७८]

आमात्य को दण्डाधिकार, दण्ड में विनय क्रिया अर्थात् जिससे अन्याय
प दण्ड न होने पावे, राजा के आधीन कोश और राजकार्य तथा सभा

अन्यानपि प्रकुर्वीत शुचीन् प्राश्नानवस्थितान् ।
 सम्यगर्थसमाहर्तृनमात्यान्सुपरीक्षितान् ॥ ५ ॥
 निवर्त्ततास्य यावद्भिरिति कर्तव्यता नृभिः ।
 ताघतोऽतन्द्रितान् दत्तान् प्रकुर्वीत विचक्षणान् ॥ ६ ॥
 तेषामर्थे नियुजीत शूरान् दत्तान् कुलोद्गतान् ।
 शुचीनाकरकर्मान्ते भीरून्तन्निवेशने ॥ ७ ॥
 दृतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम् ।
 इङ्गिताकारचेष्टां शुचिं दत्तं कुलोद्गतम् ॥ ८ ॥
 अनुरक्तः शुचिर्दत्तः स्मृतिमान् देशकालवित् ।
 वपुष्मान्वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते ॥ ९ ॥

मनु ० [७ ॥ ५४-५७, १०-११]

स्वराज्य, स्वदेश में उत्पन्न हुए वेदादि शास्त्रों के जानने वाले, जिनका लक्ष्य अर्थात् विचार निष्फल न हो और कुलीन, अच्छे, सुपरीक्षित, सात व आठ उत्तम धार्मिक, चतुर (सचिवान्) मंत्री करें ॥ १ ॥ क्योंकि विशेष सहाय के बिना जो सुगम कर्म है एक के करने में कठिन हो जाता है, जय ऐसा है तो महारु राम एक से कैसे हो सकता है ? इसलिये एक को राजा और एक को पर राज्य के कार्य का निर्भर रखना बहुत ही बुरा काम है ॥ २ ॥ सभापति को उचित है कि नित्यप्रति उन राज्य कर्मों से कुशल मन्त्रियों के साथ सामान्य करके किसी से (सन्धि) मित्रता, (विग्रह) विरोध, (स्थान) स्थिति, समय को देख के अपने राज्य की रक्षा करके बैठे रहना, (समुदयम्) जब अन्ध, अर्थात् वृद्धि हो तब दुष्ट शत्रु पर चढ़ाई करना, (गुप्तिम्) मूल कोश आदि की रक्षा, (लब्धप्रशमनानि) जो २ देश प्राप्त हों उन में शान्तिस्थापन, उपद्रवरहित करना, इन छः गुणों का विचार किया करें ॥ ३ ॥ विचार से करना कि उन सभासदों का अपना १ विचार और अभिप्राय को सुनकर बहुपक्षानुसार कर्मों का कार्य अपना और अन्य का हितकारक हो वह करने लगना ॥ ४ ॥ भी पवित्रात्मा, बुद्धिमान्, निश्चितबुद्धि, पदर्थों के संग्रह करने में सुपरीक्षित मन्त्री को ॥ ५ ॥ जितने मनुष्यों से राजकार्य मिले, इतने आलस्य रहित बलवान् और बड़े २ चतुर प्रधान पुरुषों को

॥ ३ ॥ त्तानां गुरुकुलाद् विप्राणां पूजको भवेत् ।
 शामक्षयो ह्येष निधिर्ब्राह्मो विधीयते ॥ ३ ॥
 ॥ ४ ॥ उत्तमाधमै राजा त्वाहुतः पालयन् प्रजाः ।
 नेवर्तेत संग्रामात् क्षात्रं धर्ममनुस्मरन् ॥ ४ ॥
 ॥ ५ ॥ इवेषु मिथोऽन्योन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः ।
 यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः ॥ ५ ॥
 ॥ ६ ॥ न हन्यात् स्थलारूढं न क्लीवं न कृताञ्जलिम् ।
 युक्तकेशं नासीनं न तवास्मीति वादिनम् ॥ ६ ॥
 ॥ ७ ॥ सुप्तं न विसन्नाहं न नग्नं न निरायुधम् ।
 युध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम् ॥ ७ ॥
 ॥ ८ ॥ युधव्यसनं प्राप्तं नार्त्तं नातिपरिक्षतम् ।
 भीतं न परावृत्तं सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ ८ ॥
 ॥ ९ ॥ स्तु भीतः परावृत्तः सङ्ग्रामे हन्यते परैः ।
 तुर्यद् दुष्कृतं किञ्चित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते ॥ ९ ॥
 ॥ १० ॥ चास्य सुकृतं किञ्चिदमुत्रार्थमुपार्जितम् ।
 र्त्ता तत्सर्वमादत्ते परावृत्तहतस्य तु ॥ १० ॥
 ॥ ११ ॥ तथाश्वं हस्तिनं छत्रं धनं धान्यं पशून् स्त्रियः ।
 सर्वद्रव्याणि कुप्यं च यो यज्जयति तस्य तत् ॥ ११ ॥
 ॥ १२ ॥ राक्षश्च दद्युरुद्धारमित्येषा वैदिकी श्रुतिः ।
 राक्षा च सर्वयोधेभ्यो दातव्यमपृथग्जितम् ॥ १२ ॥

मनु० [७ ॥ ८०-८२, ८७, ८९, ९१-९७]

वार्षिक कर आप्तपुरुषों के द्वारा ग्रहण करे और सभापतिरूप राजा
 १ प्रधान पुरुष हैं वे सब सभा वेदानुकूल होकर प्रजा के साथ पिता
 मान घटें ॥ १ ॥ उस राज्यकार्य में विविध प्रकार के अध्यक्षों को
 १ नियत करे । इनका यही काम है जितने २ जिस २ काम में राज-
 १ हों वे नियमानुसार घर्त्त कर १ त् काम करते हैं वा नहीं । जो
 १ त् करे तो उनका सत्कार और १ त् करे तो उनको यथावत् दण्ड
 ॥ २ ॥ सदा जो राजा १ त् करे तो उनको यथावत् दण्ड
 जो कोई यथावत् १ त् करे तो उनको यथावत् दण्ड
 उनका सत्कार राजा १ त् करे तो उनको यथावत् दण्ड
 होवे ॥ १ त् करे तो उनको यथावत् दण्ड

के आधीन सब कार्य और दूत के आधीन किसी से मेल वा बिगो अधिकार देवे ॥ १ ॥ दूत उसको कहते हैं जो फूट में मेल और मिले दुष्टों को फोड़ तोड़ देवे । दूत वह कर्म करे जिससे शत्रुओं में घृणा ॥ २ ॥ वह सभापति और सब सभासद् वा दूत आदि यथार्थ से विरोधी राजा के राज्य का अभिप्राय जान के वैसा प्रयत्न करे कि अपने को पीड़ा न हो ॥ ३ ॥ इसलिये सुन्दर जङ्गल, धन वा में (धनुर्दुर्गम्) धनुर्धारी पुरुषों से गहन, (महीदुर्गम्) मही में हुआ, (अद्भुतगम्) जल से घेरा हुआ, (वार्क्षम्) अर्थात् चारों धन, (नृदुर्गम्) चारों ओर सेना रहे, (गिरिदुर्गम्) अर्थात् चारों पहाड़ों के बीच में कोट बना के इसके मध्य में नगर बनावे ॥ ४ ॥ नगर के चारों ओर (प्राकार) प्रकोट बनावे, क्योंकि उसमें स्थित एक वीर धनुर्धारी शस्त्रयुक्त पुरुष सौ के साथ और सौ दस हज़ार युद्ध कर सकते हैं इसलिये अवश्य दुर्ग का बनाना उचित है ॥ ५ ॥ दुर्ग शस्त्राग्न, धन, धान्य, वाहन, ब्राह्मण जो पढ़ाने, उपदेश करने हों, (शिल्पिभिः) कारीगर, यन्त्र, नाना प्रकार की कला, (यवसेन) घास और जल आदि से सम्पन्न अर्थात् परिपूर्ण हो ॥ ६ ॥ उसके में जल, वृक्ष, पुष्पादिक सब प्रकार से रक्षित, सब ऋतुओं में श्वेतवर्ण अपने लिये घर जिसमें सब राजकार्य का निर्वाह हो वैसा ॥ ७ ॥ इतना अर्थात् ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ के यहां तक राजकाम पश्चात् सौन्दर्य, रूप गुणयुक्त, हृदय को अतिप्रिय, बड़े उत्तम कुल में सुन्दर लक्षणयुक्त, अपने क्षत्रियकुल की कन्या जो कि अपने सत्त्व गुण, कर्म, स्वभाव में हो उस एक ही स्त्री के साथ विवाह करे, स्त्रियों को अगम्य समझ कर दृष्टि से भी न देखे ॥ ८ ॥ पुरोहित ऋत्विज् का स्वीकार इसलिये करे कि वे अग्निहोत्र और पक्षेष्टि आदि राजघर के कर्म किया करें और आप सर्वदा राजकार्य में तत्पर रहे यही राजा का मन गोपासनादि कर्म है जो रात दिन राजकार्य में रहना और छोटे राजकाम विगलने न देना ॥ ९ ॥

१०—सांघत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहरयेद् बलिम् ।

स्याद्याम्नायपरो लोके वर्त्तत पितृवन्तृषु ॥ १ ॥

अध्यक्षान् विविधान् कुर्यान् तत्र नत्र विपश्चितः ।

तेऽस्य सर्वाण्यवेक्षेरन् नृणां कार्याणि कुर्वताम् ॥ २ ॥

आवृत्तानां गुरुकुलाद् विप्राणां पूजको भवेत् ।
 नृपाणामक्षयो ह्येष निधिर्ब्राह्मो विधीयते ॥ ३ ॥
 समोत्तमाधमै राजा त्वाहृतः पालयन् प्रजाः ।
 न निवर्तेत संग्रामात् क्षात्रं धर्ममनुस्मरन् ॥ ४ ॥
 आहवेषु मिथोऽन्योन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः ।
 युध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः ॥ ५ ॥
 न च हन्यात् स्थलारूढं न क्लीबं न कृताञ्जलिम् ।
 न मुक्तकेशं नासीनं न तवास्मीति वादिनम् ॥ ६ ॥
 न सुप्तं न विसन्नाहं न नग्नं न निरायुधम् ।
 नायुध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम् ॥ ७ ॥
 नायुधव्यसन प्राप्तं नार्त्तं नातिपरिक्षतम् ।
 न भीतं न परावृत्तं सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ ८ ॥
 यस्तु भीतः परावृत्तः सङ्ग्रामे हन्यते परैः ।
 भर्तुर्यद् दुष्कृतं किञ्चित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते ॥ ९ ॥
 यथास्य सुकृतं किञ्चिदमुत्रार्थमुपार्जितम् ।
 भर्ता तत्सर्वमादत्ते परावृत्तहृतस्य तु ॥ १० ॥
 रथाश्वं हस्तिनं ह्यत्र धनं धान्यं पशून् स्त्रियः ।
 सर्वद्रव्याणि कुप्यं च यो यज्जयति तस्य तत् ।
 राज्ञश्च दद्युरुद्धारमित्येषा वैदिकी श्रुतिः ।
 राज्ञा च सर्वयोधेभ्यो दातव्यमपृथग्जितम् ॥ १२ ॥

मनु० [७ ॥ ८०-८२, ८७, ८९, ९१-९७]

वार्षिक कर आसपुरषो के द्वारा ग्रहण करे और सभापतिरूप राजा
 यदि प्रधान पुरुष हैं वे सब सभा वेदानुष्कूल होकर प्रजा के साथ पिता
 समान वर्तें ॥ १ ॥ उस राज्यकार्य में विविध प्रकार के अध्यक्षों को
 भा नियत करे । इनका यही काम है जितने २ जिस २ काम में राज-
 रण हों वे नियमानुसार वर्त कर यथावत् काम करते हैं या नहीं । जो
 यावत् करें तो उनका सत्कार और जो विरुद्ध करें तो उनको यथावत् दण्ड
 किया करे ॥ २ ॥ सदा जो राजाओं का वेदप्रचार रूप अध्यक्ष कोष है इसके
 चार के लिये जो कोई यथावत् द्रव्यार्थ से वेदादि शाखों को पढ़ कर
 [कुल से आवे उनका सत्कार राजा और सभा यथावत् करें तथा उनका
 ती जिनके पढ़ाये हुए विद्वान् हों ॥ ३ ॥ इस बात के करने से राज्य में

विद्या की उन्नति होकर अन्यन्त उन्नति होती है । जब कभी प्रजा करने वाले राजा को कोई अपने से छोटा, तुल्य और उत्तम आह्वान करे तो क्षत्रियों के धर्म का स्मरण करके संग्राम में जाने में निवृत्त न हो, अर्थात् बड़ी चतुराई के साथ उनसे युद्ध करे ही विजय हो ॥ ४ ॥ जो संग्रामों में एक दूसरे को हनन करते करते हुए राजा लोग जितना अपना सामर्थ्य हो, बिना डर पीठ न युद्ध करते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं, इससे विमुख कभी न हो, कभी शत्रु को जीतने के लिये उनके सामने से छिप जाना क्योंकि जिस प्रकार से शत्रु को जीत सके वैसे काम करें, जैसा सिंहा से सामने आकर शस्त्राग्नि में शीघ्र भस्म हो जाता है वैसे मूर्खता से घट न हो जावें ॥ ५ ॥ युद्ध समय में न इधर उधर खड़े, न न हाथ जोड़े हुए, न जिसके शिर के बाल खुल गये हों, न बैठे हुए, "मैं तेरे शरण हूँ" ऐसे को ॥ ६ ॥ न सोते हुए, न मूर्छा को न भ्रम हुए, न आयुध से रहित, न युद्ध करते हुआ को देखने वाले शत्रु के साथी ॥ ७ ॥ न आयुध के प्रहार से पीड़ा को प्राप्त हुए, न न अत्यन्त घायल, न दरे हुए और न पलायन करते हुए पुरुष को, स्वयं के धर्म का स्मरण करते हुए योद्धा लोग कभी मारें, किन्तु पकड़ के जो अच्छे हों, बन्दीगृह में रखदे और भोजन आच्छादन देवे और जो घायल हुए हों उनकी औषधादि विधिपूर्वक करें । न चिढ़ावे, न दुःख देवे । जो उनके योग्य काम हो करावे । विशेष रूप ध्यान रखने कि स्त्री, बालक, वृद्ध और आतुर तथा शोकयुक्त पुरुष शस्त्र कभी न चलावे । उनके लडके वालों को अपने सन्तानवत् पाले स्त्रियों को भी पाले । उनकी अपनी बहिन और कन्या के समान कभी निप्यासक्ति की दृष्टि से भी न देखे । जब राज्य अच्छे प्रकार जाय और जिनमें पुनः युद्ध करने की शक्ता न हो उनकी स छोड़कर अपने घर या देश को भेज देवे और जिनसे भविष्यत् युद्ध विग्रह होना सम्भव हो उनको सदा कारागार में रखे ॥ ८ ॥ और

जब युद्ध समाप्त हो जाय और शत्रु भागे और डरा हुआ भ्रम्य शत्रुओं से मारा जाय प्राप्त होकर दण्डनीय होवे ॥ ९ ॥ और जो एक और परलोक में सुख होने वाला था ।

भाग्य हुआ मारा जाय, उसको कुछ भी

होता, उसका पुण्यफल सब नष्ट हो जाता और उस प्रतिष्ठा को वह
हो जिसने धर्म से यथावत् युद्ध किया हो ॥ १० ॥ इस व्यवस्था को
न तोड़े कि जो २ लडाई में जिस जिस भृत्य वा अभ्यक्ष ने रथ, घोड़े
गे, छत्र, धन, धान्य, गाय आदि पशु और स्त्रियाँ यथा अन्य प्रकार के
द्रव्य और घी, तेल आदि के कुप्पे जीते हो वही उसका ग्रहण करे ॥ ११ ॥
तु सेनास्थ जन भी उन जीते हुए पदार्थों में से सोहलवा भाग राजा को
और राजा भी सेनास्थ योद्धाओं को उस धन में से जो सब ने मिल के
जा हो, सोलहवा भाग देवे । और जो कोई युद्ध में मर गया हो उसकी
और सन्तान को उसका भाग देवे । उसकी स्त्री तथा असमर्थ लड़कों का
यावत् पालन करे । जब उसके लड़के समर्थ हो जावे तब उनको यथायोग्य
धेकार देवे । जो जो अपने राज्य की वृद्धि, प्रतिष्ठा विजय और आनन्द-
दे की इच्छा रखता हो वह इस मर्यादा का उलंघन कभी न करे ॥ १२ ॥

१—अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत्प्रयत्नतः ।

रक्षित वर्द्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥ १ ॥

अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया ।

रक्षित वर्द्धयेद् वृद्ध्या वृद्धं दानेन निःक्षिपेत् ॥ २ ॥

अमाययैव वृत्तेत न कथंचन मायया ।

बुध्येतारिप्रयुक्तां च मायान्नित्यं स्वसंवृतः ॥ ३ ॥

नास्य छिद्रं परो विद्याच्छिद्रं विद्यात्परस्य तु ।

गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः ॥ ४ ॥

वक्वच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमेत् ।

वृक्वच्चालुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत् ॥ ५ ॥

एव विजयमानस्य येऽस्य स्युः परिपन्थिनः ।

तानानयेद्वशं सर्वान् सामादिभिरुपक्रमैः ॥ ६ ॥

यथोद्धरति निर्दाता कक्ष घान्य च रक्षति ।

तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः ॥ ७ ॥

मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया ।

सोऽचिराद् भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सयान्धवः ॥ ८ ॥

शरीरकर्षणात्प्राणाः क्षीयन्ते प्राणिनां यथा ।

तथा राशामपि प्राणा क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात् ॥ ९ ॥

राष्ट्रस्य संग्रहे नित्यं विधानमिदमाचरेत् ।

सुसंगृहीतराष्ट्रो हि पार्थिवः सुखमेधते ॥ १० ॥
 द्वयोस्त्रयाणां पञ्चानां मध्ये गुल्ममधिष्ठितम् ।
 तथा ग्रामशतानां च कुर्याद्राष्ट्रस्य संग्रहम् ॥ ११ ॥
 ग्रामस्याधिपतिं कुर्याद्विशग्रामपतिं तथा ।
 विंशतीशं शतेशं च सहस्रपतिमेव ॥ १२ ॥
 ग्रामे दोषान्समुत्पन्नान् ग्रामिकः शनकैः स्वयम् ।
 शंसेद् ग्रामदशेशाय दशेशो विंशतीशिनम् ॥ १३ ॥
 विंशतीशस्तु तत्सर्वं शतेशाय निवेदयेत् ।
 शंसेद् ग्रामशतेशस्तु सहस्रपतये स्वयम् ॥ १४ ॥
 तेषां ग्राम्याणि कार्याणि पृथक्कार्याणि चैव हि ।
 राज्ञोऽन्यः सचिवः स्निग्धस्तानि पश्येदतन्द्रितः ॥
 नगरे नगरे चैकं कुर्यात्सर्वार्थचिन्तकम् ।
 उच्चैः स्थानं धोररूपं नक्षत्राणामिव ग्रहम् ॥ १६ ॥
 स ताननुपरिक्रामेत्सर्वानेव सदा स्वयम् ।
 तेषां वृत्तं परिणयेत्सम्यग्नाष्ट्रेषु तच्चरैः ॥ १७ ॥
 राज्ञो हि रक्षाधिकृताः परस्वादायिनः शठाः ।
 भृत्या भवन्ति प्रायेण तेभ्यो रक्षोदिमाः प्रजाः ॥ १८ ॥
 ये कार्यिकेभ्योऽर्थमेव गृह्णीयुः पापचेतसः ।
 तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात्प्रवासनम् ॥ १९ ॥
 मनु० [७ । १०९, १०९, १०४-१०७, ११०-११७, १२०-

राजा राजसभा अलङ्घ्य की प्राप्ति की इच्छा, प्राप्त की रक्षा करे, रक्षित को बढ़ावे और बड़े हुए धन को वेदविद्या, प्रचार, पिछार्या, वेदमार्गोपदेशक तथा असमर्थ अनाथों के पा लगावे ॥ १ ॥ इस चार प्रकार के पुरुषार्थ के प्रयोजन को जाने । छोड़ कर इसका भली भाँति निम्न अनुष्ठान करे । दण्ड से अग्र प्राप्ति की इच्छा, निम्न देवने से प्राप्ति की रक्षा, रक्षित की वृद्धि व्याजादि से बढ़ावे और बड़े हुए धन को पूर्वोक्त मार्ग में नि करे ॥ २ ॥ कदापि द्विर्गो के साथ छल से न वर्ते किन्तु निष्कम मय से यथायथ स्वयं और निम्नप्रति अपनी रक्षा करके शत्रु के छल को जान के निवृत्त करे ॥ ३ ॥ कोई शत्रु अपने छिद्र अर्थात् रक्षा को न जान सके और स्वयं शत्रु के छिद्रों को जानता रहे

॥ अपने अंगों को गुप्त रखता है वैसे शत्रु के प्रवेश करने के छिद्र
 [स रखे ॥ ४ ॥ जैसे दगुला ध्यानावस्थित होकर मण्ड के पकड़ने
 [कता है वैसे अर्थ समग्र का विचार किया करे, द्रव्यादि पदार्थ और
 की वृद्धि कर शत्रु को जीतने के लिये सिंह के समान पराक्रम करे,
 ॥ के समान छिप कर शत्रुओं को पकड़े और समीप में आये बलवान्
 ॥ से सस्ता के समान दूर भाग जाय और पश्चात् उनको छल से
 ॥ ५ ॥ इस प्रकार विजय करने वाले सभापति के राज्य में जो
 न्धी अर्थात् डाकू लुटेरे हों उनको (साम) मिला लेना, (दान)
 देकर, (भेद) फोड़ तोड़ करके वश में करे और जो इनसे वश में
 ॥ तो अतिकठिन दण्ड से वश में करे ॥ ६ ॥ जैसे धान्य को निका-
 वाला छिलको को अलग कर धान्य की रक्षा करता अर्थात् टूटने नहीं
 है वैसे राजा डाकू चोरों को मारे और राज्य की रक्षा करे ॥ ७ ॥
 राजा मोह से, अविचार से अपने राज्य को दुर्बल करता है वह राज्य
 अपने बन्धु सहित जीवन से पूर्व ही शीघ्र नष्ट भ्रष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥
 प्राणियों के प्राण शरीरों को कृपित करने से क्षीण हो जाते हैं वैसे
 प्रजाओं को दुर्बल करने से राजाओं के प्राण अर्थात् बलादि बन्धुसहित
 हो जाते हैं ॥ ९ ॥ इस लिये राजा और राजसभा राजकार्य की
 के लिये ऐसा प्रयत्न करे कि जिससे राजकार्य यथावत् सिद्ध हो,
 राजा राज्यपालन में सब प्रकार तत्पर रहता है उसको सुख सदा
 ता है ॥ १० ॥ इस लिये दो, तीन, पाँच और सौ ग्रामों के बीच में
 राज्यस्थान रखे जिसमें यथायोग्य भृत्य अर्थात् कामदार आदि राज-
 पो को रखकर सब राज्य के कार्यों को पूर्ण करे ॥ ११ ॥ एक २ ग्राम
 एक २ प्रधान पुरुष को रखे, उन्हीं दश ग्रामों के ऊपर दूसरा, उन्हीं
 ३ ग्रामों के ऊपर तीसरा, उन्हीं सौ ग्रामों के ऊपर चौथा और उन्हीं
 १० ग्रामों के ऊपर पाचवाँ पुरुष रखे, अर्थात् जैसे आज कल एक
 में एक पटवारी, उन्हीं दश ग्रामों में एक थाना और दो थानों पर
 १ बड़ा थाना और उन पाँच थानों पर एक तहसील और दश तहसीलों
 एक जिला नियत किया है यह वही अपने मनु आदि धर्मशास्त्र से
 नीति का प्रकार लिया है ॥ १२ ॥ इसी प्रकार प्रबन्ध करे और आज्ञा
 कि वह एक २ ग्रामों का पति ग्रामों में नित्यप्रति जो जो दोष उत्पन्न
 उन २ को गुप्तता से दश ग्राम के पति को विदित करदे और यह दश

ग्रामाधिपति उसी प्रकार बीस ग्राम के स्वामी को दश ग्रामों का नित्यप्रति जना देवे ॥ १३ ॥ और बीस ग्रामों का अधिपति बीस के वर्त्तमान को दशग्रामाधिपति को नित्यप्रति निवेदन करे, ग्रामों के पति आप सहस्राधिपति अर्थात् हजार ग्रामों के स्वामी सौ ग्रामों के वर्त्तमान को प्रतिदिन जनाया करें । और बीस पांच अधिपति सौ २ ग्राम के अध्यक्ष को और वे सहस्र अधिपति दश सहस्र के अधिपति को और लक्षग्रामों की दिन का वर्त्तमान जनाया करें । और वे सब राजसभा, महाराजसभा सार्वभौमचक्रवर्ति महाराजसभा में सब भूगोल का वर्त्तमान जनाया ॥ १४ ॥ और एक २ दश २ सहस्र ग्रामों पर दो सभापति बैठें एक राजसभा में, दूसरा अध्यक्ष आलस्य छोड़कर सब न्यायाधीश पुरुष के कामों को सदा घूमकर देखते रहे ॥ १५ ॥ बड़े १ नगों एक विचार करने वाली सभा का सुन्दर, उच्च और विशाल जैसा कि है वैसा एक १ घर बनावें, उसमें बड़े २ विद्याबृद्ध कि जिन्होंने सब प्रकार की परीक्षा की हो वे बैठकर विचार किया करें, जिन राजा और प्रजा की उन्नति हो वैसे १ नियम और विद्या प्रकाश करें ॥ १६ ॥ जो नित्य घूमनेवाला सभापति उसके आधीन सब अर्थात् दूतों को रक्खे, जो राजपुरुष और भिन्न २ जाति के राजा और राजपुरुषों के सब दोष और गुण गुप्त रीति से जाना करें, अपराध हो उनको दण्ड और जिनका गुण हो उनकी प्रतिष्ठा करा करें ॥ १७ ॥ राजा जिनको प्रजा की रक्षा का अधिकार देवे वे सुपरीक्षित विद्वान् कुलीन हों, उनके आधीन प्रायः शठ और चाले चोर डाकुओं को भी नौकर रख के उनको दुष्ट कर्म से बचाने राजा के नौकर करके उन्हें रक्षा करनेवाले विद्वानों के स्वाधीन हूँ प्रजा की रक्षा यथावत् करे ॥ १८ ॥ जो राजपुरुष अन्याय प्रतियाद्री में गुप्त धन लेके पक्षपात में अन्याय करे उसका करके यथायोग्य दण्ड देकर ऐसे देश में रखे कि जहाँ में पुनः आसक्ति यदि उसको दण्ड न दिया जाय तो उसको दण्ड राजपुरुष भी ऐसे दुष्ट काम करे और दण्ड दिया जाय तो चले जाय, जिनमें से उन राजपुरुषों का योगक्षेम भलीभाँति हो और वे धनाढ्य भी हो दतना धन या भूमि राज्य की आर से मामिक

वा एक बार मिला करे और जो वृद्ध हो उनको भी आधा मिला करे, नु यह ध्यान में रखे कि जब तक वे जिये तब तक वह जीविका बनी, पश्चात् नहीं, परन्तु इनके सन्तानों का सरकार वा नौकरी उनके शु अनुसार अवश्य देवे। और जिसके बालक जबतक समर्थ हों और उनका जीती हो तो उन सब के निर्वहार्थ राज की ओर से यथायोग्य धन ला करे परन्तु जो उसकी स्त्री वा लड़के कुकर्मों हो जायें तो कुछ भी न ले, ऐसी नीति राजा बराबर रखे ॥ १९ ॥

—यथा फलेन युज्येत राजा कर्त्ता च कर्मणाम् ।
तथावेक्ष्य नृपो राष्ट्रे कल्पयेत्सत्ततं करान् ॥ १ ॥
यथाल्पाऽल्पमदन्त्याऽद्य वाय्योकोवत्सपदपदाः ।
तथाऽल्पाऽल्पो गृहीतव्यो राष्ट्राद्राक्षाब्दिकः करः ॥ २ ॥
नोच्छिन्द्यादात्मनो मूलं परेषां चातिवृष्ण्या ।
उच्छिन्दन् ह्यात्मनो मूलमात्मानं तांश्च पीडयेत् ॥ ३ ॥
तीक्ष्णश्चैव मृदुश्च स्यात्कार्यं धीक्ष्य महीपतिः ।
तीक्ष्णश्चैव मृदुश्चैव राजा भवति सम्मतः ॥ ४ ॥
एवं सर्वं विधायेदमिति कर्त्तव्यमात्मनः ।
मुक्तश्चैवाग्रमत्तश्च परिरक्षेदिमाः प्रजाः ॥ ५ ॥
विक्रोशन्त्यो यस्य राष्ट्राद् ध्रियन्ते दस्युभिः प्रजाः ।
सम्पश्यतः सभृत्यस्य मृतः स न तु जीवति ॥ ६ ॥
क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानामेव पालनम् ।
निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते ॥ ७ ॥

मनु० [अ० ७ । १२८, १२९, १३९, १४०, १४२—१४४]

जैसे राजा और कर्मों का कर्त्ता राजपुरुष वा प्रजाजन सुखरूप फल पुक होवे वैसे विचार करके राजा तथा राजसभा राज्य में कर स्थापन ॥ १ ॥ जैसे जोक, बछटा और भेंसरा थोड़े १ भोग्य पदार्थ को ग्रहण ले है वैसे राजा प्रजा से थोटा २ वार्षिक कर लेवे ॥ २ ॥ अतिलोभ से ने वा दूसरों के सुख के मूल को उच्छिन्न अर्थात् नष्ट कदापि न करे कि जो व्यवहार और सुख के मूल का छेदन करता है वह अपने [को] र उनको पीटा ही देता है ॥ ३ ॥ जो महीपति कार्य्य को देख के क्षण और कोमल भी होवे वह दुष्टों पर तीक्ष्ण और श्रेष्ठों पर कोमल रहने राजा अतिमाननीय होता है ॥ ४ ॥ इस प्रकार सब राज्य का प्रबन्ध

करके सदा इस में युक्त और प्रमादरहित होकर अपनी प्रजा का निरन्तर करे ॥ ५ ॥ जिस भृत्यसहित देखने हुए राजा के राज्य में लोग रोती विलाप करती प्रजा के पदार्थ और प्राणों को हरते रहते जानो भृत्य आमाल्यसहित मृतक है, जीता नहीं और महादुःख वाला है ॥ ६ ॥ इसलिये राजाओं का प्राजापालन करना ही और जो मनुस्मृति के सप्तमाध्याय में कर लेना लिखा है और जैसा नियत करे उसका भोक्ता राजा धर्म से युक्त होकर सुख पाता है विपरीत दुःख को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

१३—उत्थाय पश्चिमे यामे कृतशौचः समाहितः ।
हुताग्निर्वाक्षणांश्चाचर्य प्रविशेत्स शुभां सभाम् ॥ १ ॥
तत्र स्थिताः प्रजाः सर्वाः प्रतिनन्द्य विसर्जयेत् ।
विसृज्य च प्रजाः सर्वा मन्त्रयेत्सह मन्त्रिभिः ॥ २ ॥
गिरिपृष्ठं समारुह्य प्रासादं वा रहोगतः ।
शरण्ये निःशलाके वा मन्त्रयेदविभावितः ॥ ३ ॥
यस्य मन्त्रं न जानन्ति समागम्य पृथग्जनाः ।
स कृत्स्नां पृथिवीं भुङ्क्ते कोशदीनाऽपि पार्थिवः ॥ ४ ॥
मनु० [७ । १४५-१४८]

जब पिछली प्रहर रात्रि रहे तब उठ शौच और सावधान मेघर का ध्यान, अभिहोत्र धार्मिक विद्वानों का सत्कार और भीतर सभा में प्रवेश करे ॥ १ ॥ वहां खड़ा रहकर जो प्रजाजन हों उनको मान्य दे और उनको छोड़कर मुख्य मन्त्री के साथ का विचार करे ॥ २ ॥ पश्चात् उसके साथ धूमने को चला जाय फिर अथवा एकान्त घर वा जङ्गल जिसमें एक शलाका भी न हो एकान्त स्थान में बैठकर विरुद्ध भावना को छोड़ मन्त्री के साथ करे ॥ ३ ॥ जिस राजा के गृह विचार को अन्य जन मिलकर नहीं जानें अर्थात् निमग्न विचार गम्भीर, शुद्ध, परोपकारार्थ, सदा गुप्त रहे वही हीन भी राजा सब पृथिवी के राज्य करने में समर्थ हीना है इमन्त्रिण्येन ये एक भी काम न करे कि जयन्त सभासदों की अनुमति न हो

—आत्मनं चैव यानं च सन्धिं विग्रहमेव च ।

कार्यं चैव प्रयुजीत द्वैधं संश्रयमेव च ॥ १ ॥

तु द्विविधं विद्याद्राजा विग्रहमेव च ।

उभे यानासने चैव द्विविधः संश्रयः स्मृतः ॥ २ ॥
 समानयानकर्मा च विपरीतस्तथैव च ।
 'तथा त्वायतिसयुक्तः सन्धिर्ज्ञेयो द्विलक्षणः ॥ ३ ॥
 स्वयंकृतश्च कार्यार्थमकाले काल एव वा ।
 मित्रस्य चैवापकृते द्विविधो विग्रहः स्मृतः ॥ ४ ॥
 एकाकिनश्चात्ययिके कार्ये प्राप्ते यदृच्छया ।
 संहतस्य च मित्रेण द्विविध यानमुच्यते ॥ ५ ॥
 क्षीणस्य चैव क्रमशो देवात्पूर्वकृतेन वा ।
 मित्रस्य चानुरोधेन द्विविध स्मृतमासनम् ॥ ६ ॥
 बलस्य स्वामिनश्चैव स्थितिः कार्यार्थसिद्धये ।
 द्विविधं कीर्त्यते द्वैधं पाद्गुण्यगुणवेदिभिः ॥ ७ ॥
 अर्थसम्पादनार्थं च पीड्यमानः स शत्रुभिः ।
 साधुषु व्यपदेशार्थं द्विविधः संश्रयः स्मृतः ॥ ८ ॥
 यदावगच्छेदायत्यामाधिक्यं ध्रुवमात्मनः ।
 तदात्वे चालिकां पीडां तदा सन्धि समाश्रयेत् ॥ ९ ॥
 यदा प्रहृष्टा मन्येत सर्वास्तु प्रकृतीर्भृशम् ।
 अत्युच्छ्रितं तथात्मानं तदा कुर्वीत विग्रहम् ॥ १० ॥
 यदा मन्येत भावेन हृष्टं पुष्टं बलं स्वकम् ।
 परस्य विपरीतं च तदा यायाद्विपुं प्रति ॥ ११ ॥
 यदा तु स्यात्परिहीणो वाहनेन बलेन च ।
 तदासीत प्रयत्नेन शनकैः सान्त्वयन्नरीन् ॥ १२ ॥
 मन्येतांरिं यदा राजा सर्वथा बलवत्तरम् ।
 तदा द्विधा बलं कृत्वा साधयेत्कार्यमात्मनः ॥ १३ ॥
 यदा परबलानां तु गमनीयतमो भवेत् ।
 तदा तु संश्रयेत् क्षिप्रं धार्मिकं बलिनं नृपम् ॥ १४ ॥
 निग्रहं प्रकृतीनां च कुर्याद् योऽरिवलस्य च ।
 उपसेवेत तं नित्यं सर्वयत्नैर्गुरुं यथा ॥ १५ ॥
 यदि तत्रापि संपश्येद् दोषं संश्रयकारितम् ।
 सुयुद्धमेव तत्राऽपि निर्विशङ्कः समाचरेत् ॥ १६ ॥

मनु० [अ० ७ । १६१—१७६]

१ वर्तमान मनुस्मृति में "तत्रात्मावति." पाठ है । मन्वा० ॥

सब राजादि राजपुरुषों को यह बात लक्ष्य में रखने योग्य (आसन) स्थिरता, (यान) शत्रु से लड़ने के लिये जाना, उनसे मेल कर लेना, (विग्रह) दुष्ट शत्रुओं से लड़ाई करना, दो प्रकार की सेना करके स्वविनय कर लेना और (संश्रय) दूसरे प्रबल राजा का आश्रय लेना, ये छः प्रकार के कर्म यथायोग्य को विचार कर इसमें युक्त करना चाहिये ॥ १ ॥ राजा जो संधि, यान, आसन, द्वैधीभाव और संश्रय दो २ प्रकार के होते हैं पत जाते ॥ २ ॥ (संधि) शत्रु से मेल अथवा उससे परन्तु वर्तमान और भविष्यत् में करने के काम बराबर करता दो प्रकार का मेल कहाता है ॥ ३ ॥ (विग्रह) कार्यसिद्धि उचित समय वा अनुचित समय में स्वयं किया वा मित्र के चाले शत्रु के साथ विरोध, दो प्रकार से करना चाहिये ॥ ४ ॥ अकस्मात् कोई कार्य प्राप्त होने में एकाकी वा मित्र के साथ की ओर जाना यह दो प्रकार का गमन कहाता है ॥ ५ ॥ प्रकार क्रम से क्षीण होजाय अर्थात् निर्वल हो जाय अथवा मित्र से अपने स्थान में बैठ रहना यह दो प्रकार का आसन कहाता है ॥ ६ ॥ कार्यसिद्धि के लिये सेनापति और सेना के दो विभाग करके विग्रह दो प्रकार का द्वैध कहाता है ॥ ७ ॥ एक किसी अर्थ की सिद्धि किमी बलवान् राजा वा किसी महारमा का शरण लेना पीडित न हो दो प्रकार का आश्रय लेना कहाता है ॥ ८ ॥ जब ले कि इस समय युद्ध करने से थोड़ी पीड़ा प्राप्त होगी और मे अपनी वृद्धि और विजय अवश्य होगी तब शत्रु से मेल समय तक धीरज करे ॥ ९ ॥ जब अपनी सब प्रजा व सेना प्रमत्त उत्तनिशील और श्रेष्ठ जाने, वैसे अपने को भी समझ विग्रह (युद्ध) कर लेंगे ॥ १० ॥ जब अपने बल अर्थात् और पुष्टिपुक्त, प्रमत्त भाव से जाने और शत्रु का बल अपने से निर्वल होजाये तब शत्रु की ओर युद्ध करने के लिये जावे ॥ ११ ॥ मेना बल, वाहन से क्षीण होजाय तब शत्रुओं को धीरे २ ४ करना हुआ अपने स्थान में बैठा रहे ॥ १२ ॥ जब राजा शत्रु बलवान् जाने तब द्विगुण वा दो प्रकार की सेना करके अपना करे ॥ १३ ॥ जब आप समस्त लेने की अथ शीघ्र शत्रुओं की

मार्ग में रथ, अश्व, हाथी, जल में नौका और आकाश में विमानादि से जावे और पैदल, रथ, हाथी, घोड़े शस्त्र और अस्त्र खानपानादि की को यथावत् साथ ले चलगुप्त पूर्ण करके किसी निमित्त को प्रसिद्ध शत्रु के नगर के समीप धीरे २ जावे ॥ २ ॥ जो भीतर से शत्रु से हो और अपने साथ भी ऊपर मित्रता रखे, गुप्तता से शत्रु को भेद उसके आने जाने में, उससे बात करने में अत्यन्त सावधानी रखे, के भीतर शत्रु उपर मित्र पुरुष को बड़ा शत्रु समझना चाहिये ॥ ३ ॥ राजपुरुषों को युद्ध करने की विद्या सिखावे और आप सीखे तथा अन्य जनों को सिखावे । जो पूर्व शिक्षित योद्धा होते हैं वे ही अच्छे प्रकार लड़ा जानते हैं । जब शिक्षा करे तब 'दण्डव्यूह' दण्ड के समान को चलावे । (शकट०) जैसे शकट अर्थात् गाड़ी के समान (पराह०) सुभर एक दूसरे के पीछे दौड़ते जाते हैं और कभी २ सब मिल कर हो जाते हैं वैसे, (मकर०) जैसे मगर पानी में चलते हैं वैसे सेना बनावे । 'सूचीव्यूह' जैसे सुई का अग्रभाग सूक्ष्म पश्चात् स्थूल और से सूत्र स्थूल होता है वैसी शिक्षा से सेना को बनावे । जैसे 'नीलकण्ठ' नीचे क्षपट मारता है इस प्रकार सेना को बनाकर लड़ावे ॥ ४ ॥ र भय विदित हो उसी ओर सेना को फैलावे, सब सेना के पतिषों चारों ओर रख के 'पद्मव्यूह' अर्थात् पद्माकार चारों ओर से सेनाओं रख के मध्य में आप रहे ॥ ५ ॥ सेनापति और यलाध्यक्ष अर्थात् हा का देने और सेना के साथ लड़ने लड़ाने वाले वीरों को आठो दिशाओं रखे, जिस ओर से लड़ाई होती हो उसी ओर सब सेना का मुख रखे नु दूसरी ओर भी पद्म प्रचन्ध रखे, नहीं तो पीछे वा पार्श्व से शत्रु घात होने का सम्भव होता है ॥ ६ ॥ जो गुप्त अर्थात् हृद् स्तम्भों के य युद्ध विद्या से सुशिक्षित, धार्मिक, स्थित होने और युद्ध करने में चतुर, रहिन और जिनके मन में किसी प्रकार का विकार न हो उनकी चारों र सेना के रखे ॥ ७ ॥ जो थोड़े से पुरुषों से बहुतों के साथ युद्ध ना हो तो मिलकर लड़ावे और काम पड़े तो उन्हीं को क्षट फैला देवे, नगर, दुर्ग वा शत्रु की सेना में प्रविष्ट होकर युद्ध करना हो तब 'चीन्यूह' अथवा 'वज्रव्यूह' जैसे दुधारा खड्ग दोनों ओर घाट करता जैसे] युद्ध करते जायें और प्रविष्ट भी होते चले जैसे, अनेक प्रकार व्यूह अर्थात् सेना को बनाकर लड़ावें । जो सामने शतग्री (तोप)

शत्रुसेविनि मित्रे च गूढे युक्ततरो भवेत् ।
 गतप्रत्यागते चैव स हि कष्टतरो रिपुः ॥ ३ ॥
 दण्डव्यूहेन तन्मार्गं यायात्तु शकटेन वा ।
 वराहमकराभ्यां वा सूच्या वा गरुडेन वा ॥ ४ ॥
 यतश्च भयमाशङ्केत्ततो विस्तारयेद् बलम् ।
 पद्मेन चैव व्यूहेन निविशेत् सदा स्वयम् ॥ ५ ॥
 सेनापतिबलाध्यक्षौ सर्वदिक्षु निवेशयेत् ।
 यतश्च भयमाशङ्केत् प्राचीं ता कल्पयेद् दिशम् ॥ ६ ॥
 गुल्मांश्च स्थापयेदाप्तान् कृतसंज्ञान् समन्ततः ।
 स्थाने युद्धं च कुशलानभीरून्विकारिणः ॥ ७ ॥
 संहतान् योधयेदल्पान् कामं विस्तारयेद् बहून् ।
 सूच्या वज्रेण चैवैतान् व्यूहेन व्यूह्य योधयेत् ॥ ८ ॥
 स्यन्दनाश्वैः समे युध्येदन्वप नौद्विपैस्तथा ।
 वृक्षगुल्मावृते चापैरसिचर्मायुधैः स्थले ॥ ९ ॥
 प्रहर्षयेद् बलं व्यूह्य तांश्च सम्यक् परीक्षयेत् ।
 चेष्टाश्चैव विजानीयादरीन् योधयतामपि ॥ १० ॥
 उपरुध्यारिमासीत् राष्ट्रं चास्योपपीडयेत् ।
 दृषयेच्चास्य सततं यवसान्नोदकेन्धनम् ॥ ११ ॥
 भिन्धाच्चैव तडागानि प्राकारपरिसास्तथा ।
 समयस्कन्दयेच्चैनं रात्रौ वित्रासयेत्तथा ॥ १२ ॥
 प्रमाणानि च कुर्यात् तेषां घर्म्यान्वयोदितान् ।
 रत्नैश्च पूजयेदेनं प्रधानपुरुषैः सह ॥ १३ ॥
 आदानमप्रियकरं दानञ्च प्रियकारकम् ।
 अभीष्टितानामर्थानां काले युक्तं प्रशस्यते ॥ १४ ॥

मनु० [७ ॥ १८४-१९२, १९४-१९६, १९८, १९९]

जब राजा शत्रुओं के साथ युद्ध करने को जावे तब अपने
 रक्षा का प्रबन्ध और यात्रा की सब सामग्री यथाविधि करके
 यज्ञ, धाहन, शस्त्राग्रादि पूर्ण लेकर सर्वत्र दूतों अर्थात् चारों ओर
 चारों के देने वाले पुरुषों को गुप्त स्थापन करके शत्रुओं की ओर युद्ध
 जाये ॥ १ ॥ तीन प्रकार के मार्ग अर्थात् एक = ल (भूमि)
 जल (समुद्र वा नदियाँ) में, तीसरा आकाशमार्गों को युद्ध

गार्ग में रथ, अथ, हाथी, जल में नौका और आकाश में विमानादि से जावे और पैदल, रथ, हाथी, घोटे शस्त्र और भस्त्र खानपानादि की को यथावत् साथ ले बलपुक्त पूर्ण करके किसी निमित्त को प्रसिद्ध शत्रु के नगर के समीप धीरे २ जावे ॥ २ ॥ जो भीतर से शत्रु से हो और अपने साथ भी ऊपर मित्रता रखे, गुप्तता से शत्रु को भेद उसके आने जाने में, उससे बात करने में अत्यन्त सावधानी रखे, ३ भीतर शत्रु उपर मित्र पुरुष को बड़ा शत्रु समझना चाहिये ॥ ३ ॥ राजपुरुषों को युद्ध करने की विद्या सिखावे और आप सीखे तथा अन्य जनों को सिखावे । जो पूर्व शिक्षित योद्धा होते हैं वे ही अच्छे प्रकार लड़ा जानते हैं । जय शिक्षा करे तब 'दण्डव्यूह' दण्ड के समान को चलावे । (शकट०) जैसे शकट अर्थात् गाड़ी के समान (घराह०) सुभर एक दूसरे के पीछे दौड़ते जाते हैं और कभी २ सब मिल कर हो जाते हैं वैसे, (मकर०) जैसे मगर पानी में चलते हैं वैसे सेना बनावे । 'सूचीव्यूह' जैसे सुई का अग्रभाग सूक्ष्म पश्चात् स्थूल और ने सूत्र स्थूल होता है वैसी शिक्षा से सेना को बनावे । जैसे 'नीलकण्ठ' नीचे क्षपट मारता है इस प्रकार सेना को बनाकर लड़ावे ॥ ४ ॥ रभय विदित हो उसी ओर सेना को फैलावे, सब सेना के पतिषों चारों ओर रख के 'पद्मव्यूह' अर्थात् पद्माकार चारों ओर से सेनाओं रख के मध्य में आप रहे ॥ ५ ॥ सेनापति और बलाध्यक्ष अर्थात् ॥ का देने और सेना के साथ लटने लटाने वाले वीरों को आठो दिशाओं रखे, जिस ओर से लड़ाई होती हो उसी ओर सब सेना का मुख रखे तु दूसरी ओर भी पक्का प्रबन्ध रखे, नहीं तो पीछे वा पार्श्व से शत्रु घात होने का सम्भव होता है ॥ ६ ॥ जो गुल्म अर्थात् दृढ़ स्तम्भों के २ युद्ध विद्या से सुशिक्षित, धार्मिक, स्थित होने और युद्ध करने में चतुर, रहित और जिनके मन में किसी प्रकार का विकार न हो उनको चारों सेना के रखे ॥ ७ ॥ जो थोड़े से पुरषों से बहुतों के साथ युद्ध ना हो तो मिलकर लड़ावे और काम पड़े तो उन्ही को झट फैला दे, नगर, दुर्ग वा शत्रु की सेना में प्रविष्ट होकर युद्ध करना हो तब 'चीव्यूह' अथवा 'वज्रव्यूह' जैसे दुधारा खड्ग दोनों ओर घात करता वैसे] युद्ध करते जायें और प्रविष्ट भी होते चलेँ वैसे, अनेक प्रकार व्यूह अर्थात् सेना को बनाकर लड़ावें । जो सामने शतारी (तोप)

वा भुशुंडी (बन्दूक) छूट रही हो तो 'सर्पव्यूह' अर्थात् सर्पों के
 सोते १ चले जायें । जब तोपों के पास पहुँचें तब उनको मार वा
 तोपों का मुख शत्रु की ओर फेर उन्हें तोपों से वा बन्दूक आदि
 शत्रुओं को मारें, अथवा वृद्ध पुरुषों को तोपों के मुख के सामने
 सवार करा दौड़ावें और मारें, बीच में अच्छे २ सवार रहें, एक
 कर शत्रु की सेना को छिन्न भिन्न कर पकड़ लें अथवा भगा दें ॥ ९ ॥
 जो समभूमि में युद्ध करना हो तो रथ, घोड़े और पदातियों से
 समुद्र में युद्ध करना हो तो नौका और थोड़े जल में हाथियों पर
 और झाड़ी में बाण तथा स्थल बालू में तलवार और ढाल से युद्ध करें
 ॥ ९ ॥ जिस समय युद्ध होता हो उस समय लड़नेवालों को
 और हर्षित करे, जब युद्ध बन्द होजाय तब जिससे शौर्य और
 उत्साह हो वैसे वक्तव्यों से सब के चित्त को खान, पान, अन्न, शस्त्र,
 और औषधादि से प्रसन्न रखें, व्यूह के बिना लड़ाई न करें न करावें,
 हुई अपनी सेना की चेष्टा को देखा करे कि ठीक २ लड़ती है वा
 रागती है ॥ १० ॥ किसी समय उचित समझे तो शत्रु को चारों
 घेर कर रोक रखे और इसके राज्य को पीड़ित कर शत्रु के वाता,
 जल और इन्धन को नष्ट, दूषित करदे ॥ ११ ॥ शत्रु तालाब,
 प्रकोट और खाई को तोड़ फोड़ दे, रात्रि में उनको (श्रास)
 और जीतने का उपाय करे ॥ १२ ॥ जीत कर उनके साथ
 अर्थात् प्रतिज्ञादि लिखा लेवे और जो उचित समय समझे तो
 वंशस्थ किसी धार्मिक पुरुष को राजा करदे और उससे लिखा लेवे
 तुमको हमारी आज्ञा के अनुकूल अर्थात् जैसी धर्मयुक्त राजनीति है
 अनुसार चल के न्याय से प्रजा का पालन करना होगा, ऐसे उत्तम
 और ऐसे पुरुष उनके पास रखे कि जिससे पुनः उपद्रव न हो, और
 हार जाय उसका सन्तार प्रधान पुरुषों के साथ मिलकर रक्षादि
 पदार्थों के दान से करे और ऐसा न करे कि जिससे उनका योगक्षेम
 हो, जो उसको बन्दीगृह करे तो भी उसका सरकार यथायोग्य सम्मान
 वा श्राव्य के शोक से रहित होकर आनन्द में रहे ॥ १२ ॥ क्योंकि
 मे दुस्मन का पदार्थ ग्रहण करना अप्रीति और देना प्रीति का कारण
 विशेष करने समर्थ पर उचित क्रिया करना और उस पराजित
 क्षन्तित पदार्थों का देना बहुत उत्तम है और कभी उसको चिढ़ावे

ने और [न] ठठा करे, न उसके सामने हमने तुझ को पराजित किया है
[त] भी कहे, किन्तु आप हमारे भाई हैं इत्यादि मान्य प्रतिष्ठा सदा करे ॥ १४ ॥

१—हिरण्यभूमिसंप्राप्त्या पार्थिवो न तथैधते ।

यथा मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमप्यायति क्षमम् ॥ १ ॥

धर्मज्ञं च कृतज्ञं च तुष्टप्रकृतिमेव च ।

अनुरक्त स्थिरारम्भं लघुमित्रं प्रशस्यते ॥ २ ॥

प्राज्ञं कुलीनं शूरं च दत्तं दातारमेव च ।

कृतज्ञं धृतिमन्तश्च कष्टमाहुररिं बुधाः ॥ ३ ॥

आर्य्यता पुरुषज्ञानं शौर्य्यं करुणवेदिता । मनु०—

स्थूललक्ष्यं च सततमुदासीनगुणोदयः ॥ ४ ॥ [७।२०८-२११]

मित्र का लक्षण यह है कि राजा सुवर्ण और भूमि की प्राप्ति से वैसा
हो बढता कि जैसे मित्रल, प्रेमयुक्त, भविष्यत् की बातों को सोचने और
गर्ह्य सिद्ध करने वाले, समर्थ मित्र अथवा दुर्बल मित्र को भी प्राप्त होके
इता है ॥ १ ॥ धर्म को जानने और कृतज्ञ अर्थात् किये हुए उपकार को
दा माननेवाले, प्रसन्न स्वभाव, अनुरागी, स्थिरारम्भी, लघु छोटे भी मित्र
ने प्राप्त होकर प्रशंसित होता है ॥ २ ॥ सदा इस बात को दृढ़ रखे कि
भी बुद्धिमान्, कुलीन, शूर, वीर, चतुर, दाता, किये हुए को जाननेहारे
और धैर्यवान् पुरुष को शत्रु न बनावे क्योंकि जो ऐसे को शत्रु बनावेगा
ह दुःख पावेगा ॥ ३ ॥ उदासीन का लक्षण—जिसमें प्रशंसित गुणयुक्त
मन्त्रे बुरे मनुष्यों का ज्ञान, शूरवीरता और करुणा भी स्थूललक्ष्य अर्थात्
पर १ की बातों को निरन्तर सुनाया करे और वह 'उदासीन' कहाता है ॥ ४ ॥

५—एवं सर्वमिदं राजा सह संमन्य मन्त्रिभिः ।

व्यायम्याप्लुत्य मध्याह्ने भोक्तुमन्तः पुर विशेत् ॥

मनु० [७ । २११]

पूर्वोक्त प्रातः काल समय उठ, शौचादि सन्ध्योपासन, अग्निहोत्र कर
वा करा, सब मन्त्रियों से विचार कर, सभा में जा, सब भृत्य और सेना-
व्यक्तों के साथ मिल, उनको हर्षित कर, नाना प्रकार की व्यूहशिक्षा अर्थात्
क्वायद कर करा, सब छोटे, एाथी, गाय आदि [वा] स्थान, शत्रु और
अस्त्र का कोश तथा वैद्यालय, धन के कोशों को देख, सब पर दृष्टि नित्य-
प्रति देकर, जो कुछ उनमें खोटे हों उनको निवाल, व्यायामशाला में जा
व्यायाम करके [मध्याह्न समय] भोजन के लिये "अन्तःपुर" अर्थात् पत्नी

आदि के निवासस्थान में प्रवेश करे और भोजन सुपरीक्षित, बुद्धि-
क्रमवर्धक, रोगविनाशक, अनेक प्रकार के अन्न, व्यञ्जन, पान आदि
निधित मिष्टादि अनेक रसयुक्त उत्तम करे कि जिससे सदा सुखी रहे,
प्रकार सब राज्य के कार्यों की उन्नति किया करे ॥

१६—प्रजा से कर लेने का प्रकारः—

पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः ।

धान्यानामष्टमो भागः पष्टो द्वादश एव वा ।

मनु० [७।११]

जो व्यापार करनेवाले वा शिल्पी को सुवर्ण और चांदी का जितना
हो उसमें से पचासवां भाग, चावल आदि अन्नों में छठा, आठवां वा
भाग लिया करे और जो धन लेवे तो भी उस प्रकार से लेवे कि
किसान आदि पाने पीने और धन से रहित होकर दुःख न पावें ॥
क्योंकि प्रजा के धनाढ्य, आरोग्य, पान पान आदि से सम्पन्न रहने पर
राजा की बड़ी उन्नति होती है । प्रजा को अपने सन्तान के साथ
देवे और प्रजा अपने पिता सदृश राजा और राजपुरुषों को जाने ।
यात ठीक है कि राजाओं के राजा किसान आदि परिश्रम करनेवाले हैं और
राजा उनका रक्षक है, जो प्रजा न हो तो राजा किसका ? और राजा
न हो तो प्रजा किसकी कहावे ? दोनों अपने अपने काम में मग्न
मिले हुए प्रीतिपुक्त काम में परतन्त्र रहे । प्रजा की साधारण सम्पत्ति के
विरुद्ध राजा या राजपुरुष न हो, राजा की आज्ञा के विरुद्ध राजपुरुष
प्रजा न चले । यह राजा का राजकीय निज काम अर्थात् जिसको "पौ-
टिकट" कहते हैं मक्षेप से कह दिया । अब जो विशेष देवना काहे का
चारों वेद, मनुस्मृति, शुक्रनीति, महाभारतादि में देखकर निश्चय करे ।

२०—और जो प्रजा का न्याय करना है वह व्यवहार मनुस्मृति के
और नवमा याय आदि की रीति से करना चाहिये, परन्तु यहां भी संक्षेप से
लिखते हैं —

ग्रन्थदं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः ।

अष्टादशानु मार्गेषु नियद्धानि पृथक् पृथक् ॥ १ ॥

तेषामाद्यमृणादान निक्षेपोऽस्वामिचिक्रयः ।

संभूय च समुत्थानं दत्तस्यानपकर्म च ॥ २ ॥

चतनस्यैव चादानं संविदश्च व्यतिक्रमः ।

क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः ॥ ३ ॥
 सीमाविवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके ।
 स्तेयं च साहसं चैव स्त्रीसङ्ग्रहणमेव च ॥ ४ ॥
 स्त्रीपुंघर्मो विभागश्च द्यूतमाहत्य एव च ।
 पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारस्थिताविह ॥ ५ ॥
 एषु स्थानेषु भूयिष्ठ विवादं चरतां नृणाम् ।
 धर्मं शाश्वतमाश्रित्य कुर्यात्कार्यविनिर्णयम् ॥ ६ ॥
 धर्मो विद्वस्त्वधर्मेण सभां यत्रोपतिष्ठते ।
 शल्य चास्य न कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः ॥ ७ ॥
 सभा वा न प्रवेष्टव्या वक्तव्यं वा समंजसम् ।
 अद्रुवन्विद्रुवन्वापि नरो भवति किल्बिषी ॥ ८ ॥
 यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च ।
 हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ॥ ९ ॥
 धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
 तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥ १० ॥
 वृषो हि भगवान् धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम् ।
 वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ॥ ११ ॥
 एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ।
 शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्वि गच्छति ॥ १२ ॥
 पादोऽधर्मस्य कर्त्तारं पादः साक्षिणमृच्छति ।
 पादः सभासदः सर्वान् पादो राजानमृच्छति ॥ १३ ॥
 राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः ।
 एनो गच्छति कर्त्तारं निन्दाहो यत्र निन्द्यते ॥ १४ ॥

मनु [८ । ३-८, १२-१९]

सभा, राजा और राजपुरुष सब लोग देशाचार और शास्त्रव्यवहार
 में से निम्नलिखित अठारह विवादास्पद मामलों में विवादयुक्त कर्मों वा
 य प्रतिदिन किया करें और जो २ नियम शायोक्त न पावें और उनके
 की आवश्यकता जानें तो उत्तमोत्तम नियम या वे कि जिससे राजा
 प्रजा की उन्नति हो ॥ १ ॥ अठारह मार्ग ये हैं, उनमें से १ (क्रणादान)
 १ से क्रण लेने देने का विवाद । २—(निक्षेप) धरावट अर्थान् विस्ती
 र्त्ती के पास पदार्थ धरा हो और भागे पर न देना । ३—) अस्वामि-

विक्रय) दूसरे के पदार्थ को दूसरा बेंच लेवे । ४— (संभ्र
 त्यानम्) मिल मिला के किसी पर अत्याचार करना । ५— (
 नपकर्म च) दिये हुए पदार्थ का न देना ॥ २॥ ६—(वेतनस्यैव
 वेतन अर्थात् किसी की “नौकरी” में से लेलेना वा कम देना
 देना । ७— (प्रतिज्ञा) प्रतिज्ञा से विरुद्ध वर्तना । ८—(
 नुशयः) अर्थात् लेन देन में झगड़ा होना । ९—पशु के स्वामी और
 घाले का झगड़ा ॥ ३ ॥ १०—सीमा का विवाद । ११—किसी
 दण्ड देना । १२—कठोर चाणी का बोलना । १३—चोरी डांका
 १४—किसी काम को बलात्कार से करना । १५—किसी की
 का व्यभिचार होना ॥ ४ ॥ १६—स्त्री और पुरुष के धर्म में
 होना । १७—विभाग अर्थात् दायभाग में वाद उठना । १८—घट
 जड़ पदार्थ और समाह्वय अर्थात् चेतन को दाव में धर के जुआ
 ये अठारह प्रकार के परस्पर विरुद्ध व्यवहार के स्थान हैं ॥ ५ ॥
 व्यवहारों में बहुत से विवाद करने वाले पुरुषों के न्याय को
 के आश्रय करके भिया करे अर्थात् किसी का पक्षपात कभी न करे ॥
 जिस सभा में अधर्म से घायल होकर धर्म उपस्थित होता है जो
 शत्रु अर्थात् तीरजत् धर्म के बलंक को निकालना और अधर्म का
 नहीं करते अर्थात् धर्मी को मान अधर्मी को दण्ड नहीं मिलता उस
 में जितने सभासद् हैं वे सब घायल के समान समझे जाते हैं ॥
 धार्मिक मनुष्य को योग्य है कि सभा में कभी प्रवेश न करे और
 किया हो तो सत्य ही बोले, जो कोई सभा में अन्याय होते हुए
 कर मौन रहे अथवा सत्य न्याय के विरुद्ध बोले वह महापापी
 है ॥ ८ ॥ जिस सभा में अधर्म से धर्म, असत्य से सत्य, सब
 के दहन हुए मारा जाता है उस सभा में सब मृतक के समान हैं
 उनमें कोई भी नहीं जीता ॥ ९ ॥ मरा हुआ धर्म नारनेवाले
 और रक्षित किया हुआ धर्म रक्षक की रक्षा करता है इसलिये
 हनन कभी न करना उस डर से कि मरा हुआ धर्म कभी हनन
 जाये ॥ १० ॥ जो सब पेशवाओं के देने और सुगों की वषा
 धर्म है उसका न्याय करना है जमी को विद्वान लोग मृग्य धार्मिक
 नीय जानते हैं इसलिए किसी कनुष्य को धर्म का लोप करना
 नहीं ॥ ११ ॥ इस संसार में एक धर्म ही मृत है जो मृत्यु के

चलता है और सब पदार्थ या संगी शरीर के नाश के साथ ही नाश प्राप्त होते हैं अर्थात् सब का संग छूट जाता है परन्तु धर्म का संग नहीं छूटता ॥ ११ ॥ जत्र राजसभा मे पक्षपात से अन्याय किया है वहा अधर्म के चार विभाग हो जाते हैं, उनमें से एक अधर्म के , दूसरा साक्षी तीसरा सभासदो और चौथा पाद अधर्मी सभा के पति राजा को प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ जिस सभा में निन्दा के योग्य नेन्दा, स्तुति, के योग्य की स्तुति, दण्ड के योग्य को दण्ड और मान्य ग्य को मान्य होता है वहा राजा और सब सभासद् पाप से रहित पवित्र हो जाते हैं, पाप के कर्ता ही को पाप प्राप्त होता है ॥ १३ ॥
२१—अब साक्षी कैसे करने चाहिये —

आप्ताः सर्वेषु वर्णेषु कार्य्याः कार्येषु साक्षिणः ।
सर्वधर्मविदोऽलुब्धा विपरीतांस्तु वर्जयेत् ॥ १ ॥
स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युर्द्विजानां सदृशा द्विजाः ।
शूद्राश्च सन्तः शूद्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः ॥ २ ॥
साहसेषु च सर्वेषु स्तेयसङ्ग्रहणेषु च ।
वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षेत साक्षिणः ॥ ३ ॥
बहुत्वं परिगृहीयात्साक्षिद्वैधे नराधिपः ।
समेषु तु गुणोत्कृष्टान् गुणद्वैधे द्विजोत्तमान् ॥ ४ ॥
समक्षदर्शनात्साक्ष्यं श्रवणाच्चैव सिध्यति ।
तत्र सत्यं ब्रुवन्साक्षी धर्मार्थाभ्यां न हीयते ॥ ५ ॥
साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्विब्रुवन्नार्य्यसंसदि ।
अवाद्नरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते ॥ ६ ॥
स्वभावेनैव यद् ब्रूयुस्तद् ग्राह्यं व्यावहारिकम् ।
अतो यदन्यद्विब्रूयुर्धर्मार्थं तदपार्थकम् ॥ ७ ॥
सभान्तः साक्षिणः प्राप्तानर्थिप्रत्ययसन्निधौ ।
प्राड्विवाकोऽनुयुञ्जीत विधिनाऽनेन सान्त्वयन् ॥ ८ ॥
यद् द्वयोरनयोर्वैतथ कार्येऽस्मिन् चेष्टितं मिथः ।
तद् ब्रूत सर्व सत्येन युष्माक एव साक्षिता ॥ ९ ॥
सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन्साक्षी लोकानाप्नोति पुष्कलान् ।
इह चानुत्तमां कीर्तिं चागेपा ब्रह्मपूजिता ॥ १० ॥
सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्द्धते ।

तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः ॥ ११ ॥

आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः ।

मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम् ॥ १२ ॥

यस्य विद्वान् हि वदतः क्षेत्रज्ञो नाभिशङ्कते ।

तस्मान्न देवाः श्रेयांसं लोकेऽन्यं पुरुषं विदुः ॥ १३ ॥

एकोऽदमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याण मन्यसे ।

नित्यं स्थितस्ते हृद्येषु पुण्यपापेक्षिता मुनिः ॥ १४ ॥

मनु० [८ । १३, १८, ७२-७५, ७८-८१, ८३, ८४, ९१,

सत्र षण्ठी में धार्मिक, विद्वान्, निष्कपटी, सब प्रकार धर्म को चाले, लोभरहित, सत्यवादी को न्यायव्यवस्था में साक्षी को, विपरीतों को कभी न करे ॥ १ ॥ स्त्रियों की साक्षी स्त्री, द्विजों के शूद्रों के शूद्र और भन्त्यजों के भन्त्यज साक्षी हों ॥ २ ॥ जितने काम चोरी, व्यभिचार, कठोर वचन, दण्डनिपात रूप अपराध साक्षी की परीक्षा न करे और अत्यावश्यक भी समझे क्योंकि ये गुप्त होते हैं ॥ ३ ॥ दोनों ओर के साक्षियों में से बहुपक्षानुसार साक्षियों में उत्तम गुणी पुरुष की साक्षी के अनुकूल और दोनों के उत्तम गुणी और तुल्य हों तो द्विजोत्तम अर्थात् ऋषि, महर्षि और की साक्षी के अनुसार न्याय करे ॥ ४ ॥ दो प्रकार के साक्षी होना हैं, एक साक्षात् देखने और दूसरा सुनने से, जब सभा में जो साक्षी सत्य बोलें वे धर्महीन और दण्ड के योग्य न हों साक्षी मिथ्या बोलें वे यथायोग्य दण्डनीय हों ॥ ५ ॥ जो राजा द्विजोत्तम पुरुषों की सभा में साक्षी देखने और सुनने से किसी नो यह 'अवाद्नरक' अर्थात् जिज्ञा के छेदन से दुःखरूप कर्ममय समय में प्राप्त होवे और मरे पश्चात् सुख से हीन हो जाय साक्षी के इस वचन को मानना कि जो स्वभाव ही से व्यग्रहार बोलें और देखने निश्च मिथ्याये हुए जो १ वचन बोलें उस १ को धीन व्यर्थ समझे ॥ ७ ॥ जब अर्था (वादी) और प्रत्यर्था (प्रतिवादी) के गामने सभा के क्षमीय प्राप्त हुए साक्षियों को नान्तिपूर्वक और प्राप्तिवाक्य अर्थात् वकील या चारिस्टर इस प्रकार से पूछें हे साक्षी लोग ! हम कार्य में इन दोनों के परस्पर कर्मों में ज्ञानने दो उसको सत्य के साथ बोलो क्योंकि तुम्हारी इस

क्षी है ॥ ९ ॥ जो साक्षी सत्य बोलता है वह जन्मान्तर में उत्तम जन्म
 उत्तम लोकान्तरो में जन्म को प्राप्त होके सुख भोगता है, इस जन्म
 परजन्म में उत्तम कीर्ति को प्राप्त होता है, क्योंकि जो यह वाणी है वही
 में सत्कार और तिरस्कार का कारण लिखी है । जो सत्य बोलता है
 प्रतिष्ठित और मिथ्यावादी निन्दित होता है ॥ १० ॥ सत्य बोलने से
 क्षी पवित्र होता और सत्य ही बोलने से धर्म बढ़ता है इससे सब वर्णों
 साक्षियों को सत्य ही बोलना योग्य है ॥ ११ ॥ आत्मा का साक्षी
 आत्मा और आत्मा की गति आत्मा है, इसको जान के हे पुरुष ! तू सब
 पुण्यो का उत्तम साक्षी अपने आत्मा का अपमान मत कर अर्थात् सत्य
 भाषण जो कि तेरे आत्मा, मन, वाणी में है वह सत्य और जो इससे
 परीत है वह मिथ्याभाषण है ॥ १२ ॥ जिस बोलते हुए पुरुष का
 द्वान् क्षेत्रज्ञ अर्थात् शरीर का जानने हारा आत्मा भीतर शङ्का को प्राप्त
 होता उससे भिन्न विद्वान् लोग किसी को उत्तम पुरुष नहीं जानते
 ॥ १३ ॥ हे कल्याण की इच्छा करनेवाले पुरुष ! जो तू "मैं अकेला हूँ"
 अपने आत्मा में जानकर मिथ्या बोलता है सो ठीक नहीं है, किन्तु जो
 तेरे हृदय में अन्तर्यामी रूप से परमेश्वर पुण्य पाप का देखने वाला
 स्थित है उस परमात्मा से डरकर सदा सत्य बोला कर ॥ १४ ॥
 लोभान्मोहाद्भयान्मैत्रात्कामात् क्रोधात्तथैव च ।
 अज्ञानाद् चालभावाच्च साद्यं वितथमुच्यते ॥ १ ॥
 एषामन्यतमे स्थाने यः साद्यमनृतं वदेत् ।
 तस्य दण्डविशेषास्तु प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥ २ ॥
 लोभात्सहस्रदण्डस्तु मोहात्पूर्वन्तु सादसम् ।
 भयाद् द्वौ मध्यमौ दण्डयौ मैत्रात्पूर्वं चतुर्गुणम् ॥ ३ ॥
 कामाद्दशगुणं पूर्वं क्रोधात्तु त्रिगुणं परम् ।
 अज्ञानाद् द्वे शते पूर्णं चालिश्याच्छतमेव तु ॥ ४ ॥
 उपस्थमुदरं जिह्वां हस्तौ पादौ च पञ्चमम् ।
 चक्षुर्नासा च कर्णौ च घनं देहस्तथैव च ॥ ५ ॥
 अनुबन्धं परिशाय देशकालौ च तत्त्वतः ।
 साराऽपराधौ चालोक्य दण्डं दण्डेषु पातयेत् ॥ ६ ॥
 अधर्मदण्डनं लोके यशोघ्नं कीर्तिनाशनम् ।
 अस्वर्ग्यञ्च परत्रापि तस्मात्तत्परिचर्जयेत् ॥ ७ ॥

अदण्ड्यान्दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन् ।
 अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति ॥ ८ ॥
 वादण्डं प्रथमं कुर्याद्विदण्डं तदनन्तरम् ।
 तृतीयं धनदण्डं तु वधदण्डमतः परम् ॥ ९ ॥

मनु० [८ । ११८—१२१, १२

जो लोभ मोह, भय, मित्रता, काम, क्रोध, अज्ञान और
 से साक्षी देवे वह सब मिथ्या समझी जावे ॥ १ ॥ इनमें से
 में साक्षी झूठ बोले उसको वक्ष्यमाण अनेकविध दण्ड दिया करे ।
 जो लोभ से झूठी साक्षी देवे तो उससे १५॥=) (पन्द्रह रुपये
 दण्ड लेवे, जो मोह से झूठी साक्षी देवे उससे ३=) (तीन रुपये
 दण्ड लेवे, जो भय से मिथ्या साक्षी देवे उससे ६) (सहा दण्ड
 दण्ड लेवे और जो पुरुष मित्रता से झूठी साक्षी देवे उससे १३॥=) (बारह रुपये) दण्ड लेवे ॥ ३ ॥ जो पुरुष कामना से मिथ्या साक्षी
 उससे २५) (पच्चीस रुपये) दण्ड लेवे, जो पुरुष क्रोध से झूठी
 देवे उससे ४६॥=) (छयालीस रुपये चौदह आने) दण्ड लेवे,
 अज्ञानता से झूठी साक्षी देवे उससे ६) (छः रुपये) दण्ड
 जो बालकपन से मिथ्या साक्षी देवे तो उससे १॥=) (एक
 आने) दण्ड लेवे ॥ ४ ॥ दण्ड के उपस्थेन्द्रिय उदर, जिह्वा, हाथ,
 आंग, नाक, कान, धन और देह ये दश स्थान हैं कि जिन पर
 जाता है ॥ ५ ॥ परन्तु जो २ दण्ड लिखा है और लिखी जावे
 साक्षी देने में पन्द्रह रुपये दण्ड आने दण्ड लिखा है परन्तु जो
 निर्धन हो तो उससे कम और धनाढ्य हो तो उससे दूना, लिख
 चौगुना तक भी ले लेवे अर्थात् जैसा देश, जैसा काल और पुरुष
 का जैसा अपराध हो वैसा ही दण्ड करे ॥ ६ ॥ क्योंकि इस संसार
 अधर्म से दण्ड करना है वह पूर्व प्रणिष्टा, वर्तमान और भविष्य
 परजन्म में होनेवाली कीर्ति का नाश करने द्वारा है और परजन्म
 दुःप्रदायक होता है इसलिये अधर्मयुक्त दण्ड किसी पर न करे ॥
 जो राजा दण्डनीयों को न दण्ड और अदण्डनीयों को दण्ड देता है
 दण्ड देने योग्य को छोड़ देना और जिम्मे दण्ड देना न चाहिये
 दण्ड देना है वह जीना हुआ बड़ी निन्दा को और मरे पीटे बड़े
 प्राप्त होता है इसलिये जो अपराध करे उसको सदा दण्ड देने चाहिये ॥

धी को दण्ड कभी न देवे ॥ ८ ॥ प्रथम घाणी का दण्ड अर्थात् उसकी
नन्दा दूसरा "धिक्" दण्ड अर्थात् गुप्त को धिक्कार है, तू ने ऐसा गुप्त
म क्यों किया, तीसरा उससे "धन लेना" और चौथा "वध" दण्ड
अर्थात् उसको कोड़ा वा बेंत से मारना वा शिर काट देना ॥ ९ ॥

येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृपु विचेष्टते ।

तत्तदेव हरेदस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः ॥ १ ॥

पिताचार्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः ।

नादण्डयो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति ॥ २ ॥

कार्पापणं भवेदण्डयो यत्रान्यः प्राकृतो जनः ।

तत्र राजा भवेदण्डयः सहस्रमिति धारणा ॥ ३ ॥

अष्टापाद्यन्तु शूद्रस्य स्तेये भवति किंलिपम् ।

पोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत् क्षत्रियस्य च ॥ ४ ॥

ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं चापि शतं भवेत् ।

द्विगुणा वा चतुःषष्टिस्तदोपगुणविद्धि सः ॥ ५ ॥

पेन्द्रं स्थानमभिप्रेप्सुर्यशश्चाक्षयमव्ययम् ।

नोपेक्षेत क्षणमपि राजा साहसिकं नरम् ॥ ६ ॥

बाणदुष्टाक्षस्कराच्चैव दण्डेनैव च हिंसितः ।

साहसस्य नरः कर्त्ता विज्ञेयः पापवृत्तमः ॥ ७ ॥

साहसे वर्त्तमानन्तु यो मर्षयति पार्थिवः ।

स धिनाशं व्रजत्याशु विद्वेष चाधिगच्छति ॥ ८ ॥

न मित्रकारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात् ।

समुत्सृजेत् साहसिकान्सर्वभूतभयावहान् ॥ ९ ॥

गुरु वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मण वा बहुश्रुतम् ।

प्राततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥ १० ॥

नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ।

प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तन्मन्युमृच्छति ॥ ११ ॥

यस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक् ।

न साहसिकदण्डघ्नो स राजा शक्रलोकभाक् ॥ १२ ॥

मनु ० [८ । ३३४-३३८, ३४३-३४७, ३५०, ३५१, ३८६]

चोर जिस प्रकार जिस १ अङ्ग से मनुष्यों में विरुद्ध चेष्टा करता है
उस अङ्ग की सब मनुष्यों की शिक्षा के लिए राजा हरण

जो नियम राजा और प्रजा के सुखकारक और धर्मयुक्त समझे उन २
मों को पूर्ण विद्वानों की राजसभा बांधा करे। परन्तु इस पर नित्य
रखवे कि जहातक वन सके वरातक बाल्यावस्था में विवाह न
देवे। युवावस्था में भी बिना प्रसन्नता के विवाह न करना कराना
न करने देना। प्रसन्नता का यथावत् सेवन करना कराना। व्यभि-
चार और बहुविवाह को घन्द करें कि जिससे शरीर और आत्मा में पूर्ण
वृद्धि रहे। क्योंकि जो केवल आत्मा का बल अर्थात् विद्या ज्ञान
जाय और शरीर का बल न बढ़ावे तो एक ही बलवान् पुरुष
और सेकड़ों विद्वानों को जीत सकता है। और जो केवल शरीर
का बल बढ़ाया जाय आत्मा का नहीं तो भी राज्य पालन की
व्यवस्था बिना विद्या के कभी नहीं हो सकती। बिना व्यवस्था के
आपस में ही फूट टूट, विरोध, लड़ाई झगडा करके नष्ट भ्रष्ट हो
। इसलिये सर्वदा शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते रहना चाहिये।
बल और बुद्धि का नाशक व्यवहार व्यभिचार और अति विषयासक्ति
ना और कोई नहीं है। विशेषतः क्षत्रियों को दृढाग और बलयुक्त
चाहिये। क्योंकि जब वे ही विषयासक्त होंगे तो राज्यधर्म ही नष्ट
पायगा। और इन पर भी ध्यान रखना चाहिए कि “यथा राजा
प्रजा” जैसा राजा होता है वैसी ही उसकी प्रजा होती है इसलिये
और राजपुरुषों को अति उचित है कि कभी दुष्टाचार न करें, विन्तु
दिन धर्म न्याय से घर्तकर सब के सुधार का दृष्टान्त बने।

२६—यह संक्षेप से राजधर्म का वर्णन यहां किया है। विशेष वेद,
स्मृति के सप्तम, अष्टम, नवम अध्याय में और शुक्लनीति तथा विदुर-
चर और महाभारत शान्तिपर्व के राजधर्म और आपद्धर्म आदि पुस्तकों
लेकर पूर्ण राजनीति को धारण करके माण्डलिक अथवा सार्वभौम
नीति राज्य करें और यह समझें कि “ययं प्रजापते प्रजा अभूम”
१९ (यह यजुर्वेद का वचन है) हम प्रजापति अर्थात् परमेश्वर की प्रजा
परमात्मा हमारा राजा, हम उसके बिबर भृत्यवत् हैं। यह कृपा करके
। स्मृति में हम को राज्याधिकारी करे और हमारे हाथ से अपने सत्य
की प्रवृत्ति करावे। अब आगे ईश्वर और वेद विषय में लिखा जायगा।
ति श्रीमद्यानन्दसरस्वतीस्वामिण्ये सत्यार्थप्रकाशे सुभाषापिभूषिते

राजधर्मविषये पठ्य समुदास सम्पूर्ण ॥ १ ॥

अथ सप्तमसमुह्यसारम्भः

अथेश्वरवेदविषयं व्याख्यास्यामः

१—ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन् देवा वि
यस्तन्न वेद किमुचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इम
क्र० ॥ मं० १ । सू० १६४ ।

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्या जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ २ ॥
यजु० ॥ अ० ४० । मं० १ ।

अहम्भुवं वसुनः पुर्व्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि
मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषे विभजामि
अहमिन्द्रो न परो जिग्य इद्धनं न मुत्यवेऽवतस्थे
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सुहये
क्र० ॥ मं० १० । सू० ४८ । मं० १ ।

(ऋचो अक्षरे०) इस मन्त्र का अर्थ ब्रह्मचर्याश्रम की शिक्षा
चुके है अर्थात् जो सब दिव्य गुण कर्म स्वभाव विद्यागुण
पृथिवी सूर्यादि लोक स्थित हैं और जो आकाश के समान
देवों का देव परमेश्वर है उसको जो मनुष्य न जानते, न
उसका ध्यान नहीं करते वे नास्तिक, मन्दमति सदा दुःखमात्र
ही रहते हैं, इसलिये सर्वदा उसी को जानकर सब मनुष्य सुखी

(प्रश्न) वेद में ईश्वर अनेक है इस बात को तुम मानते

(उत्तर) नहीं मानते, क्योंकि चारों वेदों में ऐसा कहीं
जिसमें अनेक ईश्वर सिद्ध हो किन्तु यह तो लिखा है कि ईश्वर

(प्रश्न) वेदों में जो अनेक देवता लिखे हैं उसका क्या

(उत्तर) देवता दिव्य गुणों से युक्त होने के कारण
कि पृथिवी, परन्तु इसको कहीं ईश्वर वा उपासनीय नहीं मान
इसी मंत्र में कि 'जिसमें सब देवता स्थित हैं वह' जानने और
जाने योग्य देव है । यह उनकी भूल है जो देवता शब्द में
करते हैं । परमेश्वर देवों का देव होने से महादेव इसीलिये
वही सब देवों की उत्पत्ति, स्थिति, प्रत्यक्षता, न्यायाधीश,

अशान्तिशता०, ॐ इत्यादि वेदों में प्रमाण हैं, इसकी व्याख्या शतपथ
में है कि तैंतीस देव अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश,
मा, सूर्य और नक्षत्र सब सृष्टि के निवासस्थान होने से [ये] आठ
प्राण, अपान, व्यान, [उदान], समान, नाग, कूर्म, कृकल, देव-
धनञ्जय और जीवात्मा ये ग्यारह रुद्र इसलिये कहाते हैं कि जब
को छोड़ते हैं तब रोदन करानेवाले होते हैं । सबस्तर के बारह
बारह आदिन्य इसलिये हैं कि ये सब की आगु को लेते जाते हैं ।
गै का नाम इन्द्र इस हेतु से है कि परम ऐश्वर्य का हेतु है । यज्ञ को
लि कहने का कारण यह है कि जिससे वायु, वृष्टि, जल ओषधी
वृद्धि, विद्वानों का सत्कार और नाना प्रकार की शिल्पविद्या में प्रजा
पालन होता है । ये तैंतीस पूर्वोक्त गुणों के योग में 'देव' कहाते हैं ।
'स्वामी' और सब में बड़ा होने से परमात्मा चौतीसवां उपास्यदेव
य के चौदहवें काण्ड में स्पष्ट लिखा है । इसी प्रकार अन्यत्र भी लिखा
जो ये इन शास्त्रों को देखने तो वेदों में अनेक ईश्वर मानने रूप भ्रम-
में गिरकर क्यों बहकने ॥ १ ॥

हे मनुष्य ! जो कुछ इस ससार में जगत् है उस सब में व्याप्त होकर
ता है वह 'ईश्वर' कहाता है उससे डर कर तू अन्याय में किसी के
की आकांक्षा मत कर, उस अन्याय का त्याग और न्यायाचरणरूप
में अपने आत्मासे आनन्द को भोग ॥ २ ॥

ईश्वर सब को उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! मैं ईश्वर सब के पूर्व
मान सब जगत् का पति हूँ, मैं सनातन जगत्कारण और सब धनों
जन्य करनेवाला और दाता हूँ, मुझ ही को सब जीव जैसे पिता को
न पुकारते हैं वैसे पुकारें, मैं सब को सुख देने हारे जगत् के लिये
प्रकार के भोजनों का विभाग पालन के लिये करता हूँ ॥ ३ ॥

मैं परमैश्वर्यवान् सूर्य के सदृश सब जगत् का प्रवाणक हूँ, कभी
य को प्राप्त नहीं होता और न कभी मृत्यु को प्राप्त होता हूँ, मैं ही
रूप धन का निर्माता हूँ, सब जगत् की उत्पत्ति करनेवाले मुझ ही को
हे जीवो ! ऐश्वर्य प्राप्ति के यत्न करते हुए, तुम लोग विज्ञानादि
तो मुझ से मागो और तुम लोग मेरी निग्रता में अलग मत होओ, हे
मनुष्यो ! मैं सत्यभाषणरूप स्तुति करनेवाले मनुष्य को सनातन ज्ञानादि

* 'त्रयस्त्रिंशन्नाम्नुवन् ० यदु० अ० १४ । ३ ।

धन को देता हूं। मैं ब्रह्म अर्थात् वेद का प्रकाश करनेवाला और वह वेद यथावत् कहता, उससे सबके ज्ञान को मैं बढ़ाता, मैं प्रेरक, यज्ञ करनेहारे को फलप्रदाता और इस विश्व में जो सब कार्य का बनाने और धारण करनेवाला हूं, इसलिये तुम सब छोड़ किसी दूसरे को मेरे स्थान में मत पूजो, मत मानो और मत २—हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकं
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।
 [अ० १३।

यह यजुर्वेद का मन्त्र है। हे मनुष्यो ! जो सृष्टि के पूर्व तेज वाले लोको का उत्पत्ति स्थान, आधार और जो कुछ उत्पन्न है और होगा उसका स्वामी था, है और होगा वह पृथिवी से ऊँचे लोक पर्यन्त सृष्टि को बना के धारण कर रहा है। उस सुखस्थ मात्मा ही की भक्ति जैसे हम करें वैसे तुम लोग भी करो ॥ १॥

(प्रश्न) आप ईश्वर २ कहते हो परन्तु उसकी सिद्धि किमप्रकाश

(उत्तर) सब प्रत्यक्षादि प्रमाणों में।

(प्रश्न) ईश्वर में प्रत्यक्षादि प्रमाण कभी नहीं घट सकते!

(उत्तर)—इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं

भिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम् ॥ [अ० १। सू० ४४।

यह गोतम महर्षिकृत न्यायदर्शन का सूत्र है। जो ज्ञेय, चक्षु, जिह्वा, घ्राण और मन का शब्द, स्पर्श, रूप, रस, दुःख, मत्स्यासत्य विषयों के साथ सम्बन्ध होने से ज्ञान उत्पन्न उसको प्रत्यक्ष कहते हैं परन्तु वह निर्भ्रम हो। अब विचारना इन्द्रियों और मन से गुणों का प्रत्यक्ष होता है, गुणी का नहीं। गन्ध आदि इन्द्रियों से स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का ज्ञान जो पृथिवी उमका आत्मायुक्त मन में प्रत्यक्ष किया जाता है प्रत्यक्ष सृष्टि में रचना विशेष आदि ज्ञानादि गुणों के प्रत्यक्ष भ्रम का भी प्रत्यक्ष है। और जब आत्मा मन और मन विषय विषय में लगाता या चोरी आदि गुरी या परोपकार करने के लिये या विषय ध्यान में आरम्भ करता है उस समय, उन्माद ज्ञानार्थः उसी उन्मिष्ट विषय पर शुरू जाती है। उन्माद आत्मा के भीतर में घरे काम करने में भय, दहता और हवा

ों के करने में अभय, नि शङ्कता और आनन्दोत्साह उठता है। वह आत्मा की ओर से नहीं किन्तु परमात्मा की ओर से है। और जब आत्मा शुद्ध होके परमात्मा का विचार करने में तत्पर रहता है उसको समय दोनों प्रत्यक्ष होते हैं। जब परमेश्वर का प्रत्यक्ष होता है तो मानादि से परमेश्वर के ज्ञान होने में क्या सदेह है? क्योंकि कार्य को के कारण का अनुमान होता है।

३—(प्रश्न) ईश्वर व्यापक है वा किसी देशविशेष में रहता है ?

(उत्तर) व्यापक है, क्योंकि जो एक देश में रहता तो सर्वान्तर्यामी, न, सर्वनियन्ता, सब का स्वप्ता, सब का धर्ता और प्रलयकर्त्ता नहीं उक्तता, जगत्प्राप्त देश में कर्त्ता की क्रिया का असंभव है।

४—(प्रश्न) परमेश्वर दयालु और न्यायकारी है वा नहीं ?

(उत्तर) है।

(प्रश्न) ये दोनों गुण परस्पर विरुद्ध हैं, जो न्याय करे तो दया और दया करे तो न्याय टूट जाय। क्यों कि न्याय उसको कहते हैं कि जो गैरों के अनुसार न अधिक न न्यून सुख दुःख पहुंचाना। और दया उसको कहते हैं जो अपराधी को बिना दण्ड दिये छोड़ देना।

(उत्तर) न्याय और दया का नाममात्र ही भेद है क्योंकि जो न्याय से प्रयोजन सिद्ध होता है वही दया से। दण्ड देने का प्रयोजन है मनुष्य अपराध करने से बंद होकर दुःखों को प्राप्त न हों। वही दया कहती है जो पराये दुःखों का छुड़ाना। और जैसा अर्थ दया और 'न्याय' का तुमने किया वह ठीक नहीं, क्योंकि जिसने जैसा, जितना बुरा कर्म किया हो उसको उतना, वैसा ही दण्ड देना चाहिये उसी का नाम न्याय है। और जो अपराधी को दण्ड न दिया जाय तो दया का नाश होजाय। क्योंकि एक अपराधी डाँकू को छोड़ देने से सहस्रों धर्मात्मा पुरुषों को नुकसान देना है। जब एक के छोड़ने में सहस्रों मनुष्यों को दुःख प्राप्त होता है वह दया किस प्रकार हो सकती है। दया वही है कि उस डाँकू को जेलगार में रखकर पाप करने से बचाना डाँकू पर और उस डाँकू को छोड़ देने से अन्य सहस्रों मनुष्यों पर दया प्रकाशित होती है।

(प्रश्न) फिर दया और न्याय दो शब्द क्यों हुए? क्योंकि उन दोनों का अर्थ एक ही होता है तो दो शब्दों का होना व्यर्थ है, इसलिये एक शब्द का रहना तो अच्छा था। इससे क्या विदित होता है कि दया

और न्याय का एक प्रयोजन नहीं है।

(उत्तर) क्या एक अर्थ के अनेक नाम और एक नाम के अर्थ नहीं होते ?

(प्रश्न) होते हैं।

(उत्तर) तो पुनः तुमको शङ्का क्यों हुई ?

(प्रश्न) संसार में सुनने हैं, हमलिये।

(उत्तर) संसार में तो सच्चा ज्ञान दोनों सुनने में आता है। तुमको विचार में निश्चय करना अपना काम है। देवों ईश्वर का दिया तो यह है कि जिसने सब जीवों के प्रयोजन मिट्ट होवे। जगत् में मरुत पदार्थ उत्पन्न करके दान दे सकते हैं। इसमें कि बड़ी दया कौनसी है ? अब न्याय का फल प्रत्यक्ष दीयता है। दुःख की व्यपस्या अधिक और न्यूनता में फल को प्रकाशित करने दोनों का इतना ही भेद है कि जो मन में सब को सुख देने दुःख छुटने की इच्छा और क्रिया करना है वह 'दया' और बाह्य के व्यवहार छेदनादि यथायत्न दण्ड देना 'न्याय' कहाना है। दोनों प्रयोजन यह है कि सब को पाप-और दुःखों से मुक्त कर देना।

४—(प्रश्न) ईश्वर साकार है वा निराकार ?

(उत्तर) निराकार, क्योंकि जो साकार होता तो व्यापक जब व्यापक न होता तो सर्वजाति गुण भी ईश्वर में न घट सकें परिमित वस्तु में गुण कर्म स्वभाव भी परिमित रहते हैं तथा क्रुधा, क्रुपा और रोग, दोष, छेदन, भेदन आदि से रहित न रहता। हममें यही निश्चित है कि ईश्वर निराकार है। जो सब को दण्ड दे सके, सान, शान्ति आदि श्रेयसों का बनाने हाथ बूझ सके। क्योंकि जो संयोग में उत्पन्न होता है उसको संयुक्त निराकार बनाना अवश्य होना चाहिये। जो कोई यहां ऐसा कहे कि मैं मेरे हाथ में आप ही आप अपना शरीर बना लिया तो भी क्या हुआ कि शरीर बनने के पूर्व निराकार था। इसीलिये परमात्मा शरीर धारण नहीं करता किन्तु निराकार होने में सब जगत् अणुओं में स्वरूपाकार बना देता है।

५—(प्रश्न) ईश्वर सर्वव्यापक है वा नहीं ?

(उत्तर) है, परन्तु ऐसा नृम सर्वव्यापक मानू शक्य है कि अर्थ

नहीं । किंतु सर्वशक्तिमान् शब्द का यही अर्थ है कि ईश्वर अपने म अर्थात् उत्पत्ति, पालन, प्रलय आदि और सब जीवों के पुण्य पाप की योग्य व्यवस्था करने में किंचित् भी किसी की सहायता नहीं लेता । अर्थात् अपने अनन्त सामर्थ्य से ही सब अपना काम पूर्ण कर लेता है ।

(प्रश्न) हम तो ऐसा मानते हैं कि ईश्वर चाहे सो करे क्योंकि उसके ऊपर दूसरा कोई नहीं है ।

(उत्तर) वह क्या चाहता है ? जो तुम कहो कि सब कुछ चाहता और कर सकता है तो हम तुम से पूछते हैं कि परमेश्वर अपने को मार, अनेक बार बना, नव्य अविद्वान्, चोरी, व्यभिचारादि पाप कर्म कर और दुःखी भी बन सकता है ? जैसा ये काम ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव से विरुद्ध हैं तो जो हारा कहना है कि वह सब कुछ कर सकता है यह कभी नहीं घट सकता । अतिलिखे सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ जो हमने कहा वही ठीक है ।

७—(प्रश्न) परमेश्वर सादि हे वा अनादि ?

(उत्तर) अनादि अर्थात् जिसका आदि कोई कारण वा समय न उसको अनादि कहते हैं इत्यादि सब अर्थ प्रथम समुल्लास में कर चुके हैं, देख लीजिये ।

८—(प्रश्न) परमेश्वर क्या चाहता है ?

(उत्तर) सब की भलाई और सब के लिये सुख चाहता है परन्तु लक्ष्मणता के साथ किसी को बिना पाप किये पराधीन नहीं करता ।

(प्रश्न) परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये वा नहीं ?

(उत्तर) करनी चाहिये ।

(प्रश्न) क्या स्तुति आदि करने से ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति, प्रार्थना करने वाले का पाप छुड़ा देगा ?

(उत्तर) नहीं ।

(प्रश्न) तो फिर स्तुति प्रार्थना क्यों करना ?

(उत्तर) उनके करने का फल अन्य ही है ।

(प्रश्न) क्या है ?

(उत्तर) स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण कर्म स्वभाव से अपने कर्म स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय मिलना, उपासना से परब्रह्म से मिल और उसका साक्षात्कार होना ।

९—(प्रश्न) इनको स्पष्ट करके समझाओ ।

(उत्तर) जैसे—

स पर्यगाच्छुक्रमकार्यमव्रणमस्नाविरथं शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधा
च्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ यजु० ॥ अ० ४० । मं० १ ॥

ईश्वर की स्तुति—वह परमात्मा सब में व्यापक, शीघ्रकारी बलवान्, जो शुद्ध, सर्वज्ञ, सब का अन्तर्यामी, सर्वोपरि विराजमान, स्वयंसिद्ध, परमेश्वर अपनी जीवरूप सनातन अनादि प्रजा को तन विद्या से यथावत् अर्थों का बोध वेद द्वारा कराता है यह सगुण अर्थात् जिस २ गुण से सहित परमेश्वर की स्तुति करना यह सगुण अर्थात् वह कभी शरीर धारण वा जन्म नहीं लेता, जिसमें छिद्र नहीं नाड़ी आदि के बधन में नहीं आता और कभी पापाचरण नहीं जिसमें क्लेश, दुःख, अज्ञान कभी नहीं होता इत्यादि जिस १ गुणों में पृथक् मानकर परमेश्वर की स्तुति करना है वह निर्गुण इसका फल यह है कि जैसे परमेश्वर के गुण हैं वैसे गुण हम अपने भी करना । जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी और जो केवल भांड के समान परमेश्वर के गुणकीर्तन करता जाना अपने चरित्र नहीं सुधारता उसकी स्तुति करना व्यर्थ है ॥

१०—प्रार्थना—यां मेधां देवगुणाः पितरश्चोपासते ।

नया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविने कुरु स्वाहा ॥ १ ॥

यजु० ॥ अ० ३० । मं०

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि । वीर्यमसि वीर्यं मयि
रत्नमसि रत्नं मयि धेहि । ओजोऽस्योजो मयि धेहि ।
रसि सुन्यं मयि धेहि । सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥ २ ॥

यजु० ॥ अ० १९ । मं०

प्रजाग्रतो दूरमुदति दैवं तद् सुतस्य नयैवेति ।

दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥
यत्तु कर्माग्नयपसा मनीषिणा यज्ञे कृण्वन्ति विद्वेषु धीषु
यदेषु यज्ञमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ४ ॥
यत्प्रजानामृतं चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरुत्तरमृतं प्रजाम् ।
यन्मातृ ऋते किंचित् कर्म क्रियेत तन्मे मनः ॥ ५ ॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।

येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ६ ॥

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन्प्रातिष्ठिता रथनाभाविंवारा ।

यस्मिंश्चित्तथं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ७ ॥

पुषाधिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयते ऽभीशुभिर्वाजिन ऽश्व ।

इत्प्रातिष्ठं यदजिरं जविष्ठ तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ८ ॥

यजु० ॥ अ० ३४ । मं० १, २, ३, ४, ५, ६ ॥

हे अग्ने ! अर्थात् प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! आप कृपा से जिस बुद्धि की उपासना विद्वान्, ज्ञानी और योगी लोग करते हैं उसी बुद्धि से युक्त हम को इसी वर्तमान समय में बुद्धिमान् आप कीजिये ॥ १ ॥ आप प्रकाशस्वरूप हैं, कृपा कर मुझ में भी प्रकाश स्थापन कीजिये । आप अनन्त पराक्रमयुक्त हैं इसलिये मुझ में भी कृपाकटाक्ष से पूर्ण पराक्रम धरिये । आप अनन्त बलयुक्त हैं [इसलिये] मुझ में भी बल धारण कीजिये । आप अनन्त सामर्थ्ययुक्त हैं इसलिये मुझ को भी पूर्ण सामर्थ्य दीजिये । आप दुष्ट काम और दुष्टो पर क्रोधकारी हैं । मुझको भी वैसा ही कीजिये । आप निन्दा, स्तुति और स्वअपराधियों का सहन करनेवाले हैं, कृपा से मुझको भी वैसा ही कीजिये ॥ २ ॥ हे दयानिधे ! आप की कृपा से मेरा मन जागते में दूर १ जाता, दिव्यगुणयुक्त रहता है और वही सोते हुए मेरा मन सुषुप्ति को प्राप्त होता वा स्वप्न में दूर १ जाने के समान व्यवहार करता, सब प्रकाशकों का प्रकाशक, एक वह मेरा मन शिवसङ्कल्प अर्थात् अपने और दूसरे प्राणियों के अर्थ कल्याण का सङ्कल्प करनेहारा होवे । किसी की हानि करने की इच्छायुक्त कभी न होवे ॥ ३ ॥ हे सर्वान्तर्यामी ! जिससे कर्म करने हारे धर्मयुक्त विद्वान् लोग यज्ञ और युद्धादि में कर्म करते हैं जो अपूर्व सामर्थ्ययुक्त, पूजनीय और प्रजा के भीतर रहनेवाला है वह मेरा मन धर्म करने की इच्छायुक्त होकर अधर्म को सर्वथा छोड़ देवे ॥ ४ ॥ जो उत्कृष्ट ज्ञान और दूसरे को चितानेहारा, निश्चयात्मकवृत्ति है और जो प्रजाओं में भीतर प्रकाशयुक्त और नाशरहित है, जिसके बिना कोई कुछ भी कर्म नहीं कर सकता वह मेरा मन शुद्ध गुणों की इच्छा करके दुष्ट गुणों से पृथक् रहे ॥ ५ ॥ हे जगदीश्वर ! जिससे सब योगी लोग इन सब भूत, भविष्यत्, वर्तमान व्यवहारों को जानते, जो नाशरहित जीवात्मा को परमात्मा के साथ मिल के सब करा

त्रिकालज्ञ करता है, जिसमें ज्ञान और क्रिया है, पांच और आत्मायुक्त रहता है, उस योगरूप यज्ञ को जिससे यज्ञ मेरा मन योग विज्ञानयुक्त होकर अविद्यादि क्लेशों से मुक्त रहे परम विद्वान् परमेश्वर ! आप की कृपा से मेरे मन में जैसे रूप पुरा में आरा लगे रहते हैं वैसे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद भी प्रतिष्ठित होता है और जिसमें सर्वज्ञ, साक्षी चित्त चेतन विदित होता है वह मेरा मन अविद्या की विद्याप्रिय सदा रहे ॥ ७॥ हे सर्वनियन्ता ईश्वर ! जो मेरा से घोड़ों के समान अथवा घोड़ों के नियन्ता सारथी के तुल्य अत्यन्त ऊपर उपर डुलाता है, जो हृदय में प्रतिष्ठित और अत्यन्त वेगवाला है वह मेरा मन सब इन्द्रियों को रोक के धर्मपथ में सदा चलाया करे ऐसी कृपा मुझपर कीजिये अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव ययोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठा ते नमो उक्लि विधेम ॥ यजु० ॥ अ० ४० । म०

हे सुख के दाता, स्वप्रकाशस्वरूप, सबको जाननेहार आप हमको श्रेष्ठ मार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञानों को प्राप्त कराइये मैं कुटिल पापाचरणरूप मार्ग है उससे मुक्त कीजिये । लोग नम्रतापूर्वक आपकी बहुत सी स्तुति करते हैं कि आप मा नो महान्तमुत मा नोऽर्भकं मान उच्चन्तमुत मा न मा नो यधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीति यजु० ॥ अ० १६ । म०

रे रुद्र ! (दुष्टों को पाप के दुःखस्वरूप फल को देके परमेश्वर !) आप हमारे छोटे बड़े जन, गर्भ, माता, पिता, और वर्ग तथा शरीरों का हनन करने के लिये प्रेरित मत कीजिये, मे इमको चलाइये जिससे हम आपके दण्डनीय न हों । असतो मा सद् गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्माऽमृतं गमयेति ॥ दातपथग्रा ० [१४ । ३ । १ । १०

हे परमगुरो परमात्मन् ! आप हम को असत् मार्ग से सन्मार्ग में प्राप्त कीजिये । अविद्यान्धकार को छुड़ा के विद्यारूप कीजिये । और मृत्यु रोग से मुक्त करके मोक्ष के आनन्दरूप अमृत को

कीजिये । अर्थात् जिस २ दोष वा दुर्गुण से परमेश्वर और अपने को भी पृथक्
गन के परमेश्वर की प्रार्थना की जाती है वह विधि निषेधमुल होने से सगुण,
नेगुण प्राथना । जो मनुष्य जिस बात की प्रार्थना करता है उसको वैसा
ही वर्तमान करना चाहिये अर्थात् जैसे सर्वोत्तम पुद्धि की प्राप्ति के लिये
परमेश्वर की प्रार्थना करे, उसके लिये जितना अपने से प्रयत्न हो सके उतना
किया करे । अर्थात् अपने पुरपार्थ के उपरान्त प्रार्थना करनी योग्य है ।
ऐसी प्रार्थना कभी न करनी चाहिये और न परमेश्वर उसका स्वीकार
करता है कि जैसे हे परमेश्वर ! आप मेरे शत्रुओ का नाश, मुझको सब से
बड़ा, मेरे ही प्रतिष्ठा और मेरे आधीन सब हो जाय इत्यादि, क्योंकि
तब दोनों शत्रु एक दूसरे के नाश के लिये प्रार्थना करे तो क्या परमेश्वर
दोनों का नाश कर दे ? जो कोई कहे कि जिसका प्रेम अधिक उसकी
प्रार्थना सफल हो जावे तब हम कह सकते है कि जिसका प्रेम न्यून हो
उसके शत्रु का भी न्यून नाश होना चाहिये । ऐसी मूर्खता की प्रार्थना
करते २ कोई ऐसी भी प्रार्थना करेगा 'हे परमेश्वर ! आप हमको रोटी बना
कर खिलाइये, मेरे मकान में झाड़ू लगाइये, वस्त्र धो दीजिये और खेती
बाड़ी भी कीजिये ।' इस प्रकार जो परमेश्वर के भरोमे आलसी होकर
बैठे रहते वे महामूर्ख हैं, क्योंकि जो परमेश्वर की पुरपार्थ करने की आज्ञा
है उसको जो कोई तोड़ेगा वह सुख कभी नहीं पावेगा । जैसे—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतथं समा ॥

यजु० ॥ व० ४० । मं २ ॥

परमेश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्य सौ वर्ष पर्यन्त अर्थात् जब तक जीवे तब तक कर्म करता हुआ जीने की इच्छा करे, आलसी कभी न हो। देखो सृष्टि के बीच में जितने प्राणी अथवा अप्राणी हैं वे सब अपने-२ कर्म और फल करते ही रहते हैं। जैसे पिपीलिका आदि सदा प्रयत्न करते, पृथिवी आदि सदा घूमते और वृक्ष आदि सदा घटते बढ़ते रहते हैं वैसे यह दृष्टान्त मनुष्यों को भी ग्रहण करना योग्य है। जैसे पुरोपाय करते हुए पुरुष का सहाय दूसरा भी करता है वैसे धर्म में पुरोपायी पुरुष का सहाय ईश्वर भी करता है। जैसे काम करने वाले पुरुष को श्रुत्य करते हैं और अन्य आलसी को नहीं, देखने की इच्छा करने और नेत्र वाले को दिखाते हैं अन्य को नहीं, इसी प्रकार परमेश्वर भी सब के उपकार करने की प्रार्थना में एक होता है एानिकारक कर्म में नहीं। जो कोई 'गुह मीठा है

त्रिकालज्ञ करता है, जिसमें ज्ञान और क्रिया है, पांच ज्ञानेन्द्रियाँ और आत्मायुक्त रहता है, उस योगरूप यज्ञ को जिससे बढ़ते मेरा मन योग विज्ञानयुक्त होकर अविद्यादि क्लेशों से पृथक् रहें हे परम विद्वान् परमेश्वर ! आप की कृपा से मेरे मन में जैसे राधुरा में आरा लगे रहते हैं वैसे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद भी प्रतिष्ठित होता है और जिसमें सबज्ञ, सर्वव्यापक साक्षी चित्त चेतन विदित होता है वह मेरा मन अविद्या का विद्याप्रिय सदा रहे ॥ ७॥ हे सर्वनियन्ता ईश्वर ! जो मेरा मन से घोड़ों के समान अथवा घोड़ों के नियन्ता सारथी के तुल्य अन्यन्त इधर उधर डुलाता है, जो हृदय में प्रतिष्ठित, और अन्यन्त वेगवाला है वह मेरा मन सब इन्द्रियों को अरु के धर्मपथ में सदा चलाया करे ऐसी कृपा सुक्ष्मपर कीजिये ॥ अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूरिष्ठां ते नम उक्लिं विधेम ॥

यजु० ॥ अ० ४० । मं० ।

हे सुप्त के दाता, स्वप्रकाशस्वरूप, सबको जाननेहारे आप हमको श्रेष्ठ मार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञानों को प्राप्त कराइये और मे कृदिल पापाचरणरूप मार्ग है उससे पृथक् कीजिये । अज्ञानोग्रतापूर्वक आपकी बहुत सी स्तुति करते हैं कि आप हमको पवित्र मा नो मुद्धान्तमुत मा नोऽर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र

यजु० ॥ अ० १६ । मं० ।

वे रुद्र ! (दुष्टों को पाप के दुःखस्वरूप फल को देकर हमारे परमेश्वर !) आप हमारे छोटे बड़े जन, गर्भ, माता, पिता, और प्रिय वर्ग तथा शरीरों का हनन करने के लिये प्रेरित मत कीजिये, ऐसे में हमको बचाइये जिसमें हम आपके दण्डनीय न हों ।

अमनो मा गद् गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्माऽमृतं गमयेति ॥ शतपथब्रा० [१४ । ३ । १ । ३०]

हे परमगुरु परमात्मन ! आप हम को अमृत मार्ग से पृथक् सन्मार्ग में प्राप्त कीजिये । अविद्याप्रसार को मृदा के प्रियारूप सूर्य कीदिव्य । और मृष्ट रोग से पृथक् करके मोक्ष के धानन्दरूप अमृत को

अन्त शुद्ध देश में जाकर, आसन लगा, प्राणायाम कर बाह्य विषयों से
द्वियों को रोक, मन को नाभिप्रदेश में वा हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा
वा पीठ के मध्य हाट में किसी स्थान पर स्थिर कर अपने आत्मा और
मात्मा का विवेचन करके परमात्मा में मग्न हो जाने से सयमी होवे ।
इन साधनों को करता है तब उसका आत्मा और अन्तःकरण पवित्र
कर सत्य से पूर्ण हो जाता है । नित्यप्रति ज्ञान विज्ञान बढ़ाकर
के तक पहुँच जाता है । जो आठ प्रहर में एक घड़ी भर भी इस
कार ध्यान करता है वह सदा उन्नति को प्राप्त हो जाता है । वहाँ
वैजादि गुणों के साथ परमेश्वर की उपासना करनी सगुण और द्वेष,
प, रस, गन्ध, स्पर्शादि गुणों से पृथक् मान अतिसूक्ष्म आत्मा के भीतर
हर व्यापक परमेश्वर में दृढ स्थित होजाना निर्गुणोपासना कहाती है ।

१२-इसका फल-जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से
तेज निवृत्त हो जाता है वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष
स हट कर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदा जीवात्मा के गुण,
र्म, स्वभाव पवित्र हो जाते हैं । इसलिये परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और
पासना अवश्य करनी चाहिये । इससे इसका फल पृथक् होगा । परन्तु
मात्मा का बल इतना घटेगा वह पर्वत के समान टुल टुल होकर होने पर भी
वैरावेगा और सब को सहन कर सकेगा । क्या यह छोटी बात है ?
और जो परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना नहीं करता वह
हान्न और महामूर्ख भी होता है क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत् के
सब पदार्थ जीवों को सुख के लिये दे रखे हैं उसका गुण भूल जाना,
ेश्वर ही को न मानना कृतघ्नता और मूर्खता है ?

१३--(प्रश्न) जब परमेश्वर के श्रोत्र नेत्रादि इन्द्रियाँ नहीं हैं फिर वह
इन्द्रियों का काम कैसे कर सकता है ?

(उत्तर)--

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुर्यं पुरुष पुराणम् ॥

[श्वेताश्वतर उपनिषद् । अ० ३ । मं १९]

यह उपनिषद् का वचन है । परमेश्वर के हाथ नहीं, परन्तु अपनी
शक्तिरूप हाथ से सब का रचन, ग्रहण करता, पग नहीं परन्तु व्यापक
शेने से सब में अधिक वेगवान्, चक्षु का गोलक नहीं परन्तु सब को

कहता है उसको गुड़ प्राप्त वा उसको स्वाद प्राप्त कभी नहीं जो यत्न करता है उसको शीघ्र वा विलम्ब से गुड़ मिल ही जाता

११—अब तीसरी उपासना —

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणे

यह उपनिषद् का वचन है। जिस पुरुष के समाधियोग से मल नष्ट होगये हैं, आत्मस्थ होकर परमात्मा में चित्त 'जिमने' उसको जो परमात्मा के योग का सुख होता है वह वाणी से कहा सकता क्योंकि उस आनन्द को जीवात्मा अपने अन्तःकरण से ग्रहण है। उपासना शब्द का अर्थ समीपस्थ होना है। अष्टांग योग से के समीपस्थ होने और उसको सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी रूप से के लिये जो २ काम करना होता है वह १ सब करना चाहिये,

तत्राऽहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः

[साधनपादे । सू०

इत्यादि सूत्र पातञ्जलयोगशास्त्र के हैं। जो उपासना का आरंभ चाहे उसके लिये यही आरंभ है कि वह किसी से वैर न रखे, सगाई से प्राप्ति करे, सत्य बोले, मिथ्या कभी न बोले, चोरी न करे, सत्य करे, जितेन्द्रिय हो, लगपट न हो और निरभिमान हो, अभिमान कभी न ये पांच प्रकार के यम मिल के उपासना योग का प्रथम अंग है।

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः

योगसू० [साधनपादे । सू०

राग द्वेष छोट भीतर और जलादि में बाहर पवित्र रहे, धर्म पुरुषार्थ करने में लाभ में न प्रसन्नता और हानि में न अप्रसन्नता कर, होकर आत्मस्थ छोड़ सग पुरुषार्थ किया करे, सदा दुःख सुखों का और धर्म ही का अनुष्ठान करे अधर्म का नहीं। साँदा सत्य शब्द पढ़ाये, सगुणों का संग करे, और 'ओम्' इन एक परब्रह्म नाम का अर्थ विचार कर नित्यप्रति जप किया करे। अपने आत्मा को ही आजानुहृत समर्पित कर देवे। इन पांच प्रकार के नियमों को निरालसनायोग का दूसरा अंग कहा जाता है। इसके आगे छः अंग योगशास्त्र में द्वादशविध आध्यात्मिक कर्मों में दिये गये हैं। जय उपासना करना

* अष्टांग योग के उपासना विषय में इनका वर्णन है। सू०

शान्त शुद्ध देश में जाकर, आसन लगा, प्राणायाम कर वायु विषयों से
प्रद्यों को रोक, मन को नाभिप्रदेश में वा हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा
या पीठ के मध्य हाट में किसी स्थान पर स्थिर कर अपने आत्मा और
मात्मा का विवेचन करके परमात्मा में मग्न हो जाने से सयमी होवे ।
इन साधनों को करता है तब उसका आत्मा और अन्तःकरण पवित्र
कर सत्य से पूर्ण हो जाता है । नित्यप्रति ज्ञान विज्ञान बढ़ाकर
कि तक पहुँच जाता है । जो आठ प्रहर में एक घड़ी भर भी इस
कार ध्यान करता है वह सदा उन्नति को प्राप्त हो जाता है । वहाँ
विज्ञादि गुणों के साथ परमेश्वर की उपासना करनी सगुण और द्वेष,
द्वेष, रस, गन्ध, स्पर्शादि गुणों से पृथक् मान अतिसूक्ष्म आत्मा के भीतर
प्रहर व्यापक परमेश्वर में दृढ स्थित होजाना निर्गुणोपासना कहाती है ।

१२-इसका फल-जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से
शीत निवृत्त हो जाता है वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष
दूर होकर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण,
कर्म, स्वभाव पवित्र हो जाते हैं । इसलिये परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और
उपासना अवश्य करनी चाहिये । इससे इसका फल पृथक् होगा । परन्तु
आत्मा का बल इतना बढ़ेगा वह पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी
न घबरावेगा और सब को सहन कर सकेगा । क्या यह छोटी बात है ?
और जो परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना नहीं करता वह
कृतज्ञ और महामूर्ख भी होता है क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत् के
सब पदार्थ जीवों को सुख के लिये दे रखे हैं उसका गुण भूल जाना,
परमेश्वर ही को न मानना कृतघ्नता और मूर्खता है ?

१३--(प्रश्न) जब परमेश्वर के श्रोत्र नेत्रादि इन्द्रियाँ नहीं हैं फिर वह
इन्द्रियों का काम कैसे कर सकता है ?

(उत्तर)---

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुराग्नें पुरुष पुराणम् ॥
[अंताश्चत्तर उपनिषद् । अ० ३ । म १९]

यह उपनिषद् का वचन है । परमेश्वर के हाथ नहीं, परन्तु अपनी
शक्तिरूप हाथ से सब का रचन, ग्रहण करता, पग नहीं परन्तु व्यापक
होने से सब में अधिक वेगवान्, चक्षु का गोलक नहीं परन्तु सब को

कहता है उसको गुड़ प्राप्त वा उसको स्वाद प्राप्त कभी नहीं जो यत्न करता है उसको शीघ्र वा विलम्ब से गुड़ मिल ही जाता

११—अत्र तीसरी उपासना —

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणे

यह उपनिषद् का वचन है। जिस पुरुष के समाधियोग से मल नष्ट होगये हैं, आत्मस्थ होकर परमात्मा में चित्त जिसने उसको जो परमात्मा के योग का सुख होता है वह वाणी से कह सकता क्योंकि उस आनन्द को जीवात्मा अपने अन्तःकरण से है। उपासना शब्द का अर्थ समीपस्थ होना है। अष्टांग योग से के समीपस्थ होने और उसको सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी रूप से के लिये जो २ काम करना होता है वह १ सब करना चाहिये,

तत्राऽहिंसा सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः

[साधनपादे । सू०

इत्यादि सूत्र पातञ्जलयोगशास्त्र के हैं। जो उपासना का आचाहे उसके लिये यही आरंभ है कि वह किसी से वैर न रखे, सब से प्रीति करे, सत्य बोले, मिथ्या कभी न बोले, चोरी न करे, सग करे, जिनेन्द्रिय हो, लम्पट न हो और निरभिमानी हो, अभिमान कभी ये पाच प्रकार के यम मिल के उपासना योग का प्रथम अङ्ग है।

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः

योगसू० [साधनपादे । सू०

गन्ध द्रव्य छोट भीतर और जलादि से बाहर पवित्र रहे, पुरुषार्थ करने से लाभ में न प्रसन्नता और हानि में न अप्रसन्नता के होकर आत्मस्थ छोड़ सदा पुरुषार्थ किया करे, सदा दुःख सुखों का और बर्ष ही का अनुष्ठान करे अधर्म का नहीं। सर्वदा सत्य बातें पढ़ाये, सगुरुओं का संग करे, और 'ओश्म्' इस एक नाम का अर्थ विचार कर नियमप्रति जप किया करे। अपने आत्मा में आज्ञानुष्ठान समर्पित कर देवे। इन पाच प्रकार के नियमों को दशमनायोग या दसरा यत्न कहता है। इसके आगे छः अङ्ग आसनादिवाक्यभूमिका में देण लेंगे। जत्र उपासना करना

* आसनादिवाक्यभूमिका के उपासना विषय में इनका वर्णन है। सू०

न्ति शुद्ध देश में जाकर, आसन लगा, प्राणायाम कर चात विषयों से
द्वयों को रोक, मन को नाभिप्रदेश में वा हृदय, वण्ट, नेत्र, शिखा
वा पीठ के मध्य हाट में किसी स्थान पर स्थिर कर अपने आत्मा और
मात्मा का विवेचन करके परमात्मा में मग्न हो जाने से सयमी होवे ।
इन साधनों को करता है तब उसका आत्मा और अन्तःकरण पवित्र
कर सत्य से पूर्ण हो जाता है । नित्यप्रति ज्ञान विज्ञान बढ़ाकर
के तक पहुँच जाता है । जो आठ प्रहर में एक घड़ी भर भी इस
पर ध्यान करता है वह सदा उन्नति को प्राप्त हो जाता है । यहाँ
ज्ञादि गुणों के साथ परमेश्वर की उपासना करनी सगुण और द्वेष,
प, रस, गन्ध, स्पर्शादि गुणों से पृथक् मान अतिसूक्ष्म आत्मा के भीतर
हर व्यापक परमेश्वर में दृढ स्थित होजाना निर्गुणोपासना कहाती है ।

१२-इसका फल-जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से
ते निवृत्त हो जाता है वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष
स दृढ़ कर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण,
र्म, स्वभाव पवित्र हो जाते हैं । इसलिये परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और
पासना अवश्य करनी चाहिये । इससे इसका फल पृथक् होगा । परन्तु
मात्मा का बल इतना बढेगा वह पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी
। वैराग्य और सब को सहन कर सकेगा । क्या यह छोटी बात है ?
और जो परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना नहीं करता वह
लुब्ध और महामूर्ख भी होता है क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत् के
सब पदार्थ जीवों को सुख के लिये दे रखे हैं उसका गुण भूल जाना,
ेश्वर ही को न मानना कुतर्कता और मूर्खता है ?

१३--(प्रश्न) जब परमेश्वर के श्रोत्र नेत्रादि इन्द्रियों नहीं हैं फिर वह
इन्द्रियों का काम कैसे कर सकता है ?

(उत्तर)---

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरयं पुरुष पुराणम् ॥
[धैताश्वतर उपनिषद् । अ० ३ । मं १९]

यह उपनिषद् का वचन है । परमेश्वर के हाथ नहीं, परन्तु अपनी
नक्तिरूप हाथ से सब का रचन, ग्रहण करता, पग नहीं परन्तु व्यापक
होने से सब को वेगवान्, चक्षु का गोलक नहीं परन्तु सब को

कहता है उसको गुड प्राप्त वा उसको स्वाद प्राप्त कभी नहीं होना जो यत्न करता है उसको शीघ्र वा विलम्ब से गुड मिल ही जाता है।

११—अब तीसरी उपासना —

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणेन ॥

यह उपनिषद् का वचन है। जिस पुरुष के समाधियोग से मल नष्ट होगये हैं, आत्मस्थ होकर परमात्मा में चित्त जिसने उसको जो परमात्मा के योग का सुख होता है वह वाणी से कहा सकता क्योंकि उस आनन्द को जीवात्मा अपने अन्तःकरण से ग्रहण है। उपासना शब्द का अर्थ समीपस्थ होना है। अष्टांग योग से के समीपस्थ होने और उसको सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी रूप से के लिये जो २ काम करना होता है वह २ सब करना चाहिये,

तत्राऽहिंसा सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः

[साधनपादे । सू०

इत्यादि सूत्र पातञ्जलयोगशास्त्र के हैं। जो उपासना का आरम्भ चाहें उसके लिये यही आरम्भ है कि वह किसी से वैर न रखे, सत्य में प्रान्ति करे, सत्य बोले, मिथ्या कभी न बोले, चोरी न करे, सत्य करे, जितेन्द्रिय हो, लग्नष्ट न हो और निरभिमानी हो, अभिमान कभी न ये पांच प्रकार के यम मिल के उपामना योग का प्रथम अङ्ग है।

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥

योगसू० [साधनपादे । सू० ३

राग द्वेष लोभ भीतर और जलादि से बाहर पवित्र रहें, पुण्यार्थ करने से लाभ में न प्रसङ्गता और हानि में न अप्रसङ्गता करें, होकर आलस्य छोड़ सदा पुण्यार्थ किया करे, सदा दुःख सुखों का और वर्म ही का अनुष्ठान करे अधर्म का नहीं। सदा सत्य वाचों पर पदार्थों, सपुण्यों का गण करे, और 'ओ३म्' उस एक परमात्मा नाम का अर्थ विचार कर नियमप्रति जप किया करे। अपने आत्मा को ही अनुष्ठानानुष्ठान समर्पित कर देवे। इन पांच प्रकार के नियमों को मिल कर उपामनायोग का दूसरा अङ्ग कहना है। इसके आगे छः अङ्ग योगशास्त्र में दर्शाया है। जय उपासना करना चाहें

* श्रुति में उपामना नियम में इनका वर्णन है। सू० ३

अन्तः शुद्ध देश में जाकर, आसन लगा, प्राणायाम कर व्यास विषयों से द्रव्यों को रोक, मन को नाभिप्रदेश में वा हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा वा पीठ के मध्य हाट में किसी स्थान पर स्थिर कर अपने आत्मा और मात्मा का विवेचन करके परमात्मा में सन्न हो जाने से सज्जमी होवे । इन साधनों को करता है तब उसका आत्मा और अन्तःकरण पवित्र कर सत्य से पूर्ण हो जाता है । नित्यप्रति ज्ञान विज्ञान बढ़ाकर के तक पहुँच जाता है । जो आठ प्रहर में एक घड़ी भर भी इस धार ध्यान करता है वह सदा उन्नति को प्राप्त हो जाता है । वहाँ वैज्ञानिक गुणों के साथ परमेश्वर की उपासना करनी सगुण और, द्वेष, प, रस, गन्ध, स्पर्शादि गुणों से पृथक् मान अतिसूक्ष्म आत्मा के भीतर हर व्यापक परमेश्वर में दृढ स्थित होजाना निगुणोपासना कहाती है ।

१२-इसका फल-जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से तित निवृत्त हो जाता है वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष ख दृष्ट कर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हो जाते हैं । इसलिये परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिये । इससे इसका फल पृथक् होगा । परन्तु आत्मा का बल इतना बढ़ेगा वह पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी धैर्यवर्धेगा और सब को सहन कर सकेगा । क्या यह छोटी बात है ? और जो परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना नहीं करता वह ह्वन्धन और महामूर्ख भी होता है क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत् के सब पदार्थ जीवों को सुख के लिये दे रखे हैं उसका गुण भूल जाना, ईश्वर ही को न मानना कृतघ्नता और मूर्खता है ?

१३--(प्रश्न) जय परमेश्वर के श्रोत्र नेत्रादि इन्द्रियाँ नहीं हैं फिर वह इन्द्रियों का काम कैसे कर सकता है ?

(उत्तर) —

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति चेत्ता तमाहुराद्यं पुरुष पुराणम् ॥
[धेताश्चतुर उपनिषद् । अ० ३ । मं १९]

यह उपनिषद् का वचन है । परमेश्वर के हाथ नहीं, परन्तु अपनी शक्तिरूप हाथ से सब का रचन, ग्रहण करता, पग नहीं परन्तु व्यापक होने से सब शक्ति वेगवान्, चक्षु का गोलक नहीं परन्तु सब

यथावत् देखता, श्रोत्र नहीं तथापि सबकी बातें सुनता, नहीं परन्तु सब जगत् को जानता है और उसको अवधि वाला कोई भी नहीं। उसी को सनातन, सब में श्रेष्ठ, सब में पूरे से 'पुरुष' कहते हैं। वह इन्द्रियों और अन्तःकरण से [होनेवाले], अपने सामर्थ्य से करता है।

१४—(प्रश्न) उसको बहुत से मनुष्य निष्क्रिय और निर्गुण कहते (उत्तर)—

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न । यद्येवम् ।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानवत्क्रिया च
[श्वेताश्वतर उपनिषद् । अ० ६ । मं०]

यह उपनिषद् का वचन है। परमात्मा से कोई तद्रूप कार्य और करण अर्थात् साधकतम दूसरा अपेक्षित नहीं। न कोई उसके तुल्य न अधिक है। सर्वोत्तम शक्ति अर्थात् जिसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त और अनन्त क्रिया है वह स्वाभाविक अर्थात् सहज उसमें सुनी जाती। जो परमेश्वर निष्क्रिय होता तो जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय न सकता। इसलिये वह विभु तथापि चेतन होने से उसमें क्रिया भी है।

(प्रश्न) जब वह क्रिया करता होगा तब अन्तवाली क्रिया होगी या अनन्त ?

(उत्तर) जितने देश काल में क्रिया करनी उचित समझता है उतने ही काल में क्रिया करता है। न अधिक, न न्यून, क्योंकि वह विद्वान् है।

१५—(प्रश्न) परमेश्वर अपना अन्त जानता है या नहीं ?

(उत्तर) परमात्मा पूर्ण जानी है क्योंकि ज्ञान उस को कहें जिसमें ज्यों का त्यों जाना जाय अर्थात् जो पदार्थ जिस प्रकार का है उसी प्रकार जानने का नाम ज्ञान है। जब परमेश्वर अनन्त है तो अपने अनन्त ही जानना जान, उसमें विरुद्ध अज्ञान अर्थात् अनन्त को न और मान्य को अनन्त जानना भ्रम कहा जाता है। 'यथार्थदर्शनं ज्ञानमिति' निष्कला भासा गुण कम स्वभाव हो उस पदार्थ को वैसा ही जानने का ही ज्ञान और विज्ञान कहना है, [इसमें] उलटा अज्ञान। इसलिये

कृत्स्नकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।

योग सू० [समाधिपादे । सू० २१]

जो अविद्यादि अज्ञान, दुःख, अहंकार, द्वेष, अनिष्ट और मिथ्या कर्म

माँ की वासना से रहित है वह सब जीवों से विशेष 'ईश्वर' कहा जाता है ।

१६—(प्रश्न) ईश्वरासिद्धेः ॥ १ ॥ [सा० अ० १ । सू० १२]
माणाभावान्न तत्सिद्धिः ॥ २ ॥ [सा० अ० ५ । सू० १०]

अव्यवधानाभावान्नानुमानम् ॥ ३ ॥ सायं सू० [अ० ५ । सू० ११]

प्रत्यक्ष से घट सकते ईश्वर की सिद्धि नहीं होती ॥ १ ॥ क्योंकि

व उसकी सिद्धि में प्रत्यक्ष ही नहीं तो अनुमानादि प्रमाण नहीं हो

सकता ॥ १ ॥ और व्याप्ति सम्बन्ध न होने से अनुमान भी नहीं हो

सकता । पुनः प्रत्यक्षानुमान के न होने से शब्द प्रमाण आदि भी नहीं

हो सकते । इस कारण ईश्वर की सिद्धि नहीं हो सकती ॥ ३ ॥

(उत्तर) यहाँ ईश्वर की सिद्धि में प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है । और

ईश्वर जगत् का उपादान कारण है । और पुरुष से विलक्षण अर्थात्

वस्तु पूर्ण होने से परमात्मा का नाम पुरुष, और शरीर में शयन करने से

विवेक का भी नाम पुरुष है, क्योंकि इसी प्रकरण में कहा है—

प्रधानशक्तियोगाच्चेत्सद्भापत्तिः ॥ १ ॥

सत्तामात्राच्चेत्सर्वैश्वर्यम् ॥ २ ॥ सांख्य सू०—

श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य ॥ ३ ॥ [अ० ५ । सू० ८, ९, ११]

यदि पुरुष को प्रधान शक्ति का योग हो तो पुरुष में सद्भापत्ति हो

जाय अर्थात् जैसे प्रकृति सूक्ष्म से मिलकर कार्यरूप में सद्भापत्ति हुई है वैसे

परमेश्वर भी स्थूल हो जाय । इसलिये परमेश्वर जगत् का उपादान

कारण नहीं किन्तु निमित्त कारण है ॥ १ ॥ जो चेतन से जगत् की

सद्भापत्ति हो तो जैसा परमेश्वर समग्रैश्वर्ययुक्त है वैसे सत्सार में भी सर्वै-

श्वर्य का योग होना चाहिये, तो नहीं है । इसलिये परमेश्वर जगत् का

उपादान कारण नहीं, किन्तु निमित्त कारण है ॥ २ ॥ क्योंकि उपनिषद्

प्रधान ही को जगत् का उपादान कारण कहाती है ॥ ३ ॥ जैसे—

जामेकां लोहितशुक्लकृष्णां यद्भिः प्रजाः सृजमानां स्वरूपाः ॥

यह द्रवेताश्चतर उपनिषद् [अ० ४ । म० ५] का वचन है । जो

स्मरहित सत्त्व, रज, तमोगुणरूप प्रकृति है वही स्वरूपाकार से दहत

प्रकार हो जाती है अर्थात् प्रकृति परिणामिनी होने से अवस्थान्तर

जाती है और पुरुष अपरिणामी होने से वह अवस्थान्तर होकर दृष्टरं

* 'स्वरूपाः' इति श्राव. पाठ ।

रूप में कभी नहीं प्राप्त होता, सदा कूटस्थ निर्विकार रहता है। जो कोई कपिलाचार्य को अनीश्वरवादी कहता है जानो वह वादी है, कपिलाचार्य नहीं। तथा मीमांसा का धर्म धर्मों से वैशेषिक और न्याय भी 'आत्म' शब्द से अनीश्वरवादी नहीं सर्वज्ञत्वादि धर्मयुक्त और 'अतन्नि सर्वत्र व्याप्नोतीत्यात्मा' के व्यापक और सर्वज्ञादि धर्मयुक्त सब जीवों का आत्मा है उससे वैशेषिक और न्याय ईश्वर मानते हैं।

१७—(प्रश्न) ईश्वर अवतार लेता है वा नहीं ?

(उत्तर) नहीं, क्योंकि 'अज एकपात्' [३४. १५३] 'त गाच्छुक्रमकायम्' [३०. १८] ये यजुर्वेद के वचन हैं। इत्यादि में [सिद्ध है कि] परमेश्वर जन्म नहीं लेता।

(प्रश्न)—यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्
भ० गी० [अ० ४। श्लो० १]

श्रीकृष्णजी कहते हैं कि जब २ धर्म का लोप होता है तब तब मैं धारण करता हूँ।

(उत्तर) यह बात वेदविरुद्ध होने से प्रमाण नहीं। और ऐसा सकना है कि श्रीकृष्ण धर्मात्मा और धर्म की रक्षा करना चाहते थे। युग २ में जन्म लेके श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश कर तो नहीं, क्योंकि "परोपकाराय सतां विभूतयः" परोपकार के लिये ग्यों का तन, मन, धन होता है। तथापि इसमें श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं हैं।

(प्रश्न) जो ऐसा है तो संसार में चौबीस ईश्वर के अवतार और इनको अवतार क्यों मानते हैं ?

(उत्तर) वेदार्थ के न जानने, सम्प्रदायी लोगों के बहुमाने और आप भविष्यत् होने में भ्रमजाल में फँस के ऐसी २ अप्रामाणिक और मानते हैं।

(प्रश्न) जो ईश्वर अवतार न लेवे तो कंस, रावणादि दुष्टों को कैसे मरे ?

(उत्तर) प्रथम जो जन्मा है वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त है जो ईश्वर अवतार नहीं धारण किये बिना जगत् की उन्नति, न्याय काय है अपने सम्माने कंस और रावणादि एक कीटी के

१। वह सर्वव्यापक होने से कंस रावणादि के शरीरों में भी परिपूर्ण रहा है, जब चाहे उसी समय मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता है। २। इस अनन्त गुण, कर्म, स्वाभावयुक्त परमात्मा को एक क्षुद्र जीव के होने के लिये जन्म मरणयुक्त कहने वाले को मूर्खपन से अन्य कुछ विशेष मा मिल सकती है ? और जो कोई वहे कि भक्तजनो के उद्धार करने लिये जन्म लेता है तो भी सत्य नहीं, क्योंकि जो भक्तजन ईश्वर की शानुकूल चलते हैं उनके उद्धार करने का पूरा सामर्थ्य ईश्वर में है। क्या र के पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि जगत् का बनाने, धारण और प्रलय करने कर्मों से कंस रावणादि का वध और गोवर्धनादि पर्वतों का उठाना कर्म हैं ? जो कोई इस सृष्टि में परमेश्वर के कर्मों का विचार करे तो भूतो न भविष्यति' ईश्वर के सदृश कोई न है, न होगा। और क से भी ईश्वर का जन्म सिद्ध नहीं होता। जैसे कोई अनन्त आकाश कहे कि गर्भ में आया वा मूठी में धर लिया, ऐसा कहना भी सच हो सकता क्योंकि आकाश अनन्त और सब में व्यापक है। इससे आकाश बाहर आता न भीतर जाता, वैसे ही अनन्त, सर्वव्यापक आत्मा के होने से उसका आना जाना कभी सिद्ध नहीं हो सकता। आ वा आना वहां हो सकता है जहां न हो। क्या परमेश्वर गर्भ में एक नहीं था जो कहीं से आया ? और बाहर नहीं था जो भीतर से आया ? ऐसा ईश्वर के विषय में कहना और मानना विद्याहीनों के सिवाय क कह और मान सकेगा। इसलिये परमेश्वर का जाना आना, जन्म मरण कभी सिद्ध नहीं हो सकता, इसलिये 'ईसा' आदि भी ईश्वर के तार नहीं, ऐसा समझ लेना। क्योंकि राग, द्वेष, क्षुधा, तृप्ता, भय, क्रोध, दुःख, सुख, जन्म, मरण आदि गुणयुक्त होने से मनुष्य थे।

१८—(प्रश्न) ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है या नहीं ? (उत्तर) नहीं, क्योंकि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट हो और सब मनुष्य महापापी हो जाये। क्योंकि क्षमा की बात सुन ही उनको पाप करने में निर्भयता और उत्साह हो जाये। जैसे राजा अपने को क्षमा करदे तो वे उत्साहपूर्वक अधिक २ घंटे २ पाप करें क्योंकि अपना अपराध क्षमा करदेगा और उनको भी भरोसा हो जाय कि मैं से हम साथ जोड़ने आदि चेष्टा कर अपने अपराध छुड़ा लेंगे और अपराध नहीं करते वे भी अपराध करने से न डरकर पाप करने में

मै ही सेव्य-सेवक, आधाराधेय, स्वामि-भृत्य, राजा-प्रजा । आदि भी सम्यन्ध है ।

(प्रश्न) जो पृथक् २ हैं तो—

ज्ञान ब्रह्म ॥ १ ॥ अहं ब्रह्मास्मि ॥ २ ॥

तत्त्वमसि ॥ ३ ॥ अयमात्मा ब्रह्म ॥ ४ ॥

इन महावाक्यों का अर्थ क्या है ?

(.) ये वेदवाक्य ही नहीं हैं किन्तु ब्राह्मणग्रन्थों के वचन हैं और महावाक्य कहीं सत्यशास्त्रों में नहीं लिखा । अर्थ—(अहम्) । अर्थात् ब्रह्मस्य (अस्मि) हूँ । यहा तात्स्थ्योपाधि है । जैसे 'तेशन्ति' मञ्जान पुकारते हैं । मञ्जान जड़ है, उनमें पुकारने का ही, इसलिये मञ्जस्य मनुष्य पुकारते हैं । इसी प्रकार यहा भी कोई कहे कि ब्रह्मस्य सच पदार्थ है पुनः जीव को ब्रह्मस्य कहने विशेष है ? इसका उत्तर यह है कि सच पदार्थ ब्रह्मस्य है परन्तु धर्मयुक्त निकटस्थ जीव है वैसा अन्य नहीं और जीव को ब्रह्म का र मुक्ति में वह ब्रह्म के साक्षात्सम्यन्ध में रहता है । इसलिये जीव के साथ तान्त्र्य व तन्सहचरितोपाधि अर्थात् ब्रह्म का सहकारी । इससे जीव और ब्रह्म एक नहीं । जैसे कोई किसी से कहे कि मैं हूँ एक हूँ अर्थात् अविरोधी है, वैसे जो जीव समाधिस्थ परमेश्वर में होकर निमग्न होता है वह कह सकता है कि मैं और ब्रह्म एक अर्थात् धी, एक अवकाशस्थ हैं । जो जीव परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के उ अपने गुण कर्म, स्वभाव करता है वही साधर्म्य से ब्रह्म के साथ कह सकता है ।

(प्रश्न) अच्छा तो इसका अर्थ कैसा करोगे ? (तत्) ब्रह्म (त्वं) व (असि) है । हे जीव ! (त्वम्) तू (तत्) वह ब्रह्म (असि) है । (उत्तर) तुम 'तत्' शब्द से क्या छेते हो ? 'ब्रह्म' ।

अप्रपद की अनुवृत्ति कहा से लाये ?

— सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म ॥

य वाक्य से ।

— उन्दीय उपनिषद् का दर्शन भी नहीं किया । जो घर में 'ब्रह्म' शब्द का पाठ ही नहीं है, ऐसा श उ क्यों बढते ?

तो —

परमात्मा का विज्ञान गुणद्वारा होता है ।

२१—(प्रश्न) परमेश्वर त्रिकालदर्शी है इससे भविष्य जानता है । वह जैसा निश्चय करेगा जीव वैसा ही करेगा, स्वतन्त्र नहीं । और जीव को ईश्वर दण्ड भी नहीं दे सकता ईश्वर ने अपने ज्ञान से निश्चित किया है वैसा ही जीव करता है ।

(उत्तर) ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहना मूर्खता का काम है, जो होकर न रहे वह भूतकाल और न होके होवे यह भविष्य है । क्या ईश्वर को कोई ज्ञान होके नहीं रहता तथा न होके इसलिये परमेश्वर का ज्ञान सदा एकरस, अखण्डित वर्तमान भूत, भविष्यत् जीवों के लिये है । हाँ ! जीवों के कर्म की अपेक्षा लज्जता ईश्वर में है, स्वतन्त्र नहीं । जैसा स्वतन्त्रता से जीव करता ही सर्वज्ञता से ईश्वर जानता है और जैसा ईश्वर जानता है करता है अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्तमान के ज्ञान और फल देने स्वतन्त्र और जीव किञ्चित् वर्तमान और कर्म करने में स्वतन्त्र है का अनादि ज्ञान होने से जैसा कर्म का ज्ञान है वैसा ही दण्ड देने ज्ञान अनादि है । दोनों ज्ञान उसके सत्य हैं । क्या कर्मज्ञान दण्डज्ञान मिथ्या कभी हो सकता है ? इसलिये इसमें कोई दो

२२—(प्रश्न) जीव शरीर में भिन्न विभु है वा परिच्छिन्न

(उत्तर) परिच्छिन्न, जो विभु होता तो जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, जन्म, संयोग, वियोग, जाना, आना कभी नहीं हो सकता । भूत का स्वरूप अल्पज्ञ, अल्प अर्थात् सूक्ष्म है और परमेश्वर अतीव सूक्ष्मतर, अनन्त, सर्वज्ञ और सर्वव्यापक स्वरूप है । इसीलिये परमेश्वर का व्याप्य व्यापक सम्बन्ध है ।

(प्रश्न) जिस जगह में एक वस्तु होती है उस जगह में वस्तु नहीं रह सकती । इसलिये जीव और ईश्वर का संयोग संभव नहीं है, व्याप्य व्यापक नहीं ।

(उत्तर) यद्यपि नियम समान आकारवाले पदार्थों में घट अममानाकार में नहीं । जैसे लोहा ग्यूल, अग्नि सूक्ष्म होता है, इस में लोहे में विद्युत् अग्नि व्यापक होकर एक ही अवकाश में दोनों दैव्य जीव परमेश्वर में ग्यूल और परमेश्वर जीव से सूक्ष्म होने में व्यापक और जीव व्याप्य है । जैसे यह व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध

का हे वैसे ही सेव्य-सेवक, आधाराधेय, स्वामि-भृत्य, राजा-प्रजा पिता पुत्र आदि भी सम्यन्ध है ।

२३—(प्रश्न) जो पृथक् २ है तो—

ब्रह्मान ब्रह्म ॥ १ ॥ अहं ब्रह्मास्मि ॥ २ ॥

तत्त्वमसि ॥ ३ ॥ अयमात्मा ब्रह्म ॥ ४ ॥

वेदों के इन महावाक्यों का अर्थ क्या है ?

(उत्तर) ये वेदवाक्य ही नहीं हैं किन्तु ब्राह्मणग्रन्थों के वचन हैं और वे नाम महावाक्य कहीं सत्यशास्त्रों में नहीं लिखा । अर्थ—(अहम्) ब्रह्म) अर्थात् ब्रह्मस्य (अस्मि) हैं । यहां तात्त्व्योपाधि है । जैसे 'ब्रह्म कोशनि' मज्जान पुकारते हैं । मज्जान जड़ है, उनमें पुकारने का मत्त्व नहीं, इसलिये मज्जस्य मनुष्य पुकारते हैं । इसी प्रकार यहां भी मत्त्व । कोई कहे कि ब्रह्मस्य सब पदार्थ है पुन जीव को ब्रह्मस्य कहने क्या विशेष है ? इसका उत्तर यह है कि सब पदार्थ ब्रह्मस्य है परन्तु साधर्म्ययुक्त निकटस्थ जीव है वैसा अन्य नहीं और जीव को ब्रह्म का ल और मुक्ति में वह ब्रह्म के साक्षात्सम्यन्ध में रहता है । इसलिये जीव ब्रह्म के साथ तान्म्य्य व तत्सहचरितोपाधि अर्थात् ब्रह्म का सहकारी है । इससे जीव और ब्रह्म एक नहीं । जैसे कोई किसी से कहे कि मैं और यह एक हैं अर्थात् अविरोधी है, वैसे जो जीव समाधिस्थ परमेश्वर में प्रबद्ध होकर निमग्न होता है वह कह सकता है कि मैं और ब्रह्म एक अर्थात् विरोधी, एक अवकाशस्थ हैं । जो जीव परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सुकूल अपने गुण, कर्म, स्वभाव करता है वही साधर्म्य में ब्रह्म के साथ कहा कह सकता है ।

(प्रश्न) अच्छा तो इसका अर्थ कैसा करोगे ? (तत्) ब्रह्म (त्व) जीव (अस्मि) है । हे जीव ! (त्वम्) तू (तत्) वह ब्रह्म (अस्मि) है । 'ब्रह्म' ।

(उत्तर) तुम 'तत्' शब्द से क्या लेते हो ?

ब्रह्मपद की अनुवृत्ति कहां से लाये ?

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म ॥

इस पूर्व वाक्य से ।

तुमने इस छान्दोग्य उपनिषद् का दर्शन भी नहीं किया । जो वह खी होती तो यहां 'ब्रह्म' शब्द का पाठ ही नहीं है, ऐसा झूठ क्यों कहते ? केन्तु छान्दोग्य में तो —

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् ।

[छां० प्र० ६ । सू० १ । ५]

ऐसा पाठ है, वहां 'ब्रह्म' शब्द नहीं ।

(प्रश्न) तो आप तच्छब्द से क्या लेते हैं ?

(उत्तर)—

स य एषोणिमा ॥ एतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं
आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति [छां० प्र० ६ । सू० ८ म०]

वह परमात्मा जानने योग्य है । जो वह अत्यन्त सूक्ष्म और इ
जगत् और जीव का आत्मा है । वही सत्यस्वरूप और अपना
ही है । हे श्वेतकेतो प्रिय पुत्र !

तदात्मकस्तदन्तर्यामी त्वमसि ॥

उस परमात्मा अन्तर्यामी से तू युक्त है । यही अर्थ अर्थात्
अविरुद्ध है, क्योंकि—

य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनान्तरो यमात्मा न वेद यस्यात्मा
आत्मनान्तरो यमयानि स त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥

यह वृद्धारण्यक का वचन है । महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी स्त्री
से कहते हैं कि हे मैत्रयि ! जो परमेश्वर आत्मा अर्थात् जीव में
और जीवात्मा में भिन्न है, जिसको मृद जीवात्मा नहीं जानता कि
परमात्मा मेरे में व्यापक है, जिस परमेश्वर का जीवात्मा शरीर अर्थात्
शरीर में जीव रहता है वैसे ही जीव में परमेश्वर व्यापक है, जीव
भिन्न रहकर जीव के पाप पुण्यो का साक्षी होकर उनके फल जीवों
के नियम में रमता है, वही अविनाशी स्वरूप तेरा भी
आत्मा अर्थात् तेरे भीतर व्यापक है, उसको तू जान । क्या कोई
जानों का अन्यथा अर्थ कर सकता है ? "आयमात्मा ब्रह्म"
सम्पत्ति दशा में जब योगी को परमेश्वर प्रत्यक्ष होता है तब वह
कि यह तो मेरे में व्यापक है वही ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है । इसलिये जो
है अविनाशी जीव ब्रह्म की पूजना करते हैं वे वेदान्तशास्त्र को नहीं जानते ।

(प्रश्न)

त आत्मना जीवेनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि ॥

[छां० प्र० ६ । सू० ३ । म०]

अथ तदेवानुप्राविशन् ॥ नैतिगीय० [प्रमाण० अनु० १]

ग्रह से भिन्न होने से जीव और परमेश्वर एक नहीं क्योंकि इनका स्वरूप भी (परमेश्वर अति सूक्ष्म और जीव उससे कुछ स्थूल होने से) भिन्न है ।

(प्रश्न)—अथोदरमन्तरं कुरुते । अथ तस्य भयं भवति ॥*
 द्वितीयाह भयं भवति ॥ †

यह बृहदारण्यक का वचन है । जो ग्रह और जीव से थोड़ा भी भेद करता है उसको भय प्राप्त होता है क्योंकि दूसरे ही से भय होता है ।

(उत्तर) इसका अर्थ यह नहीं है किन्तु जो जीव परमेश्वर का निषेध वा किसी एक देश काल में परिच्छिन्न परमात्मा को माने वा उसकी आज्ञा और गुण, कर्म, स्वभाव से विरुद्ध होवे अथवा किसी दूसरे मनुष्य से वैर करे उसको भय प्राप्त होता है क्योंकि द्वितीय बुद्धि अर्थात् ईश्वर से मुक्त न हो कुछ सम्बन्ध नहीं तथा किसी मनुष्य से कहे कि तुझको मैं कुछ नहीं समझता, तू मेरा कुछ भी नहीं कर सकता, वा किसी की हानि करता और दुःख देता जाय तो उसको उनसे भय होता है । और सब प्रकार का अविरोध हो तो वे एक कहाते हैं, जैसा ससार में कहाते हैं कि देवदत्त, यज्ञदत्त और विष्णुमित्र एक हैं अर्थात् अविरुद्ध हैं । विरोध न रहने से सुख और विरोध से दुःख प्राप्त होता है ।

२७—(प्रश्न) ग्रह और जीव की सदा एकता अनेकता रहती है । वा कभी दोनों मिलके एक भी होते हैं वा नहीं ।

(उत्तर) अभी इसके पूर्व कुछ उत्तर दे दिया है परन्तु साधर्म्य अन्वयभाव से एकता होती है । जैसे आकाश से मूर्त द्रव्य जटत्व होने से और कभी पृथक् न रहने से एकता और अकाश के विभु, सूक्ष्म अरूप, अनन्त आदि गुण और मूर्त के परिच्छिन्न, दृश्यत्व आदि वैधर्म्य से भेद होता है अर्थात् जैसे पृथिव्यादि द्रव्य आकाश में भिन्न कभी नहीं रहते क्योंकि अन्वय अर्थात् अवकाश के बिना मूर्त द्रव्य कभी नहीं रह सकता और व्यतिरेक अर्थात् स्वरूप से भिन्न होने से पृथक्ता है वैसे ग्रह के व्यापक होने से जीव और पृथिवी आदि द्रव्य उसमें अलग नहीं रहते और स्वरूप से एक भी नहीं होते । जैसे घर के बनाने के पूर्व भिन्न २ देश में मट्टी लकड़ी और लोहा आदि पदार्थ आकाश ही में रहते हैं, जब घर बन गया तब भी आकाश में है और जब घर नष्ट हो गया अर्थात् उस घर के सब अवयव भिन्न २ देश में प्राप्त होगये तब भी आकाश में हैं अर्थात् तीन

‘प्रवर्तकं प्रकाशकमपि विशेषणं भवतीति’ विशेषण पदक
 प्रकाशक भी होता है। तो समझो कि अद्वैत विशेषण ब्रह्म का है।
 मे व्यावर्तक धर्म यह है कि अद्वैत वस्तु अर्थात् जो अनेक जीव के
 तत्त्व है उनमें ब्रह्म का पृथक् करना है और विशेषण का प्रकाशक
 यह है कि ब्रह्म में एक होने की प्रवृत्ति करता है। जैसे ‘अस्मिन्
 द्वितीयो घनाढ्यो देवदत्तः । अस्यां सेनायामद्वितीयः
 वीरा विक्रमसिंहः’ । किमी ने किमी से कहा कि इस नगर में
 घनाढ्य देवदत्त और इस सेना में अद्वितीय शूरवीर विक्रमसिंह हैं।
 क्या सिद्ध हुआ कि देवदत्त के सदृश इस नगर में दूसरा घनाढ्य
 इस सेना में विक्रमसिंह के समान दूसरा शूरवीर नहीं है, न्यून है।
 और शूरवीर आदि जड़ पदार्थ, पञ्चादि प्राणि और वृक्षादि भी हैं।
 निषेध नहीं हो सकता। वैसे ही ब्रह्म के सदृश जीव वा प्राणि
 किन्तु न्यून तो है। इसमें यह सिद्ध हुआ कि ब्रह्म सदा एक है और जीव
 प्राणित्य नान्य अनेक हैं। उनमें भिन्न कर ब्रह्म के एकत्व को सिद्ध
 हाग अद्वैत वा अद्वितीय विशेषण है। इससे जीव वा प्राणि का
 कारणरूप जगत् का अभाव और निषेध नहीं हो सकता, किन्तु ये सब
 परन्तु ब्रह्म के लुप्त नहीं। इसमें न अद्वैतसिद्धि और न द्वैतसिद्धि
 प्राप्ति होती है। घबराहट में मत पड़ो, सोचो और समझो।

२६—(प्रश्न) ब्रह्म के सत्, चित्, आनन्द और जीव के अन्ति, नी
 प्रियम्प में एकता होती है। फिर क्यों गण्डन करते हो ?

(उत्तर) मिश्रित साधर्म्य मिलने में एकता नहीं हो सकती।
 शूरवीर जड़, द्रव्य है वैसे जड़ और अग्नि आदि भी जड़ और द्रव्य
 इतने में एकता नहीं होती। इनमें वैधर्म्य भेदकारक अर्थात्
 जैसे जड़, द्रव्य, कठिन आदि गुण शूरवीर और रस, द्रव्य
 वैसे जड़ और रस रूप द्रव्य आदि धर्म अग्नि के होने में एकता
 समुच्च और कीड़ी प्राण में देखते, सुग में घाते और पग में
 मर्त्य समुच्च वर आहूति से पग और कीड़ी की आहूति
 कि निश्चय से एकता नहीं होती, वैसे परमेश्वर के सत्त्व
 सत्त्व, रज, तम, मिश्रित और व्यावस्थित जीव में और
 व्यावस्थित, अज्ञान, अज्ञान, अज्ञान सब आन्ति और परिचित

ग्रह से भिन्न होने से जीव और परमेश्वर एक नहीं क्योंकि इनका स्वरूप भी (परमेश्वर अति सूक्ष्म और जीव उससे कुछ स्थूल होने से) भिन्न है ।

(प्रश्न)—अथोदरमन्तरं कुरुते । अथ तस्य भयं भवति ॥*

द्वितीयाहं भयं भवति ॥ †

यह बृहदारण्यक का वचन है । जो ग्रह और जीव में थोड़ा भी भेद करता है उसको भय प्राप्त होता है क्योंकि दूसरे ही से भय होता है ।

(उत्तर) इसका अर्थ यह नहीं है किन्तु जो जीव परमेश्वर का निषेध या किसी एक देश काल में परिच्छिन्न परमात्मा को माने वा उसकी आज्ञा और गुण, कर्म, स्वभाव में विरुद्ध होवे अथवा किसी दूसरे मनुष्य से वैर करे उसको भय प्राप्त होता है क्योंकि द्वितीय बुद्धि अर्थात् ईश्वर से मुक्त से कुछ सम्बन्ध नहीं तथा किसी मनुष्य से कहे कि तुझको मैं कुछ नहीं समझता, तू मेरा कुछ भी नहीं कर सकता, वा किसी की हानि करता और दुःख देना जाय तो उसको उनसे भय होता है । और सब प्रकार का अवि-रोध हो तो वे एक कहाते हैं, जैसा संसार में कहते हैं कि देवदत्त, यज्ञदत्त और विष्णुमित्र एक हैं अर्थात् अवितर्क हैं । विरोध न रहने से सुख और विरोध से दुःख प्राप्त होता है ।

२७—(प्रश्न) ग्रह और जीव की सदा एकता अनेकता रहती है । वा कभी दोनों मिलके एक भी होते हैं वा नहीं ।

(उत्तर) अभी इसके पूर्व कुछ उत्तर दे दिया है परन्तु साधर्म्य अन्यभाव से एकता होती है । जैसे आकाश से मूर्त द्रव्य जडत्व होने से और कभी पृथक् न रहने से एकता और अकाश के विभु, सूक्ष्म अरूप, अनन्त आदि गुण और मूर्त के परिच्छिन्न, दृश्यत्व आदि वैधर्म्य से भेद होता है अर्थात् जैसे पृथिव्यादि द्रव्य आकाश में भिन्न कभी नहीं रहते क्योंकि अन्यय अर्थात् अवकाश के विना मूर्त द्रव्य कभी नहीं रह सकता और प्यतिरेक अर्थात् स्वरूप से भिन्न होने से पृथक्ता है वैसे ग्रह वे व्यापक होने से जीव और पृथिवी आदि द्रव्य उससे अलग नहीं रहते और स्वरूप से एक भी नहीं होते । जैसे घर के बनाने के पूर्व भिन्न २ देश में मट्टी लकड़ी और लोहा आदि पदार्थ आकाश ही में रहते हैं, जब घर बन गया तब भी आकाश में है और जब वह नष्ट हो गया अर्थात् उस घर के सब अवयव भिन्न २ देश में प्राप्त होगये तब भी आकाश में हैं अर्थात् तीन

काल में आकाश से भिन्न नहीं हो सकते और स्वरूप से भिन्न होने कभी एक थे, हैं और होंगे, इसी प्रकार जीव तथा सब ससार के परमेश्वर से व्याप्य होने से परमात्मा से तीनों कालों में भिन्न और भिन्न होने से एक कभी नहीं होते । आजकल के वेदान्तियों की दृष्टि पुरुष के समान अन्वय की ओर पड़ के व्यतिरेकभाव से छूट विच्छेद हो गई है । कोई भी ऐसा द्रव्य नहीं है कि जिसमें सगुणनिगुणता, अन्वय रेक, साधर्म्य वैधर्म्य और * विशेषण भाव न हो ।

२०—(प्रश्न) परमेश्वर सगुण है वा निगुण ?

(उत्तर) दोनों प्रकार है ।

(प्रश्न) भला एक घर में दो तलवार कभी रह सकती है ? एक में सगुणता और निगुणता कैसे रह सकती हैं ?

(उत्तर) जैसे जड़ के रूपादि गुण है और चेतन के ज्ञानादि गुण जड़ में नहीं हैं वैसे चेतन में इच्छादि गुण है और रूपादि जड़ के गुण हैं । इसलिये “यद्गुणैस्सह वर्त्तमानं तत् सगुणम् । गुणैर्भूयैर्गन्तं पृथग्भूत तन्निगुणम्” । जो गुणों से सहित वह ‘सगुण’ और गुणों से रहित वह ‘निगुण’ कहा जाता है । अपने २ स्वाभाविक गुणों से सहित और दूसरे विरोधी के गुणों से रहित होने से सब पदार्थ सगुण और निगुण हैं । कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है कि जिसमें केवल निगुणता या सगुणता हो किन्तु एक ही से सगुणता निगुणता सदा रहती है । जैसे परमेश्वर अपने अनन्त ज्ञान, बलादि गुणों से सहित होने से ‘सगुण’ और जड़ के तथा द्वेषादि जीव के गुणों से पृथक् होने से ‘निगुण’ कहा जाता है ।

(प्रश्न) संसार में निराकार को निगुण और साकार को सगुण कहा है अर्थात् जब परमेश्वर जन्म नहीं लेता तब निगुण और जब भगवान् लेता तब सगुण कहा जाता है ।

(उत्तर) यह कल्पना केवल अज्ञानी और अविद्वानों की है । निगुणता नहीं होती ये पशु के समान तथा बर्तावा करते हैं । जैसे मनुष्य मनुष्य अण्डवण्ड वक्ता है वैसे ही अविद्वानों के कहे वा श्रुत के अनुसार समझना चाहिये ।

२१—(प्रश्न) परमेश्वर रागी है वा विरक्त ?

(उत्तर) दोनों में नहीं । क्योंकि राग अपने से भिन्न दूसरा पदार्थ है * निराकार निगुण भाव ।

मेता है, तो परमेश्वर से कोई पदार्थ ग्रहण उत्तम नहीं। इसलिये उसमें राग का सम्भव नहीं। और जो प्राप्त को छोड़ देवे उसको 'विरक्त' कहते हैं। ईश्वर व्यापक होने से किसी पदार्थ को छोड़ ही नहीं सकता इसलिये विरक्त भी नहीं।

३०—(प्रश्न) ईश्वर में इच्छा है या नहीं ?

(उत्तर) वैसी इच्छा नहीं। क्योंकि इच्छा भी अप्राप्त, उत्तम और जिसकी प्राप्ति से सुख विशेष होवे [उसकी होती है] * तो ईश्वर में इच्छा हो सके, न उसमें कोई अप्राप्त पदार्थ, न कोई उसमें उत्तम और पूर्ण सुखयुक्त होने से सुख की अभिलाषा भी नहीं है, इसलिये ईश्वर में इच्छा का तो सम्भव नहीं, किन्तु 'ईक्षण' अर्थात् सब प्रकार की विद्या का दर्शन और सब सृष्टि का करना कहाता है वह 'ईक्षण' है। इत्यादि संक्षिप्त विषयों से ही सज्जन लोग बहुत विस्तरण कर लेंगे।

३१—अत्र संक्षेप से ईश्वर का विषय लिखकर वेद का विषय लिखते हैं।

यस्माद्वचो अपातन्त यजुर्व्यस्मादपाकपन् ।

सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम् ।

स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥

अथर्व० कां० १० । प्रपा० २३ । अनु० ४ [सू० ७] म० २० ॥

जिस परमात्मा से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद प्रकाशित हुए हैं वह कौनसा देव है ?

इसका (उत्तर), जो सब को उत्पन्न करके धारण कर रहा है वह परमात्मा है।

स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ।

यजु० अ० ४० । म० ८ ॥

जो स्वयम्भू, सर्वव्यापक, शुद्ध, सनातन, निराकार परमेश्वर है वह सनातन जीवरूप प्रजा के कल्याणार्थ यथावत् रीतिपूर्वक वेद द्वारा सब विद्याओं का उपदेश करता है।

३२—(प्रश्न) परमेश्वर को आप निराकार मानते हैं या साकार ?

(उत्तर) निराकार मानते हैं।

(प्रश्न) जब निराकार है तो वेदविद्या का उपदेश विना मुख के

* [यदि ईश्वर को कोई पदार्थ अप्राप्त, उससे उत्तम या विशेष सुख देने वाला हो] तो (स०)

वर्णोच्चारण कैसे होसका होगा ? क्योंकि वर्णों के उच्चारण में स्थान जिह्वा का प्रयत्न अवश्य होना चाहिये ।

(उत्तर) परमेश्वर के सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक होने से को अपनी व्याप्ति से वेदविद्या के उपदेश करने में कुछ भी मुश्किल अपेक्षा नहीं है, क्योंकि मुख जिह्वा से वर्णोच्चारण अपने से भिन्न होने के लिये किया जाता है, कुछ अपने लिये नहीं । क्योंकि मुख व्यापार करे बिना ही मन में अनेक व्यवहारों का विचार और होता रहता है । कानों को अंगुलियों से मूढ़ के देखो, सुनो कि जिह्वा तात्वादि स्थानों के कैसे २ शब्द हो रहे हैं, वैसे जीवों को मीरूप से उपदेश किया है । किन्तु केवल दूसरों को समझाने के उच्चारण करने की आवश्यकता है । जब परमेश्वर निराकार, सर्वव्यापक तो अपनी अखिल वेदविद्या का उपदेश जीवस्थ स्वरूप में जीवान् प्रकाशित कर देता है । फिर वह मनुष्य अपने मुख से उच्चारण करके को सुनाता है इसलिये ईश्वर में यह दोष नहीं आ सकता ।

३३--(प्रश्न) किनके आत्मा में कब वेदों का प्रकाश किया ?

(उत्तर) — अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः ।
शत० [११।४।१]

प्रथम सृष्टि की आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य अद्विग इत ऋषियों के आत्मा में एक २ वेद का प्रकाश किया ।

(प्रश्न) —

यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रद्विणोति तस्मै ।
[श्वेताश्व० अ० १।१।१]

या उपनिषद् का वचन है । इस वचन में ब्रह्माजी के हृदय में वेदों का उद्देश किया है । फिर अग्नादि ऋषियों के आत्मा में क्यों प्रकाश

(उत्तर) ब्रह्मा के आत्मा में अग्नि आदि के द्वारा स्थापित वेदों ! मनु ने क्या लिखा है—

श्रियायुरविभ्यस्तु प्रयं ब्रह्म सनातनम् ।

उत्तर । यजुर्मिद्वथर्भृग्यजुःसामतदाणम् ॥ [मनु० १।१।१]

इस परमात्मा ने आदि सृष्टि में मनुष्यों को उद्देश करके अग्नि अर्चक ऋषियों के द्वारा चारों वेद ब्रह्मा को प्राप्त करे उस ब्रह्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य और अद्विग से ब्रह्मा

दूसरों को पढ़ाया भी, इसलिये अद्यावधि उस २ मन्त्र के साथ का नाम स्मरणार्थ लिखा आता है। जो कोई ऋषियो को मन्त्रकर्ता हैं उनकी मिथ्यावादी समझें। वे तो मन्त्रों के अर्थप्रकाशक हैं।

३७—(प्रश्न) वेद किन ग्रन्थों का नाम है ?

(उत्तर) ऋक्, यजु., साम और अथर्व मन्त्रसंहिताओं का, अन्य का नहीं।

(प्रश्न)—मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् ॥

इत्यादि कात्यायनादिकृत प्रविज्ञा सूत्रादि का अर्थ क्या करोगे ?

(उत्तर) देखो, संहिता पुस्तक के आरम्भ अध्याय की समाप्ति में वेद सनातन से लिखा आता है और ब्राह्मण पुस्तक के आरम्भ वा य की समाप्ति में कही नहीं लिखा। और निरुक्त में—

पि निगमो भवति। इति ब्राह्मणम् ॥ [नि० अ० ५। ख० ३, ४]

ब्राह्मणानि च तद्विषयाणि ॥ [अष्टाध्या० ४। २। १६]

यह पाणिनीय सूत्र है। इससे भी स्पष्ट विदित होता है कि वेद मन्त्र-और ब्राह्मण व्याख्याभाग है। इसमें जो विशेष देखना चाहें तो मेरी “ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका” में देख लीजिये। वहां अनेकश प्रमाणों रूढ़ होने से यह कात्यायन का वचन नहीं हो सकता ऐसा ही किया गया है। क्योंकि जो माने तो वेद सनातन कभी नहीं हो। क्योंकि ब्राह्मण पुस्तकों में बहुत से ऋषि महर्षि और राजादि के नाम लिखे हैं। और इतिहास जिसका हो उसके जन्म के पश्चात् जाता है। वह ग्रन्थ भी उसके जन्म के पश्चात् होता है। वेदों में का इतिहास नहीं, किन्तु जिस १ शब्द से विद्या का बोध होवे २ शब्द का प्रयोग किया है। किसी विशेष मनुष्य की सज्ञा या कथा का प्रसंग वेदों में नहीं।

—(प्रश्न) वेदों की कितनी शाखा है ? (उत्तर) ग्यारहसौ सत्ताईस।

अ) शाखा क्या कहाती हैं ? (उत्तर) व्याख्यान को ‘शाखा’ कहते हैं।

अ) ससार में विद्वान् वेद के अवयवभूत विभागों को शाखा मानते हैं ?

(उत्तर) तनिकसा विचार करो तो ठीक, क्योंकि जितनी शाखा हैं आश्वलायन आदि ऋषियों के नाम से प्रसिद्ध हैं और मन्त्रसंहिता धर के नाम से प्रसिद्ध है। जैसा चारों वेदों को परमेश्वरकृत मानते हैं आश्वलायनी आदि शाखाओं को उस २ ऋषिकृत मानते हैं और शाखाओं में मन्त्रों की प्रतीक धर के व्याख्या करते हैं, जैसे तैत्तिरीय

होते और जब उनको कोई शिक्षक मिल जाय तो विद्वान् अब भी किसी से पढे बिना कोई भी विद्वान् नहीं होता। परमात्मा उन आदिसृष्टि के ऋषियों को वेदविद्या न पढाता न पढाते तो सब लोग अविद्वान् ही रह जाते। जैसे किसीके से एकान्त देश, अविद्वानों वा पशुओं के संग में रख देवे तो हे वैसा ही हो जायगा। इसका दृष्टान्त जङ्गली भील आदि। आर्यावर्त्त देश से शिक्षा नहीं गई थी तबतक मिश्र, यूनान देश आदिस्थ मनुष्यों में कुछ भी विद्या नहीं हुई थी और कुलुम्बस आदि पुरुष अमेरिका में जबतक नहीं गये थे सहस्रों, लाखों, करोड़ों वर्षों से मूर्ख अर्थात् विद्याहीन थे, पुनः के पाने से विद्वान् होगये हैं, वैसे ही परमात्मा से सृष्टि में विद्या शिक्षा की प्राप्ति से उत्तरोत्तर काल में विद्वान् होते स पूर्वैषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ [योग० समा०।

जैसे वर्त्तमान समय में हम लोग अध्यापकों से पढ ही होते हैं वैसे परमेश्वर सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न हुए अग्नि आदि का गुरु अर्थात् पढ़ानेवाला हे क्योंकि जैसे जीव सुषुप्ति और ज्ञानरहित होजाते हैं वैसा परमेश्वर नहीं होता। उसका ज्ञान हमलिये यह निश्चित जानना चाहिये कि बिना निमित्त से, निद्रा कभी नहीं होता।

३६—(प्रश्न) वेद संस्कृतभाषा में प्रकाशित हुए और वे अग्नि उस [संस्कृतभाषा को नहीं जानते थे फिर वेदों का अर्थ उन्होंने

(उत्तर) परमेश्वर ने जनाया और घर्मात्मा योगी जब २ जिस २ के अर्थ की जानने की इच्छा करके परमेश्वर के स्वरूप में समाविस्थित हुए तब २ परमात्मन्त्रों के अर्थ जनाये। जब बटुओं के आत्माओं में तब ऋषि मुनियों ने वह अर्थ और ऋषि मुनियों के बनाये। उनका नाम ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्म जो वेद उसका होने से 'ब्राह्मण' नाम हुआ। और —

ऋषयः (मन्त्रदृष्टयः) मन्त्रान्स्तरग्राहुः ॥ [विष्० १

जिस २ मन्त्रार्थ का दर्शन जिस २ ऋषि को हुआ जिस के पढने उस मन्त्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित

दूसरों को पढ़ाया भी, उसलिये अद्यावधि उस २ मन्त्र के साथ का नाम स्मरणार्थ लिखा जाता है। जो कोई ऋषियों को मन्त्रकर्त्ता हैं उनको मिथ्यावादी समझें। वे तो मन्त्रों के अर्थप्रकाशक हैं।

२७—(प्रश्न) वेद किन ग्रन्थों का नाम है ?

(उत्तर) ऋक्, यजुः, साम और अथर्व मन्त्रसंहिताओं का, अन्य का नहीं।

(प्रश्न)—मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् ॥

इत्यादि कात्यायनादिकृत प्रनिज्ञा सूत्रादि का अर्थ क्या करोगे ?

(उत्तर) देखो, संहिता पुस्तक के आरम्भ अध्याय की समाप्ति में शब्द सनातन से लिखा जाता है और ब्राह्मण पुस्तक के आरम्भ काय की समाप्ति में कही नहीं लिखा। और निरुक्त में—

पि निगमो भवति। इति ब्राह्मणम् ॥ [नि० अ० ५। ख० ३, ४]

ब्राह्मणानि च तद्विषयाणि ॥ [अष्टाध्या० ४। २। ११]

यह पाणिनीय सूत्र है। इससे भी स्पष्ट विदित होता है कि वेद मन्त्र-और ब्राह्मण व्याख्याभाग है। इनमें जो विशेष देखना चाहें तो मेरी

“ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका” में देख लीजिये। वहाँ अनेकश प्रमाणों से यह कात्यायन का वचन नहीं हो सकता ऐसा ही

किया गया है। क्योंकि जो माने तो वेद सनातन कभी नहीं हो

। क्योंकि ब्राह्मण पुस्तकों में बहुत से ऋषि महर्षि और राजादि के

नाम लिखे हैं। और इतिहास जिसका हो उसके जन्म के पश्चात्

जाता है। वह ग्रन्थ भी उसके जन्म के पश्चात् होता है। वेदों में

इतिहास नहीं, किन्तु जिस शब्द से विद्या का बोध होवे

२ शब्द का प्रयोग किया है। किसी विशेष मनुष्य की सत्ता या

शक्ति का प्रसंग वेदों में नहीं।

—(प्रश्न) वेदों की किननी शाखा है ? (उत्तर) ग्यारहवाँ सत्ताईस।

(प्रश्न) शाखा क्या कहाती है ? (उत्तर) व्याख्यान को ‘शाखा’ कहते हैं।

(प्रश्न) सत्ताईस में विद्वान् वेद के अवयवभूत विभागों को शाखा मानते हैं ?

(उत्तर) तनिकसा विचार करो तो ठीक, क्योंकि जितनी शाखा हैं

आश्वलायन आदि ऋषियों के नाम से प्रसिद्ध हैं और मन्त्रसंहिता

श्वर के नाम से प्रसिद्ध है। जैसा चारों वेदों को परमेश्वरवृत्त मानते

हैं आश्वलायनी आदि शाखाओं को उस २ ऋषिभूत मानते हैं और

शाखाओं में मंत्रों की प्रतीक धर के व्याख्या करते हैं, जैसे नैतिरीय

शाखा मे 'इपे त्वोर्जे त्वेति' इत्यादि प्रतीकों धर के और वेदसंहिताओं में किसी की प्रतीक नहीं धरी। इसलिये चारो वेद मूल वृक्ष और आश्वलायनादि सब शाखा ऋषि परमेश्वरकृत नहीं। जो इस विषय की विशेष व्याख्या देखकर 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में देख लेवें। जैसे माता पिता पर कृपादृष्टि कर उन्नति चाहते हैं वैसे ही परमात्मा ने सब कृपा करके वेदों को प्रकाशित किया है, जिससे मनुष्य भ्रमजाल से छूटकर विद्या विज्ञानरूप सूर्य को प्राप्त होकर रहें और विद्या तथा सुखो की वृद्धि करते जायें।

३९—(प्रश्न) वेद नित्य है वा अनित्य ?

(उत्तर) नित्य हैं, क्योंकि परमेश्वर के नित्य होने से उसके गुण भी नित्य हैं। जो नित्य पदार्थ है उनके गुण, कर्म, और अनित्य होते हैं।

(प्रश्न) क्या यह पुस्तक भी नित्य है ?

(उत्तर) नहीं, क्योंकि पुस्तक तो पत्र और स्याही का नित्य कैसा हो सकता है ? किन्तु जो शब्द अर्थ और सम्बन्ध है वे-

(प्रश्न) ईश्वर ने उन ऋषियों को ज्ञान दिया होगा और वे उन लोगों ने वेद बना लिये होंगे ?

(उत्तर) ज्ञान ज्ञेय के बिना नहीं होता, गायत्र्यादि और उदात्ताऽनुदात्तादि स्वर के ज्ञानपूर्वक गायत्र्यादि छन्दों के करने में सर्वज्ञ के बिना किसी का सामर्थ्य नहीं है कि इस ज्ञानयुक्त शास्त्र बना सकें, हां, वेद को पढ़ने के पश्चात् व्याकरण, छन्द आदि ग्रंथ ऋषि मुनियों ने विद्याओं के प्रकाश के लिये परमात्मा वेदों का प्रकाश न करे तो कोई कुछ न बना सके। वेद परमेश्वरकृत हैं। इन्हीं के अनुसार सब लोगों को चलना कोई किसी ने पढ़े कि तुम्हारा क्या मन है तो यही उत्तर देना मन वेद, अर्थात् जो कुछ वेदों में कहा है हम उसको मानते हैं।

अब हमारे आगे मृष्टि के विषय में लिखेंगे। यह वेदों और वेदविषय में व्याख्यान किया है ॥ ७ ॥

इति श्रीमदयानन्दमरम्भतीर्थामिश्रों सत्यार्थप्रकाशे

इत्येवमपि सप्तमः समुदासः सम्पूर्णः ॥ ७ ॥

अथ अष्टमसमुत्थासारम्भः

अथ सृष्ट्युत्पत्तिस्थितिप्रलयविषयान्

व्याख्यास्यामः

इदं विसृष्टिर्यत आ ब्रूव यदि वा दधे यदि वा न ।
अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्तसो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥१॥

आसीत्तमसा गुढमग्रे प्रकेन सलिलं सर्वमा इदम् ।
अथेनाभवापिहितं यदासीत्तपस्तन्महिना जायतैकम् ॥२॥

क्र० मं० १० । सू० १२९ । मं० १ ॥

एतद्गर्भः समवत्तन्तात्रे भुतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
आधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

क्र० मं० १० । सू० १२१ । मं० ० । ३ ॥

एवेदथं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् ।
मृतत्वस्येशानो यदन्नैनातिरोहति ॥४॥ यजु० अ० ३१ । मं० १५

वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति ।

यन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिष्वासस्व तद् ब्रह्म ॥ ५ ॥

तैत्तिरीयोपनि० [ऋग्वह्नी । अनु० १]

हे (ब्रह्म) मनुष्य । जिससे यह विविध सृष्टि प्रकाशित हुई है, जो
और प्रलय करता है, जो इस जगत् का स्वामी, जिस व्यापक में
सब जगत् उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय को प्राप्त होता है सो परमात्मा है,
जो तू जान और दूसरे को सृष्टिवर्ता मत मान ॥ १ ॥ यह सब
सृष्टि के पहिले अन्धकार से आवृत, रात्रिरूप में जानने के अयोग्य,
अज्ञरूप सब जगत् तथा तुच्छ अर्थात् अनन्त परमेश्वर के सन्मुख
दृष्टी, आच्छादित था, पश्चात् परमेश्वर ने अपने सामर्थ्य से कारणरूप
स्वरूप कर दिया ॥ २ ॥ हे मनुष्यो ! जो सब सूर्यादि नेत्रस्वी
का आधार और जो यह जगत् हुआ है और होगा उसका एक
ही पति परमात्मा इस जगत् की उत्पत्ति के पूर्व विद्यमान था, और
पृथिवी से लेके सूर्यपर्यन्त जगत् को उत्पन्न किया है उस परमात्मा
की प्रेम से भक्ति किया करें ॥ ३ ॥ हे मनुष्यो ! जो सब में पूरा
और जो नाश रहित कारण और जीव वा स्वामी, जो पृथिव्यादि

जड़ और जीव से अतिरिक्त है वही पुरुष इस सब भूत, वर्तमानस्थ जगत् को बनाने वाला है ॥ ४ ॥ जिस परमात्मा से ये सब पृथिव्यादि भूत उत्पन्न होते हैं, जिससे जीव और को प्राप्त होते हैं वह ब्रह्म है, उसके जानने की इच्छा करो ॥ ५ ॥
जन्माद्यस्य यतः ॥ शारीरिक १ सू० अ० १ । पा० १ ।

जिससे इस जगत् का जन्म, स्थिति और प्रलय होता जानने योग्य है ।

२—(प्रश्न) यह जगत् परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है वा (उत्तर) निमित्त कारण परमात्मा से उत्पन्न हुआ है, उपादान कारण प्रकृति है ।

(प्रश्न) क्या प्रकृति परमेश्वर ने उत्पन्न नहीं की ?

(उत्तर) नहीं, वह अनादि है ।

(प्रश्न) आदि किसको कहते और कितने पदार्थ अनादि हैं ?

(उत्तर) ईश्वर, जीव और जगत् का कारण ये तीन

(प्रश्न) इसमें क्या प्रमाण है ?

(उत्तर) —

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिपस्वयते ।
तयोऽन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि ।

क० मं० १ । सू० १६४ ।

शाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ २ ॥ यजुः० अ० ४० ।

(द्वा) जो ब्रह्म और जीव दोनों (सुपर्णा) चेतनता और गुणों से मन्त्र (सयुजा) व्याप्य व्यापक भाव से सयुक्त, परस्पर मिश्रतायुक्त, मनातन अनादि हैं और (समाभ्यः) (वृक्षम) अनादि मूलरूप कारण और शापरूप कार्ययुक्त तो मूल होकर प्रलय में छिन्न भिन्न हो जाता है यह पदार्थ, इन तीनों के गुण, कर्म और स्वभाव भी अनादि हैं । रूप में ये एक जो जीव है वह इस वृक्षरूप ससार में — (शाश्वती) अनेक प्रकार भोगता है और दूसरा परमात्मा (अनश्नन्) न भोगता हुआ चारों ओर अनादि अक्षय प्रकाशमान हो रहा है । जीव में ईश्वर, ईश्वर में जीव

प्रकृति भिन्नस्वरूप तीनों अनादि हैं ॥ १ ॥ (शाश्वती) अर्थात्
[दि सनातन जीवरूप प्रजा के लिये वेद द्वारा परमात्मा ने सब
प्राओं का बोध किया है ॥ २ ॥

जामेकां लोहितशुक्लकृष्णां वर्हीः प्रजाः सृजमानां स्वरूपाः ।
जो हेको उपमाणोऽनुशेते जहात्येना भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥
[श्वेताश्वतरोपनिषदि । अ० ४ । म० ५]

यह उपनिषद् का वचन है । प्रकृति, जीव और परमात्मा तीनों अज
रात् जिनका जन्म कभी नहीं होता और न कभी ये जन्म लेते अर्थात्
तीन सब जगत् के कारण हैं । इनका कारण कोई नहीं । इस अनादि
प्रकृति का भोग अनादि जीव करता हुआ फैसता है और उसमें परमा-
त्मा न फैसता और न उसका भोग करता है । ईश्वर और जीव का
क्षण ईश्वर विषय में कह आये । अब प्रकृति का लक्षण लिखते हैं ।

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान्
हृतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं पञ्च-
तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः ॥

साङ्ख्यसू० [अ० १ । सू० ११]

(सत्त्व) शुद्ध, (रज) मध्य, (तम) जादय अर्थात् जडता तीन
तु मिलकर जो एक संघात है उसका नाम 'प्रकृति' है । उससे महत्तत्त्व
है, उससे अहङ्कार, उसमें पाच तन्मात्रा सूक्ष्मभूत और दश इन्द्रियां
या ग्यारहवां मन, पांच तन्मात्राओं से पृथिव्यादि पांच भूत, ये चौबीस
और पचीसवा पुरुष अर्थात् जीव और परमेश्वर है । इनमें से प्रकृति
विकारिणी और महत्तत्त्व अहङ्कार तथा पाच सूक्ष्म-भूत प्रकृति का कार्य
और इन्द्रिया, मन तथा स्थूलभूतों का कारण है । पुरुष न किसी की
प्रकृति, उपादान कारण और न किसी का कार्य है ।

३—(प्रश्न) —

नदेव सोम्येदमग्र आसीत् ॥ १ ॥ [तन्त्रो० । प्र० ६ । खं० २]
प्रसङ्गा इदमग्र आसीत् ॥ २ ॥ [तिसिरीयोपनि० ब्रह्मानन्दब० अनु० ७]
मात्मैवेदमग्र आसीत् ॥ ३ ॥ [बृह० अ० १ । प्रा० ४ । म० १]
यस्य वा इदमग्र आसीत् ॥ ४ ॥ गत० [११ । १ । ११ । १]

ये उपनिषदों के वचन हैं । हे श्रोतव्ये ! यह जगत् सृष्टि के पूर्व,

१. 'स्वरूपा' ।

सत् । १ । असत् । ११ । आत्मा । ३ । और ब्रह्मस्वरूप था । ११ ।
तदैक्षत बहुः स्यां प्रजायेयेति । सोऽकामयत
प्रजायेयेति ॥ तैत्तिरीयोपनि० ब्रह्मानन्दवल्ली । अनु० १ ॥

वही परमात्मा अपनी इच्छा से बहुरूप हो गया है ॥

सर्व खलिवद् ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ॥

यह भी उपनिषद् का वचन है । जो यह जगत् है वह सब
ब्रह्म है, उसमें दूसरे नाना प्रकार के पदार्थ कुछ भी नहीं किन्तु सब

(उत्तर) क्यों इन वचनों का अनर्थ करते हो ? क्योंकि उन्होंने

[पचमेव खलु] सोम्यान्नेन शुक्लेनापो

स्सोम्य शुक्लेन तेजोमूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुक्ले
तमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः
तिष्ठाः ।

छान्दोग्य उपनि० प्र० १ । सं० ८ । मं०

हे दवेतकेतो ! अन्नरूप पृथिवी कार्य से जलरूप मूलकारण को
कार्य रूप जल से तेजोरूप मूल और तेजोरूप कार्य से मद् रूप
नित्य प्रकृति है उसको जान । यही सत्यस्वरूप प्रकृति सब जगत्
घर और स्थिति का स्थान है । यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व असत्
और जीवात्मा ब्रह्म और प्रकृति में लीन होकर वर्तमान था, अनाद्य
और जो (सर्व खलु०) यह वचन ऐसा है जैसा कि 'कहीं की ईंट
रोड़ा भानमती ने कुंडवा जोड़ा' ऐसी लीला का है क्योंकि —

सर्वं खलिवद् ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत ॥

छान्दोग्य० [प्र० ३ । ख० १४ । मं० १]

नेह नानास्ति किञ्चन ॥ (कठोपनि० अ० २ । वल्ली ४ ।

जैसे शरीर के अन्न जवनक शरीर के साथ रहते हैं तब
और शरीर होने से निरुद्ध हो जाते हैं वैसे ही प्रकरणस्य वाक्
और प्रकरण से अलग करने पर किसी अन्य के साथ जोड़ने से
हो जाते हैं । सुना, इसका अर्थ यह है । हे जीव ! तू ब्रह्म की
वत्, जिस वत् से जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और जीवन होता है,
खनने और धारण से यह सब जगत् विद्यमान हुआ है
सब कुछ है, इसमें कोई दूसरे की उपामना न करनी । इस
अनन्त ब्रह्म में नाना वस्तुओं का भेद नहीं है
दूर ० स्वप्न में परमेश्वर के आधार में स्थित है ।

—(प्रश्न) जगत् के कारण कितने होते हैं ?

उत्तर) तीन, एक निमित्त, दूसरा उपादान, तीसरा साधारण ।
कारण उसको कहते हैं कि जिसके बनाने से कुछ बने, न बनाने
बने । आप स्वयं बने नहीं, दूसरे को प्रकारान्तर बना देवे । दूसरा
न कारण उसको कहते हैं जिसके बिना कुछ न बने, वही अवस्थान्तर
के बने और बिगड़े भी । तीसरा साधारण कारण उसको कहते हैं
बनाने में साधन और साधारण निमित्त हो । निमित्त कारण
जैसे हैं । एक सब सृष्टि को कारण से बनाने, धारने और प्रलय
तथा सब की व्यवस्था रखनेवाला मुख्य निमित्त कारण परमात्मा ।

—परमेश्वर की सृष्टि में से पदार्थों को लेकर अनेकविध कार्यान्तर
वाला साधारण निमित्त कारण जीव । उपादान कारण प्रकृति,
जिसको सब ससार के बनाने की सामग्री कहते हैं, वह जड़
आप से आप न बन और न बिगड़ सकती है किन्तु दूसरे के
से बनती और बिगड़ने से बिगड़ती है । कहीं २ जड़ के निमित्त से
भी बन और बिगड़ भी जाता है, जैसे परमेश्वर के रचित बीज पृथिवी
रने और जल पाने से वृक्षाकार हो जाते हैं और अग्नि आदि जड़
से बिगड़ भी जाते हैं परन्तु इनका नियमपूर्वक बनना वा बिग-
परमेश्वर और जीव के आधीन है । जब कोई वस्तु बनाई जाती है
जिन २ साधनों से अर्थात् ज्ञान, दर्शन, बल, हाथ और नाना प्रकार
धन और दिशा, काल और आकाश साधारण कारण जैसे घड़े को
वाला कुम्हार निमित्त, मट्टी उपादान और दण्ड, चक्र आदि सामान्य
दिशा, काल, आकाश, प्रकाश, और, हाथ, ज्ञान, प्रिया आदि
साधारण और निमित्त कारण भी होते हैं । इन तीन कारणों के
कोई भी वस्तु नहीं बन सकती और न बिगड़ सकती है ।

५--(प्रश्न) नवीन वेदान्ति लोग केवल परमेश्वर ही को जगत् का
निमित्तोपादान कारण मानते हैं ।

एनाभिः सृजते गृह्णते च ॥ [सुष्टको० मु० १।ख० १।मं० ७]
यह उपनिषद् का वचन है । जैसे मयरी बाहर ने कोई पदार्थ नहीं
अपने ही में से तन्तु निवाह जाला बनाकर आप ही उसमें खेदती है
मय अपने में से जगत् को बना आप जगदाकार बन आप ही ब्रह्मा
है । सो मय इच्छा और कामना करता हुआ कि मैं यदुस्व

अर्थात् जगदाकार होजाऊं। सङ्कल्पमात्र से जब जगद्रूप बन गया
आदावन्ते च यन्नास्ति वर्त्तमानेऽपि तत्तथा ॥

[गौडपादीय का० वै० प्र० १।

यह माण्डूक्योपनिषद् पर कारिका है, जो प्रथम न हो, अतः
वह वर्त्तमान में भी नहीं है, किन्तु सृष्टि की आदि में जगत् ब्रह्म
था। प्रलय के अन्त में ससार न रहेगा और केवल ब्रह्म रहेगा तो
में सब जगत् ब्रह्म क्यों नहीं ?

(उत्तर) जो तुम्हारे कहने के अनुसार जगत् का उपादान
ब्रह्म होवे तो वह परिणामी, अवस्थान्तरगुक्त विकारी हो जावे।
दान कारण के गुण, कर्म, स्वभाव कार्य में भी आते हैं—

कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः ॥

वैशेषिक सू० [अ० १। आ० १। सू०

उपादान कारण के सदृश कार्य में गुण होते हैं तो ब्रह्म
स्वरूप, जगत्-कार्यरूप से अमत्, जड़ और आनन्दरहित ब्रह्म
जगत् उत्पन्न हुआ है, ब्रह्म अदृश्य और जगत् दृश्य है, ब्रह्म
जगत् गन्धरूप है, जो ब्रह्म में पृथिव्यादि कार्य उत्पन्न हों तो
व्यादि में कार्य के जड़दि गुण ब्रह्म में भी हों अर्थात् ब्रह्म
व्यादि जड़ हैं वैसे ब्रह्म भी जड़ हो जाय और जैसा परमेश्वर
वैसा पृथिव्यादि कार्य भी चेतन होना चाहिये। और जो
दृष्टान्त दिया वह तुम्हारे मन का साधक नहीं किन्तु बाधक है
जड़रूप शरीर तन्तु का उपादान और जीवात्मा निमित्त कारण है,
यह भी परमात्मा की अद्भुत रचना का प्रभाव है क्योंकि अन्य
शरीर में जीव तन्तु नहीं निकाल सकता। वैसे ही व्यापक ब्रह्म
भीतर व्याप्य प्रकृति और परमाणु कारण से स्थूल जगत् को
रूपरूप का आप उर्मा में व्यापक होके साक्षीभूत आनन्दमय
और जो परमात्माने दृक्षण अर्थात् दर्शन, विचार और
निर्णय सब जगत् को बना कर प्रसिद्ध होऊं अर्थात् जब जगत्
है तभी जीवों में विचार, ज्ञान, ध्यान, उपदेश, श्रवण में परमेश्वर
और ब्रह्म स्थूल पदार्थों में रह वर्त्तमान होता है। जब प्रलय
में परमेश्वर और मुक्त जीवों को जोड़ दे उसको कोई नहीं जगत्
जो वह ब्रह्म है वह ब्रह्मेश्वर है क्योंकि सृष्टि की आदि

जगत् प्रसिद्ध नहीं था और सृष्टि के अन्त अर्थात् प्रलय के आरम्भ से बतक दूसरी बार सृष्टि न होगी तबतक भी जगत् का कारण सूक्ष्म होकर प्रसिद्ध रहता है क्योंकि —

म आसीत्तमसा गुढमग्रे ॥ [ऋ० मं० १० । सू० १२९ । मं० ३]

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।

अप्रतर्क्यमविशेषं प्रसुप्तमिव सर्वतः [मनु० १ । ५ ।]

यह सब जगत् सृष्टि के पहिले प्रलय में अन्धकार से आवृत, आच्छादित था और प्रलयारम्भ के पश्चात् भी वैसा ही होता है । उस समय न किसी के जानने, न तर्क में लाने और न प्रसिद्ध चिह्नों से युक्त इन्द्रियो जानने योग्य था, और न होगा, किन्तु वर्तमान में जाना जाता है और प्रसिद्ध चिह्नों से युक्त जानने योग्य होता और यथावत् उपलब्ध । पुनः उस कारिकाकार ने वर्तमान में भी जगत् का अभाव लिखा सो सर्वथा अप्रमाण है क्योंकि जिसको प्रमाता प्रमाणों से जानता और प्राप्त होता है वह अन्यथा कभी नहीं हो सकता ।

६—(प्रश्न) जगत् के बनाने में परमेश्वर का क्या प्रयोजन है ?

(उत्तर) नहीं बनाने में क्या प्रयोजन है ?

(प्रश्न) जो न बनाता तो आनन्द में बना रहता और जीवों को भी सुख दुःख प्राप्त न होता ।

(उत्तर) यह आलसी और दरिद्र लोगो की बातें हैं, पुरुषार्थी की नहीं । और जीवों को प्रलय में क्या सुख था दुःख है ? जो सृष्टि के सुख दुःख की तुलना की जाय तो सुख कई गुणा अधिक होता और बहुत से भविष्यात्मा जीव मुक्ति के साधन कर मोक्ष के आनन्द को भी प्राप्त होते हैं । प्रलय में निष्कम्मे, जैसे सुषुप्ति में पड़े रहते हैं वैसे रहते हैं । ईश्वर प्रलय के पूर्व सृष्टि में जीवों के लिये पाप पुण्य वर्मों का फल ईश्वर कैसे दे सकता और जीव क्यों कर भोग सकते ? जो तुम से कोई पूछे कि आंख के होने में क्या प्रयोजन है ? तुम यही कहोगे, देखना । तो जो ईश्वर ने जगत् की रचना करने का विज्ञान, बल और किया है उसका क्या प्रयोजन, बिना जगत् की उत्पत्ति करने के ? दूसरा बुद्ध भी न कह सकेगी और परमात्मा के न्याय, धारण, दया आदि गुण भी सभी सार्थक हो सकते हैं जब जगत् को बनावे । उसका अनन्त सामर्थ्य जगत् की उत्पत्ति स्थिति, प्रलय और व्यवस्था करने ही से सफल है । ईश्वर नेत्र वा

विक गुण देखना है वैसे परमेश्वर का स्वाभाविक गुण जगत् की करके सब जीवों को असंख्य पदार्थ देकर परोपकार करना है।

७—(प्रश्न) बीज पहले है वा वृक्ष ?

(उत्तर) बीज, क्योंकि बीज, हेतु, निदान, निमित्त और इत्यादि शब्द एकार्थवाचक है। कारण का नाम बीज होने से प्रथम ही होता है।

(प्रश्न) जब परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है तो वह कारण और जीवों को भी कर सकता है। जो नहीं कर सकता तो सर्वशक्तिमान् भी नहीं है।

(उत्तर) सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ पूर्ण लिख आये है। क्या सर्वशक्तिमान् वह कहाना है कि जो असंभव बात को भी कर सकता है तो बिना कारण दूसरे ईश्वर की उत्पत्ति और स्वर्ग को पास, जड़, दुर्गा, अन्यायकारी, अपवित्र और कुकर्मा आदि हो है या नहीं ? जो स्वाभाविक नियम अर्थात् जैसा अग्नि उष्ण, जल और पृथिव्यादि सब जडा को विपरीत गुणवाले ईश्वर भी नहीं सकता। और ईश्वर के नियम सत्य और पूरे हैं इसलिये परिवर्तन कर सकता। इसलिये सर्वशक्तिमान् का अर्थ इतना ही है कि बिना किसी के सहाय के अपने सब कार्य पूर्ण कर सकता है।

८—(प्रश्न) ईश्वर साकार है वा निराकार ? जो निराकार है बिना हाथ आदि साधनों के जगत् को न बना सकेगा और जो है तो सोई दोष नहीं आना।

(उत्तर) ईश्वर निराकार है, जो साकार अर्थात् शरीरयुक्त, ईश्वर नहीं क्योंकि वह परिमित शक्तियुक्त, देश, काल, वस्तुओं में स्थित, लुप्ता, कृपा, छेदन, भेदन, शक्तिहीन, ज्वर, पीड़ादि सहित और दूसरे जीव के बिना ईश्वर के गुण कभी नहीं घट सकते। जैसे हम हम पराक्रम अर्थात् शरीरवासी हैं हमसे प्रमरेणु, अणु, पामानु प्रभृति को अपने बल से नहीं ला सकते हैं, वैसे ही स्थूल देहवासी ईश्वर भी उन सूक्ष्म पदार्थों से स्थूल जगत् नहीं बना सकता। जो सब भेदित इन्द्रियोंवाला जगत्वादि अवयवों से रहित है, जो सब अजन्म अविनाश, बल, पराक्रम है, उनसे सब काम करता है जो और प्रकृति से कभी न हो सकते। जब वह प्रकृति से भी स्थूल

में व्यापक है तभी उनको पकड़ कर जगदाकार कर देता है ।

(प्रश्न) जैसे मनुष्यादि के मा बाप साकार हैं उनका सन्तान भी साकार होता है, जो ये निराकार होते तो इनके लडके भी निराकार होते वैसे परमेश्वर निराकार हो तो उसका बनाया जगत् भी निराकार होना चाहिये ।

(उत्तर) यह तुम्हारा प्रश्न लडके के समान है क्योंकि हम अभी बच्चे हैं कि परमेश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं किन्तु निमित्त कारण है । और जो स्थूल होता है वह प्रकृति और परमाणु जगत् का उपादान कारण है और वे सर्वथा निराकार नहीं, किन्तु परमेश्वर से सूक्ष्म और अन्य कार्य से सूक्ष्म आकार रखते हैं ।

९—(प्रश्न) क्या कारण के बिना परमेश्वर कार्य को नहीं कर सकता ?

(उत्तर) नहीं, क्योंकि जिसका अभाव अर्थात् जो वर्तमान नहीं है उसका भाव वर्तमान होना सर्वथा असम्भव है । जैसा कोई गपोड़ा हाक के मँने बन्ध्या के पुत्र और पुत्री का विवाह देखा, वह नरशृङ्ग का पंख और दोनों खपुष्प की माला पहिरे हुए थे, मृगतृष्णिका के जल में नहाने करते और गन्धर्वनगर में रहते थे, वहा बहल के बिना वर्षा, पानी के बिना सब अन्न की उत्पत्ति आदि होती थी वैसा ही कारण के बिना कार्य का होना असंभव है । जैसे कोई कहे कि 'मम माता-पितरौ न स्तोऽहमेवमेव जातः । मम मुखे जिह्वा नास्ति वदामि' अर्थात् मेरे माता पिता न थे, ऐसे ही मैं उत्पन्न हुआ हूँ, मेरे मुख की भी नहीं है परन्तु बोलता हूँ, बिल में सर्प न था निकल आया, मैं नहीं था, ये भी कहाँ न थे और हम सब जने आये हैं, ऐसी असंभव बात प्रसङ्गाती अर्थात् पागल लोगों की है ।

(प्रश्न) जो कारण के बिना कार्य नहीं होता तो कारण वा कारण का कारण क्या है ?

(उत्तर) जो केवल कारणरूप ही हैं वे कार्य किसी के नहीं होते और जो किसी का कारण और किसी का कार्य होता है वह दूसरा कारण होता है । जैसे पृथिवी घर आदि का कारण और जल आदि का कार्य होता है परन्तु जो आदि कारण प्रकृति हैं वह अनादि हैं ।

ले मूलाभावादमूलं मूलम् ॥ सायनम् ० [अ० १ । सू० १७]

मूल का मूल अर्थात् कारण का कारण नहीं होता । इससे अकारण कार्य का कारण होता है क्योंकि किसी कार्य के आरम्भ समय के

पूर्व तीनों कारण अवश्य होते हैं। जैसे कपड़े बनाने के पूर्व का सूत और नलिका आदि पूर्व वर्तमान होने से वस्त्र बनकर जगत् की उत्पत्ति के पूर्व परमेश्वर, प्रकृति, काल और जीवों के अनादि होने से इस जगत् की उत्पत्ति होती है। यदि एक भी न हो तो जगत् भी न हो।

१०—अत्र नास्तिका आहुः—शून्यं तत्त्वं भावो
 वस्तुधर्मत्वाद्विनाशस्य ॥१॥ सांख्यसू० [अ० १। सू०
 अभावाद् भावोत्पत्तिर्नानुपमृद्य प्रादुर्भावात् ॥ २॥
 ईश्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्यदर्शनात् ॥ ३॥
 अनिमित्ततो भावोत्पत्तिः कण्टकतैक्षण्यादिदर्शनात्
 सर्वमनित्यमुत्पत्तिविनाशधर्मकत्वात् ॥ ४॥
 सर्वं नित्यं पञ्चभूतनित्यत्वात् ॥ ६॥
 सर्वं पृथग् भावलक्षणापृथक्त्वात् ॥ ७॥
 सर्वमभावो भावेष्वितरेतराभावसिद्धेः ॥ ८॥

न्यायसू० अ० ४। भा० १। [सू० १४, १९, २२, २५, २९, ३४,
 यहा नास्तिक लोग ऐसा कहते हैं कि शून्य ही एक पदार्थ है।
 के पूर्व शून्य था, अन्त में शून्य होगा क्योंकि जो भाव है अर्थात्
 पदार्थ है उसका अभाव होकर शून्य हो जायगा।

(उत्तर) शून्य आकाश, अदृश्य अवकाश और बिन्दु को भी
 है। शून्य जड़ पदार्थ। इस शून्य में सब पदार्थ अदृश्य रहते हैं।
 एक बिन्दु से गेवा गेवाओं से घूर्तुलाकार होने से भूमि, पर्वत
 की रचना में वनते हैं और शून्य का जाननेवाला शून्य नहीं होता।

दूसरा नास्तिक—अभाव से भाव की उत्पत्ति है, जैसे बीज
 दिये बिना अंकुर उत्पन्न नहीं होता और बीज को तोड़ कर देखें,
 या अभाव है, जब प्रथम अंकुर नहीं दीप्तता था तो अभाव से

(उत्तर) जो बीज का उपमर्दन करता है वह प्रथम ही बीज
 जो न होता तो उत्पन्न कभी न होता ॥ २ ॥

तीसरा नास्तिक कहता है कि—कर्मों का फल पुण्य के
 में नहीं प्राप्त होता। दिये ही कर्म निष्फल देखने में आते हैं।
 अनुप्राप्त किया जाता है कि कर्मों का फल प्राप्त होना ईश्वर के
 है। जिस कर्म का फल देकर देना चाहे देता है, जिस कर्म का

चाहता नहीं देता । इस बात से कर्मफल ईश्वराधीन है ।

(उत्तर) जो कर्म का फल ईश्वराधीन हो तो बिना कर्मकिये ईश्वर फल नहीं देता ? इसलिये जैसा कर्म मनुष्य करता है वैसा ही फल ईश्वर देता है । इससे ईश्वर स्वतन्त्र पुरुष को कर्म का फल नहीं दे सकता किन्तु कर्म जीव करता है वैसे ही फल ईश्वर देता है ॥ ३ ॥

चाथा नास्तिक कहता है कि—बिना निमित्त के पदार्थों की उत्पत्ति नहीं है । जैसा बबूल आदि वृक्षों के काटे तीक्ष्ण अणिवाले देखने में आते हैं । इससे सिद्धित होता है कि जब सृष्टि का आरम्भ होता है तब सृष्टिप्रादि पदार्थ बिना निमित्त के होते हैं ।

(उत्तर) जिससे पदार्थ उत्पन्न होता है वही उसका निमित्त है । बिना कर्म वृक्ष के काटे उत्पन्न क्यों नहीं होते ? ॥ ४ ॥

पाचवा नास्तिक कहता है कि—सब पदार्थ उत्पत्ति और विनाश के हैं, इसलिये सब अनित्य हैं ॥

श्लाकार्थेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः ।

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः ॥

यह किसी ग्रन्थ का श्लोक है । नवीन वेदान्ति लोग पाचवें नास्तिक कोटी में हैं क्योंकि वे ऐसा कहते हैं कि कोटो ग्रन्थों का यह सिद्धान्त 'ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या और जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं ।'

(उत्तर) जो सब की नित्यता नित्य है तो सब अनित्य नहीं हो सकता ।

(प्रश्न) सब की नित्यता भी अनित्य है जैसे अग्नि काष्ठों को नष्ट कर अप भी नष्ट हो जाता है ।

(उत्तर) जो यथावत् उपलब्ध होता है उसका वर्तमान में अनित्यत्व और परमसूक्ष्म कारण को अनित्य कहना कभी नहीं हो सकता । जो वेदान्ति लोग प्रथम से जगत् की उत्पत्ति मानते हैं तो ब्रह्म के सत्य होने से उसका अनित्य असत्य कभी नहीं हो सकता । जो न्यून रज्जु सर्पादिष्वत् कल्पित वरुण भी नहीं बन सकता, क्योंकि कल्पना गुण है । गुण से द्रव्य नहीं और गुण द्रव्य पर्यवर्तित रह सकता । जब कल्पना का कर्ता नित्य है तो उसकी कल्पना भी नित्य होनी चाहिये, नहीं तो उसको भी अनित्य मानो । जैसे स्वप्न बिना सने सुने कभी नहीं आता, जो जागृत अर्थात् वर्तमान समय में सत्य पदार्थ उनके साक्षात् सम्बन्ध से प्रत्यक्षादि ज्ञान होने पर संस्कार अर्थात् उन्वा विनाशरूप ज्ञान आत्मा में स्थित होता है, स्वप्न में उन्नी को प्रत्यक्ष देखता

हे । जैसे सुषुप्ति होने से बाह्यपदार्थों के ज्ञान के अभाव में भी विद्यमान रहते हैं वैसे प्रलय में भी कारण द्रव्य वर्तमान रहता है । के बिना स्वप्न होवे तो जन्मान्ध को भी रूप का स्वप्न होवे । उनका ज्ञानमात्र है और बाहर सब पदार्थ वर्तमान हैं ।

(प्रश्न) जैसे जागृत के पदार्थ स्वप्न और दोनों के सुषुप्ति में हो जाते हैं वैसे जागृत के पदार्थों को भी स्वप्न के तुल्य मानना

(उत्तर) ऐसा कभी नहीं मान सकते क्योंकि स्वप्न बाह्य पदार्थों का अज्ञानमात्र होता है अभाव नहीं । जैसे किसी के ओर बहुत से पदार्थ अदृष्ट रहते हैं उनका अभाव नहीं होता और सुषुप्ति की बात है । इसलिये जो पूर्व कह आये कि जगत्, जागृत का कारण अनादि नित्य है वही सत्य है ॥ ४ ॥

छठा नास्तिक कहता है कि — पांच भूतों के नित्य होने से सब जागृत

(उत्तर) यह बात सत्य नहीं क्योंकि जिन पदार्थों की विनाश का कारण देखने में आता है वे सब नित्य हों तो सब तथा शरीर, घट पटादि पदार्थों को उत्पन्न और विनष्ट होते इसलिये कार्य को नित्य नहीं मान सकते ॥ ५ ॥

सातवां नास्तिक कहता है कि—सब पृथक् २ हैं, कोई एक है । जिन २ पदार्थों को हम देखते हैं कि उनमें दूसरा एक पदार्थ नहीं दीग्यता ।

(उत्तर) अवयवों में अवयवी, यत्तमानकाल, आकाश, और जालि पृथक् २ पदा समूहों में एक २ है । उनमें पृथक् नहीं हो सकता । इसलिये सब पृथक् पदार्थ नहीं किन्तु स्वरूप है और पृथक् २ पदार्थों में एक पदार्थ भी है ॥ ६ ॥

आठवां नास्तिक कहता है कि—सब पदार्थों में इतरेतर अभाव होने से सब अभावरूप हैं जैसे 'अनश्यो गौः । अगौरश्यः ।' नहीं और घोड़ा गाय नहीं, इसलिये सब को अभावरूप मानना

(उत्तर) सब पदार्थों में इतरेतराभाव का योग हो परन्तु 'गौरश्येऽश्वोभावरूपो वर्तत एव ।' गाय में गाय घोड़े में ही है, अभाव कभी नहीं हो सकता । जो पदार्थों का गाय नहीं अभाव भी जिस में कहा जाये ॥ ७ ॥

नववां नास्तिक कहता है कि—स्वभाव से जागृत की उत्पत्ति

। जैसे पानी, अन्न एकत्र हो सड़ने से कृमि उत्पन्न होते हैं और बीज
जल के मिलने से घास घृक्षादि और पाषाणादि उत्पन्न होते हैं, जैसे
वायु के योग से तरङ्ग और तरङ्गों से समुद्रफेन, हल्दी, चूना और
के रस मिलाने से रोरी बन जाती है वैसे सब जगत् तत्त्वों के स्वभाव
से उत्पन्न हुआ है। इसका बनाने वाला कोई भी नहीं।

(उत्तर) जो स्वभाव से जगत् की उत्पत्ति होवे तो विनाश कभी न
और जो विनाश भी स्वभाव से मानो तो उत्पत्ति न होगी और जो
स्वभाव युगपत् द्रव्यों में मानोगे तो उत्पत्ति और विनाश की व्यव-
कभी न हो सकेगी। और जो निमित्त के होने से उत्पत्ति और नाश
तो निमित्त उत्पन्न और विनष्ट होने वाले द्रव्यों से पृथक् मानना
। जो स्वभाव हो से उत्पत्ति और विनाश होता तो समय ही में उत्पत्ति
विनाश का होना सम्भव नहीं। जो स्वभाव से उत्पन्न होता हो तो
भूगोल के निकट में दूसरा भूगोल, चन्द्र, सूर्य आदि उत्पन्न क्यों नहीं
। और जिस २ के योग से जो २ उत्पन्न होता है वह १ ईश्वर के उत्पन्न
में हुए बीज, अन्न, जलादि के संयोग से घास, घृक्ष और कृमि आदि
होते हैं, विना उनके नहीं। जैसे हल्दी, चूना और नींबू का रस
२ देश से आकर आप नहीं मिलते। किसी के मिलाने से मिलते हैं।
में भी यथायोग्य मिलाने से रोरी होती है, अधिक, न्यून वा अन्यथा
में से रोरी नहीं होती। वैसे ही प्रकृति, परमाणुओं को ज्ञान और युक्ति
ईश्वर के मिलाये बिना जड़ पदार्थ स्वयं कुछ भी कार्यसिद्धि के लिये
पदार्थ नहीं बन सकते। इसलिये स्वभावादि से सृष्टि नहीं होती
परमेश्वर की रचना से होती है ॥ ९ ॥

११—(प्रश्न) इस जगत् का कर्त्ता न था, न है और न होगा किन्तु
दि काल में यह जैसा का वैसा बना है। न कभी इसकी उत्पत्ति
न कभी विनाश होगा।

(उत्तर) बिना कर्त्ता के कोई भी क्रिया वा क्रियाजन्य पदार्थ नहीं
सकता। जिन पृथिवी आदि पदार्थों में संयोग विशेष से रचना दी जाती
अनादि कभी नहीं हो सकते और जो संयोग से बनता है वह संयोग
वर्ष नहीं होता और वियोग के अन्त में नहीं रहता। जो तुम इसको
मानो तो कठिन से कठिन पाषाण, लौह और पोलाद आदि तोड़, टुकड़े
गला वा भस्म कर देखो कि इनमें परमाणु पृथक् २ मिले हैं या नहीं ?

जो मिले हैं तो वे समय पाकर अलग २ भी अवश्य होते हैं ॥ १

(प्रश्न) अनादि ईश्वर कोई नहीं किन्तु जो योगाभ्यास से ऐश्वर्य को प्राप्त होकर सर्वज्ञादि गुणयुक्त केवल ज्ञानी होता है परमेश्वर कहाता है ।

(उत्तर) जो अनादि ईश्वर जगत् का स्रष्टा न हो तो सिद्ध होने वाले जीवों का आधार जीवनरूप जगत्, शरीर और के गोलक कैसे बनते ? इन के बिना जीव साधन नहीं कर साधन न होते तो सिद्ध कहां से होता ? जीव चाहे जैसा सिद्ध होवे तो भी ईश्वर की जो स्वयं सनातन अनादि सिद्धि है, अनन्त सिद्धि हैं, उसके तुल्य कोई भी जीव नहीं हो सकता । जीव का परम अवधि तक ज्ञान बढ़े तो भी परिमित ज्ञान और वाला होता है । अनन्त ज्ञान और सामर्थ्यवाला कभी नहीं हो देगा कोई भी योगी आज तक ईश्वरकृत सृष्टिक्रम का हुआ है और न होगा । जैसे अनादि सिद्ध परमेश्वर ने नेत्रों से कानों से सुनने का निबन्ध किया है इसको कोई भी योगी सरना, जीव ईश्वर कभी नहीं हो सकता ।

१२—(प्रश्न) कल्प कल्पान्तर में ईश्वर सृष्टि विलक्षण २ अथवा एक ही ?

(उत्तर) जैसी कि अब है वैसी पट्टिले थी और आगे होगी, करना—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत् ।

दिव्यं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥

अ० । मं० १० । सू० १०० ।

(धाता) परमेश्वर जैसे पूर्ण कल्प में सूर्य, चन्द्र, विश्व, अन्तरिक्ष आदि को बनाता हुआ जैसे ही [उमने] अब बनायेगी भी ऐसे ही बनायेगा । इसीलिए परमेश्वर के काम बिना भूल कृष्ण से कल्प एक से ही द्वारा करते हैं । जो अयज्ञ और निमज्जा जगत् का प्राण होता है उसी के काम में भूल भूक होती है, ईश्वर के काम

१३—(प्रश्न) सृष्टि विना में वेदादि शास्त्रों का अस्तित्व है क

(उत्तर) अस्तित्व है ।

(प्रश्न) जो अस्तित्व है सो —

की एक २ शाख में है। इसलिये उनमें विरोध कुछ भी पुरुष मिल के एक छप्पर उठा कर भित्तियों पर धरें वैसा कार्य की व्याख्या छ शाखकारों ने मिलकर पूरी की है। और एक मन्ददृष्टि को किसी ने हाथी का एक २ देश पूछा कि हाथी कैसा है ? उनमें से एक ने कहा खंभे, दूसरे ने तीसरे ने कहा मूसल, चौथे ने कहा झाड़ू, पांचवे ने कहा ने कहा काला २ चार खंभों के ऊपर कुछ भैंसासा आकार प्रकार आज कल के अनाप, नवीन ग्रन्थों के पढ़ने और ने ऋषिप्रणीत ग्रन्थ न पढ़कर नवीन क्षुद्रबुद्धिकल्पित संस्कृत के ग्रन्थ पढ़कर, एक दूसरे की निन्दा में तत्पर होके ब्रूया इनका कथन बुद्धिमानों के वा अन्य के मानने योग्य नहीं। के पीछे अन्धे नलें तो दुःख क्यों न पावें ? वैसे ही आजकल स्वार्थी, इन्द्रियाराम पुरुषों की लीला संसार का नाश करने

१४—(प्रश्न) जब कारण के बिना कार्य नहीं होता क्यों नहीं ?

(उत्तर) अरे भोले भाइयो ! कुछ अपनी बुद्धि को नहीं लाते ? देखो सगर में दो ही पदार्थ होते हैं, एक कार्य । जो कारण है वह कार्य नहीं और जिस समय कार्य नहीं । जब तब मनुष्य सृष्टि को यथावत् नहीं समझता यथावत् ज्ञान प्राप्त नहीं होता—

१५—नित्यायाः सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्थायाः
ज्ञानां परमसूक्ष्माणां पृथक् पृथक् वर्तमानानां
प्रथमः संयोगादन्तः संयोगविशेषादवस्थान्तरश्च
रूपानिः सृष्टिरुच्यते ।

अर्थात् नित्यस्वरूप सत्त्व, रजस् और तमोगुणों की प्रकृति में उत्पन्न हो परमसूक्ष्म पृथक् २ तात्पर्य का प्रथम ही जो संयोग का आगमन है, संयोग निरंतर के अन्तर्गत प्रकृति का सत्त्व स्थूल २ घटने घटने विविध रूप में वह सत्त्व होने से सृष्टि घटती है । अन्तर्गत प्रथम और अन्तर्गत सत्त्व प्रकृति है, जो संयोग का अन्तिम अन्तिम निमित्त है अर्थात् सत्त्व ही सत्त्व, द्रव्य का कारण और

और वियोग के पश्चात् वैसा नहीं रहता वह कार्य कहाता है । जो कारण का कारण, कार्य का कार्य, कर्त्ता का कर्त्ता, साधन का साधन, साध्य का साध्य कहता है वह देखता अन्धा, सुनता बहरा और जानता दूढ़ है । क्या आख की आख, दीपक का दीपक और सूर्य का सूर्य हो सकता है ? जो जिससे उत्पन्न होता है वह कारण, और जो उत्पन्न होता है वह कार्य, और जो कारण को कार्यरूप बनाने द्वारा है वह कर्त्ता कहाता है ।

६—नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।

उभयोरपि दृष्टोन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥

भगवद्गीता [अ० २ । १६]

भी अस्तत् का भाव वर्त्तमान और सत् का अभाव अवर्त्तमान नहीं है । इन दोनों का निर्णय तत्त्वदर्शी लोगो ने जाना है, अन्य पक्षपाती लोग, मलीनात्मा, अविद्वान् लोग इस बात को सहज में कैसे जान सकते हैं ? क्योंकि जो मनुष्य विद्वान्, सत्संगी होकर पूरा विचार नहीं करता वह भ्रमजाल में पड़ा रहता है । धन्य ! वे पुरुष हैं कि सब विद्याओं को जानते हैं और जानने के लिये परिश्रम करते हैं, जानकर को निष्कपटता से जनाते हैं । इससे जो कोई कारण के बिना सृष्टि हो है वह कुछ भी नहीं जानता । जब सृष्टि का समय आता है तब मा उन परमसूक्ष्म पदार्थों को इकट्ठा करता है । उसकी प्रथम अवस्था परमसूक्ष्म प्रकृतिरूप कारण से कुछ स्थूल होता है उसका नाम 'तत्त्व' और जो उसमें कुछ स्थूल होता है उसका नाम 'अणु' और उससे भिन्न २ पाच 'सूक्ष्मभूत', ध्रुव, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, घ्राण पाच इन्द्रियां, वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा, ये पांच कर्म इन्द्रिया है । पारहवा मन कुछ स्थूल उत्पन्न होता है । और उन पंचतन्मात्राओं के स्थूलावस्थाओं को प्राप्त होते हुए क्रम से पाच स्थूलभूत जिनको लोग प्रत्यक्ष देखते हैं उत्पन्न होते हैं । उनसे नाना प्रकार की ओषध, वृक्ष आदि, उनसे अन्न, अन्न से वीर्य और वीर्य से शरीर होता है । अणु आदि-सृष्टि मैथुनी नहीं होती । क्योंकि जब स्त्री पुरुषों के शरीर में मिलनाकर उनमें जीवों का संयोग कर देता है तदनन्तर मैथुनी बलती है । देवो ! शरीर में किस प्रकार की शानपूर्वक सृष्टि रची जिसको विद्वान् लोग देखकर आश्चर्य मानते हैं । भीतर हाडों का नाटियों का चन्चल, मांस का लेपन, चमड़े का चमक, हड्डी, चर्म,

की एक २ शास्त्र में है। इसलिये उनमें विरोध कुछ भी पुरुष मिल के एक छप्पर उठा कर भित्तियों पर धरें बैठा कार्य की व्याख्या छ. शास्त्रकारों ने मिलकर पूरी की है। और एक मन्ददृष्टि को किसी ने हाथी का एक २ देखा पूछा कि हाथी कैसा है ? उनमें से एक ने कहा खंभे, दूसरे ने कहा तीसरे ने कहा मूसल, चौथे ने कहा झाड़ू, पांचवे ने कहा ने कहा काला २ चार खंभों के ऊपर कुछ भैंसासा आकार प्रकार आज कल के अनार्ष, नवीन ग्रन्थों के पढ़ने और प्राज्ञ ने ऋषिप्रणीत ग्रन्थ न पढ़कर नवीन क्षुद्रबुद्धिकल्पित ग्रन्थों के ग्रन्थ पढ़कर, एक दूसरे की निन्दा में तत्पर होके इसका इनका कथन बुद्धिमानों के वा अनर्थ के मानने योग्य नहीं। के पीछे अन्धे चलें तो दु ख क्यों न पावें ? वैसे ही आजकल स्वार्थी, इन्द्रियाराम पुरुषों की लीला संसार का नाश करने

१४—(प्रश्न) जय कारण के बिना कार्य नहीं क्यों नहीं ?

(उत्तर) अरे भोले भाइयो ! कुछ अपनी बुद्धि को नहीं लाते ? देखो संसार में दो ही पदार्थ होते हैं, एक कार्य । जो कारण है वह कार्य नहीं और जिस समय कार्य नहीं । जब तक मनुष्य मृष्टि को यथावत् नहीं समझता । यथान्त ज्ञान प्राप्त नहीं होता—

१४—नित्यायाः सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्थायाः
ज्ञानां परमसूक्ष्माणां पृथक् पृथक् वर्तमानानां
प्रथमः संयोगारम्भः स योगविशेषादवस्थान्तरस्य
रूपानिः सृष्टिरुच्यते ।

अनादि नित्यस्वरूप सत्त्व, रजस् और तमोगुणों से
प्रकृति में उत्पन्न जो परममूर्तम ध्रुव २ सत्तावयव
या प्रत्यक्ष ही जो संयोग का आग्रह है, संयोग विभक्तियों
द्वारा प्रत्यक्ष ही जो मूर्तम रूप ३ यत्ने यत्ने विविध
म रूप रसगो होने में सृष्टि व पत्नी है । मत्ता जो प्रत्यक्ष
और विभक्त सत्ता परम है, जो संयोग का आदि भवे
३ अनादि रजस् विभक्त सत्ता है मत्ता, उसमें कर्मा और

और वियोग के पश्चात् वैसा नहीं रहता वह कार्य कहाता है । जो कारण का कारण, कार्य का कार्य, कर्त्ता का कर्त्ता, साधन का साधन, साध्य का साध्य कहता है वह देखता अन्धा, सुनता बहरा और जानता दूढ़ है । क्या आख की आख, दीपक का दीपक और सूर्य का सूर्य हो सकता है ? जो जिससे उत्पन्न होता है वह कारण, और जो उत्पन्न होता है कार्य, और जो कारण को कार्यरूप बनाने हारा है वह कर्त्ता कहाता है ।

६—नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।

उभयोरपि दृष्टोन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥

भगवद्गीता [अ० २ । १६]

भी असत् का भाव वर्तमान और सत् का अभाव अवर्तमान नहीं । इन दोनों का निर्णय तत्त्वदर्शी लोगों ने जाना है, अन्य पक्षपाती, मलीनात्मा, अविद्वान् लोग इस बात को सहज में कैसे जान सकते हैं ? जो मनुष्य विद्वान्, सत्संगी होकर पूरा विचार नहीं करता वह भ्रमजाल में पड़ा रहता है । धन्य ! वे पुरुष हैं कि सब विद्याओं, ज्ञानों को जानते हैं और जानने के लिये परिश्रम करते हैं, जानकर जो निष्कपटता से जनाते हैं । इससे जो कोई कारण के बिना सृष्टि है वह कुछ भी नहीं जानता । जब सृष्टि का समय आता है तब मा उन परमसूक्ष्म पदार्थों को इकट्ठा करता है । उसकी प्रथम अवस्था परमसूक्ष्म प्रकृतिरूप कारण से कुछ स्थूल होता है उसका नाम 'तत्त्व' और जो उससे कुछ स्थूल होता है उसका नाम 'अहङ्कार' और उससे भिन्न २ पाच 'सूक्ष्मभूत', ओन्न, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, घ्राण पाच इन्द्रियां, वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा, ये पाच कर्म इन्द्रिया हैं । प्यारहवां मन कुछ स्थूल उत्पन्न होता है । और उन पंचतन्मात्राओं को स्थूलावस्थाओं को प्राप्त होते हुए क्रम से पाच स्थूलभूत जिनको पञ्च प्रत्यक्ष देखते हैं उत्पन्न होते हैं । उनसे नाना प्रकार की ओषध, वृक्ष आदि, उनसे अन्न, अन्न से वीर्य और वीर्य से शरीर होना शुरू आदि-सृष्टि मैथुनी नहीं होती । क्योंकि जब स्त्री पुरुषों के शरीर में आत्मा बनाकर उनमें जीवों का संयोग कर देता है तदनन्तर मैथुनी चलती है । देखो ! शरीर में किस प्रकार की शानपूर्वक सृष्टि रची जिसको विद्वान् लोग देखकर आश्चर्य मानते हैं । भीतर हाडों का नाडियों का बन्धन, मांस या लेपन, चमड़े का ढक्कन, हीरा, चट्टान,

फेफडा, पंखा कला का स्थापन, जीव का संवोधन,
लोम नखादि का स्थापन, आंख की अतीव सूक्ष्म
इन्द्रियों के मार्गों का प्रकाशन, जीव के जागृत,
के भोगने के लिये स्थान विशेषों का निर्माण, सब श्रु
कला, कौशल स्थापनादि अद्भुत सृष्टि के बिना
सकता है ! इसके बिना नाना प्रकार के रत्न धातु के
प्रकार वट वृक्ष आदि के बीजों में अति सूक्ष्म रत्न,
पीत, कृष्ण, चित्र, मध्यरूपों से गुक्त, पद्म, पुष्प, क
क्षार, कटुक, कषाय, तिक्त, अम्लादि विविध रस
फल, अन्न, कन्द, मूलादि रचन, अनेकानेक कोशों
लोकनिर्माण, धारण, भ्रामण, नियमों में रखना आदि
कोई भी नहीं कर सकता । जब कोई किसी पदार्थ के
प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है । एक जैसा वह रत्न
रचना देखकर बनाने वाले का ज्ञान है । जैसा कि
आभूषण जंगल में पाया, देखा तो विदित हुआ कि
किसी बुद्धिमान कारीगर ने बनाया है । इसी प्रकार
में विविध रचन बनाने वाले परमेश्वर को बिना

१७—(प्र१) मनुष्य की सृष्टि प्रथम हुई

(उत्तर) पृथ्वी आदि की, क्योंकि पृथिवी
स्थिति और पालन नहीं हो सकता ।

(प्रश्न) सृष्टि । आदि में एक वा अनेक मनुष्य

(उत्तर) अनेक, क्योंकि जिन जीवों के ज्ञान के थे उनका ज्ञान, सृष्टि की आदि में ईश्वर के
आदेश से था । तब मनुष्या अजायन्त (अ
ब्राह्मण) [जत० १४।१, २।५॥] में लिखा है ।

इस आदि में अनेक प्रातः मैकड़ों सहता मनुष्य
में देखने में भी निश्चित होता है कि मनुष्य अनेक
गति सृष्टि में मनुष्य आदि के

५॥ तबों में ?

५॥ में, क्योंकि जो प्रातः
मनुष्य आवश्यक होने जैसे

नी सृष्टि न होती, इसलिये युवावस्था में सृष्टि की है।

प्रश्न) कभी सृष्टि का प्रारम्भ है वा नहीं ?

उत्तर) नहीं, जैसे दिन के पूर्व रात और रात के पूर्व दिन तथा दिन के रात और रात के पीछे दिन बराबर चला आता है इसी प्रकार सृष्टि के प्रलय और प्रलय के पूर्व सृष्टि तथा सृष्टि के पीछे प्रलय और प्रलय के सृष्टि अनादि काल से चक्र चला आता है। इसकी आदि वा अन्त किन्तु जैसे दिन वा रात का आरम्भ और अन्त देखने में आता है वैसे ही सृष्टि और प्रलय का आदि अन्त होता रहता है, क्योंकि जैसे मा, जीव, जगत् का कारण तीन स्वरूप से अनादि हैं, जैसे जगत् उत्पत्ति, स्थिति और वर्तमान प्रवाह से अनादि हैं, जैसे नदी का प्रवाह वैसा ही दीखता है कभी सूख जाता, कभी नहीं दीखता फिर भी दीखता और उष्णकाल में नहीं दीखता, ऐसे व्यवहारों को स्वरूप जानना चाहिये। जैसे परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव अनादि हैं उसी प्रकार उसके जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करना भी अनादि हैं। परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव का आरम्भ और अन्त नहीं इसी प्रकार उसके कर्त्तव्य कर्मों का भी आरम्भ और अन्त नहीं।

—(प्रश्न) ईश्वर ने किन्हीं जीवों को मनुष्य जन्म, किन्हीं को सिंहादि जन्म, किन्हीं को हरिण, गाय आदि पशु, किन्हीं को वृक्षादि कुम्भी आदि जन्म दिये हैं, इससे परमात्मा में पक्षपात आता है।

उत्तर) पक्षपात नहीं आता क्योंकि उन जीवों के पूर्व सृष्टि में किये हुए कर्मों के अनुसार व्यवस्था करने से, जो कर्म के बिना जन्म देता तो पक्षपात आता।

—(प्रश्न) मनुष्यों की आदि सृष्टि किस स्थल में हुई ?

उत्तर) त्रिविष्टप अर्थात् जिसको “त्रिविष्टप” कहते हैं।

—(प्रश्न) आदि सृष्टि में एक जाति थी वा अनेक ?

उत्तर) एक मनुष्य जाति थी पश्चात् “विजानीछार्यान्वे च” यह ऋग्वेद [१।५१।८] का वचन है। छेछों का नाम आर्य, देव और दुष्टों के दस्यु अर्थात् टाकू, मूर्ख नाम होने से आर्य और दस्यु हुए। “उत शूद्रे उतार्ये” अथर्ववेद [१९।६] वचन। आर्यों में पूर्वोक्त ऋषि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार भेद हुए। द्विज विद्वानों का नाम आर्य और मूर्खों का नाम शूद्र और अनार्य अर्थात् अनादी नाम हुआ।

(प्रश्न) फिर वे. यहाँ कैसे आये ?

फेफडा, पंखा कला का स्थापन, जीव का संयोजन, शिरो-
लोम नखादि का स्थापन, आंख की अतीव सूक्ष्म शिरा-
इन्द्रियों के मार्गों का प्रकाशन, जीव के जागृत, स्वप्न,
के भोगने के लिये स्थान विशेषों का निर्माण, सब धातु
कला, कौशल स्थापनादि अद्भुत सृष्टि के बिना परमेश्वर
सकता है ! इसके बिना नाना प्रकार के सब धातु से जिन
प्रकार वट वृक्ष आदि के बीजों में अति सूक्ष्म रचना, अन्न,
पीत, कृष्ण, चित्र, मध्यरूपों से गुक्त, पत्र, पुष्प, फल,
क्षार, कटुक, कषाय, तिक्त, अम्ल्यादि विविध रस-गु-
ण, फल, अन्न, कन्द, मूलादि रचन, अनेकानेक छोटी भूगो-
ल-लोहनिर्माण, धारण, आत्मनः, नियमों में रखना आदि
कई भी नहीं कर सकता । जब कोई किसी पदार्थ के
प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है । एक जैसा वह पदार्थ है
रचना देखकर बनाने वाले का ज्ञान है । जैसा किमी
आभूषण जंगल में पाया, देखा तो विदित हुआ कि वह
किमी बुद्धिमान् कारीगर ने बनाया है । इसी प्रकार वह
मे विविध रचना बनाने वाले परमेश्वर को निश्चय करते हैं ।

१.७—(प्रश्न) मनुष्य की सृष्टि प्रथम हुई या

(उत्तर) पृथिवी आदि की, क्योंकि पृथिव्यादि के
नियति और पालन नहीं हो सकता ।

(प्रश्न) सृष्टि की आदि में एक वा अनेक मनुष्य उत्पन्न

(उत्तर) अनेक, क्योंकि जिन जीवों के कर्म देखकर
हमारे के ये उनका जन्म सृष्टि का आदि में ईश्वर देता,
मनुष्यप्रश्न ये । ततो मनुष्या अजायन्त' यह मनुष्य
आत्मनः) [नल० १३।३ २। ५॥] में लिखा है । इस प्रमाण
के कि आदि में अनेक आत्माएँ सैकड़ों सहस्रों मनुष्य उत्पन्न
में उत्पन्न में ही निश्चित होता है कि मनुष्य अनेक में उत्पन्न

(प्रश्न) आदि सृष्टि में मनुष्य आदि की उत्पत्ति, जिन
के मनुष्य हुए थे आत्माओं में ?

(उत्तर) दुर्गायथा है, क्योंकि जो बालक उत्पन्न
प्रायः के होते हैं मनुष्य आत्मनः होते हैं और जो ब-

नी सृष्टि न होती, इसलिये युवावस्था में सृष्टि की है।

प्रश्न) कभी सृष्टि का प्रारम्भ है वा नहीं ?

उत्तर) नहीं, जैसे दिन के पूर्व रात और रात के पूर्व दिन तथा दिन के रात और रात के पीछे दिन बराबर चला आता है इसी प्रकार सृष्टि के प्रलय और प्रलय के पूर्व सृष्टि तथा सृष्टि के पीछे प्रलय और प्रलय के सृष्टि अनादि काल से चक्र चला आता है। इसकी आदि वा अन्त किन्तु जैसे दिन वा रात का आरम्भ और अन्त देखने में आता है वैसे ही सृष्टि और प्रलय का आदि अन्त होता रहता है, क्योंकि जैसे मा, जीव, जगत् का कारण तीन स्वरूप से अनादि हैं, जैसे जगत् सृष्टि, स्थिति और वर्तमान प्रवाह से अनादि हैं, जैसे नदी का वैसा ही दीखता है कभी सूख जाता, कभी नहीं दीखता फिर भी दीखता और उष्णकाल में नहीं दीखता, ऐसे व्यवहारों को रूप जानना चाहिये। जैसे परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव अनादि हैं उसी प्रकार उसके जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करना भी अनादि हैं। जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव का आरम्भ और अन्त नहीं इसी प्रकार उसके कर्तव्य कर्मों का भी आरम्भ और अन्त नहीं।

२—(प्रश्न) ईश्वर ने किन्हीं जीवों को मनुष्य जन्म, किन्हीं को सिंहादि जन्म, किन्हीं को हरिण, गाय आदि पशु, किन्हीं को वृक्षादि कृमि तन्त्रादि जन्म दिये हैं, इससे परमात्मा में पक्षपात आता है।

उत्तर) पक्षपात नहीं आता क्योंकि उन जीवों के पूर्व सृष्टि में किये हुए कर्मों के अनुसार व्यवस्था करने से, जो कर्म के बिना जन्म देता तो पक्षपात आता।

६—(प्रश्न) मनुष्यों की आदि सृष्टि किस स्थल में हुई ?

उत्तर) त्रिविष्टप अर्थात् जिसको "त्रिविष्टप" कहते हैं।

७—(प्रश्न) आदि सृष्टि में एक जाति थी वा अनेक ?

उत्तर) एक मनुष्य जाति थी पश्चात् "विजानीद्यार्य्यान्ये च" यह ऋग्वेद [१।५१।८] का वचन है। धेष्टो वा नाम आर्य्य, देव और दुष्टो के दस्यु अर्थात् डाकू, मूर्ख नाम होने से आर्य्य और दस्यु हुए। "उत शूद्रे उतार्ये" अथर्ववेद [१९।१] वचन। आर्य्यों में पूर्वोक्त वे पाक्ष्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार भेद हुए। द्विज विद्वानों का आर्य्य और मूर्खों का नाम शूद्र और अनार्य्य अर्थात् अनादी नाम हुआ।

प्रश्न) फिर वे यहाँ कैसे आये ?

(उत्तर) जब आर्य और दस्तुओं में अर्थात् विद्वान् जो देश जो असुर, उन में सदा लड़ाई बरपड़ा हुआ किया, जब युद्ध होने लगा तब आर्य लोग सब भूगोल में उत्तम इस भूमि के जान कर यही आकर बसे इसी से इस देश का नाम—

२१—(प्रश्न) आर्यावर्त की अवधि कहां तक है ?

(उत्तर)—

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ।

तयोरेवान्तरे गिर्यार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः ॥ १ ॥

सरस्वतीदृषद्वत्योदैवनद्योर्दन्तरम् ।

तं देवनिर्मितं देशमार्यावर्त्तं प्रचक्षते ॥ २ ॥ (

उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पूर्व और समुद्र ॥ १ ॥ तथा सरस्वती पश्चिम में अटक नदी, पूर्व में नेपाल के पूर्व भाग पहाड़ से निकल के बंगाल के आसाम के गंगा के पश्चिम ओर होकर दक्षिण के समुद्र में मिली है जिससे पुत्रा कहते हैं और जो उत्तर के पहाड़ों से निकल कर दक्षिण के गंगा में अटक ? मिली है हिमालय की मध्यरेखा से दक्षिण ओर के भीतर और रामेश्वर पर्यन्त विन्ध्याचल के भीतर जितने सब 'आर्यावर्त' इसलिये कहते हैं कि यह आर्यावर्त देश समाया और आर्य जनो के निवास करने से 'आर्यावर्त' कहा

(प्रश्न) प्रथम इस देश का नाम क्या था और इसमें कौन

(उत्तर) इसके पूर्व इस देश का नाम कोई भी नहीं था कोह आर्यों के पूर्व इस देश में बसते थे । क्योंकि आर्य लोग आदि में कुछ काल के पश्चात् तिब्बत से सूधे इसी देश में आये

२२—(प्रश्न) कोई कहते हैं कि यह लोग ईरान से आये लोगों का नाम आर्य हुआ है । इनके पूर्व यहां जंगली लोग जिनका असुर और राजम कहते थे । आर्य लोग अपने को देवज और उनका जब समाया हुआ उसका नाम देवागूर-रांग्राम कहा

(उत्तर) यह बात सही नहीं है क्योंकि—

विजानीताग्रोन्मये स दम्ययो सुदिप्यते रश्मया

म.० मं.० १। मू.० ४१।

उत्त शूद्र उताग ॥ [अथ० का० १९। व १२]

यह लिख चुके हैं कि आर्य नाम धार्मिक, विद्वान्, आस पुरुषों का । इनसे विपरीत जनों का नाम दस्यु अर्थात् डाकू, दुष्ट, अधार्मिक । अविद्वान् है । तथा घातण, क्षत्रिय, वैश्य द्विजों का नाम आर्य्य । शत्रु का नाम अनार्य्य अर्थात् अनाडी है । जब वेद ऐसे कहता है दूसरे विदेशियों के कपोलकल्पित को बुद्धिमान् लोग कभी नहीं मानते । और देवासुर सग्राम में आर्य्यावर्त्तीय अर्जुन तथा महाराजा दशरथ दि, हिमालय पहाड़ में आर्य और दस्यु, श्लेच्छ असुरों का जो युद्ध था, उसमें देव अर्थात् आर्यों की रक्षा और असुरों के पराजय करने सहायक हुए थे । इससे यही सिद्ध होता है कि आर्य्यावर्त्त के बाहरों ओर जो हिमालय के पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम, वायव्य, र, ईशान देश में मनुष्य रहते हैं उन्हीं का नाम 'असुर' सिद्ध होता है । कि जय जय हिमालय प्रदेशस्थ आर्यों पर लड़ने को चढाई करते थे । यहाँ के राजा महाराजा लोग उन्हीं उत्तर आदि देशों में आर्य्यों सहायक होते थे । और जो श्रीरामचन्द्रजी से दक्षिण में युद्ध हुआ है (का नाम देवासुर सग्राम नहीं है, किन्तु उसको रामरावण अथवा आर्य्य और राक्षसों का सग्राम कहते हैं) । किसी संस्कृत ग्रन्थ में या वेदास में नहीं लिखा कि आर्य्य लोग ईरान से आये और यहाँ के लियों को लटकर, जय पाके, निकाल इस देश के राजा हुए, पुनः देशियों का लेख माननीय कैसे हो सकता ? और —

चल्लवाचभार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥ मनु० १० । ४५ ॥
चल्लदेशस्तवतः परः ॥ [मनु० १ । २३ ॥]

जो आर्य्यावर्त्त देश से भिन्न देश हैं वे दस्युदेश और श्लेच्छदेश कहाते । इससे भी यह सिद्ध होता है कि आर्य्यावर्त्त में भिन्न पूर्व देश से पर ईशान, उत्तर, वायव्य और पश्चिम देशों में रहनेवालों का नाम दस्यु र श्लेच्छ तथा असुर है । और नैऋत्य, दक्षिण तथा आग्नेय दिशाओं में प्यारत देश में भिन्न में रहनेवाले मनुष्यों का नाम राक्षस था अब देव लो इसी लोगों का स्वरूप भयकर जैसा 'राक्षसों' का वर्णन किया गया ही दीया पड़ता है । और आर्य्यावर्त्त की सूध पर नीचे रहनेवालों का नाम 'नाग' और उस देश का नाम पाताल इसलिये कहते हैं कि पर देश आर्य्यावर्त्तीय मनुष्यों के पाद अर्थात् पग के तले है । और उनके नागवंशी अर्थात् नाग नामवाले पुरुष के वंश के राजा होने से बर्त्ता वी उल्लेखी राजबन्धा

(उत्तर) जब आर्य और दस्युओं में अर्थात् विद्वान् जो वेद, जो असुर, उन में सदा लड़ाई बखेड़ा हुआ किया, जब बहुत होने लगा तब आर्य लोग सब भूगोल में उत्तम इस भूमि में जान कर यहीं आकर बसे इसी से इस देश का नाम "आर्यावर्त"।

२१—(प्रश्न) आर्यावर्त की अवधि कहां तक है ?

(उत्तर)—

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ।
तयोरेवान्तरे गिर्योराय्यावर्त्तं विदुर्बुधाः ॥ १ ॥

सरस्वतीद्वयद्वयोर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।

तं देवनिर्मितं देशमार्यावर्त्तं प्रचक्षते ॥ २ ॥ (२)

उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पूर्व और समुद्र ॥ १ ॥ तथा सरस्वती पश्चिम में अटक नदी, पूर्व में नेपाल के पूर्व भाग पहाड़ से निकल के बंगाल के आसाम के ब्रह्मा के पश्चिम ओर होकर दक्षिण के समुद्र में मिली है 'विन्ध्या' कहते हैं और जो उत्तर के पहाड़ों से निकल कर दक्षिण के पर्वतों में अटक ? मिली है हिमालय की मथुरा से दक्षिण ओर के भीतर और रामेश्वर पर्यन्त विन्ध्याचल के भीतर जिनमें सबको 'आर्यावर्त' हमलिये कहते हैं कि यह आर्यावर्त देव अर्थात् बसाया और आर्य जनों के निवास करने से 'आर्यावर्त'।

(प्रश्न) प्रथम इस देश का नाम क्या था और इसमें कौन

(उत्तर) इसके पूर्व इस देश का नाम कोई भी नहीं था। क्योंकि आर्यों के पूर्व इस देश में बसते थे । क्योंकि आर्य लोग आरि में कुछ काल के पश्चात् निश्चय से सूधे इसी देश में आकर

२२—(प्रश्न) कोई कहते हैं कि यह लोग इरान से आये लोगों का नाम आर्य हुआ है । इनके पूर्व यहां जंगली लोग विषम आसुर और राक्षस कहते थे । आर्य लोग अपने को देवता मानते थे । उनका परमप्रायः उमर का नाम देवासुर-संप्राय कथाओं में

(उत्तर) यह बात सत्य है कि—
विद्वन्नीशायां ये नृ दस्यवो बुद्धिभ्रंत रन्ध्रया

क० मं० १ । सू० ५१ ।

उत शूद्र उदाय ॥ [अथ० का० १९ । म १२]

बहूँ लिख चुके हैं कि आर्य नाम धार्मिक, विद्वान्, आस पुरुषों का । इनसे विपरीत जनो का नाम दस्यु अर्थात् डाकू, दुष्ट, अधार्मिक । अविद्वान् है । तथा द्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्विजों का नाम आर्य्य । गृध्र का नाम अनार्य्य अर्थात् अनाडी है । जब वेद ऐसे कहता है दूमरे विदेशियों के कपोलकल्पित को बुद्धिमान् लोग कभी नहीं मानते । और देवासुर संग्राम में आर्यावर्तीय अर्जुन तथा महाराजा दशरथ दि, हिमालय पहाड़ में आर्य और दस्यु, म्लेच्छ असुरों का जो युद्ध था, उसमें देव अर्थात् आर्यों की रक्षा और असुरों के पराजय करने सहायक हुए थे । इससे यही सिद्ध होता है कि आर्यावर्त के बाहरों ओर जो हिमालय के पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम, वायव्य, ईशान देश में मनुष्य रहते हैं उन्हीं का नाम 'असुर' सिद्ध होता है । कि जय जय हिमालय प्रदेशस्थ आर्यों पर लड़ने को चढ़ाई करते थे । १ यहाँ के राजा महाराजा लोग उन्हीं उत्तर आदि देशों में आर्यों सहायक होते थे । और जो श्रीरामचन्द्रजी से दक्षिण में युद्ध हुआ है उसका नाम देवासुर संग्राम नहीं है, किन्तु उसको रामरावण अथवा आर्य्य और राक्षसों का संग्राम कहते हैं । किसी संस्कृत ग्रन्थ में वा तैहास में नहीं लिखा कि आर्य्य लोग ईरान से आये और यहाँ के राज्यों को लड़कर, जय पाके, निकाल इस देश के राजा हुए, पुनः विदेशियों का लेख माननीय कैसे हो सकता ? और—

चक्षुवाचक्षार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥ मनु० १० । ४५ ॥

चक्षुदेशस्त्वतः परः ॥ [मनु० १ । २३ ॥]

जो आर्यावर्त देश से भिन्न देश है वे दस्युदेश और म्लेच्छदेश कहाते । इनसे भी यह सिद्ध होता है कि आर्यावर्त से भिन्न पूर्व देश से ईशान, उत्तर, वायव्य और पश्चिम देशों में रहनेवालों का नाम दस्यु । म्लेच्छ तथा असुर है । और नैऋत्य, दक्षिण तथा आग्नेय दिशाओं में आर्यावर्त देश से भिन्न में रहनेवाले मनुष्यों का नाम राक्षस था अब देखो हमारी लोगों का स्वरूप भयवर जैसा 'राक्षसों' का वर्णन किया जाता ही दीख पड़ता है । और आर्यावर्त की सूँध पर नीचे रहनेवालों का नाम 'नाग' और उस देश का नाम पाताल इसलिये कहते हैं कि वह देश आर्यावर्त मनुष्यों के पाद अर्थात् पाँव के तले है । और उनके नागवशी अर्थात् नागवाले पुरुष के घंटा के राजा होते थे इसी की उल्लेख ।

से अर्जुन का विवाह हुआ था। अर्थात् इक्ष्वाकु से लेकर तब तक सर्व भूगोल में आर्यों का राज्य और वेदों का थोड़ा २ प्रकार वर्त से भिन्न देशों में भी रहता था। इसमें यह प्रमाण है कि पुत्र विराट्, विराट् का मनु, मनु के मरीच्यादि दश, इनके सात राजा और उनके सन्तान इक्ष्वाकु आदि राजा जो आर्यावर्त के राजा हुए जिन्होंने यह आर्यावर्त बसाया है। अब अभाम्बोष के आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के की तो कथा ही क्या कहनी किन्तु आर्यावर्त में भी आर्यों का स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार के दुःख भोगना कोई क्लिप्ता ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रहहित, अपने और पार्ष्व पालशुण्य, प्रजा पर पिता माता के समान कृपा, न्याय और विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। परन्तु भिन्न २ पृथक् २ शिक्षा, अलग व्यवहार का विरोध नृपना अति दुष्कर है। हमारे कंट परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना हमलोगों जो कुछ वेदादि शास्त्रों में व्यवस्था या इतिहास लिखे मान्य करना भद्रपुरुषों का काम है।

२३--(प्रश्न) जगत् की उत्पत्ति में कितना समय व्यतीत हुआ?

(उत्तर) एक अर्ब, छानमें कौड़, कंट लाव और कंट मयूक की उत्पत्ति और वेदों के प्रकाश होने में हुए है। इसका स्पष्ट मेरा ब्रह्मर्षि 'श्रुति' में लिखा है, देव गणितों। इत्यादि प्रमाण बताते और बताने में हैं। और यह भी है कि सबसे गूढ़म दुर्लभ जगत् नहीं जाना उसका नाम परमाणु, साठ परमाणुओं के मिले मात्र अणु, दो अणु का एक द्व्यणु जो स्वच्छ वायु है, तीन द्व्यणु प्र, चार द्व्यणु का जल, पाँच द्व्यणु की पृथिवी अर्थात् पृथ्वी प्रमाण और उसका दूना होने में पृथिवी आदि द्रव्य गणना करें हमें प्रमाण प्रमाण में मिलेगा भूगोलीय परमाणु ने बताने है।

२४--(प्रश्न) इसका कारण कौन करता है? कौन करता है?

* पृथिवी परमाणु के बने पृथिवी तत्व का देना।

अर्थात् सहस्र फण वाले सर्प के शिर पर पृथिवी है । दूसरा कहता है
 ५ बैल के सींग पर, तीसरा कहता है किसी पर नहीं, चौथा कहता है
 ५ वायु के आधार, पाचवां कहता है सूर्य के आकर्षण से खैची हुई अपने
 काने पर स्थित, छठा कहता है कि पृथिवी भारी होने से नीचे १ आकाश
 चली जाती है । इत्यादि में किस बात को सत्य माने ?

(उत्तर) जो शेष, सर्प और बैल के सींग पर धरी हुई पृथिवी
 स्थान बतलाता है उसको पूछना चाहिये कि सर्प और बैल के मां बाप के
 जन्म समय किस पर थी ? सर्प और बैल आदि किस पर हैं ? बैलवाले
 इसलमान तो चुप ही कर जायेंगे, परन्तु सर्पवाले कहेंगे कि सर्प कूर्म
 पर, कूर्म जल पर, जल अग्नि पर, अग्नि वायु पर और वायु आकाश मे-
 ढरा है । उनसे पूछना चाहिये कि सब किस पर है ? तो अवश्य कहेंगे
 परमेश्वर पर । जब उनसे कोई पूछेगा कि शेष और बैल किस का बच्चा
 है ? कहेंगे कश्यप कद्रु और बैल गाय का । कश्यप मरीची, मरीची मनु,
 मनु विराट् और विराट् ब्रह्मा का पुत्र, ब्रह्मा आदि सृष्टि का था । जब शेष
 का जन्म न हुआ था उसके पहले पांच पीढ़ी हो चुकी हैं तब किसने
 धारण की थी ? अर्थात् कश्यप के जन्म समय में पृथिवी किस पर थी,
 तो “तेरी चुप मेरी भी चुप” और लड़ने लग जायेंगे । इसका सच्चा अभिप्राय
 यह है कि जो “बाकी” रहता है उसको ‘शेष’ कहते हैं । सो किसी कवि
 ने “शेषाधारा पृथिवीत्युक्तम्” ऐसा कहा कि शेष के आधार पृथिवी
 है । दूसरे ने उसके अभिप्राय को न समझ कर सर्प की मिया कल्पना
 करली । परन्तु जिसलिये परमेश्वर उत्पत्ति और प्रलय सेवाकी अर्थात् पृथक्
 रहता है इसीसे उसको “शेष” कहते हैं और उसी के आधार पृथिवी है—

सत्येनोत्तमिता भूमिः ॥ १० । ८५ । १ ॥

यह ऋग्वेद का वचन है । (सत्य) अर्थात् जो त्रैकाल्यावाध्य
 जिसका कभी नाश नहीं होता उस परमेश्वर ने भूमि, आदित्य और सब
 लोकों का धारण किया है ॥

उक्षा दाधार पृथिवीमुत घाम् * ॥

यह भी ऋग्वेद का वचन है—इसी ‘उक्षा’ शब्द को देखकर किसी
 ने बैल का ग्रहण किया होगा, क्योंकि उक्षा बैल का भी नाम है । परन्तु

* ऋग्वेद में—‘उक्षा स दावापृथिवी दिभर्ति’ ॥ १० । ३१ । ८ । यह
 वचन है । अथर्ववेद में—अनद्यान् दाधार पृथिवीमुत घाम् ॥ ५ । ११ । १० ।

है। जैसे राई के सामने पहाड़ घूमे तो बहुत देर लगती और घूमने में बहुत समय नहीं लगता वैसे ही पृथिवी के घूमने से यथायोग्य रात होता है, सूर्य के घूमने से नहीं। और जो सूर्य को ध्रुव भाँ ज्योतिर्विद्यावित् नहीं। क्योंकि यदि सूर्य में घूमता होता तो पृथ्वी स्थान से दूसरी राशि अर्थात् स्थान को प्राप्त न होता और गुण गिना घूमे आकाश में नियत स्थान पर कभी नहीं रह सकता। और कहते हैं कि पृथिवी घूमती नहीं किन्तु नीचे चली जाती है और जो दो चन्द्र केवल जवूदीप में बतलाते हैं वे तो गहरी भाँग के नशे में हैं, क्यों ? जो नीचे चली जाती तो चारों ओर वायु के चक्र न बनने लिये भिन्न होती और निम्नस्थलों में रहने वालों को वायु का स्पर्श न नीचे वालों को अधिक होता और एकसी वायु की गति होती, तो होते तो रात और कृष्ण पक्ष का होना ही नष्ट भ्रष्ट होता। इसलिये पृथ्वी के पास एक चन्द्र और अनेक भूमियों के मध्य में एक सूर्य रहता है।

२७—(प्रश्न) सूर्य, चन्द्र और तारे क्या वस्तु हैं और उनमें क्या व्यापकता है ?

है, क्योंकि—
(उत्तर) ये सब भूगोल लोक और इनमें मनुष्यादि प्राणी भी हैं।

पुनरुद्दीदथं सर्वं वस्तु हितमेते ह्रीदथं सर्वं वासयन्ते
तथादिदथं सर्वं वासयन्ते तस्माद्वसव इति ॥

यन्ते तस्मादस्य इति ॥
 भा० का० १४ । [प्र० १ । वा० ७ ।]

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्र, नक्षत्र और सूर्य
'यम्' नाम इत्यन्ये हि हि इन्हीं में सब पदार्थ और प्रजा वसती
ये ही सबसे बरतते हैं। जिसलिये घाम के, निवास करने के घर
'य' इत्यादि नाम 'यम्' हैं। जब पृथिवी के समान सूर्य, चन्द्र और
सूर्य के समान उनसे इसी प्रकार प्रजा के होने में क्या संदेह ?
यह सब का यह छोटा सा लोक मनुष्यादि सृष्टि से भरा हुआ है तो
यह सब का यह बड़ा लोक ? परमेश्वर का कोई भी काम निष्काम
होना तो क्या होने असम्भव होना ही मनुष्यादि सृष्टि में ही
असम्भव होना ही संभव है ? इत्यन्ये सर्वत्र मनुष्यादि सृष्टि हैं।

(प्र. ४) देव इस देव में मनुष्यादि मृष्ट की जाति अथवा देव की मृष्ट में से ही होती या विभिन्न ?

(उत्तर) कुछ १ आकृति में भेद होने का सम्भव है। जैसे इस में चीन, द्रव्य और आर्यावर्त्त, यूरोप में अवयव और रत्न रूप और कृति का भी थोड़ा २ भेद होता है इसी प्रकार लोक लोकान्तरों में भी होते हैं। परन्तु जिस जाति की जैसी सृष्टि इस देश में है वैसी जाति की सृष्टि अन्य लोकों में भी है। जिस १ शरीर के प्रदेश में नेत्रादि है उसी १ प्रदेश में लोकान्तर में भी उसी जाति के अवयव भी वैसे होते हैं क्योंकि—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत् ।

दिवं च पृथिवीं चान्तरेक्ष्मणो स्वः ॥ ऋ० म० १० । सू० १९० ॥

(धाता) परमात्मा ने जिस प्रकार के सूर्य, चन्द्र, धौ, भूमि, अन्तःक्ष और तन्मय सुखविशेष पदार्थ पूर्व कल्प में रचे थे वैसे ही इस क्ष अर्थात् इस सृष्टि में रचे हैं तथा सब लोक लोकान्तरों में भी बनाये गये हैं। भेद किञ्चिन्मात्र नहीं होता।

२८—(प्रश्न) जिन वेदों का इस लोक में प्रकाश है उन्हीं का अन्य लोकों में भी प्रकाश है वा नहीं ?

(उत्तर) उन्हीं का है। जैसे एक राजा की राज्यव्यवस्था नीति सब लोकों में समान होती है उसी प्रकार परमात्मा राजराजेश्वर की वेदोक्त नीति अपने २ सृष्टिरूप सब राज्य में एकसी है।

(प्रश्न) जब ये जीव और प्रकृतिस्थ तत्त्व अनादि और ईश्वर के बनाये नहीं तो ईश्वर का अधिकार भी इन पर न होना चाहिये क्योंकि सब स्वतन्त्र हुए ?

(उत्तर) जैसे राजा और प्रजा समकाल में होते हैं और राजा के आधीन प्रजा होती है वैसे ही परमेश्वर के आधीन जीव और जड पदार्थ हैं। जब परमेश्वर सब सृष्टि का बनाने, जीवों के कर्मफलों के देने, सब पदार्थों का रक्षक और अनन्त सामर्थ्य वाला है तो अल्प सामर्थ्य भी और जड पदार्थ उसके आधीन क्यों न हो ? इसलिये जीव कर्म करने में स्वतन्त्र परन्तु कर्मों के फल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र हैं, वैसे सर्वशक्तिमान् सृष्टि, सहार और पालन सब विश्व का करता है।

इसके आगे विद्या, अविद्या, बन्ध और मोक्ष विषय में लिखा होगा, यह आठवां समुदास पूरा हुआ ॥ ८ ॥

इति धीमद्व्यानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते सृष्ट्युत्पत्तिस्थितिप्रलयविषयेऽष्टमः समुदासः सम्पूर्णः ॥ ८ ॥

अथ नवमसमुह्लासारम्भः

अथ विद्याऽविद्याबन्धमोक्षविषयान्

व्याख्यास्यामः

१—विद्यां चाऽविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह ।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥

यजुः ॥ अ० ४० । ३

जो मनुष्य विद्या और अधिद्या के स्वरूप को साध ही ता
 है वह अधिद्या अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को तर के विद्या
 ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है ।

अविद्या का लक्षण—

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु

[पालं० द० साधनपात्रे]

यह योगसूत्र का वचन है। जो अनित्य संसार और देहादि में निबिड
जो कार्य जगत् देखा सुना जाता है, सदा रहेगा, सदा से है जो
मे नहीं देरों का शरीर सदा रहता है वैसी निपरीत बुद्धि होना
प्रथम भाग है। अशुचि अर्थात् मलमय स्थादि के और निपरीत
आदि अपवित्र में पवित्र बुद्धि दूसरा, अन्यन्त
गुणबुद्धि आदि तीसरा, अनात्मा में आत्मबुद्धि करना अविद्या का
यह चार प्रकार का निपरीत ज्ञान 'अविद्या' कहती है। इससे
अनित्य में अनित्य और नित्य में नित्य, अपवित्र में अपवित्र और
पवित्र, दुःख में दुःख, गुण में गुण, अनात्मा में अनात्मा और
तत्त्वा का ज्ञान होना 'विद्या' है अर्थात्—

मन्त्रों का ज्ञान होना 'विद्या' है अर्थात्—
 'विदन्ति यथावभाष्यपदार्थस्वरूपं यथा सा विद्या, यथा
 च रस्य न जानाति, अस्मादन्यस्मिन्नन्यविशिष्टोति यथा सा
 विद्या' पदार्थों का यथावत् स्वरूप और होवे यह 'विद्या' है।
 यथावत् स्वरूप जान पड़े, अन्य से अन्य यदि होवे यह 'अविद्या'
 है। अर्थात् यथावत् ज्ञान उपायाना अविद्या दृग्गति है कि यथा
 अन्य विद्याविषय है, अविद्याविषय नहीं। अर्थात् यथावत् है यथा
 यदि यथावत् ज्ञान उपायाना है अविद्या है अविद्याविषय है यथा

१। अर्थात् पवित्र कर्म, पवित्रोपासना और पवित्र ज्ञान ही से मुक्ति और वेत्र मिथ्याभाषणादि कर्म, पापाणभूत्यादि की उपासना और मिथ्याज्ञान बन्ध होता है। कोई भी मनुष्य क्षणमात्र भी कर्म, उपासना और ज्ञान हित नहीं होता। इसलिये धर्मउक्त सत्यभाषणादि कर्म करना और भाषणादि अधर्म को छोड़ देना ही मुक्ति का साधन है।

२—(प्रश्न) मुक्ति किसको प्राप्त नहीं होती? (उत्तर) जो बद्ध है।

(प्रश्न) बद्ध कौन है? (उत्तर) जो अधर्म, अज्ञान में फसा हुआ जीव है।

(प्रश्न) बन्ध और मोक्ष स्वभाव से होता है वा निमित्त से?

(उत्तर) निमित्त से, क्योंकि जो स्वभाव से होता तो बन्ध और मुक्ति की निवृत्ति कभी नहीं होती।

३—(प्रश्न) न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।

न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥

[गौडपादीयकारिका प्र० १। का० ३२]

यह श्लोक माण्डूक्योपनिषद् पर है। जीव ब्रह्म होने से वस्तुतः जीव निरोध अर्थात् न कभी आवरण में आया, न जन्म लेता, न बन्ध है न साधक अर्थात् न कुछ साधना करने द्वारा है, न छूटने की इच्छा है और न इसकी कभी मुक्ति है क्योंकि जब परमार्थ से बन्ध ही नहीं तो मुक्ति क्या?

(उत्तर) यह नवीन वेदान्तियों का कहना सत्य नहीं। क्योंकि जीव का स्वरूप अल्प होने से आवरण में आता, शरीर के साथ प्रकट रूप जन्म लेता, पापरूप कर्मों के फलभोगरूप बन्धन में फँसता, दुखाने का साधन करता, दुःख से छूटने की इच्छा करता और दुःख छोड़कर परमानन्द परमेश्वर को प्राप्त होकर मुक्ति को भी भोगता है।

३—(प्रश्न) ये सब धर्म देह और अन्तःकरण के हैं, जीव के नहीं। जीव तो पाप पुण्य से रहित साक्षिमात्र है। शीतोष्णादि शरीरादि धर्म हैं, आत्मा निर्लेप है।

(उत्तर) देह और अन्तःकरण जड़ हैं उनका शीतोष्ण प्राप्ति और भोग नहीं है। जो चेतन मनुष्यादि प्राणि उसको स्पर्श करता है उसी को शीत उष्ण मान और भोग होता है। वैसे प्राण भी जड़ है, न उनको भूख, न पिपासा, न प्राण वाले जीव को धुंधा, तृषा लगती है वैसे ही मन भी जड़ है, न दर्प न शोक हो सकता है बिन्नु मन से हर्ष शोक, दुःख सुख का

भोग जीव करता है। जैसे वहिष्करण श्रोत्रादि इन्द्रियों से शब्दादि विषयों का ग्रहण करके जीव सुखी दुःखी होता है वैसे ही अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार से सकल्प विकल्प, क्रोध और अभिमान का करनेवाला दण्ड और मान्य का भागी तलवार से मारनेवाला दण्डनीय होता है तलवार नहीं होती। देहेन्द्रिय अन्तःकरण और प्राणरूप साधनों से अच्छे बुरे जीव सुख दुःख का भोक्ता है, जीव कर्मों का साक्षी नहीं, भोक्ता है। कर्मों का साक्षी तो एक अद्वितीय परमात्मा है। करनेवाला जीव है वही कर्मों में लिप्त होता है, वह ईश्वरमाया

४—(प्रश्न) जीव ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है। जैसे दर्पण के चित्र की कुछ हानि नहीं होती इसी प्रकार अन्तःकरण में ब्रह्म का जीव तबतक है कि जबतक वह अन्तःकरणोपाधि है। जब हो गया तब जीव मुक्त है ?

(उत्तर) यह बालरूपन की बात है क्योंकि प्रतिबिम्ब गायत्र में होता है जैसे मुग और दर्पण आकारवाले हैं ही हैं। जो पृथक् न हो तो भी प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता। सर्वव्यापक होने से उसका प्रतिबिम्ब ही नहीं हो सकता।

(प्रश्न) देखो गर्भीर स्वच्छ जल में निराकार और व्यापक का आभास पड़ता है इसी प्रकार स्वच्छ अन्तःकरण में आभास है। उमलिये इससे 'निदानाम' कहते हैं।

(उत्तर) यह बालरूपि का मित्या प्रमाण है। क्योंकि जल में ना टपकां आंग से कांटे नी क्योंकर डाल सकता है ?

(प्रश्न) यह तो ऊपर को नीला और नीचे नीला या हलु नीला दीपता है या नहीं ?

(उत्तर) नहीं।

(प्रश्न) तो यह क्या है ?

(उत्तर) अन्तःकरण ३ प्रमाणों पर तब जीव अस्मि के समान प्रकट हो नीलाग दीपति है यह प्रमाण तब तो कि प्रमाण तब, तो प्रमाण तब प्रमाण है यह प्रमाणों में प्रमाण प्रमाण है, प्रमाण ही, प्रमाण ही, प्रमाण ही का प्रतिबिम्ब जल या तब प्रमाण ही प्रमाण ही प्रमाण ही।

५—(प्रश्न) जैसे घटाकाश, मठाकाश, मेघाकाश और महदाकाश के भेद
 धार में होते हैं वैसे ही ब्रह्म के ब्रह्माण्ड और अन्तःकरण उपाधि के भेद
 धार और जीव नाम होता है। जब, घटादि नष्ट हो जाते हैं तब महा-
 ही कहा जाता है।

(उत्तर) यह भी बात अविद्वानों की है। क्योंकि आकाश कभी छिन्न
 नहीं होता। व्यवहार में भी 'घटा लाभो' इत्यादि व्यवहार होते हैं,
 नहीं कहता कि घटे का आकाश लाभो। इसलिये यह बात ठीक नहीं।

(प्रश्न) जैसे समुद्र के बीच में मच्छी, कीड़े और आकाश के बीच
 भी आदि घूमते हैं वैसे ही चिदाकाश ब्रह्म में सब अन्तःकरण घूमते
 स्वयं तो जड़ है परन्तु सर्वव्यापक परमात्मा की सत्ता से जैसा कि
 से लोहा वैसे चेतन हो रहे हैं। जैसे वे चलते फिरते और आकाश
 ब्रह्म निश्चल है, वैसे जीव को ब्रह्म मानने में कोई दोष नहीं
 ।

(उत्तर) यह भी तुम्हारा दृष्टान्त सत्य नहीं क्योंकि जो सर्वव्यापी
 अन्तःकरणों में प्रकाशमान होकर जीव होता है तो सर्वज्ञादि गुण उस
 में हैं वा नहीं। जो कहो कि आवरण होने से सर्वज्ञता नहीं होती
 हो कि ब्रह्म आवृत और खण्डित है वा अखण्डित? जो कहो कि
 खण्डित है तो बीच में कोई भी पड़दा नहीं डाल सकता। जब पड़दा नहीं
 सर्वज्ञता क्यों नहीं? जो कहो कि अपने स्वरूप को भूलकर अन्तःकरण
 में चला सा है, स्वरूप से नहीं, जब स्वयं नहीं चलता तो
 अन्तःकरण जितना २ पूर्व प्राप्त देश छोड़ता और भागे १ जहाँ २ सरकना
 का वहाँ २ का ब्रह्म भ्रान्त, अज्ञानी हो जायगा और जितना २ छूटता
 का वहाँ १ का ज्ञानी, पवित्र और मुक्त होता जायगा। इसी प्रकार
 सृष्टि के ब्रह्म को अन्तःकरण बिगाटा करेगे और बन्ध, मुक्ति भी क्षण क्षण
 हो करेगी। तुम्हारे कहे प्रमाणों जो वैना होता तो किसी जीव को पूर्व
 सुने या स्मरण न होता क्योंकि जिस ब्रह्म ने देखा वह नहीं रहा इसलिये
 जीव, जीव ब्रह्म एक कभी नहीं होता। सदा पृथक् पृथक् १ है।

६—(प्रश्न) यह सब अध्यारोपनात्र है। अर्थात् अन्य वस्तु में अन्य वस्तु
 आरोपन करना 'अध्यारोप' कहा जाता है वैसे ही ब्रह्म वस्तु में सब जगत् और
 व्यवहार का अध्यारोप करने से जिज्ञासु को दोष बराना होता है
 ।
 यह सब सत्य ब्रह्म ही है।

भोग जीव करता है। जैसे यहिणकरण श्रोत्रादि इन्द्रियों से शब्दादि विषयों का ग्रहण करके जीव सुखी दुःखी होता है ऐसे ही अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार से सङ्कल्प विकल्प, और अभिमान का करनेवाला दण्ड और मान्य का भागी होता तलवार से मारनेवाला दण्डनीय होता है तलवार नहीं छोटी देहेन्द्रिय अन्तःकरण और प्राणरूप साधनों से अच्छे बुरे कर्मों जीव सुख दुःख का भोक्ता है, जीव कर्मों का साक्षी नहीं, भोक्ता है। कर्मों का साक्षी तो एक अद्वितीय परमात्मा करनेवाला जीव है वहीं कर्मों में लिप्त होता है, वह ईश्वरमाक्षी

४—(प्रश्न) जीव ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है। जैसे दर्पण के बिम्ब की कुछ हानि नहीं होती इसी प्रकार अन्तःकरण में जीव तबतक है कि जबतक वह अन्तःकरणोपाधि है। जब हों गया तब जीव मुक्त है ?

(उत्तर) यह बालकपन की गान है क्योंकि प्रतिबिम्ब साक्षर में होता है जैसे मुख और दर्पण आकारवाले भी हैं। जो धूयक न हो तो भी प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता। मध्यापक होने से उसका प्रतिबिम्ब ही नहीं हो सकता।

(प्रश्न) देगो गर्भार स्त्रोत्र जल में निराकार और आभास पड़ता है इसी प्रकार स्त्रोत्र अन्तःकरण में आभास है। इसलिये हमसे 'विदाभास' कहते हैं।

(उत्तर) यह बालबुद्धि का मित्या प्रकाश है। जल में तो हमसे आभास से कोई भी क्योंकि जल में

(प्रश्न) यह जो उपर की नीला और धूमिलान प्राधान्य भाग पड़ता है या नहीं ?

(उत्तर) नहीं।

(प्रश्न) तो यह क्या है ?

(उत्तर) प्रकाश २ पृथिवी जल और अग्नि के कारण हमसे जो नीला भाग पड़ता है वह अद्विक जल जो कि प्रकाश के कारण प्रकाशित होता है वह पृथिवी से प्रकाशित होता है, वह नीला है, और इसी का प्रतिबिम्ब जल में पड़ता है, प्रकाश का कर्ता नहीं।

५—(प्रश्न) जैसे घटाकाश, मटाकाश, मेघाकाश और महदाकाश के भेद शर में होते हैं वैसे ही ब्रह्म के घणाण्ड और अन्तःकरण उपाधि के भेद शर और जीव नाम होता है। जब घटादि नष्ट हो जाते हैं तब महा-ही कहाता है।

(उत्तर) यह भी बात अविद्वानों की है। क्योंकि आकाश कभी छिन्न नहीं होता। व्यवहार में भी 'घडा लाओ' इत्यादि व्यवहार होते हैं, नहीं कहता कि घड़े का आकाश लाओ। इसलिये यह बात ठीक नहीं।

(प्रश्न) जैसे समुद्र के बीच में मच्छी, कीड़े और आकाश के बीच में आदि घूमते हैं वैसे ही बिदाकाश ब्रह्म में सब अन्तःकरण घूमते स्वयं तो जड़ हैं परन्तु सर्वव्यापक परमात्मा की सत्ता से जैसा कि से लोहा वैसे चेतन हो रहे हैं। जैसे वे चलते फिरते और आकाश ब्रह्म निश्चल है, वैसे जीव को ब्रह्म मानने में कोई दोष नहीं

॥

(उत्तर) यह भी तुम्हारा दृष्टान्त सत्य नहीं क्योंकि जो सर्वव्यापी अन्तःकरणों में प्रकाशमान होकर जीव होता है तो सर्वज्ञादि गुण उस होते हैं वा नहीं? जो कहो कि आवरण होने से सर्वज्ञता नहीं होती कहो कि ब्रह्म आवृत और खण्डित है या अखण्डित? जो कहो कि ण्डित है तो बीच में कोई भी पदार्थ नहीं डाल सकता। जब पदार्थ नहीं सर्वज्ञता क्यों नहीं? जो कहो कि अपने स्वरूप को भूलकर अन्तःकरण साथ चलता सा है, स्वरूप से नहीं, जब स्वयं नहीं चलता तो अन्तःकरण जितना २ पूर्व प्राप्त देश छोड़ता और भागे १ जहां २ सरकना गा वहा २ का ब्रह्म भ्रान्त, अज्ञानी हो जायगा और जितना २ छूटना गा वहा १ का ज्ञानी, पवित्र और मुक्त होता जायगा। इसी प्रकार प्रसृष्टि के ब्रह्म को अन्तःकरण बिगाड़ा करेंगे और वन्ध, मुक्ति भी क्षण क्षण जा करेगी। तुम्हारे कहे प्रमाणे जो वैसा होता तो किसी जीव को पूर्व सुने का स्मरण न होता क्योंकि जिस ब्रह्म ने देखा वह नहीं रहा इसलिये जीव, जीव ब्रह्म एक कभी नहीं होता, सदा पृथक् पृथक् १ है।

६—(प्रश्न) यह सब अध्यारोपनात्र है। अर्थात् अन्य वस्तु में अन्य वस्तु स्थापन करना 'अध्यारोप' कहाता है वैसे ही ब्रह्म वस्तु में सब जगत् और के व्यवहार का अध्यारोप करने से जिज्ञासु को दोष बराना होता तब में सब ब्रह्म ही है।

(प्रश्न) * आचारोप का करने वाला कौन है ? (उत्तर)

(प्रश्न) जीव हिंस को कहते हो ?

(उत्तर) अन्तःकरणावच्छिन्न चेतन को ।

(प्रश्न) अन्तःकरणावच्छिन्न चेतन दूसरा है या वही ?

(उत्तर) वही वस्तु है ।

(प्रश्न) तो क्या जल ही ने अपने में जगत् की सृष्टि

(उत्तर) हो, बल की इससे क्या हानि ?

(प्रश्न) जो मिथ्या कल्पना करता है क्या वह सत्य

(उत्तर) नहीं, क्योंकि जो मन, वाणी से, कल्पित व
गर्भ होता है ।

(प्रश्न) फिर मन वाणी से सृष्टि कल्पना करने और
वाक्य प्रत्यक्ष कल्पित और मिथ्यावादी हुआ या नहीं ?

(उत्तर) हाँ, हमको दृष्टापत्ति है !

वाक्य रं शब्द वेदान्तियों ! तुमने सत्यस्वरूप, सत्यमात्र,
परमात्मा का मिथ्याचारी कर दिया । क्या यह तुम्हारी तुम्हारी
नहीं है ? फिर उपनिषद्, गूण वा वेद में लिखा है कि
सत्य और मिथ्यावादी है ? क्योंकि जैसे किमी और वे
दण्ड दिया अबोध 'दण्डित और कोतवाल को दण्डे' इस
तुम्हारी बात हुई । यह तो बात उचित है कि कोतवाल और
यह बात विपरीत है कि कोतवाल को दण्ड देते । कि
सत्य और मिथ्यावादी होकर नहीं अपना दोष प्राप्त में लगे
प्रत्यक्ष मिथ्यावादी, मिथ्यावादी, मिथ्याचारी होने तो गलत
ही तो गलत स्यात्, यह प्रकट है, सत्यस्वरूप, सत्यमात्र,
सत्यचारी है । यह सब दोष गम्यते हैं, बल के नहीं । किन्तु
सत्य रं सत्य है और तुम्हारा आचारोप भी मिथ्या है
जो सत्य स्वरूप को सत्य और सत्य को सत्य मानना यह मिथ्या
न सत्य है । सत्य सत्य है यह परिच्छिन्न, अज्ञान और
अज्ञान, अज्ञान प्रकृत प्रकृत, अज्ञान, अज्ञान
है, अज्ञान, अज्ञान प्रकृत प्रकृत ।

* यह प्रश्न १८० के अंश ३५२ पृष्ठान्त में है ।

—अब मुक्ति बन्धन का वर्णन करते हैं ॥

प्रश्न) मुक्ति किसको कहते हैं ?

उत्तर) 'मुञ्चन्ति पृथग्भवन्ति जना यस्यां सा मुक्तिः' जिस जगह हो उस का नाम 'मुक्ति' है ।

प्रश्न) किससे छूट जाना ?

उत्तर) जिससे छूटने की इच्छा सब जीव करते हैं ।

प्रश्न) किससे छूटने की इच्छा करते हैं ?

उत्तर) जिससे छूटना चाहते हैं ।

प्रश्न) किससे छूटना चाहते हैं ?

उत्तर) दुःख से ।

प्रश्न) छूटकर किसको प्राप्त होते और कहा रहते हैं ?

उत्तर) सुख को प्राप्त होते और ब्रह्म में रहते हैं ।

प्रश्न) मुक्ति और बन्ध किन २ बातों से होता है ।

उत्तर) परमेश्वर की आज्ञा पालने, अधर्म, अविद्या, कुसंग, कुसंगरे व्यसनों से अलग रहने और सत्यभाषण, परोपकार, विद्या रहित न्याय, धर्म की वृद्धि करने, पूर्वोक्त प्रकार से परमेश्वर की गार्हना और टपासना अर्थात् योगाभ्यास करने, विद्या पढ़ने, पढ़ाने से पुरपार्थ कर ज्ञान की उन्नति करने, सब से उत्तम साधनों से और जो कुछ करे वह सब पक्षपातरहित न्यायधर्मानुसार ही आदि साधनों से मुक्ति और इनसे विपरीत ईश्वराज्ञाभङ्ग करने आदि बन्ध होता है ।

—(प्रश्न) मुक्ति में जीव का लय होता है वा विद्यमान रहता है ?

उत्तर) विद्यमान रहता है ?

प्रश्न) कहा रहता है ?

(उत्तर) ब्रह्म में ।

उत्तर) ब्रह्म कहा है और वह मुक्त जीव एक ठिकाने रहता है वा गरी होकर सर्वत्र विचरता है ?

प्रश्न) जो ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है उसी में मुक्त जीव अव्याहतगति अर्थात् कहीं रुकावट नहीं, विज्ञान आनन्द पूर्वक स्वतन्त्र विचरता है ।

प्रश्न) मुक्त जीव का स्थूल शरीर होता है वा नहीं ?

उत्तर) नहीं रहता ।

प्रश्न) फिर वह सुख और आनन्द भोग कैसे करता है ?

(उत्तर) उसके सत्य सङ्कल्पादि स्वाभाविक गुण साक्ष्य हैं, भौतिक सङ्ग नहीं रहता, जैसे—

श्रावन् श्रोत्रं भवति, स्पर्शयन् त्वग्भवति, पश्यन् भवति, रसयन् रसना भवति, जिघ्रन् घ्राणं भवति, मनो भवति, बोधयन् बुद्धिर्भवति, वागोऽदकारो भवति ॥ शतपथ कां० १४ । [४ । १ । १०]

मोक्ष में भौतिक शरीर वा इन्द्रियों के गोलक जीवात्मा नहीं रहते किन्तु अपने स्वाभाविक शुद्ध गुण रहते हैं, जब सुख है तब श्रोत्र, स्पर्श करना चाहता है तब त्वचा, देखने के लिये नेत्र, स्वाद के लिये रसना, गन्ध के लिये घ्राण, संकल्प विकल्प मन, निश्चय करने के लिये बुद्धि, स्मरण करने के लिये चित्त है अर्थात् अहङ्कार रूप अपनी स्वशक्ति से जीवात्मा मुक्ति में ही सत्यमात्र शरीर होता है । जैसे शरीर के आवार रहकर गोलक के द्वारा जीव स्वकार्य करता है वैसे अपनी शक्ति से आनन्द भोग लेता है ।

२—(प्रश्न) उसकी शक्ति के प्रकार की और स्थिती है ?

(उत्तर) मुख्य पुरुष प्रकार की शक्ति है परन्तु बल, प्रेम, प्रेरणा, गति, भीषण, विवेचन, क्रिया, उन्माद, स्मरण, उदा, प्रस, द्वेष, संयोग, विभाग, संयोजक, विभाजक, प्रसन्न, प्रोक्त, स्मरण और सत्प्रवृत्ति तथा ज्ञान इन २४ (चौबीस) योगों में जीव है । इनमें मुक्ति से ही आनन्द की प्राप्ति होती है मुक्ति में मोक्ष का लय होता तो मुक्ति का गुण कीव होता । मोक्ष का लय ही को मुक्ति समझते हैं वे महात्मा । मोक्ष का लय है कि दुःखों से छूट कर आनन्दमय सत्प्रवृत्ति परस्पर हैं मोक्ष का लय में रहना । देवी वेदान्त शारदा

अथायं वादविवादोऽयम् ॥ [वेदान्तः ४ । ५ । १०]

उं वादविवादो ज्ञान का विवाद है न कि मुक्ति में लय का लय है न कि लय का लय है अर्थात् जीव और मोक्ष का लय है ।

अथायं वादविवादोऽयम् ॥ [वेदान्तः ४ । ५ । १०]

और जैमिनि आचार्य मुक्त पुरुष का मन के समान सूक्ष्म शरीर, पाँ और प्राण आदि को भी विद्यमान मानते हैं, अभाव नहीं ।

शाहबदुभयविधं चादरायणोऽतः ॥ [वेदान्तद० ४।४।११]

न्यास मुनि मुक्ति में भाव और अभाव इन दोनों को मानते हैं

शुद्ध सामर्थ्ययुक्त जीव मुक्ति में बना रहता है, अपवित्रता, पापा-
दुःख, अज्ञानादि का अभाव मानते हैं ।

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।

बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ॥

[कठो० अ० १।व० ६।म० १०]

यह उपनिषद् का वचन है । जब शुद्ध मनयुक्त पाँ ज्ञानेन्द्रिय जीव
प्राप्त रहती है और बुद्धि का निश्चय स्थिर होता है उसको 'परमगति'
'मोक्ष' कहते हैं ।

य आत्मा अपहृतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोऽविजि-
तोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स
जहासितव्यः सर्वोऽश्च लोकानाप्नोति सर्वोऽश्च कामान्
मात्मानमनुविद्य विजानातीति ॥

[छान्दो० प्र० ८।खं० ७।मं० १]

स वा एष एतेन दैवेन चक्षुषा मनसैतान् कामान् पश्यन्
ते ॥ य एते ब्रह्मलोके तं वा एतं देवा आत्मानमुपासते
मात्तेपाः सर्वे च लोका आत्ताः सर्वे च कामाः स सर्वोऽश्च
जानाप्नोति सर्वोऽश्च कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजा-
तीति ॥ [छान्दो० प्र० ८।खं० १२।मं० ५, १]

मघवग्मर्त्यं वा इदं शरीरमात्तं मृत्युना तदस्याऽमृत-
शरीरस्यात्मनोधिष्ठानमात्तो वै सशरीरः प्रियाप्रियाभ्यां
सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्त्यशरीर पाव
ते न प्रियाप्रिये स्पृशतः ॥ [छान्दो० प्र० ८।खं० ११।मं० १]

जो परमात्मा अपहृतपाप्मा नव्य पाप, जरा, मृत्यु, शोक, दुःख,
पिता से रहित, सत्यकाम सत्यसङ्कल्प है उसकी खोज और उसी की
ने की इच्छा करनी चाहिये । जिस परमात्मा के सम्यग्बोध से गुण जीव
शोकों और सब कामों को प्राप्त होता है जो परमात्मा को जानने
के साधन और अपने को शुद्ध करना जानता है सो वह मुक्ति को

प्राप्त जीव शुद्ध दिव्य नेत्र और शुद्ध मन से कामों को देखता, हुआ रमण करता है। जो ये ब्रह्मलोक अर्थात् दर्शनीय परमात्मा होते मोक्ष गुण को भोगते हैं और इसी परमात्मा का जो कि अन्तर्गामी आत्मा है उसकी उपासना मुक्ति को प्राप्त करने वाले लोग करते हैं। उसमें उनको सब लोक और सब काम प्राप्त अर्थात् जो सङ्कल्प करते हैं वह लोक और वही काम प्राप्त हो और वे मुक्त जीव स्थूल शरीर छोड़कर सङ्कल्पमय शरीर से परमात्मा में निवसते हैं। क्योंकि जो शरीरवाले होते हैं वे भी वे रहित नहीं हो सकते। जैसे इन्द्र से प्रजापति ने कहा है कि हे पूर्णत धनयुक्त पुरुष ! यह स्थूल शरीर मरणधर्मा है, और जैसे गुण में बहरी होने के गह शरीर मृत्यु के गुण के बीच है सो मरण और शरीर रहित जीवात्मा का निवासस्थान है। इसीविध गुण और दुःख में सदा प्रसन्न रहता है क्योंकि शरीरसहित सांसारिक परव्रता की निवृत्ति होती ही है और जो शरीरमय जीवात्मा ब्रह्म में रहता है उसको सांसारिक गुण दुःख का नहीं होता किन्तु सदा आनन्द में रहता है।

२० (प्रश्न) जीव मुक्ति को प्राप्त होकर पुनः जन्मसंसार में क्यों आता है या नहीं ? क्योंकि—

न च पुनरावर्त्तने न च पुनरावर्त्तन इति ॥
उपनिषद्वचनम् [छा० प्र० ८ । ४०]
अनादृतिः शब्दादनादृतिः शब्दात् ॥ शरीरक सूत्र [४१]
यद् यथा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ भागवत [१० । १०]
क्योंकि ब्रह्मा में रहित होता है कि मुक्ति यही है कि पुनः पुनः संसार में नहीं आता ।

(उत्तर) यह बात ही नहीं, क्योंकि वेद में इस बात का उल्लेख नहीं है—

ब्रह्म ननु केन्द्रमस्यामुत्तमं मनोमहं चान्द्र देवस्य नमः ।
को नो मया अदितेयं पुनर्दीप्तं पितरं च हृषीकेशं मानवम् ।
अनेकेषु प्रपन्नयामुत्तमं मनोमहं चान्द्र देवस्य नमः ।
यत् नो मया अदितेयं पुनर्दीप्तं पितरं च हृषीकेशं मानवम् ।
॥ १० ॥ मं० १ । सू० २४ । ६० ।

ानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः ॥ ३ ॥ सांख्यसूत्र १ । १५९ ॥

(प्रश्न) हम लोग किसका नाम पवित्र जानें ? कौन नाशरहित
थ्यों के मध्य में वर्तमान देव, सदा प्रकाशस्वरूप है, हमको मुक्ति का
व भुगाकर पुनः इस संसार में जन्म देता और माता तथा पिता का
न कराता है ? ॥ १ ॥

(उत्तर) हम इस प्रकाशान्वरूप, अनादि, सदा मुक्त परमात्मा का
न पवित्र जाने जो हमको मुक्ति में आनन्द भुगा कर पृथिवी में पुनः
माता पिता के सन्बन्ध में जन्म देकर माता पिता का दर्शन कराता है ।
परमात्मा मुक्ति की व्यवस्था करता सब का स्वामी है ॥ १ ॥

जैसे इस समय बन्ध मुक्त जीव है वैसे ही सर्वदा रहते हैं, अत्यन्त विच्छेद
मुक्ति का कभी नहीं होता किन्तु बन्ध और मुक्ति सदा नहीं रहती ॥ ३ ॥

११—(प्रश्न) तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः ।
अजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरा
पादपवर्गः ॥ न्यायसूत्र [१ । १ । २ ।]

जो दुःख का अत्यन्त विच्छेद होता है वही मुक्ति कहाती है क्योंकि
मिथ्याज्ञान, अविद्या, लोभादि दोष, विषय, दुष्ट व्यवसनो में प्रवृत्ति
म और दुःख का उत्तर २ के दृष्टने से पूर्व २ के निवृत्त होने ही से
ह होता है जो कि सदा बना रहता है ।

(उत्तर) यह आवश्यक नहीं है कि अत्यन्त शब्द अत्यन्ताभाव ही
नाम होवे । जैसे 'अत्यन्त दुःखमत्यन्तं सुखं चास्य वर्तते'
त दुःख और बहुत सुख इस मनुष्य को है । इससे यही विदित होता
कि इसको बहुत सुख वा दुःख है । इसी प्रकार यहा भी अत्यन्त शब्द
अर्थ जानना चाहिये ।

१२—(प्रश्न) जो मुक्ति से भी जीव फिर आता है तो यह बितने
तक मुक्ति में रहता है ?

(उत्तर) ते ब्रह्मलोके ह परान्तकाले परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे ॥
[मुण्डक ३ । ख० १ । म० १]

यह मुण्डक उपनिषद् का यचन है । वे मुक्त जीव मुक्ति में प्राप्त होके
में आनन्द को तबतक भोग के पुन मशायप वे पश्चात् मुक्तिसुख
छोड़ के संसार में आते हैं । इसकी सराया यह है कि तैत्तिरीय ब्राह्मण

परन्तु जिसमें व्यय है और आय नहीं उसका कभी न कभी दिवाला लूट ही जाता है। इसलिये यही व्यवस्था ठीक है कि मुक्ति में जाना, पुनः आना ही अच्छा है। क्या थोड़े से कारागार से जन्म-कारा-दण्ड वाले प्राणी अथवा फाँसी को कोई अच्छा मानता है? जब वहाँ आना ही न हो तो जन्म-कारागार से इतना ही अन्तर है कि वहाँ से नहीं करनी पड़ती। और प्रलय में लय होना ससुद्र में डूब मरना है।

१४—(प्रश्न) जैसे परमेश्वर नित्य मुक्त पूर्ण सुखी है वैसे ही जीव भी मुक्त और सुखी रहेगा तो कोई भी दोष न आवेगा।

(उत्तर) परमेश्वर अनन्त स्वरूप, सामर्थ्य, गुण, कर्म, स्वभाववाला है। इसलिये वह कभी अविद्या और दुःख बन्धन में नहीं गिर सकता। जब मुक्त होकर भी शुद्धस्वरूप, अल्पज्ञ और परिमित गुण कर्म स्वभाव वाला रहता है, परमेश्वर के सदृश कभी नहीं होता।

(प्रश्न) जब ऐसी तो मुक्ति भी जन्म मरण के सदृश है इसलिये म करना व्यर्थ है।

(उत्तर) मुक्ति जन्म मरण के सदृश नहीं क्योंकि जब तक ३६००० छत्तीस सहस्र) बार उत्पत्ति और प्रलय का जितना समय होता है तने समय पर्यन्त जीवों को मुक्ति के आनन्द में रहना, दुःख का न भोगना क्या छोटी बात है? जब आज खाते पीते हो कल भूख लगने वाली है पुनः इसका उपाय क्यों करते हो? जब क्षुधा, तृषा, क्षुद्र धन, राज्य, तिष्टा, स्त्री, सन्तान आदि के लिये उपाय करना आवश्यक है तो मुक्ति के लिये क्यों न करना? मरना अवश्य है, तो भी जीवन का उपाय क्या जाता है, वैसे ही मुक्ति से लौट कर जन्म में आना है, तथापि उसका उपाय करना अव्यावश्यक है?

१५—(प्रश्न) मुक्ति के क्या साधन हैं?

(उत्तर) कुछ साधन तो प्रथम लिख आये हैं, परन्तु विशेष उपाय ये हैं। जो मुक्ति चाहे वह जीवनमुक्त अर्थात् जिन नियमाभाषणादि पाप कर्मों का फल दुःख है उनको छोड़ सुख रूप फल को देनेवाले सत्यभाषणादि धर्माचरण अवश्य करे। जो कोई दुःख को छुड़ाना और सुख को प्राप्त होना चाहे वह अधर्म को छोड़ धर्म अवश्य करे। क्योंकि दुःख का पापाचरण और सुख का धर्माचरण मूलकारण हैं।

१६—सत्पुरुषों के संग से 'विदेक' अर्थात् सत्याज्ञत्य, धर्माधर्म

व्याऽकर्तव्य का निश्चय अवश्य करें, पृथक् २ जानें और शरीर का पंच कोशों का विवेचन करें । एक 'अन्नमय' जो त्वचा से का समुदाय पृथिवीमय है, दूसरा 'प्राणमय' जिसमें 'प्राण' भीतर से बाहर जाता, 'अपान' जो बाहर से भीतर आता, 'समान' होकर सर्वत्र शरीर में रस पहुंचाता, 'उदान' जिससे कंठ्य जाता और बल-पराक्रम होता है, 'व्यान' जिससे सब शरीर आदि कर्म जीव करता है । तीसरा 'मनोमय' जिसमें मन के मांस, चक्षु, पाद, पाणि, पायु और उपस्थ पांच कर्म इन्द्रियाँ हैं । 'विज्ञानमय' जिससे बुद्धि, चित्त, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और ये पांच ज्ञान इन्द्रियाँ जिनसे जीव ज्ञानादि व्यवहार करता है । 'आनन्दमय कोश' जिसमें प्रीति प्रसन्नता, न्यून आनन्द, आनन्द और आधार कारण रूप प्रकृति है । ये पांच कोश कर्मों से जीव सब प्रकार के कर्म, उपासना और ज्ञानादिव्यवहारों

१७—तीन अक्षरों, एक 'जागृत' दूसरी 'स्वप्न' और तीसरी

अथवा कहाती है। तीन शरीर हैं, एक 'स्थूल' जो यह पांच प्राण, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच सूक्ष्मभूत और मन तथा कुंठितियों का समुदाय 'सूक्ष्मशरीर' कहलाता है। यह सूक्ष्म शरीर में भी जीव के साथ रहता है। इसके दो भेद हैं एक भौतिक सूक्ष्मभूतों के अंशों में बना है। दूसरा स्वाभाविक, जो जीव के गुण गन्ध, रस, रंग, स्पर्श और भौतिक शरीर मुक्ति में भी इसी में जीव मुक्ति में गुणों में भोगता है। तीसरा 'काय' आध्यात्मिक गन्धर्वज होनी है जो मुक्तिस्थ होने में सर्वत्र जीव के लिये एक है। चौथा 'तुरीय' कहलाता है जो परमात्मा के आनन्दस्वरूप में महा जीव कहलाता है। यह जीव शरीर का परमम मुक्ति में भी है। इन सब दोन प्रकारों में जीव रहता है। जो जीव शरीर में जीव रहता है। क्योंकि तब मनुष्य, सही जीव शरीर में जीव रहता है।

अज्ञानी, अविवेकी है क्योंकि बिना जीव के जो ये सब जड़ पदार्थ हैं इन को सुख-दुःख का भोग व पाप-पुण्य कर्तृत्व कभी नहीं हो सकता । हा, इनके सम्वन्ध से जीव पाप पुण्यों का कर्ता और सुख दुःखों का भोक्ता है । जब इन्द्रिया अर्थों में, मन इन्द्रियों और आत्मा मन के साथ संयुक्त होकर प्राणों को प्रेरणा करके अच्छे वा बुरे कर्मों में लगाता है तभी वह बहिर्मुख हो जाता है उसी समय भीतर से आनन्द, उत्साह, निर्भयता और बुरे कर्मों में भय, शंका, लज्जा, उत्पन्न होती है वह अन्तर्यामी परमात्मा की शिक्षा है । जो कोई इस शिक्षा के अनुकूल वर्तता है वही मुक्तिजन्य सुखों को प्राप्त होता है और जो विपरीत वर्तता है वह बन्धजन्य दुःख भोगता है ।

१२—दूसरा साधन 'वैराग्य' अर्थात् जो विवेक से सत्यासत्य को ज्ञाना हो उसमें से सत्याचरण का ग्रहण और असत्याचरण का त्याग करना 'विवेक' है । है । जो पृथिवी में लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों के गुण, कर्म, स्वभाव से जानकर उसकी आज्ञापालन और उपासना में तत्पर होना, उसमें विरह न चलना, सृष्टि से उपकार लेना 'विवेक' । कहाता है ।

१६—तत्पश्चात् तीसरा साधन 'पटक-सम्पत्ति' अर्थात् छ. प्रकार के कर्म करना एक 'दम' जिससे अपने आत्मा और अन्तःकरण को अधर्माचरण से हटा कर धर्माचरण में सदा प्रवृत्त रखना, दूसरा 'दम' जिससे श्रोत्रादि इन्द्रियो और शरीर को व्यभिचारादि बुरे कर्मों से हटाकर जितेन्द्रियत्वादि शुभ कर्मों में प्रवृत्त रखना, तीसरा 'उपरति' जिसमें दुष्ट कर्म करने वाले इन्द्रियों से सदा दूर रहना, चौथा 'तितिक्षा' चाहे निन्दा, स्तुति, हानि, लाभ केतना ही क्यों न हो परन्तु हर्ष शोक को छोड़ मुक्ति साधनों में सदा लगे रहना, पाचवा 'श्रद्धा' जो वेदादि सत्य शास्त्र और इनके बोध से पूर्ण भास वेदान्, सत्योपदेष्टा महाशयों के वचनों पर विश्वास करना, छठा 'समाधान' वेद की एकाग्रता, ये छ. मिलकर एक 'साधन' तीसरा बरताता है ।

२०—चौथा "मुमुक्षुत्व" अर्थात् जेने क्षुधा तृषातुर को सिवाय अन्न पान के दूसरा कुछ भी अच्छा नहीं लगता वैसे बिना मुक्ति के साधन और मुक्ति के दूसरे में प्रीति न होना । ये चार साधन ।

२१—और चार 'अनुबन्ध' अर्थात् साधनों के पश्चात् ये कर्म करने होते । इनमें से जो इन चार साधनों में युक्त पुरुष होता है वही मोक्ष का अधिकारी होता है । दूसरा "सम्वन्ध" ब्रह्म की प्राप्तिरूप मुक्ति प्रतिपाद्य

* वैराग्य (स०) ।
कोउ

मा से भिन न समझना 'अस्मिता', सुख में प्रीति 'राग', दुःख में
 'द्वेष' और सब प्राणिमात्र को यह इच्छा सदा रहती है कि मैं
 शरीरस्थ रहूँ, मरूँ नहीं, मृत्यु दुःख से त्रास 'अभिनिवेश' कहाता
 । इन पाच फलेशों को योगाभ्यास विज्ञान से छुड़ा के ब्रह्म को प्राप्त होके
 के परमानन्द को भोगना चाहिये ।

२४—(प्रश्न) जैसी मुक्ति आप मानते हैं वैसी अन्य कोई नहीं
 मता, देखो ! जैनी लोग मोक्षगिला, शिवपुर में जाके चुपचाप बैठे रहना,
 साई चौथा आसमान जिसमें विवाह, लड़ाई, बाजे गाजे, बरखादि धारण
 आनन्द भोगना, वैसे ही मुसलमान सातवें आसमान, वाममार्गी श्रीपुर,
 व कलाश, वैष्णव वेकुण्ठ और गोकुलिये गोसाईं गोलोक आदि में जाके
 लक्ष्मी, अन्न, पान, वस्त्र, स्थान आदि को प्राप्त होकर आनन्द में रहने
 मुक्ति मानते हैं । पौराणिक लोग (सारुप्य) ईश्वर के लोक में
 वास. (सानुज्य) छोटे भाई के सदृश ईश्वर के साथ रहना, (सारुप्य)
 सी उपासनीय देव की आकृति वैसा बन जाना, (सामीप्य) सेवक के
 समान ईश्वर के समीप रहना, (सायुज्य) ईश्वर से संयुक्त होजाना ये चार
 प्रकार की मुक्ति मानते हैं । वेदान्ती लोग ब्रह्म में लय होने को मोक्ष समझते हैं ।

(उत्तर) जैनी (१२) बारहवें, ईसाई (१३) तेरहवें और
 (१४) चौदहवें समुदास में मुसलमानों की मुक्ति आदि विषय विशेष
 र लियेंगे । जो वाममार्गी श्रीपुर में जाकर लक्ष्मी के सदृश खिया, मद्य
 आदि खाना पीना, रग राग भोग करना मानते हैं वह यहाँ से कुछ
 बेशेष नहीं । वेमे ही महादेव और विष्णु के सदृश आकृति वाले पार्वती
 और लक्ष्मी के सदृश स्त्रीयुक्त होकर आनन्द भोगना यहाँ के धनाढ्य
 राजाओं से अधिक इतना ही लिखते हैं कि वहाँ रोग न होंगे और पुवा-
 रस्था सदा ही रहेगी । यह उनकी बात मिथ्या है क्योंकि जहाँ भोग वहाँ रोग
 और जहाँ रोग वहाँ वृद्धावस्था अवश्य होती है । और पौराणिकों से पूछना
 चाहिये कि जैसी तुम्हारी चार प्रकार की मुक्ति है वैसी तो कुम्भी कीट
 तट्ट पशुआदिकों को भी स्वतः सिद्ध प्राप्त है, क्योंकि ये जितने लोक हैं
 वे सब ईश्वर के हैं, इन्हीं में सब जीव रहते हैं, इसलिये 'सारुप्य' मुक्ति
 बनायास प्राप्त है । 'सामीप्य', ईश्वर सर्वत्र व्याप्त होने से सब उसके समीप
 है इसलिये 'सामीप्य' मुक्ति स्वतः सिद्ध है । 'सानुज्य', जीव ईश्वर से सब
 प्रकार छोटा और चेतन होने से स्वतः वन्धुवत् है इससे 'सानुज्य' मुक्ति

२७—(प्रश्न) जय जीव को पूर्व का ज्ञान नहीं और ईश्वर इसको दण्ड है तो जीव का सुधार नहीं हो सकता क्योंकि जय उसको ज्ञान हो कि भुक् काम किया था उसी का यह फल है तभी वह पाप कर्मों से बचसके ?

(प्रश्न) तुम ज्ञान के प्रकार का मानते हो ?

(उत्तर) प्रत्यक्षादि प्रमाणों से आठ प्रकार का ।

(उत्तर) तो जय तुम जन्म से लेकर समय २ में राज, धन, बुद्धि, आ, दारिद्र्य, निर्बुद्धि, मूर्खता आदि सुख दुःख संसार में देख कर जन्म का ज्ञान क्यों नहीं करते ? जैसे एक अवैद्य और एक वैद्य को रोग हो उसका निदान अर्थात् कारण वैद्य जान लेता है और अवि नहीं जान सकता उसने वैद्यक विद्या पढ़ी है और दूसरे ने नहीं, ज्वरादि रोग के होने से अवैद्य भी इतना जान सकता है कि मुझ से कुछ होगा है जिससे मुझे यह रोग हुआ है वैसे ही जगत् में विचित्र दुःख आदि की घटती बढ़ती देख के पूर्वजन्म का अनुमान क्यों नहीं लेते ? और जो पूर्वजन्म को न मानोगे तो परमेश्वर पक्षपाती हो जाता क्योंकि बिना पाप के दारिद्र्यादि दुःख और बिना पूर्वसंज्ञित पुण्य के धन, धनाढ्यता और निर्बुद्धिता उसको क्यों दी ? और पूर्व जन्म के पाप के अनुसार दुःख सुख के देने से भी परमेश्वर न्यायकारी यथावत् रहता है ।

२८—(प्रश्न) एक जन्म होने से भी परमेश्वर न्यायकारी हो सकता है । सर्वोपरि राजा जो करे सो न्याय, जैसे माली अपने टपवन में छोटे और बड़े लगाता, किसी को काटता ठेकायता और किसी की रक्षा करता दफाता जिसकी जो वस्तु है उसको वह चाहे जैसे रखे, उसके ऊपर कोई भी न्याय करनेवाला नहीं जो उसको दण्ड दे सके वा ईश्वर किसी से डरे ।

(उत्तर) परमात्मा जिसलिये न्याय चाहता, करता अन्याय कभी नहीं करता इसलिये वह पूजनीय और घटा है, जो न्यायविरुद्ध करे वह नही । जैसे माली युक्ति के बिना मार्ग वा अस्थान में वृक्ष लगाने, काटने योग्य को काटने, अयोग्य को दफाने, योग्य को न दफाने से बचता है इसी प्रकार बिना कारण के करने से ईश्वर को दोष हगे, परमेश्वर के ऊपर न्याययुक्त काम करना अवश्य है क्योंकि वह स्वभाव से न्याय और न्यायकारी है । जो उन्मत्त के समान काम करे तो जगत् के न्यायाधीश से भी न्यून और अप्रतिष्ठित होवे । क्या इस जगत् में न्याययोग्यता के उत्तम काम किये प्रतिष्ठा और दण्ड काम किये बिना

भी विना प्रयत्न के सिद्ध है और सब जीव सर्वव्यापक होने में समुक्त हैं इससे 'सायुज्य' मुक्ति भी स्वतः सिद्ध है। साधारण नास्तिक लोग मरने से तत्वों में मिलकर हैं वह तो कुचे, गदहे आदि को भी प्राप्त है। ये एक प्रकार का बन्धन है क्योंकि ये लोग शिवपुर, मान, सातवें आसमान, श्रीपुर, कैलाश, वैकुण्ठ, गोलोक स्थान विशेष मानते हैं जो वे उन स्थानों से पृथक् हों तो इसीलिये जैसे १२ (बारह) पत्थर के भीतर छिष्ट बन्धन में होंगे, मुक्ति तो यही है कि जहां इच्छा हो वहां भटके नहीं। न मय, न शंका, न दुःख होता है, जो और मरना प्रलब्ध कहा है, समय पर जन्म लेते हैं।

२६—(प्रश्न) जन्म एक है वा अनेक ?

(प्रश्न) जो अनेक हों तो पूर्व जन्म और मृत्यु की बातें क्यों नहीं ?

(उत्तर) जीव अल्पज्ञ है, त्रिकालदर्शी नहीं, इसलिये रहता। और जिस मन से ज्ञान करता है वह भी एक नहीं कर सकता। भला पूर्वजन्म की बात तो दूर देह में जब गर्भ में जीव था, शरीर बना, पश्चात् जन्मा, तब जो २ बातें हुई हैं उनका स्मरण क्यों नहीं कर सकता वा स्वप्न में बहुतसा व्यवहार प्रत्यक्ष में करके जब सुपुति होती है तब जागृत आदि व्यवहार का स्मरण क्यों नहीं तुम से कोई पूछे कि बारह वर्ष के पूर्व तेरा कौन सा नवम दिन कल बजे पर पहिली मिनट में तुमने क्या सुन, हाथ, कान, नेत्र, शरीर किम ओर, किस प्रकार का काम में क्या विचार था ? जब इसी शरीर से ऐसा है तो पूर्वजन्म स्मरण में संशय करना केवल लड़कपन की बात है और जो होता है इसी में जीव सुखी है नहीं तो सब जन्मों के दुर्विचर से कोर मर जाता। जो कोई पूर्व और पीछे जन्म जानना चाहे तो भी नहीं जान सकता क्योंकि जीव का जन्म और मरण है वह ज्ञान ईश्वर के जानने योग्य है, जीव के नहीं।

1, युक्ति से नाहीछेदन, दुग्धपानादि यथायोग्य प्राप्त होते हैं। जब वह पीना चाहता है तो उसके साथ मिश्री आदि मिलाकर यथेष्ट मिलता उसको प्रसन्न रखने के लिये नौकर चाकर, खिलौना, सवारी, उत्तम गों में लाट से आनन्द होता है, दूसरे का जन्म जङ्गल में होता, खान के जल भी नहीं मिलता, जब दूध पीना चाहता तब दूध के बदले में थपेड़ा आदि से पीटा जाता है, अत्यन्त आर्तस्वर से रोता है, कोई नहीं आ इत्यादि जीवों को विना पुण्य पाप के सुख दुःख होने से परमेश्वर दोष आता है। दूसरा जैसे विना किये कर्मों के सुख दुःख मिलते हैं आगे नरक स्वर्ग भी न होना चाहिये क्योंकि जैसे परमेश्वर ने इस समय कर्मों के सुख दुःख दिया है वैसे मरे पीछे भी जिसको चाहेगा उसको मैं और जिसको चाहे नरक में भेज देगा, पुन सब जीव अधर्मयुक्त ब्राह्मण, धर्म क्यों करें ? क्योंकि धर्म का फल मिलने में सन्देह है। परमेश्वर के हाथ है, जैसी उसकी प्रसन्नता होगी वैसा करेगा तो पापकर्मों से न होकर संसार में पाप की वृद्धि और धर्म का क्षय हो जायगा। लेले पूर्व जन्म के पुण्य पाप के अनुसार वर्तमान जन्म और वर्तमान पूर्वजन्म के कर्मानुसार भविष्यत् जन्म होते हैं।

२६—(प्रश्न) मनुष्य और अन्य पश्यादि के शरीर में जीव एकसा भिन्न भिन्न जाति के?

(उत्तर) जीव एकसे हैं, परन्तु पाप पुण्य के योग से मलिन और प्र होते हैं।

(प्रश्न) मनुष्य का जीव पश्यादि में और पश्यादि का मनुष्य के शरीर में स्त्री का पुरुष के और पुरुष का स्त्री के शरीर में जाता आता है वा नहीं ?

(उत्तर) हा जाता आता है, क्योंकि जब पाप बढ़ जाता पुण्य न्यून है तब मनुष्य का जीव पश्यादि नीच शरीर और जब धर्म अधिक अधर्म न्यून होता है तब देव अर्थात् विद्वानों का शरीर मिलता और पुण्य पाप बराबर होता है तब साधारण मनुष्य-जन्म होता है। इसमें पुण्य पाप के उत्तम, मध्यम, निरुष्ट होने से मनुष्यादि में भी उत्तम, म, निरुष्ट शरीरादि सामग्रीवाले होते हैं और जब अधिक पाप का पश्यादि शरीर में भाग लिया है पुन पाप पुण्य के तुल्य रहने से मनुष्य में आता और पुण्य के फल भोगकर फिर भी मध्यस्थ मनुष्य के शरीर में जाता है जब शरीर से निकलता है उसी का नाम 'मृत्यु' और शरीर के

दण्ड देनेवाला निन्दनीय अप्रतिष्ठित नहीं होता ? हमलिये ईश्वर नहीं करता इसी से किसी से नहीं डरता ।

(प्रश्न) परमात्मा ने प्रथम ही से जिम्मे लिये जितना देना है उतना देता और जितना काम करना है उतना करता है ।

(उत्तर) उगका विचार जीवों के कर्मानुसार होता है, अन्यथा तो वही अपराधी, अन्यायकारी होवे ।

(प्रश्न) बड़े छोटे को एकसा ही सुख दुःख है क्यों ? और छोटे को छोटी । जैसे किसी साहूकार का विप्राद साधक को तो वह अपने घर से पालकी में बैठकर कचहरी में से जाता हो । बाजार में छोटे उसको जाता देखकर अजानी को दि दया पुण्य पाप का फल, एक पालकी में आनन्दपूर्ण रूप से बिना गुन पदों, ऊपर नीचे से सम्मान होते हुए पालकी में जाता है परन्तु बुद्धिमान लोग हममें यह जानते हैं कि ऐसा निराशा होती जानी है जैसे • साहूकार को थोड़ा शोक और सन्तान और कष्टों को आनन्द होता जाता है । जब कचहरी में नय सेवकी द्वारा उतर जाने का विचार करते हैं कि प्राद्विनाश (क पाप साहूकार सम्मिलित के पाप, आज हास्या पाव जीवित, क्या होता और कष्ट लोग समान पीने, परस्पर जाने चीने करने में ही ही आनन्द में सा जाने हैं । जो वह जीव जाय तो कुछ मुख साय तो सेवकी दुःखसागर में डूब जाय और वे कहार जैसे के ही दुर्लभ प्रथम नय राजा मुन्दर कोमल विद्योने में सोना है तो भी जीव जीव जीव और सदा वरुण पवन और मिट्टी, जल नीचे स्थित है शम्भु शत्रु ही निराशानी है, ऐसे ही सर्वत्र समझो ।

(उत्तर) यह समझ अज्ञानियों की है । क्या किसी के दि न दुःख कलम और कष्ट में कोई दि न साहूकार सम्मिलित नहीं करके यज्ञ नहीं और कष्ट साहूकार सम्मिलित नहीं करके यज्ञ नहीं • अथवा जोड़ने के यज्ञ साय न जाय । ऐसे एक ही विप्राद, पुण्यसागर, प्रथम ही साय न जाय और दुःख साहूकार सम्मिलित यज्ञसागर • अथवा • एक ही से वेद साय न जाय और दुःख को वरुण सम्मिलित है । यह नय शत्रु न है नय सम्मिलित सम्मिलित

अनुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति ॥

तैत्तिरी० । [आनन्दवल्ली । अनु० १]

जो जीवात्मा अपनी बुद्धि और आत्मा में स्थित सत्य ज्ञान और अन्त आनन्दस्वरूप परमात्मा को जानता है वह उस व्यापकरूप प्रज्ञा में रह करके उस 'विपश्चित्' अनन्तविद्यागुक्त प्रज्ञा के साथ सब कामों को छोड़ता है अर्थात् जिस २ आनन्द की कामना करता है उस २ कामों की प्राप्ति होता है वही 'मुक्ति' कहाती है ।

३१—(प्रश्न) जैसे शरीर के बिना सांसारिक सुख नहीं भोग जाय वैसे मुक्ति में बिना शरीर आनन्द कैसे भोग सकेगा ?

(उत्तर) इसका समाधान पूर्व कह आये हैं और इतना अधिक सुनो- सांसारिक सुख शरीर के आधार से भोगता है वैसे परमेश्वर के आधार पर आनन्द को जीवात्मा भोगता है । वह मुक्त जीव अनन्त व्यापक में स्वच्छन्द घूमता, शुद्ध ज्ञान से सब सृष्टि को देखता, अन्य मुक्तों से मिलता, सृष्टि विद्या को क्रम से देखता हुआ सब लोक-लोकान्तरों में भ्रमण करता है अर्थात् जितने ये लोक देखते हैं और नहीं देखते उन सब में घूमता है वह सब पदार्थों को जो कि उसके ज्ञान के आगे हैं, देखता है । जितना अधिक होता है उसको उतना ही आनन्द अधिक होता है । मुक्ति प्राप्ति पर जीवात्मा निर्मल होने से पूर्व ज्ञानी होकर उसको सब सन्निहित पदार्थों का भान यथावत् होता है । यही सुखविशेष 'स्वर्ग' और विषय-भोग से फँसकर दुःखविशेष भोग करना 'नरक' कहाता है । 'स्व' सुख का अर्थ है 'स्वः सुखं गच्छति यस्मिन् स स्वर्गः । अतो विपरीतो नरकः भोगो नरक इति' । जो सांसारिक सुख है वह सामान्य स्वर्ग और परमेश्वर की प्राप्ति से आनन्द है वही विशेष स्वर्ग कहाता है । सब स्वभाव से सुखप्राप्ति की इच्छा और दुःख का वियोग होना चाहते हैं मनुज जब तक धर्म नहीं करते और पाप नहीं छोड़ते तब तक उनको सुख मिलना और दुःख का छुटना न होगा क्योंकि जिसका कारण अर्थात् दुःख होता है वह नष्ट कभी नहीं होता, जैसे—

जैसे मूले वृक्षो नश्यति तथा पापे क्षीणे दुःखं नश्यति ।

जैसे मूल कट जाने से वृक्ष नष्ट होता है वैसे पाप को छोड़ने से दुःख नष्ट होता है ।

३२—देखो मनुस्मृति में पाप और पुण्य की बहुत प्रवार की गति—

अर्थात् मनुष्य इस प्रकार अपने श्रेष्ठ, मध्य और निकृष्ट स्वभाव को नकर उत्तम स्वभाव का ग्रहण, मध्य और निकृष्ट का त्याग करे और भी निश्चय जाने कि यह जीव मन से जिस शुभ या अशुभ कर्म को करता है उसको मन, वाणी से किये को वाणी और शरीर से किये को शरीर अर्थात् सुख दुःख को भोगता है ॥ १ ॥ जो नर शरीर से चोरी, चोरीगमन, श्रेष्ठों को मारने आदि दुष्ट कर्म करता है उसको वृक्षादि वृक्षों का जन्म, वाणी से किये पाप कर्मों से पक्षी और मृगादि तथा शरीर से किये दुष्ट कर्मों से चांडाल आदि का शरीर मिलता है ॥ २ ॥ गुण इन जीवों के देह में अधिकता से वर्तता है वह गुण उस जीव अपने सदृश कर देता है ॥ ३ ॥ जब आत्मा में ज्ञान हो तब सत्त्व, अज्ञान रहे तब तम और जब राग द्वेष में आत्मा लगे तब रजोगुण प्रधान बनावना चाहिये, ये तीन प्रकृति के गुण सब संसारस्थ पदार्थों में व्याप्त रहते हैं ॥ ४ ॥ उसका विवेक इस प्रकार करना चाहिये कि जब आत्मा में प्रसन्नता, मन प्रसन्न प्रशान्त के सदृश शुद्धभानयुक्त वर्तते तब समझना कि सत्त्वगुण प्रधान और रजोगुण तथा तमोगुण अप्रधान हैं ॥ ५ ॥ आत्मा और मन दुःखसंयुक्त, प्रसन्नतारहित, विषय में झूझ उधर गमन गमन में लगे तब समझना कि रजोगुण प्रधान, सत्त्वगुण और तमोगुण अप्रधान हैं ॥ ६ ॥ जब मोह अर्थात् सासारिक पदार्थों में फँसा हुआ आत्मा और मन हो, जब आत्मा और मन में कुछ विवेक न रहे, विषयों में आसक्त, तर्क वितर्करहित, जानने के योग्य न हो तब निश्चय समझना चाहिये कि इस समय मुझ में तमोगुण प्रधान और सत्त्वगुण तथा रजोगुण अप्रधान हैं ॥ ७ ॥ अब जो इन तीनों गुणों का उत्तम, मध्यम और निकृष्ट उद्देश्य होता है उसको पूर्णभाव से कहते हैं ॥ ८ ॥ जो वेदों का पालन, धर्मानुष्ठान, ज्ञान की वृद्धि, पवित्रता की इच्छा, इन्द्रियों का नियंत्रण, धर्मक्रिया और आत्मा का चिन्तन होता है परी सत्त्वगुण का लक्षण है ॥ ९ ॥ जब रजोगुण का उदय, सत्त्व और तमोगुण का अन्तर्भाव होता है तब आरम्भ में रचिता, धैर्यत्याग, अस्व कर्मों का ग्रहण, निरन्तर कर्मों की सेवा में प्रीति होती है, तभी समझना कि रजोगुण प्रधानता मुझ में वर्त रहा है ॥ १० ॥ जब तमोगुण का उदय और दोनों का अन्तर्भाव होता है तब अत्यन्त लोभ अर्थात् सब पापों का मूल बढ़ता, अत्यन्त आलस्य और निद्रा, धैर्य का नाश, क्रूरता का होना, ना

यज्वान ऋषयो देवा वेदा ज्योतीषि वत्सराः ।

पितरश्चैव साध्याश्च द्वितीया सात्त्विकी गतिः ॥ ६ ॥

ब्रह्मा विश्वसृजो धर्म्मो महानव्यक्तमेव च ।

उत्तमां सात्त्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिणः ॥ १० ॥

इन्द्रियाणां प्रसंगेन धर्मस्यासेवनेन च ।

पापान्संयान्ति ससारानविद्वांसो नराधमाः ॥ ११ ॥

[मनु० अ० १९ । श्लो० ४०, ४२-५०, ५९]

जो मनुष्य सात्त्विक हैं वे देव अर्थात् विद्वान्, जो रजोगुणी होते हैं मध्यम मनुष्य और जो तमोगुणगुक्त होते हैं वे नीच गति को प्राप्त हैं ॥ १ ॥ जो अत्यन्त तमोगुणी हैं वे स्थावर वृक्षादि, कृमि, कीट, प, सर्प, कच्छप, पशु और मृग के जन्म को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ जो तमोगुणी हैं वे हाथी, घोडा, गृध्र, म्लेच्छ, निन्दित कर्म करनेहारे, व्याघ्र, घराह अर्थात् सूकर के जन्म को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ जो तमोगुणी हैं वे चारण (जो कि कवित्त, दोहा आदि बनाकर श्रौं की प्रशंसा करते हैं), सुन्दर पक्षी, दाम्भिक पुरुष अर्थात् अपने के लिये अपनी प्रशंसा करनेहारे, राक्षस, जो हिंसक, पिशाच, अना- ॥ अर्थात् मद्यादि के आहारकर्ता और मलिन रहते हैं वर उत्तम तमो- के कर्म का फल है ॥ ४ ॥ जो उत्तम रजोगुणी हैं वे क्षत्रा अर्थात् वार आदि से मारने वा कुद्वार आदि में खोदनेहारे, महा, अर्थात् नौवा दे को चलाने वाले, नट जो वास आदि पर कला बृदना चटका उतरना दे करते हैं, शस्त्रधारी भृत्य और मय पीने में आसक्त हों ऐसे जन्म रजोगुण का फल है ॥ ५ ॥ जो मध्यम रजोगुणी होते हैं वे राजा, प्रय वर्गस्थ राजाओं के पुरोहित, वादविवाद करनेवाले, दूत, प्राद्विवाक वीर, वारिष्ठर), युद्धविभाग के अध्यक्ष के जन्म पाते हैं ॥ ६ ॥ उत्तम रजोगुणी हैं वे गन्धर्व (गानेवाले) गुणक (वादिप्र बजानेहारे) (धनाढ्य) विद्वानों के सेवक और अप्सरा अर्थात् जो उत्तम रूप- ॥ श्री उनका जन्म पाते हैं ॥ ७ ॥ जो तपस्वी, यति, सन्यासी गरी, विमान के चलानेवाले, ज्योतिषी और वैश्य अर्थात् वैद्योपक ण्य होते हैं उनको प्रथम सत्त्वगुण के कर्म का फल जानो ॥ ८ ॥ जो नि सत्त्वगुण गुप्त होकर कर्म करते हैं वे जीव यज्ञार्चा, वेदार्थविद्व, ॥ वेद, विष्णु आदि और काल विद्या में शास्त्र, रक्षक, ज्ञानी

अथ दशमसमुह्यासारम्भः

अथाऽऽचाराऽनाचार-भक्ष्याऽभक्ष्यविषयान्

व्याख्यास्यामः

१—अब जो धर्मयुक्त कामो का आचरण, सुशीलता, सत्पुरुषों का और सद्बिद्या के ग्रहण में रुचि आदि आचार और इनसे विपरीत गार कहाता है, उसको लिखते हैं—

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः ।

हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तन्निबोधत ॥ १ ॥

कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेदास्त्यकामता ।

काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ॥ २ ॥

सङ्कल्पमूलः कामौ वै यज्ञाः सङ्कल्पसंभवाः ।

प्रतानि यमधर्माश्च सर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताः ॥ ३ ॥

अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचिद् ।

यद्यदि कुरुते किञ्चित् तत्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥ ४ ॥

वेदोऽक्षितो धर्ममूल स्मृतिशीले च तद्विदाम् ।

आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥ ५ ॥

सर्वन्तु समवेद्येदं निखिल ज्ञानचक्षुषा ।

श्रुतिप्रभाणयतो विद्वान् स्वधर्मे निविशेत् वै ॥ ६ ॥

श्रुतिस्मृत्युदित धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः ।

इह कीर्त्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥ ७ ॥

[श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशाखं तु वै स्मृतिः ।

ते सर्वाधैष्वर्मा मांस्ये ताभ्यां धर्मौ हि निर्वभौ ॥]

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशाखाश्चयाद् द्विजः ।

स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदानिन्दकः ॥ ८ ॥

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।

एतद्यतुर्विधं प्राहुः साक्षाज्जर्मस्य लक्षणम् ॥ ९ ॥

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मदानं विधीयते ।

धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥ १० ॥

विषयसेवा में फँसा हुआ नहीं होता उसी को धर्म का ज्ञान है। जो धर्म को जानने की इच्छा करें उनके लिये वेद ही परम प्रमाण । १० ॥ इसी से सब सन्तुष्टों को उचित है कि वेदोक्त पुण्यरूप कर्मों ग्राहण, क्षत्रिय, वैश्य अपने सन्तानों का निपेकादि सत्कार करे जो इस वा परजन्म में पवित्र करने वाला है ॥ ११ ॥ ग्राहण के सोलहवें, वैश्य के बारहसवें और वैश्य के चौबीसवें वर्ष में केशान्त कर्म क्षौर मुण्डन माना चाहिये अर्थात् इस विधि के पश्चात् केवल शिखा को रख के अन्य में मूँछ और शिर के बाल सदा मुढवाते रहना चाहिये अर्थात् पुनः कभी खना और जो शीतप्रधान देश हो तो कामचार है। चाहे जितने केश हों और जो अति उष्ण देश हो तो सब शिखासहित छेदन करा देना हये क्योंकि शिर में बाल रहने से उष्णता अधिक होती है और उससे कम हो जाती है ढाढ़ी, मूळ रखने से भोजन पान अच्छे प्रकार नहीं और उच्छिष्ट भी बालों में रह रह जाता है ॥ १२ ॥

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।

संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ॥ १ ॥

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ।

सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ॥ २ ॥

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।

इविषा कृष्णवर्त्मैव भूय एवाभिवर्द्धते ॥ ३ ॥

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ।

न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥ ४ ॥

अशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा ।

सर्वान् संसाधयेदर्थानाक्षिरवन् योगतस्तनुम् ॥ ५ ॥

धृत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः ।

न दृष्यति ग्लायति वा स विशेषो जितेन्द्रियः ॥ ६ ॥

नापृष्टः कस्यंचिद् घ्न्यान्न चान्यायेन पृच्छतः ।

जानन्नपि हि मेधावी जडबल्लोक आचरेत् ॥ ७ ॥

चित्तं यन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी ।

एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥ ८ ॥

अशो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः ।

अहं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम् ॥ ९ ॥

॥ १ ॥ कभी बिना पूछे वा अन्याय से पूछने वाले को जो कपट
 छुता हो उसको उत्तर न देवे, उनके सामने बुद्धिमान् जब के समान
 हा जो निष्कपट और जिज्ञासु हो उनको बिना पूछे भी उपदेश करे
 ॥ एक धन, दूसरे दन्धु, कुटुम्ब, कुल, तीसरी अवस्था, चौथा उत्तम
 और पाचवी श्रेष्ठ विद्या ये पांच मान्य के स्थान हैं, परन्तु धन से
 दन्धु, दन्धु से अधिक अवस्था, अवस्था से श्रेष्ठ कर्म और कर्म से
 विद्या वाले उत्तरोत्तर अधिक माननीय हैं ॥ ८ ॥ क्योंकि चाहे सौ
 का हो परन्तु जो विद्या विज्ञान रहित है वह बालक और जो विद्या
 न का दाता है उस बालक को भी वृद्ध मानना चाहिये क्योंकि सब
 आस विद्वान् अज्ञानी को बालक और ज्ञानी को पिता कहते हैं ॥ ९ ॥
 क वषों के बीतने, श्वेत बाल के होने, अधिक धन से और बड़े
 के होने से वृद्ध नहीं होता, किन्तु ऋषि महात्माओं का यही निश्चय
 जो हमारे बीच में विद्या-विज्ञान में अधिक है वही वृद्ध पुरुष
 है ॥ १० ॥ ब्राह्मण ज्ञान से, क्षत्रिय बल से, वैश्य धनधान्य से
 वृद्ध जन्म अर्थात् अधिक आयु से वृद्ध होता है ॥ ११ ॥ शिर के
 श्वेत होने से बुढ़ा नहीं होता किन्तु जो युवा विद्या पढ़ा हुआ है
 विद्वान् लोग बड़ा जानते हैं ॥ १२ ॥ और जो विद्या नहीं पढ़ा
 वैसा बाण्ड का हाथी, चमड़े का मृग होता है वैसा अपविद्वान् मनुष्य
 में नाममात्र मनुष्य कहाता है ॥ १३ ॥ इसलिये विद्या पढ विद्वान्
 होकर निर्वैरता से सब प्राणियों के कल्याण का उपदेश करे और
 में घाणी मधुर और कोमल बोले, जो सत्योपदेश से धर्म की वृद्धि
 धर्म का नाश करते हैं वे पुरुष धन्य हैं ॥ १४ ॥ नित्य स्नान, धर
 गान, स्थान सब शुद्ध रखवे क्योंकि इनके शुद्ध होने में चित्त की
 और आरोग्यता प्राप्त होकर पुरुषार्थ बढ़ता है । शौच उतना करना
 कि जितने से मल दुर्गन्ध दूर होजाये ॥
 आचार प्रथमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त्त एव च ॥ [मनु० १।१८]
 ये सत्यभाषणादि कर्मों का आचरण करना है वही वेद और स्मृति
 हुआ आचार है ।
 वधीः पितरं मोत मातरम् ॥ [मनु० ११।१५]
 र्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥ [अथ० का० ११।८१५]

चीन में आये, चीन से हिमालय और हिमालय से मिथिलापुरी को । और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन पाताल में अश्वतरी अर्थात् जिसको 'मयान नौका' कहते हैं उस पर बैठ के पाताल में जाके, महाराजा युधिष्ठिर के यज्ञ में उद्दालक ऋषि को ले आये थे । धृतराष्ट्र का विवाह गांधार की 'कंधार' कहते हैं, वहां की राजपुत्री से हुआ । माद्री पाण्डु की 'ईरान' के राजा की कन्या थी । और अर्जुन का विवाह पाताल में की 'अमेरिका' कहते हैं, वहां के राजा की लड़की उलोपी के साथ था । जो देशदेशान्तर द्वीपद्वीपान्तर में न जाते होते तो ये सब क्योंकर हो सकती ? मनुस्मृति में जो समुद्र में जानेवाली नौका पर लेना लिखा है वह भी आर्यावर्त्त से द्वीपान्तर में जाने के कारण है । जब महाराजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया था उसमें सब भूगोल राजाओं के बुलाने को निमन्त्रण देने के लिये भाम, अर्जुन, नकुल और विचित्र चारों दिशाओं में गये थे जो दोष मानते होते तो कभी न जाते । प्रथम आर्यावर्त्तदेशीय लोग व्यापार, राजकार्य और भ्रमण के लिये भूगोल में घूमते थे । और जो आजकल छुतछात और धर्म नष्ट होने शका है वह केवल मूर्खों के बहकाने और अज्ञान बढ़ने से है । जो देशदेशान्तर और द्वीपद्वीपान्तर में जाने आने में शका नहीं करते वे देशान्तर के अनेकविध मनुष्यों के समागम, रीति-भाति देखने, अपना और व्यवहार बढ़ाने से निर्भय, शूरवीर होने लगते और अच्छे व्यवहार का ग्रहण, चुरी बातों के छोड़ने में तत्पर होके बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त हैं । भला जो महाभ्रष्ट, श्लेच्छकुलोत्पन्न वेश्या आदि के समागम से भ्रष्ट, धर्महीन नहीं होते किन्तु देशदेशान्तर के उत्तम पुरुषों के साथ गम में छुत और दोष मानते हैं ॥ यह केवल मूर्खता की बात तो क्या है ? हा, इतना कारण तो है कि लोग मासभक्षण और पान करते हैं उनके शरीर और वीर्यादि धातु भी दुर्गन्धादि से दूषित हैं इसलिए उनके सङ्ग करने से आर्यों को भी यह बलक्षण न लग जायें तो ठीक है । परन्तु जब इनसे व्यवहार और गुणग्रहण करने में कोई भी पाप नहीं है, किन्तु इनके मद्यपानादि दोषों को छोड़ गुणों को ग्रहण तो कुछ भी हानि नहीं । जब इनसे स्पर्श और देखने से भी मूर्ख जन गिनते हैं इसीसे उनसे युद्ध कभी नहीं कर सकते क्योंकि युद्ध में तो देखना और स्पर्श होना अवश्य है । सम्जन लोगों को राग, द्वेष,

गबड है क्योंकि जिसमें घी दूध अधिक लगे उसको खाने में स्वाद
घर में विक्रता पदार्थ अधिक जावे इसीलिये यह प्रणञ्ज रचा है,
जो अभि वा काल से पका हुआ पदार्थ पका और न पका हुआ
। जो पका खाना और कच्चा न खाना है यह भी सर्वत्र ठीक नहीं
। घने आदि कच्चे भी खाये जाते हैं ।

१—(प्रश्न) द्विज अपने हाथ से रसोई बना के खावें वा शूद्र के
की बनाई खावें ?

उत्तर) शूद्र के हाथ की बनाई खावें, क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय
द्विज वर्णस्थ स्त्री पुरुष विद्या पढ़ाने, राज्यपालन और पशुपालन खेती
के काम में तत्पर रहें और शूद्र के पात्र तथा उसके घर का पका
अन्न आपत्काल के बिना न खावें, सुनो प्रमाण—

आर्याभिष्टिना वा शूद्राः स्तस्कर्त्तारः स्युः ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र । प्रपाठक १ । पटल २ । खण्ड २ । सूत्र ४ ॥]
यह आपस्तम्ब का सूत्र है । आर्यों के घर में शूद्र अर्थात् मूर्ख स्त्री
पाकादि सेवा करें, परन्तु वे शरीर वस्त्र आदि से पवित्र रहें, आर्यों के
जब रसोई बनावें तब मुख बाध के बनावें क्योंकि उनके मुख से
और निला हुआ श्वास भी अन्न में न पड़े । आठवें दिन क्षौर, नख-
करावें, स्नान करके पाक बनाया करें, आर्या वो खिला के आप खावें ।

२—(प्रश्न) शूद्र के छुए हुए पके अन्न के खाने में जब दोष लगाते
उसके हाथ का बनाया कैसे खा सकते हैं ?

उत्तर) यह बात कपोलकल्पित झूठी है क्योंकि जिन्होंने गुड़,
घृत, दूध, पिशान, शाक, फल, मूल खाया उन्होंने जानो सब
भर के हाथ का बनाया और उच्छिष्ट खालिया क्योंकि जब शूद्र,
नर्दी, सुसलमान, ईसाई आदि लोग खेतों में से ईश्वर को काटते
, पोलकर रस निकालते हैं तब मलमूत्रोत्सर्ग करके उन्ही बिना धोये
से छूते, उठाते, धरते, आधा साठा चूम रस पीके आधा उसी में
द्वेष्टे हैं और रस पकाते समय उस रस में रोटी भी पमाकर खाते हैं ।
हीन बनाते हैं तब पुराने जूते कि जिसके तले में विद्या, मूत्र गोबर
लगी रहती है उन्हीं जूतों से उसको रगड़ते हैं । दूध में अपने
उच्छिष्ट पात्रों का जल डालते, उसी में घृतादि रखते और आटा
समय भी वैसे ही उच्छिष्ट हाथों से उठाते और पसीना भी आटा

पाकड है क्योंकि जिसमें घी दूध अधिक लगे उसको खाने में स्वाद
 ठहर में त्रिकना पदार्थ अधिक जावे इसीलिये यह प्रणञ्ज रचा है,
 तो जो अग्नि वा काल से पका हुआ पदार्थ पका और न पका हुआ
 है। जो पका खाना और कच्चा न खाना है यह भी सर्वत्र ठीक नहीं
 के चणे आदि कच्चे भी खाये जाते हैं।

१—(प्रश्न) द्विज अपने हाथ से रसोई बना के खावें वा शूद्र के
 की बनाई खावें ?

(उत्तर) शूद्र के हाथ की बनाई खावें, क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय
 वैश्य वर्णस्थ स्त्री पुरुष विद्या पढ़ाने, राज्यपालन और पशुपालन खेती
 र के काम में तत्पर रहें और शूद्र के पात्र तथा उसके घर का पका
 भक्ष्य आपत्काल के बिना न खावें; सुनो प्रमाण—

आर्याधिष्ठिना वा शूद्राः सस्कर्त्तार स्युः ।

[आपस्तम्ब धर्मसूत्र । प्रपाठक १ । पटल २ । खण्ड २ । सूत्र ४ ॥]

यह आपस्तम्ब का सूत्र है । आर्यों के घर में शूद्र अर्थात् मूर्ख स्त्री
 पाकादि सेवा करें, परन्तु वे शरीर वस्त्र आदि से पवित्र रहें, आर्यों के
 में जब रसोई बनावें तब मुख बाध के बनावें क्योंकि उनके मुख से
 छ और निला हुआ श्वास भी अन्न में न पड़े । आठवें दिन क्षौर, नख-
 करावें, स्नान करके पाक बनाया करें, आर्या को खिला के आप खावे ।

२—(प्रश्न) शूद्र के छुए हुए पके अन्न के खाने में जब दोष लगाते
 उसके हाथ का बनाया कैसे खा सकते हैं ?

(उत्तर) यह यात कपोलकल्पित झूठी है क्योंकि तिन्होंने गुड,
 घृत, दूध, पिशान, शाक, फल, मूल खाया उन्होंने जानो सब
 भर के हाथ का बनाया और उच्छिष्ट खालिया क्योंकि जब शूद्र,
 भग्नी, मुसयमान, ईसाई आदि लोग खेतों में से ईख को काटते
 पोलकर रस निकालते हैं तब मलमूत्रोत्सर्ग करके उन्हीं बिना धोये
 से छूते, ठाठते, धरते, आधा साठा चूस रस पीके आधा उसी में
 देने हैं और रस पकाते समय उस रस में रोटी भी पकाकर खाते हैं ।
 धीन बनाते हैं तब पुराने जूने कि जिसके तले में बिछा, मूत्र गोबर
 लगी रहती है उन्हीं जूतों से उसको रगड़ते हैं । दूध में अपने
 उच्छिष्ट पात्रों का जल डालते, ठली में घृतादि रखते और आटा
 समय भी वैसे ही उच्छिष्ट हाथों से ठाठते और पसीना भी आटा

दिन अर्थात् प्रातः, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को भी मलीन विष्टादि के संसर्ग से उत्पन्न हुए शाक, फल, मूलादि न खाना ।

वर्जयेन्मधु मांसं च ॥ [मनु० २ । १७७]—

जैसे अनेक प्रकार के मद्य, गाजा, अफीम आदि—

बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारि तदुच्यते ॥

[शार्ङ्गधर प्रथम खण्ड । अ० ४ । श्लो० २१]

जो २ बुद्धि का नाश करनेवाले पदार्थ हैं उनका सेवन कभी न करें जितने अन्न सड़े, बिगड़े, दुर्गन्धादि से दूषित, अच्छे प्रकार न बने और मद्य मासाहारी श्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्य मांस के परमाही से पूरित है उनके हाथ का न खावे, जिसमें उपकारक प्राणियों की अर्थात् जैसे एक गाय के शरीर से दूध, घी, घैल, गाय उत्पन्न होने क पीढ़ी में चार लाख पचहत्तर सहस्र छः सौ मनुष्यों को सुख पहुंचे है वैसे पशुओं को न मारें, न मारने दें। जैसे किसी गाय से बीस और किसी से दो सेर दूध प्रतिदिन होवे, उसका मध्यभाग ग्यारह प्रत्येक गाय से दूध होता है, कोई गाय अठारह और कोई छः महीने दूध देती है उसका मध्य भाग बारह महीने हुए, अब प्रत्येक गाय के भर के दूध से २४९६० (चौबीस सहस्र नौ सौ साठ) मनुष्य एक में तृप्त हो सकते हैं । उसके छः बछिया, छः बछटे होते हैं, उनमें से भर जायें तो भी दश रहे, उन में से पाच बछटियों के जन्मभर के दूध मिलाकर १२४८०० (एक लाख चौबीस सहस्र आठ सौ) मनुष्य हो सकते हैं । अत्र रहे पाच बैल, वे जन्मभर में ५००० (पाच सहस्र) अन्न न्यून से न्यून उत्पन्न कर सकते हैं । उस अन्न में से प्रत्येक मनुष्य पाव पावे तो अढ़ाई लाख मनुष्यों की तृप्ति होती है । दूध और अन्न १७४८०० (तीन लाख चौहत्तर सहस्र आठ सौ) मनुष्य तृप्त । दोनों सख्या मिला के एक गाय की एक पीढ़ी में ४७५६०० (चार लाख पचहत्तर सहस्र छः सौ) मनुष्य एवं चार पालित होते हैं । पीढ़ी परपीढ़ी घटाकर लेखा करें तो असंख्यात मनुष्यों का पालन पाई है । इससे भिक्षु [बेल] गायी सवारी, भार उठाने आदि से मनुष्यों के बड़े उपकारक होते हैं तथा गाय दूध में अधिक उपकारक होती है । और जैसे घैल उपकारक होते हैं वैसे जैसे भी है, वही गाय के दूध घी से जितने बुद्धिबुद्धि से लाभ होते हैं उतने

भैंस के दूध से नहीं, इससे मुख्योपकारक आर्यों ने गाव को और जो कोई अन्य विद्वान् होगा वह भी इसी प्रकार समझने के दूध से २५९१० (पच्चीस सहस्र नौ सौ बीस) आदमियों होता है। वैसे हाथी, घोड़े, ऊँट, भेड़, गदहे आदि से भी बने होते हैं। इन पशुओं को मारने वालों को सब मनुष्यों की घाले जानियेगा। देखो ! जब आर्यों का राज्य था तब ये गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे, तभी आर्यावर्त्त वा अन्य में बड़े आनन्द में मनुष्यादि प्राणि वर्त्तते थे क्योंकि दूध, घी, पशुओं की बहुताई होने अन्न रस पुष्कल प्राप्त होते थे। जब से मांसाहारी इस देश में आके गौ आदि पशुओं के मारने लगे कारी हुए हैं तब से क्रमशः आर्यों के दुःख की बढ़ती होती जाती है। नष्टे मूले नैव फलं न पुष्पम् [॥ वृद्धचाणक्य अ० १० । ११]

जब वृक्ष का मूल ही काट दिया जाय तो फल फूल कहीं ११—(प्रश्न) जो सभी अहिंसक हो जायें तो व्याघ्रादि पशु हतने कि मय गाय आदि पशुओं को मार ग्यायं, तुम्हारा पुरुषार्थ ही क्या हो (उत्तर) यह राजपुरुषों का काम है कि जो हानिकारक मनुष्य हो उनकी दण्ड देवें और प्राण मे भी विरुक्त कर दें।

(प्रश्न) फिर क्या उनका मांस फेंक दें ?

(उत्तर) चाहें फेंक दें, चाहें कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला जाय देवें, अथवा कोई मांसाहारी ग्रावे तो भी संसार की नहीं होती, किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर ब्रह्मता है, जितना हिंसा और घोरी, विश्वासघात, छल, कपट आदि को प्राप्त होकर भाग करना है वह अमृत्य और अहिंसा धर्मादि प्राप्त होकर मोक्षनादि करना भक्ष्य है। जिन पदार्थों से व्याघ्र, गोरक्ष, कालभय, वृद्धि और आनुवृद्धि होये उन मनुष्यादि, गोभूम, पशु, मृग, वृक्ष, वीं निष्ठादि पदार्थों का सेवन यथायोग्य पाक मेल करके यथोचित पर विन्यास भोजन करना मय भक्ष्य कहाना है। जिन पदार्थों में अहिंसा विन्यास करने पाये हैं उन २ का सर्वथा त्याग करना ही तो विन्यास विन्यास विन्यास है उन २ पदार्थों का प्रयोग करना पद २०

* उद्धृष्टं हिंसा अत्यासा "गोहत्यानिषिद्धि" में की है।

१२—(प्रश्न) एक साथ खाने में कुछ दोष है वा नहीं ?
(उत्तर) दोष है, क्योंकि एक के साथ दूसरे का स्वभाव और ति नहीं मिलती । जैसे कुछी भादि के साथ खाने से अच्छे मनुष्य का रुधिर बिगाड जाता है वैसे दूसरे के साथ खाने में भी कुछ बिगाड ही है सुधार नहीं, इसीलिये—

उच्छिष्ट कस्यचिद्दद्यान्नाद्यान्वैव तथान्नरा ।
बैवान्यशन कुर्यान्न चोच्छिष्टः कचिद् व्रजेत् ॥ [मनु० २।५१]
न किसी को अपना जूठा पदार्थ द और न किसी के भोजन के बीच जावे, न अधिक भोजन करे और न भोजन किये पश्चात् हाथ मुख विना कहीं इधर उधर जाय ।

(प्रश्न) “गुरोरुच्छिष्टभोजनम्” इस वाक्य का क्या अर्थ होगा ?
(उत्तर) इसका यह अर्थ है कि गुरु के भोजन किये पश्चात् जो भक्षण शुद्ध स्थित है उसका भोजन करना अर्थात् गुरु को प्रथम न कराके पश्चात् शिष्य को करना चाहिये ।

(प्रश्न) जो उच्छिष्टमात्र का निषेध है तो मक्खियो का उच्छिष्ट न, बछड़े का उच्छिष्ट दूध और एक ग्रास खाने के पश्चात् अपना भी उष्ट होता है, पुन उनको भी न खाना चाहिये ।

(उत्तर) सहत कथनमात्र ही उच्छिष्ट होता है, परन्तु यह बहुत सी धियों का सार ग्राह्य, चछडा अपनी मा के बाहिर का दूध पीता है र के दूध को नहीं पी सकता इसलिये उच्छिष्ट नहीं, परन्तु बछड़े के पश्चात् जल में उसकी मा के स्तन धोकर शुद्ध पात्र में दोहना ये । और अपना उच्छिष्ट अपने को विकारकारक नहीं होता । देखो ! अब ये यह बात सिद्ध है कि किसी का उच्छिष्ट कोई भी न खावे । जैसे मुख, नाक, कान, ओख, उपस्थ और गुणैन्द्रियो के मल मूत्रादि के में पृणा नहीं होता वैसे किसी दूसरे के मल मूत्र के स्पर्श में होती इससे यह निश्चय होता है कि यह व्यवहार सन्निकम से विपरीत नहीं है ऐसे मनुष्यमात्र को उचित है कि किसी का उच्छिष्ट अर्थात् जू । न खाये ।

(प्रश्न) भग्न स्त्री पुण्य भा पस्पर उच्छिष्ट न खावे ।
(उत्तर) नहीं, क्या कि उनके भी शरीरों का स्वभाव निष्ट २ है ।
१३—(प्रश्न) कफोजी मनुष्यमात्र के हाथ की की हुई रसोई में खाने दोष है ? क्योंकि प्राण से लेके पोषण पर्यन्त के शरीर हाथ

चमड़े के हैं और जैसा रुधिर व्याहण के शरीर में है वैसा ही चांगल के, पुन मनुष्यमात्र के हाथ की पकी हुई रस्तेई के पाने में क्या

(उत्तर) शेष है, क्योंकि जिन उत्तम पदार्थों के खाने पीने से और वात्सल्यी क शरीर में दुर्गन्धादि दोषरहित रज धार्य उत्पन्न होवे वैसा चाटाल और चाटाली के शरीर में नहीं, क्योंकि चाटाल का शरीर दुर्गन्ध क परमाणुओं से भरा हुआ होता है वैसा वात्सल्यी वगैरे इमलिय वात्सल्यी उत्तम वणों के हाथ का खाना और चाटाली के हाथ का न खाना । भला कोई तुम से पूछेगा कि चाटाल के शरीर माता, सास, बहिन, कन्या, पुत्रवधू का है पैसा भी अपनी स्त्री का भी है तो क्या माता आदि स्त्रियों के साथ भी खाएंगे ? तब तुमको सङ्कुचित होकर चुप ही रहना पड़ेगा । जैसे उत्तम अन्न हाथ और मुख से खाया जाता है वैसे दुर्गन्ध भी खाया जा सकता है तो क्या मल्लादि भी खाओगे ? क्या पैसा भी कोई हो सकता है ।

१४ - (प्रश्न) जो गाय क गोबर से चौका लगाते होते अपने गायरतें नहीं लगाते ? और गायरत के चौके में जाने से चौका अद्भुत क्यों नहीं बनता ?

(उत्तर) गाय के गोबर से वैसा दुर्गन्ध नहीं होता जैसा कि मनुष्य के मूत्र में, [गोमय] जिसका हाने में शीघ्र नहीं उलझता, जिसकी गंध, न मर्दाना होता है, जैसा मिट्टी से मेल चढ़ता है जैसा मूत्र में नहीं होता । मिट्टी और गोबर में जिस स्थान का स्पर्श काटने पर अति सुन्दर होता है और जहाँ रमोंटें बनती हैं वहाँ गोबर का स्पर्श भी, मिट्टी और उच्छिष्ट भी गिरता है उसमें मासों, कीड़ों, बूढ़ों का भी गहिरा स्थान रहने में आने है । जो उस में शरीर का स्पर्श से दुर्गन्ध प्रतिदिन न की जाये सो जानो पापान के मूल का न हो जाना है । इसलिये प्रतिदिन गोबर मिट्टी झाड़ू, में मिलाकर खाने के लिये पका मराना सो जल में भोहर मुद्र रखना सो उचित है । गोबर की सिष्टि हो जानो है जैसे मिश्राजी के फल के अन्त में कड़े कोयल, कड़ा राख, कड़ा लहसी, कड़ी दूरी हरी, कड़ा कड़वा, कड़ा कड़वा गन्ध रहने हैं और मसिखा का भी कड़वा ! यह सब गोबर दुर्गन्ध लगाता है कि जो कोई श्रेष्ठ पुरुष सो गोबर को खाने का सो समझने है और उस दुर्गन्ध-मय गोबर को खाने का सो समझने है । भगवान् जो कोई उन में दुर्गन्ध

तोबर से चौका लगाने में तो तुम दोष गिनते हो परन्तु चूल्हे में कंड़े डालने, उसकी आग से तमाखू पीने, घर की भीति पर लेपन करने आदि ये मियांजी का भी चौका भ्रष्ट हो जाता होगा इस में क्या सन्देह ।

१५—(प्रश्न) चौका में बैठ के भोजन करना अच्छा वा बाहर बैठ के ?

(उत्तर) जहाँ पर अच्छा रमणीय सुन्दर स्थान दीखे वहाँ भोजन करना चाहिये परन्तु आवश्यक गुद्धादिकों में तो घोड़े आदि यानों पर बैठ के वा खड़े २ भी खाना पीना अत्यन्त उचित है ।

१६—(प्रश्न) क्या अपने ही हाथ का खाना और दूसरे के हाथ का नहीं ?

(उत्तर) जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनावे तो बराबर सब आर्यों के साथ खाने में कुछ भी हानि नहीं, क्योंकि जो ब्राह्मणादि वर्णस्थ स्त्री रूप रसोई बनाने, चौका देने, वर्त्तन भांडे माजने आदि बखेडे में पड़े रहें तो विद्यादि शुभगुणों की वृद्धि कभी नहीं होसके, देखो ! महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भूगोल के राजा, ऋषि, महर्षि आये थे, एक ही पाकगाला से भोजन किया करते थे । जब से ईसाई, मुसलमान आदि मतमतान्तर चले, आपस में वैर विरोध हुआ, उन्हीं ने मद्यपान गोमांसादि का खाना पीना स्वीकार किया उसी समय से भोजनादि में बखेडा हो गया । देखो ! कातुल, कंधार ईरान, अमेरिका, यूरोप आदि देशों के राजाओं की कन्या गान्धारी, माद्री, उलोपी आदि के साथ आर्यावर्त्तदेशीय राजा लोग विवाह आदि व्यवहार करते थे । शकुनि आदि कौरव, पाटवों के साथ खाते पीते थे, कुछ विरोध नहीं करते थे क्योंकि उस समय सर्व भूगोल में वेदोक्त एक मत था, उसी में सब की निष्ठा थी और एक दूसरे का सुख, दुःख, हानि, लाभ आपस में अपने समान समझते थे, तभी भूगोल में सुख था । अब तो बहुत से मत चाले होने से बहुतसा दुःख और विरोध बढ़ गया है, इसका निवारण करना युद्धिमानों का काम है । परमात्मा सब के मन में सत्य मत का पेंसा अकुर टाले जिससे मिथ्या मत क्षीप्र ही प्रलय की प्राप्त हों, इसमें सब विद्वान् लोग विचार कर विरोधभाव छोड़ के आनन्द को बढ़ावें ।

१७—यह धोटा सा आचार-अनाचार, भक्ष्याभक्ष्य विषय में लिखा । इस ग्रन्थ का पूर्वादर्श इसी दशवें समुदास के साथ पूरा होगया । इन समुदासों में विशेष गण्डन मण्डन इसलिये नहीं लिखा कि जब तक मनुष्य सत्यासत्य के विचार में कुछ भी सामध्य नहीं बताते तब तक

अनुभूमिका

यह सिद्ध यात है कि पात्र सहस्र वर्षों के पूर्व वेदमत से भिन्न दूसरा कोई भी मत न था क्योंकि येशेक्त सब याते विद्या से अविरुद्ध हैं। वेदों की अप्रवृत्ति होने का कारण महाभारत युद्ध हुआ। इनकी अप्रवृत्ति से अविद्या-अकार के भूगोल में विस्तृत होने से मनुष्यों की बुद्धि भ्रमयुक्त होकर जिसके मन में जैसा आया वैसा मत चलाया।

उन सब मतों में (४) चार मत अर्थात् जो वेदविरुद्ध पुराणी, जैनी, किराणी और कुराणी सब मतों के मूल हैं वे क्रम से एक के पीछे दूसरा, तीसरा, चौथा चला है। अब इन चारों की शाखा एक सहस्र से कम नहीं है। इन सब मतवादियों, इनके चेलों और अन्य सब को परस्पर सत्यासत्य के विचार करने में अधिक परिश्रम न हो इसलिये यह ग्रन्थ बनाया है। जो २ इसमें सत्य मत का मण्डन और असत्य का खण्डन लिखा है वह सबको जानना ही प्रयोजन समझा गया है। इसमें जैसी मेरी बुद्धि, जितनी विद्या और जितना इन चारों मतों के मूल ग्रन्थ देखने से बोध हुआ है उसको सबके आगे निवेदित कर देना मैं उत्तम समझा है, क्योंकि विज्ञान गुप्त हुए का पुनर्मिलना सहज नहीं है। पक्षपात छोड़ कर इसको देखने से सत्यासत्य मत सबको विदित हो जायगा। पश्चात् सबको अपनी २ समझ के अनुसार सत्य मत का ग्रहण करना और असत्य मत को छोड़ना सहज होगा। इनमें से जो पुराणादि ग्रन्थों से शाखा शाखान्तर रूप मत आर्यावर्त देश में चले हैं उनका संक्षेप से गुण दोष इस ११ वें समुदास में दिखाया जाता है।

इस मेरे कर्म से यदि उपकार न मानें तो विरोध भी न करें। क्योंकि मेरा तात्पर्य किसी की हानि या विरोध करने में नहीं, बल्कि सत्यासत्य का निर्णय करने कराने का है। इसी प्रकार सब मनुष्यों को न्यायदर्श से वर्तना अति उचित है। मनुष्य जन्म का होना सत्यासत्य के निर्णय करने कराने के लिये है, न कि वादविवाद विरोध करने कराने के लिये। इसी मतमतान्तर के विवाद से जगत् में जो २ अन्ध पक्ष हुए, होते हैं और होंगे उनको पक्षपातरहित विद्वान् जान सकते

उत्तरार्द्धः

अथैकादशसमुह्लासारम्भः

अथाऽऽर्यावर्त्तीयमतखण्डनमण्डने विधास्यामः ।

१—अब आर्य लोगो के कि जो आर्यावर्त्त देश में बसने वाले हैं उनके मत का खण्डन तथा मण्डन का विधान करेंगे । यह आर्यावर्त्त देश ऐसा है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है, इसीलिये इस भूमि का नाम सुवर्णभूमि है क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नों को उत्पन्न करता है । इसीलिये सृष्टि की आदि में आर्य लोग इसी देश में आकर बसे, इसीलिये हम सृष्टि विषय में कह आये हैं कि 'आर्य' नाम उत्तम पुरुषों का है और आर्यों से भिन्न मनुष्यों का नाम 'दस्यु' है । जितने भूगोल में देश हैं वे सब इसी देश की प्रशंसा करते और आशा रखते हैं कि पारस-मणि पत्थर सुना जाता है, वह बात तो झूठी है, परन्तु आर्यावर्त्त देश ही सच्चा पारसमणि है कि जिसको लोहे रूप दरिद्र विदेशी छूते के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य होजाते हैं ।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादत्रजन्मनः ।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ [मनु० २। २।]

सृष्टि से ले के पांच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यन्त आर्यों का सार्व-भौम, चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एवमात्र राज्य था । अन्य देश में माण्डलिक अर्थात् छोटे २ राजा रहते थे क्योंकि कौरव पांडवपर्यन्त यहां के राज्य और राजशासन में सब भूगोल के सब राजा और प्रजा चले थे क्योंकि यह मनुस्मृति जो सृष्टि की आदि में हुई है उत्तका प्रमाण है । इसी आर्यावर्त्त देश में उत्पन्न हुए ब्राह्मण अर्थात् विद्वानों से भूगोल के मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, दस्यु, श्लेच्छ आदि सब अपने २ योग्य विद्या चरित्रों की शिक्षा और विद्याभ्यास करें और महाराजा युधि-ष्ठिरजी के राजसूय यज्ञ और महाभारत युद्ध पर्यन्त यहां के राज्याधीन सब राज्य थे । सुनो ! चीन का भगदत्त, अमेरिका का बनुदाहन, यूरोपदेश का विदालाक्ष अर्थात् मार्जार के सदृश भाले वाले, यवन जिसको पूरा कह आये और ईरान का दस्यु आदि सब राजा राजसूय दक्ष और

२—(प्रश्न) जो आग्नेयास्त्र आदि विद्यालिखी हैं वे सत्य हैं वा नहीं और तोप तथा बन्दूक तो उस समय में थीं वा नहीं ?

(उत्तर) यह बात सच्ची है, ये शस्त्र भी थे क्योंकि पदार्थविद्या से इन सब बातों का सम्भव है ।

(प्रश्न) क्या ये देवताओं के मन्त्रों से सिद्ध होते थे ?

(उत्तर) नहीं, ये सब बातें जिनसे अस्त्र शस्त्रों को सिद्ध करते थे 'मन्त्र' अर्थात् विचार से सिद्ध करते और चलाते थे । और जो मन्त्र अर्थात् शब्दमय होता है उससे कोई द्रव्य उत्पन्न नहीं होता और जो कोई कहै कि मन्त्र से अग्नि उत्पन्न होता है तो वह मन्त्र के जप करने वाले के हृदय और जिह्वा को भस्म करदेवे । मारने जाय शत्रु को और मर रहै आप । इसलिये मन्त्र नाम है विचार का, जैसे 'राजमन्त्री' अर्थात् राजकुमों का विचार करने वाला कहाता है वैसा मन्त्र अर्थात् विचार से सब सृष्टि के पदार्थों का प्रथम ज्ञान और पश्चात् क्रिया करने से अनेक प्रकार के पदार्थ और क्रियाकौशल उत्पन्न होते हैं । जैसे कोई एक लोहे का पाण वा गोला बनाकर उसमें ऐसे पदार्थ रखे कि जो अग्नि के लगाने से वायु में धुआ फैलने और सूर्य की किरण वा वायु के स्पर्श होने से अग्नि जल उठे इसी का नाम 'आग्नेयास्त्र' है । जब दूसरा इसका निवारण करना चाहे तो उसी पर वारुणास्त्र छोड दे अर्थात् जैने शत्रु ने शत्रु की सेना पर अग्नेयास्त्र छोड कर नष्ट करना चाहा वैसे ही अपनी सेना की रक्षार्थ सेनापति वारुणास्त्र से अग्नेयास्त्र का निवारण करे । वह ऐसे द्रव्यों के योग से होता है जिसका धुआ वायु के स्पर्श होने ही दहल होके शत्रु अपने लग जावे, अग्नि को घुसा देवे । ऐसे ही नागपास अर्थात् जो शत्रु को छोटने से उसके अङ्गों को जकड के बाध लेता है वैसे ही एक गोदनास्त्र अर्थात् जिसमें नदी की चीज टाहने से, जिसके एणु के लगने से शत्रु की सेना निद्रास्थ अर्थात् मूर्छित होजाय । इसी प्रकार सब अस्त्र होते थे । और एक तर से वा दीश से अथवा किसी और पदार्थ से विद्युत् उत्पन्न करके शत्रुओं का नाश करते थे उसको भी आग्नेयास्त्र या पाशुरतास्त्र कहते हैं । 'तोप' और 'बन्दूक' ये नाम अन्य देश भाषा में हैं । संस्कृत और आर्यार्षीय भाषा के नहीं, बल्कि जिसको विदेशी लोग 'तोप' कहते हैं संस्कृत और भाषा में उनका नाम 'शतांगी' और जिसको बन्दूक कहते हैं उसको संस्कृत और धार्यनापा में 'शुशुणी' कहते हैं

देव लो । तथा "दाराशिकोद" चादशाह ने भी यही निश्चय किया था । जैसा पूरी विद्या सन्कृत में है वैसी किसी भाषा में नहीं । वे ऐसा निनिपदा क भाषान्तर में लिखते हैं कि मैंने अर्थों आदि बहुत सी भाषाओं, परन्तु मेरे मन का सन्देह छुटकर आनन्द न हुआ । जब सस्कृत देखा तो सुना तब निस्सन्देह होकर मुस्को घटा आनन्द हुआ है । देखो आशा क "मानमन्दिर" में शिशुमारचक्र को कि जिसकी पूरी रक्षा भी हो रही है तो भी कितना उत्तम है कि जिसमें अब तक भी खगोल का इतना वृत्तान्त विगित होता है जो "सवाई जयपुराधीन" उसकी माल और फूटे टूटे को बनवाया करेंगे तो बहुत अच्छा होगा । परन्तु शिगोमणि देव को महाभारत के युद्ध ने ऐसा धक्का दिया कि अब भी यह अपनी पूर्व दशा में नहीं आया । क्योंकि जब भाई को भाई ने लगे तो नाश होने में क्या सन्देह है ।

—अथनाशराल विपरांतवाज्ज ॥ [बुद्धचाणक्य । अ० १६ । १७]
यह किसी कवि का वचन है । जब नाश होने का समय निकट होता है तब उल्टी बुद्धि होकर उल्टे काम करते हैं । कोई उनको सूधा मसाले तो उल्टा मानें और उल्टा समझावें उसको सूधी मानें । जब २ विद्वान्, राजा, महाराजा, ऋषि, महर्षि लोग महाभारत-युद्ध में मारे गये और बहुत से मर गये तब विद्या और वेदोक्त धर्म का भार नष्ट हो चला । ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान आपस में करने लगे । जो विद्वान् हुआ वह देश को दाखर राजा बन बैठा । वैसे ही सर्वत्र आर्या-देश में खण्ड बण्ड राज्य होगया । पुनः द्वीपद्वीपान्तर के राज्य की वस्था कौन करे ? जब प्राक्षण लोग विद्याहीन हुए तब क्षत्रिय, वैश्य शूद्रों के अविद्वान् होने में तो क्या ही क्या कहनी ? जो परम्परा से यदि शास्त्रों का अर्थसहित पढ़ने का प्रचार था वह भी छूट गया । अलर्जाविकार्थ पाठमात्र प्राक्षण लोग पढ़त रहे, सो पाठमात्र ही क्षत्रिय दि को न पटाया । क्योंकि जब अविद्वान् ए गुरु बन गये तब छल, धट, अधर्म भी उनमें घटता चला । प्राक्षणों ने विचारा कि अपनी सेवा का प्रयत्न बाधना चाहिये । सम्मति करके यहाँ निश्चय कर क्षत्रिय को उपदेश करने लगे कि हम ही तुम्हारे पूज्यदेव हैं । बिना हमारी किये तुमको स्वर्ग या मुक्ति न मिलेगी । किन्तु जो तुम हमारी सेवा करेंगे तो घोर नरक में पड़ोगे । जो जो पूर्ण विद्या पाते धानवों का

(प्रश्न) हम तो ब्राह्मण और साधु हैं क्योंकि हमारा पिता ब्राह्मण और माता ब्राह्मणी तथा हम भक्त साधु के चेले हैं ।

(उत्तर) यह सत्य है परन्तु सुनो भाई ! मा बाप ब्राह्मणी ब्राह्मण ने से और किसी साधु के शिष्य होने पर ब्राह्मण वा साधु नहीं होते किन्तु ब्राह्मण और साधु अपने उत्तम गुण कर्म स्वभाव से होते हैं, जो कि परोपकारी हो । सुना है कि जैसे रुम के "पोप" अपने चेलों को कहते थे कि तुम अपने पाप हमारे सामने कहोगे तो हम क्षमा कर देंगे, वना हमारी सेवा और आज्ञा के कोई भी स्वर्ग में नहीं जा सकता, जो तुम स्वर्ग में जाना चाहो तो हमारे पास जितने रुपये जमा करोगे उतने ही मैं सामग्री स्वर्ग में तुमको मिलेगी, ऐसा सुनकर जब कोई आँख के अंधे और गाँठ के पूरे स्वर्ग में जाने की इच्छा करके "पोपजी को यथेष्ट रुपया देता था तब वह "पोपजी" ईसा और मरियम की मूर्ति के सामने खड़ा होकर इस प्रकार हुंडी लिख कर देता था " हे खुदावन्द ईसामसीह ! भक्त मनुष्य ने तेरे नाम पर लाख रुपये स्वर्ग में आने के लिये हमारे पास जमा कर दिये हैं । जब वह स्वर्ग में आवे तब तू अपने पिता के स्वर्ग के राज्य में पच्चीस सहस्र रुपयों में बाग़ बगीचा और मकानात, बीस सहस्र में सवारी शिकारी और नौकर चाकर, पच्चीस सहस्र रुपयों में खाना पीना, कपड़ा लत्ता और पच्चीस सहस्र रुपये इसके एष्ट मित्र, भाई बन्धु आदि के जियाफत के वास्ते दिला देना ।" फिर उस हुंडी के अंदर पोपजी अपनी सही करके हुंडी उसके हाथ में देकर कह देते थे कि जब तू मरे तब इस हुंडी को कबर में अपने सिराने धर लेने के लिये अपने कुटुम्ब को कह रखना, फिर तुम्हें लेजाने के लिये फरिश्ते आवेंगे तब मैं और तेरी हुंडी को स्वर्ग में लेजाकर लिखे प्रमाणों सब चीजें तुझको दिला देंगे", अब देखिये जानों स्वर्ग का ठेका पोपजी ने ले लिया हो । तब तक यूरोप देश में खरता थी तभी तक वहाँ पोपजी की लीला चलती थी, परन्तु अब विद्या के होने से पोपजी की लीला बहुत नहीं चलती, नन्तु निर्मूल भी नहीं हुई ।

७—वैसे ही आर्यावर्त देश में भी जानो पोपजी ने लाखों अवतार लेकर लीला फैलाई हो । अर्थात् राजा और प्रजा को विद्या न पढ़ने देना, अच्छे कर्मों का सङ्ग न होने देना, रात दिन बहाने वं सिपाय दूसरा काम नहीं करना है । परन्तु यह बात ध्यान में रखना कि जो जो

अर्थात् जब उत्तम २ उपदेशक होते हैं तब अच्छे प्रकार धर्म, अर्थ, और मोक्ष सिद्ध होते हैं। और जब उत्तम उपदेशक और श्रोता नहीं होते तब अन्धपरम्परा चलती है। फिर भी जब सत्पुरुष उत्पन्न होकर उपदेश करते हैं तभी अन्धपरम्परा नष्ट होकर प्रकाश की परम्परा चलती पुनः वे पोंप लोग अपनी और अपने चरणों की पूजा कराने लगे और वे लगे कि इसी में तुम्हारा कल्याण है। जब ये लोग इनके घश में हो गये प्रमाद और विषयासक्ति में निमग्न होकर गढरिये के समान झूठे गुरु और फंसे। विद्या, बल, बुद्धि, पराक्रम, शूरवीरतादि शुभ गुण नष्ट होते चले। तब जब विषयासक्त हुए तो मांस मद्य का सेवन गुप्त १ करने लगे।
 ८—पश्चात् उन्होंने में से एक वाममार्ग खड़ा किया। 'शिव उवाच', 'वर्ण्युवाच', 'भैरव उवाच' इत्यादि नाम लिखकर तन्त्र नाम धरा। ऐसी ऐसी विविध लीला की बातें लिखी कि—

मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च ।
 पञ्चमकाराः स्युर्मोक्षदा हि युगे युगे ॥१॥ [कालीतंत्रादि में]
 ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजानयः ।
 त्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक् ॥२॥ [कुलार्णव तन्त्र]
 या पीत्वा पुनः पीत्वा यावत्पतति भूतले ।
 कथाय वै पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ३ ॥ [महानिर्वाण तंत्र]
 योनिं परित्यज्य विहरेत् सर्वयोनिषु ॥ ४ ॥
 शास्त्रपुराणानि सामान्यगणिका इव ।
 व शास्त्रची मुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव ॥५॥ [ज्ञानसकलनी तंत्र]
 अर्थात् देखो इन नवगण्ड पोषों की लीला कि जो वेदविरुद्ध महा के काम हैं उन्हीं को श्रेष्ठ वाममार्गियों ने माना। मद्य, मांस, अर्थात् मच्छी, मुद्रा, पूरी, बचीरी और बड़े, रोटी आदि चर्चण, योनि, धार, मुद्रा और पाचवा मैथुन अर्थात् पुरुष सब शिव और स्त्री सब की के समान मानकर—

अष्टं भैरवस्त्व भैरवी ह्यावयोरस्तु सङ्गमः ।
 चाहे कोई पुरुष या स्त्री हो इस ऊपट्याग पचन को पद के समागम में वे वाममार्गी होष नहीं मानते। अर्थात् जिन नीच छिपों को नहीं उनको अतिपवित्र उन्होंने माना है। जैसे शास्त्रों में रजस्वला छिपों के स्पर्श का निषेध है उनको वाममार्गियों ने अतिपवि

माना है। सुनो इनका श्लोक संबन्ध—

रजस्वला पुष्करं तीर्थं चाण्डाली तु स्वयं काशी।
चर्मकारी प्रयागः स्याद्रजकी मथुरा मता।
अयोध्या पुष्कसी प्रोक्ता ॥ [रुद्रयामल तन्त्र]

इत्यादि, रजस्वला के साथ समागम करने से जानो पुष्कर स्नान, चाण्डाली से समागम में काशी की यात्रा, चमारी से करने से मानो प्रयागस्नान, धोबी की स्त्री के साथ समागम मथुरा यात्रा और कजरी के साथ लीला करने से मानो अयोध्या कर आये। मथ का नाम धरा 'तीर्थ', मांस का नाम 'शुद्धि' और मन्त्री का नाम 'तृतीया', 'जलतुम्बिका', मुद्रा का नाम 'चतुर्थी' मैथुन का नाम 'पंचमी'। इसलिए ऐसे ५ नाम धरे हैं कि त्रिमये न समझ सके। अपने कौल, आर्द्रघोर, शास्त्रधर और गण आदि रखते हैं। और जो वाममार्ग मत में नहीं हैं उनका 'कंटक', 'शुक्लपत्र' आदि नाम धरे हैं। और कहते हैं कि जब भीरवीचक्र हो तबमें ब्राह्मण से लेकर चाण्डालपर्यन्त का नाम द्विज होजाता है और भीरवीचक्र से अलग हों तब सब अपने अपने वर्णस्थ हो जायें। मैं, वाममार्गी लोग श्रुति या पदे पर एक बिंदु, त्रिछोण, चतुश्छोण, त्रिचक्र तब पर मथ का घड़ा रंग के ठसकी पूजा करते हैं कि मन्त्र पढ़ते हैं 'ब्रह्मशाय त्रिमोचय' हे मथ ! तू ब्रह्मा आदि के से रहित हो। एक गुप्त स्थान में कि जहां मित्राय वाममार्गी के दूध नहीं आने देते, नहीं स्त्री और पुरुष दृक्दृष्टे होते हैं। वहाँ एक नहर कर पढ़ने और स्त्री लोग जिमी पुरुष को नहा कर पत्नी के कोठे दिखी की स्त्री, कोठे अपनी या दूसरे की कन्या, कोठे दिखी की अपनी माता, भगिनी, पुत्रवधू आदि आनी हैं। पञ्चांग एक पात्र में भर है सूर्य और चंद्र आदि एक स्थान में घर रखते हैं। तब एक पात्र में जो है उनका आचार्य होता है वह हाथ में छेड़ा है 'मैथिलोऽहम्', 'शिवोऽहम्' 'मै धैरवी या निव हूँ' कहते हैं। फिर दही गूदे पात्र से मन्त्र पढ़ते हैं। और जब जिमी की कन्या वहाँ का वचना दिखी पुरुष को नहा कर हाथ में रखता तब उस नाम दही और पुरुष का नाम महादेव धार है, उरुदेव की पूजा करते हैं, तब तब देवी का निव को मन्त्र है।

प्र कर उसी जूठे पात्र से सब लोग एक २ ग्याला पीते । फिर उसी
 त्र मम से पी पी के उन्मत्त होकर चाहे कोई किसी की बहिन, कन्या
 माता क्यों न हो, जिसकी जिसके साथ इच्छा हो उसके साथ, कुकर्म
 हैं । कभी २ बहुत नशा चढ़ने से जूते, लात, मुक्कामुक्की, केशाकेशी
 म में लड़ते हैं । किसी किसी को वहीं वमन होता है । उनमें जो पहुचा
 भी भवोरी अर्थात् सब में सिद्ध गिना जाता है, वह वमन हुई चीज
 भी खा लेता है अर्थात् इनके सब से बड़े सिद्ध की ये बातें हैं कि—
 लां पिबति दीक्षितस्य मन्दिरे सुप्तो निशायां गणिकागृहेषु ।
 राजते कौलवचक्रवर्ती

जो दीक्षित अर्थात् कलार के घर में जाके बोटल पर बोटल चढ़ावे,
 ब्यों के घर में जाके उनसे कुकर्म करके सोवे, जो इत्यादि कर्म निर्लज्ज,
 शङ्क होकर करे, वही वाममार्गियों में सर्वोपरि मुख्य चक्रवर्ती राजा
 समान माना जाता है । अर्थात् जो बड़ा कुकर्मी वही उनमें बड़ा और
 अच्छे काम करे और बुरे कामों से उरे वही छोटा क्योंकि —

पाश्वद्यो भवेज्जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः ।

[ज्ञानसङ्कलनी तन्त्र । श्लोक ४३]

ऐसा तत्र में कहते हैं कि जो लोकलज्जा, शास्त्रलज्जा, कुललज्जा,
 लज्जा आदि पाशों में बंधा है वह 'जीव', और जो निर्लज्ज होकर घुरे
 म करे वही 'सदाशिव' है ।

६—उद्गीश तन्त्र आदि में एक प्रयोग लिखा है कि एक घर में चारो
 आलय हों । उनमें मद्य के बोटल भरके धर देवे । इस आलय से एक
 ल पी के दूसरे आलय पर जावे । उसमें से पी तीसरे और तीसरे में
 रीके चौथे आलय में जावे । खड़ा २ तब तक मद्य पीवे कि जब तक
 की के समान धूधिधी में न गिर पड़े । फिर जब नशा उतरे सब उसी
 त्र पीकर गिर पड़े । पुनः तीसरी चार इसी प्रकार पीके गिर के उठे
 उसका पुनर्जन्म न हो, अर्थात् सच तो यह है कि ऐसे २ मनुष्यों का
 मनुष्यजन्म होना ही कठिन है किन्तु नीच योनि में पड़ कर दहकाह
 न पड़ा रहेगा ।

वामियों के तन्त्र ग्रन्थों में यह नियम है कि एव माता को छोट के
 तो स्त्री को भी न छोटना चाहिये । अर्थात् चाहे बन्धा हो या भगिनी
 दे क्यों न हो, सब के साथ संगम करना चाहिये । इन वाममार्गियों में

—(प्रश्न) अश्वमेध, गोमेध, नरमेध आदि शब्दों का अर्थ क्या है ?

(उत्तर) इनका अर्थ तो यह है कि—

राष्ट्रं वा अश्वमेधः [शत० १३ । १ । ६ । ३]

अन्नं हि गौः ॥ शत० ४ । ३ । १ । ०५ ॥

अग्निर्वा अश्वः । आज्यं मेध ॥ [शतपथब्राह्मणे ॥]

घोंडे, गाय आदि पशु तथा मनुष्य मार के होम करना कहीं नहीं था। केवल वामभागियों के ग्रन्थों में ऐसा अनर्थ लिखा है। किन्तु भीमात वामभागियों ने चलाई और जहा जहा लेख है वहा वहा भी वाम-भागियों ने प्रक्षेप किया है। देवो ! राजा न्याय धर्म से प्रजा का पालन करे, आदि का देने हारा 'यजमान' और अग्नि में घी आदि का होम करना 'अश्व-मेध', अन्न, इन्द्रिया, विरण, पृथिवी आदि को पवित्र रखना 'गोमेध', जब मनुष्य का जीव तब उसके शरीर का विधिपूर्वक दाह करना 'नरमेध' कहाता है।

(प्रश्न) यज्ञकर्त्ता कहते हैं कि यज्ञ करने से यजमान और पशु स्वर्गगामी जा होम करके फिर पशु को जीता करते थे, यह बात सच्ची है या नहीं ?

(उत्तर) नहीं, जो स्वर्ग को जाते हों तो ऐसी बात कहने वाले को मार के होम कर स्वर्ग में पहुचाना चाहिये वा उसके प्रिय माता, पिता, भ्राता और पुत्रादि को मार होम कर स्वर्ग में क्यों नहीं पहुचाते ? वा वेदी में पुनः क्यों नहीं जिला लेते हैं ?

(प्रश्न) जब यज्ञ करते हैं तब वेदों के मन्त्र पढ़ते हैं। जो वेदों में होता तो कहा से पढ़ते ?

(उत्तर) मन्त्र किसी को कही पढ़ने से नहीं रोक्ता, क्योंकि वह एक पद है। परन्तु उनका अर्थ ऐसा नहीं है कि पशु को मारके होम करना। वे "अन्ने मे स्वाहा" इत्यादि मन्त्रों का अर्थ अग्नि में हवि, पुष्टादि-आदि पृतादि उत्तम पदार्थों के होम करने से वायु, धृष्टि, जल शुद्ध होकर आत्मा को सुखकारक होते हैं। परन्तु इन सभ्य अर्थों को वे मूढ़ नहीं समझते थे क्योंकि जो स्वार्थबुद्धि मीत है वे बंदल अपने स्वार्थ करने के दूसरा कुछ भी नहीं जानते, मानते।

११—जब इन पोषों का ऐसा अनाचार देखा और दूसरा मरे वा तर्पण, आदि करने को देकर एक महाभयद्वार वदादि शार्ङ्गों का हिन्दू का जीवनमत प्रचलित हुआ है। सुनते हैं कि एक इसी देश में गोरक्षपुर राजा था। उससे पोषों ने वज्ञ कराया। उसकी प्रिय राजा का सम्मान

न के लिए ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या और जीव ब्रह्म की एकता कथन की इसका उपदेश करने लगे । दक्षिण में शृङ्गेरी, पूर्व में भूगोवर्धन, उत्तर में सोनी और द्वारिका में भारदामठ* बांधकर शङ्कराचार्य के शिष्य महन्त और श्रीमान् होकर आनन्द करने लगे, क्योंकि शङ्कराचार्य के पश्चात् शिष्यों की बड़ी प्रतिष्ठा होने लगी ।

१३—अब हममें विचारना चाहिये कि जो जीव ब्रह्म की एकता, मिथ्या शङ्कराचार्य का निज मत था तो वह अच्छा मत नहीं और नियों के खडन के लिये उस मत का नवीकार किया हो तो कुछ है । नवीन वेदान्तियों का मत ऐसा है—

(प्रश्न) जगत् स्वप्नवत्, रज्जू में सर्प, सीप में चांदी, मृगतृष्णिका में गन्धर्वनगर इन्द्रजालवत् यह ससार झूठा है । एतद्वय ही सचा है ।

(सिद्धान्ती) झूठा तुम किसको कहते हो ?

(नवीन) जो वस्तु न हो और प्रतीत होवे ।

(सिद्धान्ती) जो वस्तु ही नहीं उसकी प्रतीति कैसे हो सकती है ?

(नवीन) अध्यारोप से ।

(सिद्धान्ती) अध्यारोप किसको कहते हो ?

(नवीन) 'वस्तुन्यवस्त्वारोपणमध्यासः' । 'अध्यारोपादाभ्यां निष्प्रपञ्च प्रपच्यते' पदार्थ कुछ और हो उसमें अन्य वस्तु का आरोपण करना अध्यास, अध्यारोप, और उसका निराकरण करना अपवाद होता है । इन दोनों से प्रपंचरहित ब्रह्म म प्रपंचरूप जगत् विस्तार करते हैं ।

(सिद्धान्ती) तुम रज्जू को वस्तु और सर्प को अवस्तु मानकर इस जाल में पड़े हो । क्या सर्प वस्तु नहीं है ? जो कहो कि रज्जू में नहीं देवान्तर में और उसका सत्त्वारमात्र हृदय में है । फिर वह सर्प भी वस्तु नहीं रहा । वैसे ही स्थाणु में पुरष, सीप में चांदी आदि भी व्यप-समस्त लेना । और स्वप्न में भी जिनका भान होता है वे देवान्तर में और उनके सत्त्वार आत्मा में भी हैं । इसलिए वह स्वप्न भी वास्तु में वस्तु के आरोपण के समान नहीं ।

(नवीन) जो कभी न देखा, न सुना, जैसा कि अपना शिर बटा और आप रोता है, जल की धारा उपर चली जाती है, जो कभी न

के लिए ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या और जीव ब्रह्म की एकता कथन की जा उपदेश करने लगे । दक्षिण में शृङ्गेरी, पूर्व में भूगोवर्धन, उत्तर में और द्वारिका में सारदामठ* बाधकर शङ्कराचार्य के शिष्य महन्त श्रीमान् होकर आनन्द करने लगे, क्योंकि शङ्कराचार्य के पश्चात् शिष्यों की बड़ी प्रतिष्ठा होने लगी ।

३—अब हममें विचारना चाहिये कि जो जीव ब्रह्म की एकता, मिथ्या शङ्कराचार्य का निज मत था तो वह अच्छा मत नहीं और शिष्यों के खडन के लिये उस मत का न्वीकार किया हो तो कुछ है । नवीन वेदान्तियों का मत ऐसा है—

(श्र) जगत् स्वप्नवत्, रज्जू में सर्प, सीप में चादी, मृगतृष्णिका में चर्वणनगर इन्द्रजालवत् यह ससार झूठा है । एकब्रह्म ही सच्चा है ।

(सिद्धान्ती) झूठा तुम किसको कहते हो ?

(नवीन) जो वस्तु न हो और प्रतीत होवे ।

(सिद्धान्ती) जो वस्तु ही नहीं उसकी प्रतीति कैसे हो सकती है ?

(नवीन) अध्यारोप से ।

(सिद्धान्ती) अध्यारोप किसको कहते हो ?

(नवीन) 'वस्तुन्यवस्त्वारोपणमध्यासः' । 'अध्यारोपा-
भ्यां निष्प्रपञ्च प्रपञ्च्यते।' पदार्थ कुछ और हो उसमें अन्य वस्तु का
ग करना अध्यास, अध्यारोप, और उसका निराकरण करना अपवाद
है । इन दोनों से प्रपञ्चरहित ब्रह्म म प्रपञ्चरूप जगत् विस्तार करते हैं ।

(सिद्धान्ती) तुम रज्जू को वस्तु और सर्प को अवस्तु मानकर इस
ल में पड़े हो । क्या सर्प वस्तु नहीं है ? जो बघो कि रज्जू में नहीं
अन्तर में और उसका सस्कारमात्र हृदय में है । फिर वह सर्प भी
नहीं रहा । वैसे ही स्थाणु में पुरुष, सीप में चादी आदि की व्यप-
मस लेना । और स्वप्न में भी जिनका भान होता है वे देशान्तर में
उनके सस्कार आत्मा में भी हैं । इसलिये वह स्वप्न भी वस्तु में
के आगेपण के समान नहीं ।

(नवीन) जो कभी न देखा, न सुना, जैसा कि अपना दार बघा
आप रोता है, जल की धारा उपर चली जाती है, जो कभी न

- (नवीन) जीव को ।
- (सिद्धान्ती) जीव कहा से हुआ ? (नवीन) अज्ञान से ।
- (सिद्धान्ती) अज्ञान कहाँ से हुआ और कहाँ रहता है ?
- (नवीन) अज्ञान अनादि और ब्रह्म में रहता है ।
- (सिद्धान्ती) ब्रह्म में ब्रह्म का अज्ञान हुआ वा किसी अन्य का और अज्ञान किसको हुआ ? (नवीन) चिदाभास को ।
- (सिद्धान्ती) चिदाभास का स्वरूप क्या है ?
- (नवीन) ब्रह्म, ब्रह्म को ब्रह्म का अज्ञान अर्थात् अपने स्वरूप को ही भूल जाता है ।
- (सिद्धान्ती) उसके भूलने में निमित्त क्या है ?
- (नवीन) अविद्या ।
- (सिद्धान्ती) अविद्या सर्वव्यापी सर्वज्ञ का गुण है वा अल्पज्ञ का ?
- (नवीन) अल्पज्ञ का ।
- (सिद्धान्ती) तो तुम्हारे मत में विना एक अनन्त सर्वज्ञ चेतन के ही कोई चेतन है वा नहीं ? और अल्पज्ञ कहाँ से आया ? हा, जो अल्पज्ञ चेतन ब्रह्म से भिन्न मानो तो ठीक है । जब एक ठिकाने ब्रह्म को अपने स्वरूप का अज्ञान हो तो सर्वत्र अज्ञान फैल जाय । जैसे शरीर में एक जगह की पीड़ा सब शरीर के अङ्गों को निक्कमा कर देती है, इसी प्रकार ब्रह्म भी एक देश में अज्ञानी और कुश युक्त हो तो सब ब्रह्म भी अज्ञानी और पीड़ा के अनुभवयुक्त होजाय ।
- १५—(नवीन) यह सब उपाधि का धर्म है, ब्रह्म का नहीं ।
- (सिद्धान्ती) उपाधि जड़ है वा चेतन और सत्य है वा असत्य ?
- (नवीन) अनिर्वचनीय है अर्थात् जिसको जड़ वा चेतन, सत्य वा असत्य नहीं कह सकते ।
- (सिद्धान्ती) यह तुम्हारा कहना “वदतो व्याघातः” के तुल्य है क्योंकि कहते हो अविद्या है जिसको जड़, चेतन, सत्, असत् नहीं कह सकते । यह ऐसी बात है कि जैसे सोने में पीतल मिला हो उसको सराफा पास परीक्षा करावे कि यह सोना है वा पीतल ? तब यही कहेंगे कि इसको सोना न सोना न पीतल कह सकने हैं, किन्तु इनमें दोनों धातु मिली हैं ।
- (नवीन) देखो जैसे घटावाश, मठावाश, मेघावाश और ...
- उपाधि अर्थात् घटा, घर और मेघ के होने से भिन्न भिन्न प्रतीत होते हैं ।

वृहदारण्यक के अन्तर्गामी ब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है । और ब्रह्म का गस भी नहीं पड सकता, क्योंकि बिना आकार के आभास का होना भव है । जो अन्तःकरणोपाधि से ब्रह्म को जाँव मानते हो सो तुम्हारी बालक के समान है । अन्तःकरण चलायमान खण्ड १ और ब्रह्म अचल अखण्ड है । यदि तुम ब्रह्म और जीव को पृथक् २ न मानोगे तो का उत्तर दीजिये । क जहा २ अन्तःकरण चला जायगा वहा २ के ब्रह्म अज्ञानी और जिस २ देश को छोडेगा वहाँ १ के ब्रह्म को ज्ञानी करेगा वा नहीं ? जैसे छाना प्रकाश के बीच में जहाँ २ जाता है वहा २ के श को आवरणयुक्त और जहा २ से हटता है वहाँ २ के प्रकाश को रणहित कर देता है, वैसे ही अन्तःकरण ब्रह्म को क्षण २ में ज्ञानी, नी, बद्ध और मुक्त करता जायगा । अखंड ब्रह्म के एक देश में आव-का प्रभाव सर्वदेश में होने से सब ब्रह्म अज्ञानी हो जायगा क्योंकि चेतन है । और मथुरा में जिस अन्तःकरणस्थ ब्रह्म ने जो वस्तु देखी का स्मरण उसी अन्तःकरणस्थ से काशी में नहीं हो सकता । क्योंकि न्यहृष्टमन्यो न स्मरन्तीति न्यायात्" और के देखे का स्मरण को नहीं होता । जिस चिदाभास ने मथुरा में देखा वह चिदाभास में नहीं रहता किन्तु जो मथुरास्थ अन्तःकरण का प्रकाशक है [वह] स्थ ब्रह्म नहीं होता । जो ब्रह्म ही जीव है, पृथक् नहीं, तो जीव को होना चाहिये । यदि ब्रह्म का प्रतिविम्ब पृथक् है तो प्रत्यभिज्ञा अर्थात् ए, श्रुत का ज्ञान किसी को नहीं हो सकेगा । जो कहो कि ब्रह्म एक ब्रह्मिण स्मरण होता है तो एक ठिकाने अज्ञान का दुःख होने से सब को अज्ञान का दुःख हो जाना चाहिये । और ऐसे २ एष्टान्तों से नित्य, बुद्ध, मुक्तस्वभाव ब्रह्म को तुमने अशुद्ध अज्ञानी और बद्ध आदि कर दिया है और अखंड को खंड २ कर दिया ।

१७—(नवीन) निराकार का भी आभास होता है जैसा कि दर्पण का चे में आकाश का आभास पड़ता है, वह नीला या किसी अन्य प्रकार का गहरा दीखता है, वैसे ब्रह्म का भी सब अन्तःकरणों में आभास है ।

(सिद्धान्ती) जब आकाश में रूप ही नहीं है तो उसको आग से कोई ही देख सकता । जो पदार्थ दीखता ही नहीं वह दर्पण और जलादि में मिलेगा ? गहरा या छिद्रा नाकार पदार्थ दीखता है, निराकार नहीं ।

माने, झूठ न बोले और झूठ कदाचित् न करे। जब तुम अपनी बात को ही झूठ करते हो तो तुम अपने आप मिथ्यावादी हो।

(नवीन) अनादि माया जो कि ब्रह्म के आश्रय और ब्रह्म ही का धरण करती है उसको मानते हो वा नहीं ?

(सिद्धान्ती) नहीं मानते, क्योंकि तुम माया का अर्थ ऐसा करते हो जो वस्तु न हो और भासे है तो इस बात को वह मानेगा जिसके की आँख फूट गई हो। क्योंकि जो वस्तु नहीं उसका भासमान सर्वथा असम्भव है जैसा वन्या के पुत्र का प्रतिविम्ब कभी नहीं होता। और यह 'सन्मूलाः सोम्येमा प्रजा' इत्यादि छान्दोग्य नेपथ्यों के वचनों से विरुद्ध कहते हो ?

(नवीन) क्या तुम वसिष्ठ, शंकराचार्य आदि और निश्चलदास पर्यन्त जैसे अधिक पण्डित हुए हैं उन्होंने लिखा है उसको खण्डन करते हो ? तो वसिष्ठ, शङ्कराचार्य और निश्चलदास आदि अधिक दीखते हैं।

१८—(सिद्धान्ती) तुम विद्वान् हो वा अविद्वान् ?

(नवीन) हम भी कुछ विद्वान् हैं।

(सिद्धान्ती) अच्छा तो वसिष्ठ, शङ्कराचार्य और निश्चलदास के जे हमारे सामने स्थापन करो, हम खण्डन करते हैं। जिसका पक्ष हो वही घटा है। जो उनकी और तुम्हारी बात अखण्डनीय होती तो उनकी गुक्तियां लेकर हमारी बात को खण्डन क्यों न कर सकते ? हमारी और उनकी बात माननीय होवे। अनुमान है कि शङ्कराचार्य ने तो जेनियों के मत के खण्डन करने ही के लिये यह मत स्वीकार किया, क्योंकि देश काल के अनुकूल अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिये। स्वार्थी विद्वान् अपने आत्मा के ज्ञान से विरुद्ध भी बर होने हैं। इन बातों को अर्थात् जीव ईश्वर की एकता, जगत् मिथ्या आदि सच्चा नहीं मानते थे, तो उनकी बात सच्ची नहीं हो सकती। निश्चलदास का पाण्डित्य देखो ऐसा है 'जीवां ब्रह्माऽभिन्नश्चेत्' उन्होंने 'वृत्तिप्रभाकर' में जीव ब्रह्म की एकता के लिये लिखा है कि चेतन होने से जीव ब्रह्म से अभिन्न है। यह द्रष्टुं पुरुष [की बात] के सत्ता बात है। क्योंकि साधर्म्यमात्र दूसरे के साथ एकता नहीं होती, वैधर्म्य भेदक होता है। ईश्वर है कि 'पृथिवी जलाऽभिन्ना जलत्वात्' जल के होने से

प्राप्त होकर अपने अन्तर्यामि ब्रह्म को प्राप्त होके आनन्द में स्थित
हो सकता ॥ १ ॥ इसी प्रकार जब पापादि रहित ऐश्वर्ययुक्त योगी
होता है तभी ब्रह्म के साथ मुक्ति के आनन्द को भोग सकता है। ऐसा
मिनि आचार्य का मत है ॥ २ ॥ जब अविद्यादि दोषों से छूट शुद्ध
तन्मयात्र स्वरूप से जीव स्थिर होता है तभी 'तदात्मकत्व' अर्थात् ब्रह्म
रूप के साथ सम्यग्बन्ध को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ जब ब्रह्म के साथ
वैयर्थ्य और शुद्ध विज्ञान को जीते ही जीवन्मुक्त होता है तब अपने निर्मल
स्वरूप को प्राप्त होकर आनन्दित होता है ऐसा व्यासमुनिजी का
मत है ॥ ४ ॥ जब योगी का सत्य सङ्कल्प होता है तब स्वयं परमेश्वर
को प्राप्त होकर मुक्ति सुख को पाता है। वहां स्वाधीन स्वतन्त्र रहता
ऐसा ससार में एक प्रधान दूसरा अग्रधान होता है वैसे मुक्ति में
ही। विन्तु सब मुक्त जीव एकसे रहते हैं ॥ ५ ॥ जो ऐसा न हो तो—

नेतरोनुपपत्तेः ॥ [१ । १ । १६] १ ॥
भेदव्यपदेशाच्च ॥ [१ । १ । १७] २ ॥
विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यां च नेतरौ ॥ [१ । १ । २२] ३ ॥
अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति ॥ [१ । १ । १६] ४ ॥
अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् ॥ [१ । १ । २०] ५ ॥
भेदव्यपदेशाच्चान्य ॥ [१ । १ । २१] ६ ॥
शुद्धा प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात् ॥ [१ । २ । ११] ७ ॥
अनुपपत्तेस्तु न शारीरः ॥ [१ । २ । ३] ८ ॥
अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात् ॥ [१ । २ । १८] ९ ॥
शारीरश्चोऽभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते ॥ [१ । २ । २०] १० ॥

व्यासमुनिपुत्रवेदान्तसूत्राणि ॥

अर्थ—ब्रह्म से इतर जीव सृष्टिमूर्त्ति नहीं है क्योंकि इस अल्प, अल्पज्ञ,
अल्पबल के जीव में सृष्टिकर्तृत्व नहीं घट सकता। इस से जीव ब्रह्म नहीं
है ॥ 'रस एवायं लब्धवानन्दी भवन्ति' यह उपनिषद् का वचन
जीव और ब्रह्म भिन्न हैं क्योंकि इन दोनों का भेद प्रतिपादन किया है।
ऐसा न होता तो रस अर्थात् आनन्दस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होकर जीव
आनन्दस्वरूप होता है यह प्राप्तिविषय ब्रह्म और प्राप्त होने वाले जीव
भेद नहीं घट सकता। इसलिये जीव और ब्रह्म एक नहीं ॥ २
दिव्योऽसमूर्त्तः पुरुषः सः साक्षाभ्यन्तरोऽयम् ।

सी प्रकार नहीं हो सकता । तथा उपसहार (प्रलय) के होने पर भी प्र, कारणात्मक जड़ और जीव बराबर बने रहते हैं । इसलिये उपक्रम और सहार भी इन वेदान्तियों की कल्पना झूठी है । ऐसी अन्य बहुत सी बुद्धिवातें हैं कि जो शास्त्र और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से विरुद्ध है ।

२०—इसके पश्चात् कुछ जैनियों और कुछ शङ्कराचार्य के अनुयायी लोगों उपदेश के सत्कार आर्यावर्त्त में फैले थे और आपस में खण्डन मण्डन चलाता था । शङ्कराचार्य के तीन सौ वर्ष के पश्चात् उज्जैन नगरी में विक्रमादित्य राजा कुछ प्रतापी हुआ, जिसने सब राजाओं के मध्य प्रवृत्त ई लड़ाई को मिटाकर शान्ति स्थापन की । तत्पश्चात् भर्तृहरि राजा व्यादि शास्त्र और अन्य में भी कुछ २ विद्वान् हुआ । उसने वैराग्यवान् कर राज्य को छोड़ दिया । विक्रमादित्य के पाचसौ वर्ष के पश्चात् राजा भोज हुआ । उसने थोड़ा सा व्याकरण और काव्यालङ्कारादि का इतना प्रचार किया कि जिसके राज्य में कालिदास वकरी चरानेवाला भी रघुवश का कर्त्ता हुआ । राजा भोज के पास जो कोई अच्छा श्लोक बनाकर जाता था उसको बहुतसा धन देते थे और प्रतिष्ठा होती थी । उसके पश्चात् राजाओं और श्रीमानों ने पढ़ना ही छोड़ दिया । यद्यपि शङ्कराचार्य के पूर्व वाममागियों के पश्चात् शैव आदि सम्प्रदायस्थ मतवादी भी हुए । परन्तु उनका बहुत बल नहीं हुआ था । महाराजा विक्रमादित्य से लेके शैवों का बल बढ़ता आया । शैवों में पाशुपतादि बहुत सी शाखा हुई थीं, ऐसी वाममागियों में दश महाविद्यादि की शाखा है । लोगों ने शङ्कराचार्य को शिष्य का अवतार ठहराया । उनके अनुयायी सन्पासी भी शैव मत में प्रवृत्त हो गये और वाममागियों को भी मिलाते रहे । वाममागी, देवी जो शैवजी की पत्नी है, उसके उपासक और शैव महादेव के उपासक हुए, ये दोनों रक्षाक्ष और भस्म अघाघाधि धारण करते हैं परन्तु जितने वाममागी वेदविरोधी हैं वैसे शैव नहीं हैं ।

धिक् धिक् कपालं भस्मरुद्राक्षविटानम् ॥ १ ॥

रुद्राक्षान् करणदेशे दशनपरिमितान्मस्तके त्रिशती द्वे,

षट् षट् कर्णप्रदेशे करयुगलगतान् द्वादशान्छादशेष ।

चाक्षोरिन्दोः कलाभिः पृथगिति तदितमेकमथ शिखायाम्,

वक्षस्यष्टाशधिकथः कलयति शतकं स स्वयं नीलवरटः ॥२॥

इत्यादि बहुत प्रकार के गोव [इन लोगों ने] बनाये और बरने

के नाम से नहीं। यह बात राजा भोज के बनाये सजीवनी इतिहास में लिखी है कि जो ग्वालियर के राज्य 'भिड' नामक के तिवाडी प्राणियों के घर में है। जिसको लखना के रावसाहब उनके गुमादते रामदयाल चौबेजी ने अपनी भोख से देखा है। स्पष्ट लिखा है कि व्यामजी ने चार सहस्र चारसौ और उनके ने पाच सहस्र ठी तो श्लोक्युक्त अर्थात् सब दस सहस्र श्लोकों का भारत बनाया था। वह महाराजा विक्रमादित्य के समय में रहते, महाराजा भोज कहते हैं कि मेरे पिताजी के समय में पच्चीस व मेरी आधी उमर में तीस सहस्र श्लोक्युक्त महाभारत का पुस्तक है। जो ऐसे ही बढ़ता चला तो महाभारत का पुस्तक एक ऊट का होजायगा। और ऋषि मुनियों के नाम से पुराणादि ग्रन्थ बनावेंगे पर्यावर्तीय लोग भ्रमजाल में पड़ के वैदिकधर्मविहीन होके भट गे। इससे विदित होता है कि राजा भोज को कुछ २ वेदों का था। इनके भोज प्रबन्ध में लिखा है कि—

या क्रोशदशैकमश्वः सुवृत्रिमो गच्छति चारुगत्या ।
रदानि व्यजनं सुपुष्कलं विना मनुष्येण चलत्यजस्रम् ॥
राजा भोज के राज्य में और समीप ऐसे २ शिल्लरी लाग थे कि घोड़े के आकार एक यान यन्त्र कलायुक्त बनाया था कि जो एक घंटी में ग्यारह कोश और एक घंटे में साठे सत्ताईस कोश आता था। भूमि और अन्तरिक्ष में भी चलता था। और दूसरा पट्टा बनाया था कि दिना मनुष्य के चलाये, कलायन्त्र के बल से नित्य चलता और पुष्कल वायु देता था। जो ये दोनों पदार्थ आज तक तो यूरोपियन इतने अभिमान में न चढ़ जाते।

—जय पोपजी अपने चेलो वी जैनियो से रोबने लगे तो भी जाने से न रुक रुके और जैनियो वी बंधा में भी लोग जाने नियो के पोप इन पुराणियो व पोपो के चेलो वी रहवाने हगे गेयो ने विचारा कि इसका कोई उपाय करना चाहिये, नहीं तो अपने हो जायेंगे। पश्चात् पोपो ने दली सम्मति दी कि जैनियों के अपने भी अवतार, मन्दिर, मूर्ति, और बंधा के इत्लब बनावें। इन जैनियों के चौबीस तीर्थवरो के मन्दिर चौबीस अवतार, मन्दिर बनाई। और जैसे जैनियों के धार्मिक और उत्तर पुराणादि

को उत्पन्न किया। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्र इनको पालकी
ने वाले कहार बनाया, इत्यादि गण्डे हम्बे चौड़े मनमाने लिखे हैं।
नसे पूछे कि उस देवी का शरीर और उस श्रीपुर का बनाने वाला और
माता पिता कौन थे ? जो कहो कि देवी अनादि है तो जो सयोगजन्य
वह अनादि कभी नहीं हो सकता। जो माता पुत्र के विवाह करने
तो भाई बहिन के विवाह में कौनसी अच्छी बात निकलती है ?।

५—जैसी इस देवीभागवत में महादेव, विष्णु और ब्रह्मादि की
और देवी की बढाई लिखी है इसी प्रकार शिवपुराण में देवी आदि
हुत धुदता लिखी है। अर्थात् सब महादेव के दास और महादेव
ईश्वर है। जो रुद्राक्ष अर्थात् एक वृक्ष के फल की गोठली और
धारण करने से मुक्ति मानते हैं तो राख में लोटने हारे गदहा आदि पशु
घुची आदि के धारण करने वाले भील कजर आदि मुक्ति को जावें और
कुत्ते, गधा आदि राख में लोटने वालों की मुक्ति क्यों नहीं होती ?

प्रश्न) कालाग्निरद्रोपनिषद् में भस्म लगाने का विधान लिखा है।
क्या दृष्टा है ? और “इयायुष जमदग्निः०”। यजुर्वेदवचन *।

इत्यादि वेदमन्त्रों से भी भस्म धारण का विधान और पुराणों में रुद्र
ख के अध्रुपात से जो वृक्ष हुआ उसी का नाम रुद्राक्ष है। इसी-
सके धारण में पुण्य लिखा है। एक भी रुद्राक्ष धारण करे तो
पों से छूट स्वर्ग को जाय। यमराज और नरक का डर न रहे।

उत्तर) कालाग्निरद्रोपनिषद् किसी रखोटिया मनुष्य अर्थात् राख
करनेवाले ने बनाई है क्योंकि ‘यास्य प्रथमा रेखा सा भूर्लोकः’
वचन [उस में] अनर्थक हैं। जो प्रतिदिन हाथ से बनाई रेखा
भूर्लोक वा इत्सवा घाचक कैसे हो सकते हैं ? और जो “इयायुषं
जमदग्निः०” इत्यादि मन्त्र हैं, वे भस्म वा त्रिपुट धारण के घाची नहीं
‘चक्षुर्वै जमदग्निः, शतपथ [८।१।२।३] हे परमेश्वर ? मेरे नेत्र की
(इयायुषम्) तिगुणा अर्थात् तीनसौ वर्षपर्यन्त रहे और मैं भी
मैं के वाम करु बि. जिस्तसे छिष्ट नाश न हो। भला यह किननी
मूर्खता की बात है कि आंग के अध्रुपात से भी वृक्ष उत्पन्न हो
है ? क्या परमेश्वर के सृष्टिप्रम यो कोई अन्यथा कर सकता है ?

जोसा जिस वृक्ष का बीज परमात्मा ने रचा है उसी से वह वृक्ष
 रहता है अन्यथा नहीं। इसमें जितनी रुद्राक्ष, भस्म, तुम्ही
 घाम, चन्दन आदि को कण्ठ में धारण करना है वह सब चर्या
 मनुष्य का काम है। ऐसे चाममार्गी और शैव बहुत मिथ्यावादी
 और कर्त्तव्य कर्म के त्यागी होते हैं उनमें जो कोई श्रेष्ठ पुण्य
 वातांता का विश्वास न करके अच्छे कर्म करता है। जो रुद्राक्ष भस्म
 गमराज क दूत उरते हैं तो पुलिस के सिपाही भी डरते होंगे। जो
 भस्म वारण करने वालों में कुत्ता, सिंह सर्प, विन्दु मारी और
 आदि भी नहीं डरते तो व्यागार्धाक्ष के गण क्यों डरेंगे ?

२६-(प्रश्न) चाममार्गी और शैव तो अच्छे नहीं, परन्तु शैवार्थ

(उत्तर) यह भी वेदविरोधी होने से उनमें भी अरिष्ट पुण्य है।

(प्रश्न) "नमस्ते रुद्र मन्यवे" । "वैष्णवमार्गी" । "नाय च" । "गणानां त्वा गणपतिर्धृष्ट्यामन्द" । "मृया" । "सूर्य आत्मा जगत्सन्स्थुपश्च" । इत्यादि
 में शैवार्थ मात्र मिलते हैं, पुन क्यों व्यण्डन करने लगे ?

(उत्तर) इन वचनों में शैवार्थ संप्रदाय मिल नहीं है।
 "रुद्र" परमेश्वर, प्राणादि वायु, जीव, अग्नि आदि का नाम है। जो
 कर्त्ता रुद्र शर्वाङ्ग दृष्ट को कल्याण करने वाले परमात्मा का नाम है।
 और वैष्णवार्थ का अर्थ देना, (नम इति अक्षनाम । निम्न
 गणपति, सर्व समार का श्रेष्ठतम कल्याण करने वाला
 देवता का नाम है । शिवस्य परमेश्वरस्य
 शैवः । विष्णोः परमानन्दोऽयं भक्तो वैष्णवः ।
 रुद्र इत्यनुरूपमिन्द्रोऽयं भक्तो नागपतिः । नागपति
 इत्यनुरूपं नागपतिः । सूर्यस्य चराचरानन्दोऽयं
 भक्तः । सूर्यस्य रुद्र, शिव, विष्णु, गणपति, मृयादि पारमार्थिक
 भक्तों का नाम है। इत्यर्थे शैवार्थ मात्र मिलता है।

र फौ तो उसके पग पर दूसरे गुरुभाई का सेव्य पग पड़ा । उसने ले पग पर धर मारा । गुरु ने कहा कि अरे दुष्ट ! तूने यह क्या किया ? बोला कि मेरे सेव्य पग के ऊपर यह पग क्यों आ चढ़ा ? इतने में चेला जो कि बजार हाट को गया था, आ पहुँचा । वह भी अपने पग की सेवा करने लगा । देखा तो पग सूजा पड़ा है । बोला कि ॥ यह मेरे सेव्य पग में क्या हुआ ? गुरु ने सब वृत्तान्त सुना दिया । भी मूर्ख न बोला न चाला । चुपचाप दण्डा उठा के बड़े बल से गुरु सरे पग में मारा । तो गुरु ने उच्चस्वर से पुकार मचाई । तब दोनों दण्डा लेके पड़े और गुरु के पगों को पीटने लगे । तब बटा कोला मचा और लोग सुनकर आये । कहने लगे कि साधु जी क्या हुआ ? उनमें किसी बुद्धिमान् पुरुष ने साधु को छुटा के पश्चात् उन मूर्ख चेलों को श किया, कि देखो ये दोनों पग तुम्हारे गुरु के हैं । उन दोनों की सेवा करने सीको सुख पहुँचता और दुःख देने से भी उत्ती एक को दुःख होता है । जैसे एक गुरु की सेवा में चेलाओं ने लीला की, इसी प्रकार जो एक गुरु, सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप परमात्मा के विष्णु, रद्रादि अनेक नाम इन नामों का अर्थ जैसे प्रथम समुद्रास में प्रकाश कर आये हैं उस अर्थ को न जानकर शैव, शाक्त, वैष्णवादि संप्रदायी लोग परस्पर एक के नाम की निन्दा करते हैं । मन्दमति तनिक भी अपनी बुद्धि को पैलाकर विचारते हैं कि ये सब विष्णु, रद्र, शिव आदि नाम एक अद्वितीय, नेयन्ता सर्वान्तर्पामी, जगदीश्वर के अनेक गुण कर्म स्वभावयुक्त होने से के वाचक हैं । भला क्या ऐसे मूर्खों पर ईश्वर का कोप न होता होगा ?

२७—अथ देखिये चक्राङ्गित वैष्णवों की अद्भुत माया—

तापः पुरङ्ग तथा नाम माला मन्त्रस्तथैव च ।

अमी हि पञ्च सस्काराः परमैकान्तदेतवः ॥

अतस्ततनूर्न तदामो अश्नुते । इति श्रुतेः । [राभानुजपटलपद्धतौ]

अर्थात् (ताप) शब, चक्र, गदा और पद्म के चिन्हों को अग्नि में के भुजा के मूल में दाग देकर पश्चात् दुग्धएक पात्र में हटाते हैं

वोई उस दूध को पी लेते हैं । अथ देखिये प्रसन्न ही मन्त्र के का भी म्याद उसमें आता होगा । ऐसे २ वरों से परमेश्वर को प्राप्त

की आशा करने हैं और कहते हैं कि बिना शपथ आदि से शरीर से जीव परमेश्वर को प्राप्त नहीं होता क्योंकि यह (ज्ञान) है

आचरण करते हुए उस तेरे शुद्धस्वरूप को अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं । १ ॥ जो प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की सृष्टि में विस्तृत पवित्राचरणरूप तप करते हैं वे ही परमात्मा को प्राप्त होने में योग्य होते हैं ॥ २ ॥ अब विचार लीजिये कि रामानुजीयादि लोग इस मन्त्र से "चक्राकित" होना सिद्ध क्यों कर सकते हैं ? भला कहिये वे विद्वान् थे वा अविद्वान् ? जो कहो कि विद्वान् तो ऐसा असम्भावित अर्थ इस मन्त्र का क्यों करते ? क्योंकि इस मन्त्र में "अतसतनू" शब्द है, किन्तु "अतसभुजैकदेश" [नहीं], पुनः 'अतसतनू' वह नख शिखाप्रपर्यन्त समुदाय अर्थ है । इस प्रमाण करके अग्नि ही से अपना चक्राकित लोग स्वीकार करें तो अपने २ शरीर को भाड में शोक के तब शरीर को जलावें तो भी इस मन्त्र के अर्थ से विरुद्ध है क्योंकि इस मन्त्र में सत्यभाषणादि पवित्र कर्म करना तप लिया है ॥

ऋतं तपः सत्यं : (तपः श्रुत तपः शान्तं) तपो दमस्तपः
वाध्यायस्तपः । तैत्तिरीय० प्र० १० । अ० ८ ॥

इत्यादि तप कहाता है अर्थात् (ऋत तपः) यथार्थ शुद्धभाव, सत्य जानना, सत्य बोलना, सत्य करना, मन को अधर्म में न जाने देना, बाह्य इन्द्रियों को अन्यायाचरणों में जाने से रोकना अर्थात् शरीर इन्द्रिय और मन से शुभ कर्मों का आचरण करना, वेदादि सत्य विद्याओं का पढ़ना पढ़ाना आनुसार आचरण करना आदि उत्तम धर्मयुक्त कर्मों का नाम 'तप' है । तब तप के चमड़ी को जलाना तप नहीं कहाता ।

२८—देखो चक्राकित लोग अपने को बड़े वैष्णव मानते हैं परन्तु अपनी रम्या और कुकर्म की ओर ध्यान नहीं देते कि प्रथम इनका मूलपुरष 'शठकोप' हुआ कि जो चक्राकितों की के ग्रन्थों और भक्तमाल ग्रन्थ जो बना हम ने बनाया है उन में लिखा है—

विक्रीय शूर्प विचचार योगी

इत्यादि वचन चक्राकितों के ग्रन्थों में लिखे हैं । शठकोप योगी रूप में बना, बेचकर विचरता था अर्थात् बजर जाति में उत्पन्न हुआ था । उसने ब्राह्मणों से पढ़ना या सुनना चाहा होगा तब ब्राह्मणों ने तिरस्कार किया होगा । उसने ब्राह्मणों के विरुद्ध सम्प्रादय तिरस्कार, चण्डाल आदि शास्त्रविरुद्ध मनमानी बातें चलाई होगी । उसका चेला 'मुनिघाहन' जो बि चण्डाल वर्ण में उत्पन्न हुआ था । उसका चेला 'रावनाचार्य' जो बि चण्डालवर्ण था, जिसका नाम दशक के शेरों में

‘रामानुजाचार्य’ भी कहते हैं। उनके पश्चात् ‘रामानुज’ ब्राह्मणकुल में होकर चक्राकित हुआ। उसके पूर्व कुछ भाषा के ग्रन्थ बनाये थे। वे कुछ रासकृत पद्य के संस्कृत में श्लोकवत् ग्रन्थ और शारीरिक उपनिषद् की टांग शङ्कराचार्य की टीका से विरुद्ध बनाई। और चार्य की बहुत सी निन्दा की। जैसे शङ्कराचार्य का मत है कि अर्थात् जीव ब्रह्म एक ही है दूसरी कोई वस्तु वास्तविक नहीं, परन्तु सब मिथ्या साधारण अनित्य है। हमने विरुद्ध रामानुज का मत और साया हीना नित्य है। यहाँ शङ्कराचार्य का मत ब्रह्म ही जीव और कारण वस्तु का न मानना अच्छा नहीं। और रामानुज उस अंश में, जो कि पिदिष्टाद्वैत जीव और मायामहित परमेश्वर यद्वा जीव का मानना और अद्वैत का कहना सर्वथा व्यर्थ है और दूसरे के आ तीन परतन्त्र जीव को मानना, वण्टी, तिलक, माया, पूजनार्थ पापपण्ड मत चलाने आदि बुरी बातें चक्राकित आदि में जीव चक्राकित आदि वेदविरोधी हैं जैसे शङ्कराचार्य के मत के नहीं।

२९ — (प्रश्न) मूर्तिपूजा कहाँ से चली ?

(उत्तर) जैनियों में।

(प्रश्न) जैनियों ने कहाँ से चलाई ?

(उत्तर) अपनी मूर्तता से।

(प्रश्न) जैनी लोग कहते हैं कि शान्त ध्यानावस्थित धैरी हुए

जैन अपने जीव का भी शुद्ध परिणाम घेसा ही होता है।

(उत्तर) जीव ध्यान और मूर्ति जड़। क्या मूर्ति के साथ भी ज्ञान हो जायगा ? यह मूर्ति जो केवल पापपण्ड मत है, जैनों के मत के विरुद्ध है। इसलिये इनका पण्ड १२ व समुदाय में करना।

जैनी लोग बहुत से शंख घंटा घरियार आदि बाजे नहीं बजाते । लोग बड़ा कोलाहल करते हैं तब तो ऐसी लीला के रचने से वैष्णवादि प्रदायी पोपों के चेले जैनियों के जाल से बच के इनकी लीला में आते और बहुत से व्यासादि महर्षियों के नाम से मनमानी असम्भव धायुक्त ग्रन्थ बनाये । उनका नाम 'पुराण' रखकर कथा भी सुनाने लगे और फिर ऐसी २ विचित्र माया रचने लगे कि पापाण की मूर्तियां नाकर गुप्त कहीं पहाड वा जङ्गलादि में धर आये वा भूमि में गाढ दीं । बाद अपने चेलों में प्रसिद्ध किया कि मुझ को रात्रि को स्वप्न में महादेव, श्वेती, राधा, कृष्ण, सीता, राम वा लक्ष्मीनारायण और भैरव, हनुमान आदि ने कहा है कि हम अमुक २ ठिकाने हैं । हम को वहां से ला, मन्दिर में स्थापना कर और तू ही हमारा पुजारी होवे तो हम मनवाछित फल देंगे । जब आप के अन्धे और गांठ के पूरे लोगों ने पोपजी की लीला सुनी तब तो सच ही मानली । और उनसे पूछा कि ऐसी वह मूर्ति कहा पर है ? तब तो पोपजी बोले कि अमुक पहाड वा जङ्गल में है, लो मेरे साथ दिखला दूं । तब तो वे अन्धे उम धूर्त के साथ चलके वहां पहुंच कर देखा । आश्चर्य होकर उस पोप के पग में गिरकर कहा कि आपके ऊपर इस देवता की बड़ी ही कृपा है, अब आप ले चलिये और हम मन्दिर बनवा देंगे । उसमें इस देवता की स्थापना कर आप की पूजा करना और हम लोग भी इस प्रतापी देवता के दर्शन पर्सन करके मनोवाछित फल पावेंगे । इसी प्रकार जब एक ने ल ला रची तब तो उसको सब पोप लोगों ने अपनी जीविकार्थ छल कपट से मूर्तियां स्थापन कीं ।

३०—(प्रश्न) परमेश्वर निराकार है, वह ध्यानमें नहीं आ सकता, इसलिये अवश्य मूर्ति होनी चाहिये । भला जो कुछ भी नहीं करे तो मूर्ति के सम्मुख जा, हाथ जोड़ परमेश्वर का स्मरण करते और नाम लेते हैं इसमें क्या हानि है ?

(उत्तर) जब परमेश्वर निराकार, सर्वव्यापक है तब उसकी मूर्ति ही नहीं बन सकती और जो मूर्ति के दर्शनमात्र से परमेश्वर का स्मरण होवे तो परमेश्वर के बनाये पृथिवी, जल, अग्नि वायु और वनस्पति आदि अनेक पदार्थ, जिनमें ईश्वर ने अद्भुत रचना की है क्या ऐसी रचनारूप पृथिवी, पहाड आदि परमेश्वर रचित महामूर्तियां हैं जिन पहाड आदि से मूर्तियां बनती हैं उनको देखकर परमेश्वर का स्मरण नहीं हो पाता ।

जो तुम कहते हो कि मूर्ति के देराने से परमेश्वर का स्मरण होत
तुम्हारा कथन सर्वथा मिथ्या है। और जब यह मूर्ति सामने न
परमेश्वर के स्मरण न होने से मनुष्य एकान्त पाकर चोरी, जारी
करने में प्रवृत्त भी हो सकता है? क्योंकि यह जानता है कि इस
यहां मुझे कोई नहीं देगता। इसलिए यह अनर्थ करे कि
चूल्हा। इत्यादि अनेक दोष पाषाणादि मूर्तपूजा करने से मित्र
अथ देविये! जो पाषाणादि मूर्तियों को न मान कर सर्वथा
सर्वान्तर्गामी, न्यायकारी परमात्मा को सर्वत्र जानता और मानता
पूज्य सर्वत्र, सर्वदा परमेश्वर को सबके गुरे भले कर्मों का प्रदा
एक क्षणमात्र भी परमात्मा से अपने को पृथक् न जान के कुर्म
नहीं रहा किन्तु मन में कुचेष्टा भी नहीं कर सकता। क्योंकि यह
है, जो मैं मन, वचन और कर्म से भी कुछ गुरा काम करता हूँ
अन्तर्गामी के न्याय से बिना दण्ड पाये कदापि न घूंगा। और
स्मरणमात्र से कुछ भी फल नहीं होता। जैसा कि मिट्टी मिट्टी
से मंदा मीठा और नीच नीच कहने से कटुया नहीं होता किन्तु
चापने ही से मीठा या कटुवापन जाना जाता है।

३१—(प्रश्न) क्या नाम लेना सर्वथा मिथ्या है जो सर्वत्र
नामस्मरण का बड़ा साहाय्य मिलता है?

(उत्तर) नाम लेने की तुम्हारी रीति ठीक नहीं। जिस ४
नामस्मरण करने का यह रीति झूठी है।

(प्रश्न) हमारी कैसी रीति है? (उत्तर) वेद

(प्रश्न) बला अब आप हमको वेदोक्त नामस्मरण की रीति

(उत्तर) नामस्मरण हम प्रकार करना चाहिये। जैसे -
ईश्वर का एक नाम है, हम नाम से हमका अर्थ है कि जैसे पशुपति
इन्द्र परमात्मा सब का पशुपति न्याय करता है जैसे हमारे
आत्मन् का आत्मन् सर्वदा करना, अभ्यास करी न करना। इस
एक नाम से ही मनुष्य का कल्याण हो सकता है।

३२—(प्रश्न) हम भी जानते हैं कि परमेश्वर निराकार है, तब
कैसे निराकार में, सब और देवी आदि के द्वारा धारण करे हम,
हम जिसे। प्रपद हमकी मूर्ति करती है। क्या यह भी कर

(उत्तर) हो न हो। क्योंकि "अत्र पृथक्", "अद्वय"

प्राणों से परमेश्वर को जन्म मरण और शरीरधारणरहित वेदों में कहा है
 १ युक्ति से भी परमेश्वर का अवतार कभी नहीं हो सकता । क्योंकि जो
 अशक्त सर्वत्र व्यापक, अनन्त और सुख, दुःख, दृश्यादि गुणरहित है
 एक छोटे से वीर्य, गर्भाशय और शरीर में क्योंकर आ सकता है ?
 जाता वह है कि जो एकदेशीय हो । और जो अचल, अदृश्य, जिसके
 एक परमाणु भी खाली नहीं है, उसका अवतार कहना जानो बन्ध्या
 का विवाह कर उसके पौत्र के दर्शन करने की बात कहना है ।

३३—(प्रश्न) जब परमेश्वर व्यापक है तो मूर्ति में भी है । पुनः चाहे
 पदार्थ में भावना करके पूजा करना अच्छा क्यों नहीं ? देखो—
 न कोष्ठे विद्यते देवो न पापाणे न मृगमये ।
 न कोष्ठे विद्यते देवस्तस्मान्नावो हि कारणम् ॥

परमेश्वर देव न काष्ठ, न पापाण, न मृत्तिका से बनाये पदार्थों में है किन्तु पर-
 तो भाव में विद्यमान है । जहां भाव करें वहां ही परमेश्वर सिद्ध होता है ।

(उत्तर) जब परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है तो किसी एक वस्तु में
 वर की भावना करना अन्यत्र न करना यह ऐसी बात है कि जैसी
 सी राजा को सब राज्य की सत्ता से छुड़ा के एक छोटीसी झोपड़ी
 ामी मानना । [देखो । यह] कितना बड़ा अपमान है ? वैसा तुम
 र का भी अपमान करते हो । जब व्यापक मानते हो तो घाटिका में से
 त्र तोड़ के क्यों चढ़ाते ? चन्दन घिसके क्यों लगाते ? धूप को जला
 देते ? घंटा, घरियाल, झांज, पखाजों को लकड़ी से घुटना पीटना
 करते हो ? तुम्हारे हाथों में है, क्यों जोड़ते ? शिर में है, क्यों शिर
 ? अन्न, जलादि में है, क्यों नैवेद्य धरते ? जल में है, खान क्यों
 ? क्योंकि उन सब पदार्थों में परमात्मा व्यापक है और तुम
 की पूजा करते हो या व्याप्य की ? जो व्यापक वही वरते
 पापाण लकड़ी आदि पर चन्दन पुष्पादि क्यों चढ़ाते हो ? और जो
 की करते हो तो हम परमेश्वर की पूजा करते हैं, ऐसा राठ क्यों
 हो ? हम पापाणादि के पुजारी हैं, ऐसा क्यों नहीं सोचते ?

कहिये “भाव” सच्चा है या सृष्टा ? जो वही सच्चा है तो तुम्हारे
 आधीन होकर परमेश्वर बद्ध हो जायगा और तुम मृत्तिका में सुवर्ण
 आदि, पापाण में हीरा पद्मा आदि, समुद्रप्रेत में मोती, जल में एत,
 पृथ्वी आदि और धूलि में मैदा, शक्कर आदि वी भावना करके

जैसे क्या नहीं बनाते हो ? तुम लोग दुःख की भावना कभी नहीं
 महसूस करते ? और सुख की भावना सदैव करते हो, यह क्यों
 प्राप्त होता ? अन्धा पुरुष नेत्र की भावना करके क्यों नहीं देखता,
 की भावना नहीं करते, क्यों मर जाते हो ? इसलिये तुम्हारी भावना
 नहीं । क्योंकि जैसे मैं पैसी करने का नाम भावना कहते हैं । जैसे
 मैं अग्नि जल में जल जानना और जल में अग्नि, अग्नि में जल जान
 अभावना है । क्योंकि जैसे को पैसा जानना जान और अभावना जानना
 है । इसलिये तुम अभावना को भावना और भावना को अभावना करने

१८ — (प्रश्न) अर्जी जघनक वेदमन्त्रों से आवाहन नहीं करते
 देवता नहीं आता और आवाहन करने से इष्ट आता और विगर्जन
 से क्या जाता है ।

(उत्तर) जो मन्त्र को पढ़कर आवाहन करने से देवता आता
 तो मूर्ति में तब क्या नहीं हो जाती ? और विसर्जन करने से क्या नहीं
 जाता ? और वह कहाँ से आता और कहाँ जाता है ? गुनो कहते हैं
 परमात्मा न आता और न जाता है । जो तुम मन्त्रवाक्य से पाते
 क्या सेना हो तो तबही मन्त्रों से अपने मरे हुए पुत्र के शरीर में
 क्या नहीं पुनः सेना ? और नाश के शरीर में जीवात्मा का विगर्जन
 क्यों नहीं मार सकते । गुनो भाई ! भोले भोले लोगो ! ये पंगरीब
 काटकर अपना प्रयोजन मिल कर रहे हैं । वेदों में पापाणादि मुक्ति
 परमेश्वर के आवाहन विगर्जन करने का एक अक्षर भी नहीं है ।

(प्रश्न) — प्राणा इन्द्रागच्छन्तु शुभं चिरं निष्ठन्तु श्लाघा ।

आग्नेहागच्छन्तु शुभं चिरं निष्ठन्तु श्लाघा ।

इन्द्रियागच्छन्तु शुभं चिरं निष्ठन्तु श्लाघा ॥

इन्द्रादि देवमन्त्र हैं, क्या कहते हो नहीं हैं ?

(उत्तर) ओ भाई ! मुक्ति का कोई भी मो अपने काम में
 ५ इन्द्रादि देवमन्त्रों का उपयोग नहीं करनी चाहिए । वेदमन्त्रों की अन्व
 र्तिवृत्ति है । प्रयोजन नहीं ।

(प्रश्न) क्या मन्त्र छुड़ा ?

(उत्तर) हाँ, छुड़ा दे । जैसे आवाहन, प्रणव, इन्द्रादि
 मन्त्रों में मन्त्रों में न होना है । मन्त्रों में नहीं है "इन्द्रादि मन्त्रों
 में मन्त्रों में नहीं है । अपने ही मन्त्रों में नहीं है कि "प्राणागच्छन्तु

त्वा मन्दिरेषु संस्थाप्य गन्धादिभिरर्चयेत्" अर्थात् पाषाण
पत्थना, मन्दिरों में स्थापन कर, चन्दन अक्षतादि से पूजे। ऐसा
भी नहीं।

५—(प्रश्न) जो वेदों में विधि नहीं तो खंडन भी नहीं है। और जो खंडन
‘प्राप्तौ सन्यां निषेधः’ मूर्ति के होने ही से खण्डन हो सकता है।
उत्तर) विधि तो नहीं परन्तु परमेश्वर के स्थान में किसी अन्य
को पूजनीय न मानना और सर्वथा निषेध किया है। क्या अपूर्व
नहीं होता? सुनो यह है—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।

ततो भूय इव ते तमो यऽउ सम्भूत्याथं रुताः ॥ १ ॥

यजु अ० ४० । मं० ९ ॥

न तस्य प्रतिमा अस्ति ॥ [२] यजु. अ० ३२ । मं० ३ ॥

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ १ ॥

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ २ ॥

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षुषि पश्यन्ति ।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ३ ॥

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् ।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ४ ॥

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ५ ॥ केनोपनि० ।

जो असम्भूति अर्थात् अनुत्पन्न, अनादि प्रकृति कारण की वस्तु के
न में उपासना करते हैं वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःखसागर
होते हैं। और सम्भूति जो कारण से उत्पन्न हुए कार्य पृथिवी
दि भूत पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादि के शरीर की
उपासना वस्तु के स्थान में करते हैं, वे उस अन्धकार से भी अधिक
अन्धकार अर्थात् महामूर्ख, विरकाल घोर दुःखरूप नरक में गिरके नरा-
म भोगते हैं ॥ १ ॥ जो सब जगत् में व्यापक है उस निराकार पर-
मा की प्रतिमा परिमाण सादृश्य या मूर्ति नहीं हैं ॥ २ ॥ जो घाणी
रूपता अर्थात् यह जल है लीजिये, वैसे विषय नहीं और जिसके

जाय। पहिली सीढ़ी छोड़कर ऊपर जाना चाहे तो नहीं जा सकता। लिये मूर्ति प्रथम सीढ़ी है। इसको पूजते पूजते जब ज्ञान होगा और तत्करण पवित्र होगा तब परमात्मा का ध्यान कर सकेगा। जैसे लक्ष्य मारनेवाला प्रथम स्थूल लक्ष्य में तीर, गोली वा गोला आदि मारता मारता पश्चात् सूक्ष्म में भी निशाना मार सकता है वैसे स्थूल मूर्ति की पूजा करता पुन सूक्ष्म ब्रह्म को भी प्राप्त होता है। जैसे लड़कियाँ गेंदों का खेल तबतक करती हैं कि जबतक सच्चे पति को प्राप्त नहीं होतीं। आदि प्रकार से मूर्तिपूजा करना दुष्ट काम नहीं।

(उत्तर) जब वेदविहित धर्म और वेदविरुद्धाचरण में अधर्म है तो तुम्हारे कहने से भी मूर्तिपूजा करना अधर्म ठहरा। जो जो ग्रन्थ वेद वेरुद्ध है उन उन का प्रमाण करना जानो नास्तिक होना है। सुनो—
नास्तिको वेदनिन्दकः ॥ १ ॥ [मनु० २। ११]

या वेदवाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।

सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ॥ २ ॥

उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतो न्यानि कानिचित्।

तान्यर्वाकालिकतया निष्फलान्यनृतानि च ॥ ३ ॥

मनु० अ० १२ ॥ [९५, ९६]

मनुजी कहते हैं कि जो वेदों की निन्दा अर्थात् अपमान, त्याग, विरुद्धाचरण करता है वह नास्तिक कहाता है ॥ १ ॥ जो ग्रन्थ वेदवाह्य, बुद्धिस्तिर, रणों के बनाये संसार को दुःखसागर में डुबाने वाले हैं वे सब निष्फल, असत्य, अन्धकार रूप, इस लोक और परलोक में दुःखदायक हैं ॥ २ ॥ जो इन वेदों से विरुद्ध ग्रन्थ उत्पन्न होते हैं वे आधुनिक होने से शीघ्र नष्ट होते हैं। उनका मानना निष्फल और झूठा है ॥ ३ ॥ इसी प्रकार ब्रह्मा लेकर जैमिनि महर्षिपर्यन्त का मत है कि वेदविरुद्ध को न मानना किन्तु मनुकुल ही का आचरण करना धर्म है। क्यों ? वेद सत्य अर्थ का प्रति-दक है। इससे विरुद्ध जितने तन्त्र और पुराण हैं वेदविरुद्ध होने से झूठे हैं। जो कि वेद से विरुद्ध पुस्तकें हैं, उनमें कहीं दूर मूर्तिपूजा भी अधर्म है। मनुष्यों का ज्ञान जल की पूजा से नहीं बढ़ सकता, विन्तु जो जल ज्ञान है वह भी नष्ट होजाता है। इसलिये ज्ञानियों की सेवा सदा से बढ़ता है, पापाणादि से नहीं। क्या पापाणादि मूर्तिपूजा से परमेश्वर का ध्यान में कभी ला सकता है ? नहीं नहीं। मूर्तिपूजा सीढ़ी नहीं, नि

जायें। पहिली सीढ़ी छोड़कर ऊपर जाना चाहे तो नहीं जा सकता। लिये मूर्ति प्रथम सीढ़ी है। इसको पूजते पूजते जय ज्ञान होगा और तत्करण पवित्र होगा तब परमात्मा का ध्यान कर सकेगा। जैसे लक्ष्य मारनेवाला प्रथम स्थूल लक्ष्य में तीर, गोली वा गोला आदि मारता मारता पश्चात् सूक्ष्म में भी निशाना मार सकता है वैसे स्थूल मूर्ति की पूजा करता करता पुनः सूक्ष्म धर्म को भी प्राप्त होता है। जैसे लड़कियाँ बच्चों का खेल तत्तक करती हैं कि जबतक सच्चे पति को प्राप्त नहीं होतीं यदि प्रकार से मूर्ति पूजा करना दुष्ट काम नहीं।

(उत्तर) जब वेदविहित धर्म और वेदविरुद्धाचरण में अधर्म है तो तुम्हारे कहने से भी मूर्तिपूजा करना अधर्म ठहरा। जो जो ग्रन्थ वेद विरुद्ध हैं उन उन का प्रमाण करना जानो नास्तिक होना है। सुनो—

नास्तिको वेदनिन्दकः ॥ १ ॥ [मनु० २।११]

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुट्टप्यः ।

सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ॥ २ ॥

उत्पद्यन्ते ज्यवन्ते च यान्यतो न्यानि कानिचित् ।

तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च ॥ ३ ॥

मनु० अ० १२ ॥ [९५, ९६]

मनुजी कहते हैं कि जो वेदों की निन्दा अर्थात् अपमान, त्याग, विरु-
चरण करता है वह नास्तिक कहाता है ॥१॥ जो ग्रन्थ वेदबाह्य, वृत्तित
यों के बनाये संसार को दुःखसागर में डुबाने वाले हैं वे सब निष्फल,
तत्त्व, अन्धकार रूप, इस लोक और परलोक में दुःखदायक हैं ॥ २ ॥
इन वेदों से विरुद्ध ग्रन्थ उत्पन्न होते हैं वे आधुनिक होने से शीघ्र नष्ट
जाते हैं। उनका मानना निष्फल और शून्य है ॥३॥ इसी प्रकार मन्ना
लेकर जैमिनि महर्षिपर्यन्त का मत है कि वेदविरुद्ध को न मानना बितु
अनुकूल ही का आचरण करना धर्म है। क्यों ? वेद सत्य अर्थ वा प्रति-
क है। इससे विरुद्ध जितने तन्त्र और पुराण हैं वेदविरुद्ध होने से शून्य
हैं जो कि वेद से विरुद्ध पुस्तकें हैं, उनमें बड़ी दुर मूर्तिपूजा भी अधर्म
है। मनुष्यों का ज्ञान जरूरी पूजा से नहीं बढ़ सकता, बिना जो
ज्ञान है वह भी नष्ट होजाता है। इसलिये ज्ञानियो की सेवा सदा से
न बढ़ता है, पापाणादि से नहीं। क्या पापाणादि मूर्तिपूजा से परमेश्वर
ध्यान में कभी ला सकता है ? नहीं नहीं। मूर्तिपूजा सीढ़ी नहीं,

एक बड़ी चार्ज है जिसमें गिरकर चकनाचूर हो जाता है। पुण्य से निरुक्त नहीं सकता किन्तु इसी में मर जाता है। हाँ छोटे प्राणियों से लेकर परम पिता योगियों के संग से सद्विद्या और मोक्ष की प्राप्ति की सीढ़ियाँ हैं, जैसे ऊपर घर में जाने की है। किन्तु मूर्तिपूजा करते करते ज्ञानी तो कोई न हुआ मूर्तिपूजक अज्ञानी रहकर मनुष्यजन्म व्यर्थ रोकें बहुत बुरा गये और जो भव हैं वा होंगे वे भी मनुष्यजन्म के धर्म, भय, मोक्ष की प्राप्तिरूप फलों से विमुख होकर निरर्थक हो जायेंगे। पूजा प्रसादी प्राप्ति में स्थूल लक्ष्यवत् नहीं किन्तु धार्मिक शिक्षा है। दूराको बड़ाता बड़ाता प्रदा को भी पाता है और मूर्तियों के मेलन नहीं किन्तु प्रथम अक्षराम्यास सुविद्या का होना के मेलन प्रसादी प्राप्ति का साधन है। सुनिचे ! जब अन्ती शिक्षा को प्राप्त होगा तब सच्चे स्वामी परमात्मा को भी प्राप्त हो

३७—(प्रश्न) साकार में मन स्थिर होना और निराकार में होना कठिन है, हस्तपि मूर्तिपूजा रहना चाहिये।

(उत्तर) साकार में मन स्थिर कभी नहीं हो सकता, क्योंकि मन शब्द ग्रहण करते दृष्टी के एक २ अवयव में धूमना और दूध में जाता है। और निराकार परमात्मा के ग्रहण में सायकामार्ग मन जीवता है तो भी अन्त नहीं पाता। निरवयव होने में चञ्चल भी नहीं किन्तु दृष्टी के गुण, कर्म, स्थिति का विचार करता करता आनन्द में होकर स्थिर हो जाता है। और जो साकार में स्थिर होना तो मन बाह्य धर्म स्थिर हो जाता क्योंकि जगत् में मनुष्य, स्त्री, पुत्र, धन, मित्र साकार में पंथा रहता है परन्तु दिगी का मन स्थिर नहीं होता किन्तु धर्म में न पाता, क्योंकि निरवयव होने में दृष्टमें मन स्थिर है। इससे मूर्तिपूजा करना अर्थ है।

उत्तर—दृष्टमें जोसें दृष्टमें मूर्तियों में स्थिर करके स्थिर होना चाहिये।

उत्तर—दृष्टी पुरुष का मूर्तियों में स्थिर होना में स्थिर, वह जो न हो सकेगा उन्मत्त होना है।

उत्तर—दृष्टी को जहाँ अर्थ, जगत् और मूर्ति का साकार रूप पुरुषार्थमय होना मनुष्यजन्म व्यर्थ रह जाता है।

पाचवां—नाना प्रकार का विरुद्धस्वरूप नाम चरित्रगुक्त मूर्तियों के मूर्तियों का ऐक्यमत नष्ट होके विरुद्धमत में चलकर आपस में फूट पड़ा देश का नाश करते हैं।

छठा—उसी के भरोसे में शत्रु का पराजय और अपना विजय मान बैठे होते हैं। उनका पराजय होकर राज्य, स्वातन्त्र्य और धन का सुख उनके शत्रुओं के स्वाधीन होता है और आप पराधीन, भठियारे के टट्टू और कुम्हार गद्दे के समान शत्रुओं के घश में होकर अनेक विध दुःख पाते हैं।

सातवां—जब कोई किसी को कहे कि हम तेरे बैठने के आसन वा नाम पर पत्थर धरें तो जैसे वह उसपर क्रोधित होकर मारता वा गाली प्रदान देता वैसे ही जो परमेश्वर के उपासना के स्थान, हृदय और नाम पर पापाणादि कृतियाँ धरते हैं उन दुष्ट बुद्धिवालों का सत्यानाश परमेश्वर क्यों न करे ?

आठवां—भ्रान्त होकर मन्दिर मन्दिर देशदेशान्तर में घूमते घूमते दुःख पाते, धर्म, ससार और परमार्थ का काम नष्ट करते, चोर आदि से लूटिष्ठ होते, ठगों से ठगाते रहते हैं।

नववा—दुष्ट पुजारियों को धन देते हैं, वे उस धन को वेश्या, पर-विगमन, मद्य, मासाहार, लड़ाई बखेडों में व्यय करते हैं जिससे दाता का सुख का मूल नष्ट होकर दुःख होता है।

दशवा—माता पिता आदि माननीयों का अपमान कर पापाणादि मूर्तियों का मान करके कृतघ्न हो जाते हैं।

ग्यारहवा—उन मूर्तियों को कोई तोड़ डालता वा चोर ले जाता है तब हा हा करके रोते रहते हैं।

बारहवा—पुजारी परखियों के सङ्ग और पुजारिन परपुरुषों के सङ्ग से प्रायः दूषित होकर स्त्री पुरुष के प्रेम के आनन्द को हाथ में खो बैठते हैं।

तेरहवा—स्वामी सेवक की आज्ञा का पालन यथावत् न होने से परस्पर विरुद्धभाव होकर नष्ट भ्रष्ट होजाते हैं।

चौदहवा—जट का ध्यान करने वाले वा आत्मा भी जट बुद्धि होजाता है क्योंकि ध्येय का जटाय धर्म भ्रान्त कारण द्वारा आत्मा में अवश्य आता है।

पन्द्रहवां—परमेश्वर ने सुगन्धियुक्त पुष्पादि पदार्थ घायु जल के दुर्गन्ध निवारण और आरोग्यता के लिए बनाये हैं, उनको पुजाराजी तोड़नाट बर, न जाने उन पुष्पों की कितने दिन तक सुगन्धि आवाज में बदलकर घायु जल की बुद्धि करता और पूर्ण सुगन्धि के समय तक उसका सुगन्ध होता,

कतम एको देव[प्राण इति] इति स ब्रह्म त्यदित्याचक्षते ॥ ६ ॥
 शतपथ० ॥ कां० १४ । प्रपाठ० ६ । ब्राह्म० ७ । कण्डिका १० ॥
 मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव
 अतिथिदेवो भव ॥ ७ ॥ तैत्तिरीयो० ॥ [ष० १ । अनु० ११]
 पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवैस्तथा ।
 पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ ८ ॥

मनु० अ० ३ । ५५ ॥

पूज्या देववत्पतिः ॥ ६ ॥ मनुस्मृतौ अ० ५ । १५४ ॥ ॐ
 प्रथम माता मूर्तिमती पूजनीय देवता, अर्थात् सन्तानों को तन मन
 से सेवा करके माता को प्रसन्न रखना, हिंसा अर्थात् ताड़ना कभी न
 करना । दूसरा पिता सत्कर्त्तव्य देव । उसकी भी माता के समान सेवा
 करनी ॥ १ ॥ तीसरा आचार्य जो विद्या का देने वाला है, उसकी तन मन
 से सेवा करनी ॥ २ ॥ चौथा, अतिथि जो विद्वान्, धार्मिक, निष्कपटी
 स्वयं को उन्नति चाहने वाला, जगत् में भ्रमण करता हुआ, सत्य उपदेश
 सत्य को सुखी करता है उसकी सेवा करें ॥ ३ ॥ पांचवां स्त्री के लिये
 पति और पुरुष के लिये पत्नी पूजनीय है ॥ ८ ॥ ये पांच मूर्तिमान देव
 जिनके सग से मनुष्यदेह की उत्पत्ति, पालन सत्यशिक्षा, विद्या और
 सत्योपदेश की प्राप्ति होती है । ये ही परमेश्वर को प्राप्त होने की सीढ़ियाँ हैं । इन
 की सेवान करके जो पापाणादि मूर्ति पूजते हैं वे अतीव पामर नरकगामी हैं ।
 (प्रश्न) माता पिता आदि की सेवा करें और मूर्तिपूजा भी करें तब
 कोई दोष नहीं ?

(उत्तर) पापाणादि मूर्तिपूजा तो सर्वथा छोड़ने और मातादि मूर्तिमानों
 की सेवा करने ही में कल्याण है । घटे अनर्थ की बात है कि साक्षात् माता
 आदि प्रत्यक्ष सुखदायक देवों को छोड़ के अदेव पापाणादि में शिर मारना
 जो ने इसलिये स्वीकार किया है कि जो माता पितादि के सामने नैवेद्य
 भेंट पूजा धरेंगे तो वे स्वयं खा लेंगे और भेंट पूजा लेंगे तो हमारे मुख
 हाथ में कुछ न पड़ेगा । इससे पापाणादि की मूर्ति बना, उसमें आगे
 चूल्हा धर, घंटानाद टंट पूप शंख बजा, बोलावा कर, अंगूठा दिखला
 अर्थात् 'त्वमेगुष्टं गृहाण भोजनं पदार्थं वाऽहं प्रदीप्यामि' जैसे
 कि किसी को छले या चिटावे कि तू घटा ले और अंगूठा दिखलावे,

उपचर्यः रित्रया साध्या सतत देववापति । मनु० २ । ११४ ॥

यह सिद्ध होता है कि वे विचारे पापान क्या लडते लडाते ? जब मलमान मन्दिर और मूर्तियों को तोडते फोडते हुए काशी के पास आए पुनारियों ने उस पापान के लिङ्ग को कृप में डाल और वेणीमाधव ब्राह्मण के घर में छिपा दिया । जब काशी में कालभैरव के डर के मारे दूत नहीं जाते और प्रलय समय में भी काशी का नाश होने नहो देते, स्लेच्छों के दूत क्यों न डराये ? और अपने राजा के मन्दिर का क्यों न होने दिया ? यह सब पोप माया है ।

(प्रश्न) गया में श्राद्ध करने से पितरों का पाप छूकर वहा के श्राद्ध पुण्य प्रभाव से पितर स्वर्ग में जाते और पितर अपना हाथ निकाल कर ड लेते हैं, क्या यह भी बात झूठी है ?

(उत्तर) सर्वथा झूठ, जो वहा पिण्ड देने का वही प्रभाव है तो जिन पण्डों को पितरों के सुख के लिये लाखों रुपये देते हैं उनका ध्यय गयावाले रिवाजमनादि पाप में करते हैं, वह पाप क्यों नहीं छूटता ? और हाथ निकलता आज कल कहीं नहीं दीखता, बिना पण्डों के हाथों के । यह कभी किसी धूर्त ने पृथिवी में गुफा खोद उसमें एक मनुष्य बैठा दिया होगा । श्राद्ध उसके मुख पर कुश बिछा पिण्ड दिया होगा और उस कपटी ने ठग लिया होगा, किसी आख के अन्धे गाँठ के पूरे को इस प्रकार ठगा हो तो आश्चर्य नहीं । वैसे ही वैजनाथ को रावण लाया था, यह भी मिथ्या बात है ।

(प्रश्न) देखो ! कलकत्ते की काली और कामाक्षी आदि देवी को लाखों मनुष्य मानते हैं, क्या यह चमत्कार नहीं है ?

(उत्तर) कुछ भी नहीं । ये अन्धे लोग भेट के तुल्य एक के पीछे से चले हैं, कृप खाड़े में गिरते हैं, हट नहीं सकने । वैसे ही एक मूर्ख पीछे दूसरे चलकर मूर्तिपूजा रूप गढ़े में फँसकर दुःख पाते हैं ।

४६— (प्रश्न) भला यह तो जाने दो, परन्तु जगन्नाथजी में प्रत्यक्ष चमत्कार है । एक कलेवर बदलने के समय चदन का हवरा समुद्र में से उभरे आता है । चूले पर ऊपर २ सात हटे धरने से ऊपर २ के पारिले २ आते हैं । और जो कोई वहां जगन्नाथ की परसादी न लाये तो लुट्टी हो जाता है, और रथ आप स आप चलता, पापी को दर्शन नहीं होता है । इन्द्र-जय के राज्य में देवताओं ने मन्दिर बनाया है । बहेसर बदलने के समय एक वा, एक पंटा, एक दर्शन मर जाने आदि चमत्कारों को हम इन्द्र-जय सबोते

(उत्तर) जिसने दारुह दर्प पर्यन्त जगन्नाथ की पूजा की थी

तक ऐसे ही पुकारते जाते हैं। जब आ चुकती है तब एक प्रजवासी
 कपड़े दुसाला ओढ़कर आगे खड़ा रह के हाथ जोड़ स्तुति करता है कि
 जगन्नाथ स्वामिन्! आप कृपा करके रथ को चलाईये हमारा धर्म रक्खो'
 यदि बोल के साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर रथ पर चढ़ता है। उसी समय
 रथ को सूधा घुमा देते हैं और जय २ शब्द बोल, सहस्रों मनुष्य रस्सी
 चते हैं, रथ चलता है। जब बहुत से लोग दर्शन को जाते हैं तब इतना
 मन्दिर है कि जिसमें दिन में भी अन्धेरा रहता है और दीपक जलाना
 पड़ता है। उन मूर्तियों के आगे पडदे खैच कर लगाने के पर्दे दोनों ओर
 खींचे जाते हैं। पण्डे पुजारी भीतर खड़े रहते हैं। जब एक ओर वाले ने पर्दे
 खींचा, सट मूर्ति आड़ में आजाती है। तब सब पण्डे और पुजारी
 प्रार्थना करते हैं तुम भेट धरो, तुम्हारे पाप छूट जायेंगे, तब दर्शन न होगा। शीघ्र
 जाओ। वे विचारे भोले मनुष्य धूर्तों के हाथ लूटे जाते हैं। और सट पर्दा
 खींच लेते हैं तभी दर्शन होता है। तब जय शब्द बोल के प्रसन्न
 होकर धर खड़े तिरस्कृत हो चले आते हैं। इन्द्रदमन वही है कि जिसके
 हाथ के लोग अबतक कलकत्ते में हैं। वह धनाढ्य राजा और देवी का
 आराधक था। उसने लाखों रुपये लगाकर मन्दिर बनवाया था। इसलिये
 आर्यावर्त देश के भोजन का बखेड़ा इस रीति से छुड़ावें परन्तु वे
 खै क्य छोड़ते हैं? देव मानो तो उन्हीं कारीगरों को मानो कि जिन
 मूर्तियों ने मन्दिर बनाया। राजा पण्डा और बढ़ई उस समझ नहीं मरते
 परन्तु वे तीनों वहां प्रधान रहते हैं, छोटी चीजें देते होंगे। उन्होंने
 प्रति करके उसी समय अर्थात् कलेवर के बदलने के समय वे तीनों उपस्थित
 रहते हैं। मूर्ति का हृदय पोला [रक्खा] है उसमें एक सोने के सङ्गुट में
 एक सालगराम रखते हैं कि जिसको प्रतिदिन धो के चरणामृत बनाते हैं।
 सपर रात्रि की शयन-आर्त्ति में उन लोगों ने विष का तेजाय एपेट दिया
 होगा। उसको धो के उन्हीं तीनों को पिलाया होगा कि जिससे वे बर्फी
 हो गये होंगे। मरे तो इस प्रकार और भोजन भट्टों ने प्रसिद्ध किया होगा
 कि जगन्नाथजी अपने शरीर बदलने के समय तीनों भक्तों को भी साथ ले
 जायेंगे। ऐसी झूठी बातें पराये धन ठगने के लिये बहुत सी बुझा करती हैं।

४२—(प्रश्न) जो रामेश्वर में गंगोत्तरी के जल चढ़ाने समझ लिख
 जाता है, क्या वह भी बात झूठी है?

(उत्तर) झूठी, क्योंकि उस मन्दिर में भी दिन में अन्धेरा

और मुख के छिद्रों से धुआं निकलता होगा। उस समय बहुत से को घनादि पदार्थों से लूटकर धन रहित करते होंगे।

(प्रश्न) देखो ! डाकोर जी की मूर्ति द्वारिका से भगत के साथ चली। एक सवा रत्ती सोने में कई मन की मूर्ति तुल गई। क्या यह भी कार नहीं ?

(उत्तर) नहीं, वह भक्त मूर्ति को चोर ले आया होगा और सवा के बराबर मूर्ति का तुलना किसी भद्ग आदमी ने गप्प मारा होगा।

(प्रश्न) देखो ! सोमनाथजी पृथिवी से ऊपर रहता था और बड़ा कार था, क्या यह भी मिथ्या बात है ?

(उत्तर) हां मिथ्या है सुनो ? नीचे ऊपर चुम्बक पापाण लगा रखे। उसके आकर्षण से वह मूर्ति अधर खड़ी थी। जब महमूद गुजनवी नर लडा तब यह चमत्कार हुआ कि उसका मन्दिर तोड़ा गया और रातों भक्तों की दुर्दशा होगई और लाखों फौज दश सहस्र फौज से भाग। जो पोष पूजारी पूजा, पुरश्चरण, स्तुति, प्रार्थना करते थे कि “हे देव ! इस म्लेच्छ को तू मार डाल, हमारी रक्षा कर” और वे अपने राजाओं को समझाते थे, “कि आप निश्चिन्त रहिये। महादेवजी, भैरव वा वीरभद्र को भेज देंगे। वे सब म्लेच्छों को मार डालेंगे या अन्या देंगे। अभी हमारा देवता प्रसिद्ध होता है। हनुमान्, दुर्गा और भैरव स्वप्न दिया है कि हम सब काम कर देंगे। वे बिचारे भोले राजा और त्रिष पोषों के यहकाने से विश्वास में रहे। कितने ही ज्योतिषी पोषों ने कि अभी तुम्हारी चढाई का मुहूर्त नहीं है। एक ने आठवां चन्द्रमा लाया, दूसरे ने योगिनी सामने दिखलाई, इत्यादि यत्कायट में रहे। म्लेच्छों की फौज ने आकर घेर लिया तब दुर्दशा से भागे, कितने ही पूजारी और उनके चेले पकड़े गये। पूजारियों ने यह भी हाथ जोड़ कि तीन क्रोड़ रुपया लेलो, मन्दिर और मूर्ति मत तोड़ो। मुसलमानों ने कि हम “युत्परस्त” नहीं बिन्तु “युतशिवन” अर्थात् युत्तों के तोड़ने ले [मूर्तिभञ्जक] हैं। जा के इत मन्दिर तोड़ दिया। जब ऊपर की टूटी तब चुम्बक पापाण पृथक् होने से मूर्ति गिर पड़ी। जब मूर्ति तोड़ी सुनते हैं कि अठारह घण्ट के रख निबले। जब पूजारी और पोषों पर डा पड़े तब रोने लगे। कहा, कि पोष दत्तात्रेय। मार के मार इत बला दिया। तब सब कोष लूट मार गूट घर पोष और इनके सेहतों को

मन्दिर, कुण्ड और इधर उधर नल रचना के हिमालय में न कोई
वारी होती और जो कुण्ड होता है वह सब पोष पूजारियों की लीला से
सरा कुछ भी नहीं। एक जल और दलदल का कुण्ड बना रक्खा है।
सके नीचे से बुदबुदे उठते हैं। उसको सफलयात्रा होना मूढ मानते
। योनि का यंत्र पोषजी ने धन हरने के लिये बनवा रक्खा है और ठुमरे
उसी प्रकार पोषलीला के हैं। उससे महापुरुष हो तो एक पशु पर
मरे का बोझ लाद दें, तो क्या महापुरुष हो जायगा ? महापुरुष तो बड़े
सम धर्मयुक्त पुरुषार्थ से होता है।

४६ - (प्रश्न) अमृतसर का तालाब अमृतरूप, एक मुरेठी का फल आधा
ठा और पक भित्ति नमती और गिरती नहीं, रेवालसर में बड़े तरते, अमर
य में आप से आप लिंग बन जाते, हिमालय से कवूतर के जोड़े आ के
को दर्शन देकर चले जाते हैं, क्या यह भी मानने योग्य नहीं ?

(उत्तर) नहीं उस तालाब का नाममात्र अमृतसर है। जब कभी
जल होगा तब उसका जल अच्छा होगा इससे उसका नाम अमृतसर धरा
गा। जो अमृत होता तो पुराणियों के मानने के तुल्य कोई क्यों मरता ?
सी की कुण्ड घनावट ऐसी होगी जिससे नमती होगी और गिरती न
गी। रीठे कलम के पैवन्दी होंगे अथवा गपोडा होगा। रेवालसरमें घेदा
ने में कुछ कारीगरी होगी। अमरनाथ में बर्फ के पहाड़ बनते हैं तो जल
के छोटे लिंग का बनना कौन आश्चर्य है ? और कवूतर के जोड़े पालित
पहाड़ की आड़ में से पोषजी छोड़ते होंगे, दिखलाकर टका हारते होंगे।

(प्रश्न) हरद्वार स्वर्ग का द्वार, हर की पेंदी में स्नान करे तो पाप
जाते हैं। और तपोवन में रहने से तपस्वी होता, देवप्रयाग, गंगोत्री
मुख, उत्तर काशी में गुप्तकाशी, त्रियुगी नारायण के दर्शन होते हैं।
र और बदरीनारायण की पूजा छ नहीने तक मनुष्य और छ. महीने
देवता करते हैं। महादेव का मुख नेपाल में पशुपति, चूतल बेजार और
गय में जानु और पग अमरनाथ में। इनके दर्शन स्पर्शन स्नान करने
सि हो जाती है। वहा केदार और बदरी से स्वर्ग जाना प्यारे तो जा
ता है, इत्यादि बातें बैसी है ?

(उत्तर) हरद्वार उत्तर पहाटों में जाने का एक मार्ग का आरम्भ है।
सी पेंदी एक स्नान के लिये कुण्ड की सीढ़ियों को बनाया है। तप
तो "हाटपेंदी" है क्योंकि देशदेशान्तर के श्रद्धालु वहाँ पर

(उत्तर) प्रत्यक्ष तो आंखों से तीनों मूर्तियां दीखती हैं कि पापाण
 र्तियां हैं और तीन काल में तीन प्रकार के रूप होने का कारण पूजारी
 के वस्त्र आदि आभूषण पहिराने की चतुराई है और मन्त्रियां सहस्रों
 होती हैं। मैंने अपनी आंखों से देखा है। प्रयाग में कोई नापित
 बनाने द्वारा अथवा पोपजी को कुछ धन देकर मुण्डन कराने का माहा-
 बनाया वा बनवाया होगा। प्रयाग में स्नान करके स्वर्ग को जाता
 गौटकर घर में आता कोई भी नहीं दीखता, किन्तु घर को सब आते
 दीखते हैं अथवा जो कोई वहां दूब मरता और उसका जीव भी आकाश
 गु के साथ घूमकर जन्म लेता होगा। तीर्थराज भी नाम पोपों ने
 है। जड़ में राजा प्रजाभाव कभी नहीं हो सकता। यह बड़ी भ्रम
 बात है कि अयोध्या नगरी वस्ती, कुत्ते, गधे, भंगी, चमार जाजरू
 त तीन बार स्वर्ग में गईं। स्वर्ग में तो नहीं गईं, वहीं की वहीं है
 पोपजी के मुख गपोड़ों में अयोध्या स्वर्ग में उडगई। यह गपोड़ा
 रूप ढलता फिरता है ऐसे ही नैमिषारण्य आदि की भी पोपलीला
 नी। “मधुरा तीन लोक से निराली” तो नहीं परन्तु उसमें तीन
 बड़े लीलाधारी हैं कि जिनके मारे जल, स्थल और अन्तरिक्ष में
 की को सुख मिलना कठिन है। एक चौबे, जो कोई स्नान करने जाय
 ना कर लेने को खड़े रहकर बकते रहते हैं। हाओ यजमान ! भाग
 और लटूहू खावें, पीवें। यजमान की जय २ मनावें। दूसरे, जल में
 बाट ही खाते हैं जिनके मारे स्नान करना भी घाट पर कठिन पड़ता
 तीसरे, आकाश के ऊपर लाल मुख के चन्द्र, पगड़ी, टोपी, गहने और
 तक भी न छोड़ें, बाट खावें, धक्के दे गिरा मार डालें और ये तीनों
 और पोपजी के चेलों के पूजनीय हैं। मनो चना आदि अन्न बटुवे
 बन्दों की चना गुट आदि और चौबो की दक्षिणा और लटूहू से
 के सेवक सेवा किया करते हैं और घृन्दाग्रन जब था तब था, अब तो
 पावनवत् लहा लगी और गुर चेली आदि की लीला फैल रही है।
 ही दीपमालिका का मेला, गोवर्द्धन और प्रजयात्रा में भी पोपों की
 पड़ती है। पुरक्षेत्र में भी घरी जीविका की लीला समझ लो। इनने
 कोई धार्मिक परोपकारी पुरप है इस पोपलीला से प्रथक हो जाता है।
 ४६—(प्रश्न) यह मूर्तिपूजा और तीर्थ सनातन से चले आने हैं इन्हें
 निकार दो सबते हैं।



मरते हैं ऐसे गुरु और चेलों के मुख पर धूँड राख पड़। उसके पास कोई भी खड़ा न रहे, जो रहे वह दुःख सागर में पड़ेगा। जैसी पोपलीला जारी पुराणियों ने चलाई है वैसी इन गड़रिये गुरुओं ने भी लीला मचाई। यह सब का काम स्वार्थी लोगों का है। जो परमार्थी लोग हैं वे आपस पावें तो भी जगत् का उपकार करना नहीं छोड़ते। और गुरुमाहात्म्य तथा गुरुगीता आदि भी इन्होंने लोभी, कुकर्मी गुरुओं ने बनाई है।

१२—(प्रश्न) आष्टादशपुराणानां कर्त्ता सत्यवर्तासुतः ॥ १ ॥

इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपवृहयत् ॥ महाभारत ॥

पुराणानि स्तिलानि च ॥ ३ ॥ मनु० ॥ [३। २३२]

शमेऽहनि किञ्चित्पुराणमाचक्षीत ॥ ४ ॥

पुराणविद्या वेदः ॥ ५ ॥ सूत्र ॥ *

इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः ॥ ४ ॥ छान्दोग्य०। प्र० ७। ख० १ ॥

अठारह पुराणों के कर्त्ता व्यासजी हैं। व्यासवचन का प्रमाण अवश्य करना चाहिये ॥ १ ॥ इतिहास, महाभारत, अठारह पुराणों से वेदों का अर्थ पढ़े पढ़ावें क्योंकि इतिहास और पुराण वेदों ही के अर्थ अनुकूल हैं ॥ २ ॥ पितृकर्म में पुराण और खिल अर्थात् हरिवंश की कथा सुनें ॥ ३ ॥ अश्वमेध की समाप्ति में दश दिन थोड़ी सी पुराण की कथा सुनें ॥ ४ ॥ पुराण विद्या वेदार्थ के जानने ही से वेद हैं ॥ ५ ॥ इतिहास और पुराण पञ्चम वेद कहते हैं ॥ ६ ॥ इत्यादि प्रमाणों से पुराणों का प्रमाण और इनके प्रमाणों से मूर्तिपूजा और तीर्थों का भी प्रमाण है क्योंकि पुराणों में मूर्तिपूजा और तीर्थों का विधान है।

(उत्तर) जा अठारह पुराणों के कर्त्ता व्यासजी होते तो उनमें इतने गपोड़े न होते क्योंकि शारीरिक सूत्र, योगशास्त्र के भाष्य आदि व्यासजी ग्रंथों के देवने से विदित होना है कि व्यासजी बड़े विद्वान्, सत्यवादी धार्मिक, योगी थे, वे ऐसी मिथ्या कथा कभी न लिखते और इससे यह सिद्ध होता है कि जिन सम्प्रदायी परस्पर विरोधी लोगों ने भागवतार्थ नवीन करोलखरित ग्रंथ बनाये हैं उनमें व्यासजी के गुणों का हस्त नहीं था। और वेदशास्त्रविरुद्ध असत्यवाद लिखना व्यास सदा विद्वान् का काम नहीं, किन्तु यह काम विरोधी, स्वार्थी, अधिद्वान् पामरो का है। इतिहास और पुराण शिवपुराणादि का नाम नहीं, किन्तु—

— नहीं तो किनकी है ? एक मनुष्य के बनाने में ऐसी परस्पर विरुद्ध-
त नहीं होती तो विद्वान् के बनाये में कभी नहीं आ सकती । इसमें
16 बात को सच्ची मानें तो दूसरी झूठी और जो दूसरी को सच्ची मानें
1 तीसरी झूठी और जो तीसरी को सच्ची मानें तो अन्य सब झूठी होती
। शिवपुराणवालेने शिव से, विष्णुपुराणवालों ने विष्णु से, देवीपुराणवाले
देवी से, गणेशखण्डवाले ने गणेश से, सूर्यपुराणवाले ने सूर्य से और
पुपुराणवाले ने वायु से सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय लिखके पुनः एक एक
एक एक जो जगत् के कारण लिखे उनकी उत्पत्ति एक एक से लिखी ।
1 ई पढ़ें कि जो जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करने वाला है वह उत्पन्न
और जो उत्पन्न होता है वह सृष्टि का कारण कभी हो सकता है वा नहीं ?
1 जो केवल चुप रहने के सिवाय कुछ भी नहीं कह सकते और इन सब के
गरीर की उत्पत्ति भी इसी से हुई होगी फिर वे आप सृष्टिप्रदार्थ और
परिच्छिन्न होकर संसार की उत्पत्ति के कारा क्योंकर होसकते हैं ? और उत्पत्ति
भी विलक्षण २ प्रकार से मानी है जो कि सर्वथा असम्भव है जैसे—

शिवपुराण में शिव ने इच्छा की कि मैं सृष्टि करू तो एक नारायण
जलाशय को उत्पन्न कर उसकी नाभि से कमल, कमल में से प्रज्ञा उत्पन्न
हुआ । उसने देखा कि सब—जलमय हैं । जल की भञ्जलि उठा देख जल
में पटक दी । उससे एक बुद्बुदा उठा और बुद्बुदे में से एक पुरुष उत्पन्न
हुआ । उसने प्रज्ञा से कहा कि हे पुत्र ! सृष्टि उत्पन्न कर । प्रज्ञा ने उससे
कहा कि मैं तेरा पुत्र नहीं किन्तु तू मेरा पुत्र है । उनमें विवाद हुआ और
दिव्यसहस्र वर्षपर्यन्त दोनों जल पर लड़ते रहे । तब महादेव ने विचार
बिया कि जिनको मैंने सृष्टि करने के लिये भेजा था वे दोनों आपस में
लड़ लगद रहे हैं । तब उन दोनों के बीच में से एक तेजोमय लिंग उत्पन्न
हुआ और वह दीर्घ आकाश में चला गया उसको देखके दोनों आश्चर्य
हो गये । विचारा कि इसका आदि अन्त लेना चाहिये । जो आदि अन्त
लेके दीर्घ आवे वह पिता और जो पीछे पा थाह लेके न आवे वह पुत्र
कहावे । विष्णु कूर्म का स्वरूप धर के नीचे को चला और प्रज्ञा हंस का
गरीर धारण करके ऊपर को उठा । दोनों मनोदेग से चले । दिव्यसहस्र
वर्षपर्यन्त दोनों चलते रहे तो भी उसका अन्त न पाया । तब नीचे से
ऊपर विष्णु और ऊपर से नीचे प्रज्ञा ने विचारा कि जो यह लेता है आया
होगा तो मुझको पुत्र बनना पड़ेगा । ऐसा सोच रहा था कि इसी

आकाश के दाहिने पग के भंगूड़े से स्वायंभुव और बायें भगूड़े से सत्यरूपा, पृथ्वी, ललाट से रुद्र और मरीचि आदि दश पुत्र, उनसे दश प्रजापति, उनकी तरह लड़कियों का विवाह कश्यप से, उनमें से दिति से दैत्य वनु से त्रिव, अदिति से आदित्य, विनता से पक्षी, कद्रू से सर्प सरमा से कुत्ते, शाल आदि और अन्य स्त्रियों से हाथी, घोड़े, ऊट, गधा, भैंस, घास फूस और धवूर आदि वृक्ष काटे सहित उत्पन्न हो गये। वाह रे वाह ! भागवत बनाने वाले लालबुद्धिवाले ! क्या कहना तुझको, ऐसी २ मिथ्या बातें सुनने में तनिक भी लज्जा और शरम नहीं आई, निपट अन्धा ही बनाया। भला स्त्री पुरुष के रजवीर्य के संयोग से मनुष्य तो बनते ही हैं परन्तु परमेश्वर की सृष्टिकर्म के विरुद्ध पशु, पक्षी, सर्प आदि कभी उत्पन्न नहीं हो सकते। और हाथी, ऊट, सिंह, कुत्ता, गधा, और वृक्षादि का स्त्री के गर्भाशय में स्थित होने का अवकाश भी कहा हो सकता है ? और सिंह आदि उत्पन्न होकर अपने मां बाप को क्यों न खागये ? और मनुष्यशरीर से पशु पक्षी वृक्षादि का उत्पन्न होना क्योंकर संभव हो सकता है ? धिक्कार ! पोप और पोपरचित इस महा असम्भव लीला को जिसने सत्कार का अभी तक भ्रमा रक्खा है। भला इन महाझूठ बातों को वे अंधे पोप और बाहर गीतर की कूटी आखों वाले उनके चेले सुनते और मानते हैं। बटे ही आश्चर्य की बात है कि ये मनुष्य हैं या अन्य कोई ? । इन भगवत्तादि पुराणों के नाने हारे क्यों नहीं गर्भ ही में नष्ट होगये ? या जन्मते समय मर क्यों न गये ? क्योंकि इन पापों से बचते तो आर्य्यावर्त देश दुःखों से बच जाता।

५५—(प्रश्न) इन बातों में विरोध नहीं आसकता क्योंकि “जिसका विवाह उसी का गीत”। जब विष्णु की स्तुति करने लगे तब विष्णु को परमेश्वर अन्य को दास, जब शिव के गुण गाने लगे तब शिव को परमात्मा अन्य को बिकर बनाया। और परमेश्वर की माया में सब बन सकता है। मनुष्य से पशु आदि और पशु आदि से मनुष्यादि की उत्पत्ति परमेश्वर कर सकता है। देवों ! बिना कारण अपनी माया से सब सृष्टि खड़ी कर दी है। इसमें कौन सी घात अघटित है ? जो परना चाहें सो सब कर सकता है।

(उत्तर) अरे भोले लोगो ! विवाह में जिसके गीत गाते हैं उसकी सबसे बड़ा और दूसरों को छोटा या निन्दा अथवा उसकी सब का बाप नहीं बनाते ? क्यों पोपजी तुम भाट और गुदामर्दी चारणों से भी बचकर गप्पी हो बय्या नहीं ? कि जिसके पीछे लगे उसी को सदन

गनाओं और जिससे विरोध करो उसको सब से नीच ठहराओ
 सत्य और धर्म से क्या प्रयोजन ? किन्तु तुमको तो अपने स्वार्थ
 काम है । माया मनुष्य में हो सकती है । जो कि छली कपटी
 को मायावी कहते हैं । परमेश्वर में छल कपटादि दोष न होने से
 मायावी नहीं कह सकते । जो भादि सृष्टि में कश्यप और
 गिरा मे पशु, पक्षी, सर्प, वृक्षादि हुए होते तो आजकल भी वे
 क्यों नहीं होते? गणिकम जो पहले लिख आये वही ठीक है । जो
 मान है कि पोंपजी यहीं से धोखा खाकर बचे होंगे—

तस्मान् काश्यप्य इमाः प्रजाः ॥ [शत० ७ । ५ । १ ।]

दानपत्र में लिखा है कि यह सब सृष्टि कश्यप की गत है
 कश्यपः कस्मान् पश्यका भवतीति ॥ निरु० [अ० १ ।]

गणिकम परमेश्वर का नाम 'कश्यप' इसलिए है कि 'पश्यका'
 "पश्यतीति पश्यः, पश्य एव पश्यकः,, जो निग्रह होकर
 जगत्, सब नीच और उनक कर्म, सबल निगाओं को घसाए
 और "आ प्रन्तविपर्ययश्च" इस मडासाण के घनन से आदि अ
 नन्त और अन्न का वर्ण आदि में आने से "पश्यक" से "कश्यप"
 गया है । इसका अर्थ न जानने भांग के छोटे बच्चा अपना पन्ना
 बिना पवन करने में नष्ट दिया ।

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम् ।

सरहस्यं तदङ्गञ्च गृहाण गदितं मया ॥

[भा० स्क० २ । अ० ९ श्लोक ३०]

भागवत का मूल ही झूठा है तो इसका वृक्ष क्यों न झूठा होगा ?
अर्थ—हे ब्रह्माजी ! तू मेरा परमगुह्य ज्ञान जो विज्ञान और रहस्य
और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का भङ्ग है उसी को मुझ से ग्रहण कर ।
विज्ञानयुक्त ज्ञान कहा तो परम अर्थात् ज्ञान का विशेषण रखना
र्थ है और गुह्य विशेषण से रहस्य भी पुनरुक्त है । जब मूल श्लोक अन-
है तो ग्रन्थ अनर्थक क्यों नहीं ? ब्रह्माजी को बर दिया कि—

भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ॥

[भा० स्क० २ । अ० १९ श्लोक ६३]

आप कल्प सृष्टि और विकल्प प्रलय में मोह को कभी न प्राप्त होंगे
सा लिख के पुनः दशम स्कन्ध में मोहित होके वत्सहरण किया । इन
नों में से एक बात सच्ची, दूसरी झूठी । ऐसा होकर दोनों बात झूठी ।
वैकुण्ठ में राग, द्वेष, क्रोध, ईर्ष्या, दुःख नहीं है तो सनकादिकों को
कुण्ड के द्वार में क्रोध क्यों हुआ ? जो क्रोध हुआ तो वह स्वर्ग ही नहीं ।
जय विजय द्वारपाल ये । स्वामी की आज्ञा पालनी अवश्य थी ।
न्होंने सनकादिकों को रोका तो क्या अपराध हुआ ? इस पर बिना
अपराध शाप ही नहीं लग सकता । जब शाप लगा कि तुम पृथिवी में
गेर पड़ो, इसके कहने से यह सिद्ध होता है कि वहा पृथिवी न होगी ।
आकाश, वायु, अग्नि और जल होगा तो ऐसा द्वार, मन्दिर और जल किसके
आधार थे ? पुनः जय विजय ने सनकादिकों की स्तुति की कि महाराज !
पुनः हम वैकुण्ठ में कब आवेंगे । उन्होंने उनसे कहा कि जो प्रेम से नारा-
यण की भक्ति करोगे तो सातवें जन्म और जो विरोध से भक्ति करोगे तो
तीसरे जन्म वैकुण्ठ को प्राप्त होओगे । इसमें विचारना चाहिये कि जय
विजय नारायण के नौकर थे । उनकी रक्षा और सहाय करना नारायण का
कर्त्तव्य काम था । जो अपने नौकरों को बिना अपराध हुए देवे उनको
उनका स्वामी दण्ड न देवे तो उसके नौकरों की दुर्दशा सब कोह कर
जाये । नारायण को उचित था कि जय विजय का सखार और सनकादिकों
को खूब दण्ड देते क्योंकि उन्होंने भीतर आने के लिये दृढ़ पदों दिया ?
और नौकरों से एहे क्यों ? शाप दिया उनको दण्डे सनकादिकों को पृथिवी

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम् ।

सरहस्यं तद्वद्गृहाण गदितं मया ॥

[भा० स्कं० २ । अ० ९ श्लोक ३०]

भागवत का मूल ही झूठा है तो इसका धृक् क्यों न झूठा होगा ?
 अर्थ—हे प्रह्लादी ! तू मेरा परमगुह्य ज्ञान जो विज्ञान और रहस्य
 क और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का भण्ड है उसी को मुझ से ग्रहण कर ।
 विज्ञानयुक्त ज्ञान कहा तो परम अर्थात् ज्ञान का विशेषण रखना
 अर्थ है और गुह्य विशेषण से रहस्य भी पुनरुक्त है । जब मूल श्लोक अन-
 क है तो ग्रन्थ अनर्थक क्यों नहीं ? प्रह्लादी को बर दिया कि—

भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ॥

[भा० स्कं० २ । अ० १ श्लोक ६३]

आप कल्प सृष्टि और विकल्प प्रलय में मोह को कभी न प्राप्त होंगे
 ऐसा लिख के पुनः दशम स्कन्ध में मोहित होके वत्सहरण किया । इन
 दोनों में से एक बात सच्ची, दूसरी झूठी । ऐसा होकर दोनों बात झूठी ।
 जब वैकुण्ठ में राग, द्वेष, क्रोध, ईर्ष्या, दुःख नहीं है तो सनकादिकों को
 वैकुण्ठ के द्वार में क्रोध क्यों हुआ ? जो क्रोध हुआ तो वह स्वर्ग ही नहीं ।
 जब जय विजय द्वारपाल थे । स्वामी की आज्ञा पालनी अवश्य थी ।
 उन्होंने सनकादिकों को रोका तो क्या अपराध हुआ ? इस पर बिना
 अपराध शाप ही नहीं लग सकता । जय शाप लगा कि तुम पृथिवी में
 गिर पड़ो, इसके कहने से यह सिद्ध होता है कि वहां पृथिवी न होगी ।
 आकाश, वायु, अग्नि और जल होगा तो ऐसा द्वार, मन्दिर और जल किसके
 आधार थे ? पुनः जय विजय ने सनकादिकों की स्तुति की कि महाराज !
 पुनः दशम वैकुण्ठ में कय आवेंगे । उन्होंने उनसे कहा कि जो प्रेम से नारा-
 यण की भक्ति करोगे तो सातवें जन्म और जो विरोध से भक्ति करोगे तो
 तीसरे जन्म वैकुण्ठ को प्राप्त होओगे । इसमें विचारना चाहिये कि जय
 विजय नारायण के नौकर थे । उनकी रक्षा और सहाय करना नारायण का
 बर्तन्य काम था । जो अपने नौकरों को बिना अपराध दुःख देवे उनको
 उनका स्वामी दण्ड न देवे तो उसके नौकरों की दुर्दशा सब बोर बर
 दाले । नारायण की उचित था कि जय विजय का सहाय और मननकारियों
 को खूब दण्ड देते क्योंकि उन्होंने भीतर जाने के लिये दृढ़ क्यों किया ?
 और नौकरों से छूटे क्यों ? शाप दिया उनके दण्डले सनकादिकों को झुंझी

बावे, चकनाचूर होकर मर ही जावे। प्रह्लाद को उसका पिता पढ़ने के भेजता था, क्या बुरा काम किया था ? और वह प्रह्लाद ऐसा मूर्ख, जो छोड़ बैरागी होना चाहता था। जो जलते हुए खभे से कीड़ी चढ़ने और प्रह्लाद स्पर्श करने से न जला, इस बात को जो सच्ची माने को भी खभे के साथ लगा देना चाहिये। जो यह न जले तो जानों भी न जला होगा और नृसिंह भी क्यों न जला ? प्रथम तीसरे जन्म कुण्ड में आने का वर सनकादिक का था। क्या उसको तुम्हारा नारा-भूल गया ? भागवत की रीति से ब्रह्म, प्रजापति, वश्यप हिरण्याक्ष हिरण्यकश्यपु चौथी पीढ़ी में होता है। इक्कीस पीढ़ी प्रह्लाद की हुई नहीं, पुनः इक्कीस पुरपे सद्गति को गये कह देना कितना प्रमाद है ? फिर वे ही हिरण्याक्ष, हिरण्यकश्यपु, रावण, कुम्भकरण, पुनः शिशु-दन्तवक्र उत्पन्न हुए तो नृसिंह का घर कहा उठ गया ? ऐसी प्रमाद बातें प्रमादी करते, सुनते और मानते हैं, विद्वान् नहीं।

और अक्रुरजी.—

न घायुवेगेन । [भा० स्कं० १० पू० । अ० ३९ । श्लोक ३८]

गाम गोकुलं प्रति ॥ [भा० स्कं० १० । पू० अ० ३८ । श्लोक २४]

अक्रुरजी कस के भेजने से घायु के घेग के समान दौटने वाले घोड़ों पर बैठके सूर्योदय से चले और चार मील गोकुल में सूर्यास्त समय के, अथवा छोटे भागवत बनाने वाले की परिक्रमा करते रहे होंगे ? या भूलकर भागवत बनाने वाले के घर में घोंटे टाकने वाले और अक्रुरजी आकर सो गये होंगे ?

पूतना का शरीर छ' कोश चौड़ा और बहुतसा लम्बा लिखा है। मधुरा गोकुल के बीच में उसको मारकर श्रीकृष्ण ने डाल दिया। ऐसा होता मधुरा और गोकुल दोनों दबकर इस पोपजी का घर भी दबा गया होता। और अजामेल की कथा ऊटपटाग लिखी है—उसने नारद के बटने से पुत्र का नाम "नारायण" रखवा था। मरते समय अपने पुत्र को मारा। बीच में नारायण कूद पड़े। क्या नारायण उसके अन्त धरण के नहीं जानते थे कि वह अपने पुत्र को पुकारता है, मुसकौ नहीं। ऐसा ही नाम माहात्म्य है तो आजकल भी नारायण के स्मरण करनेवालों के पुत्र को क्यों नहीं आते। यदि यह बात सत्य है तो देवी लोग नारायण को करके क्यों नहीं छूट जाते ? ऐसा ही ज्योतिष शास्त्र से दि

बावे, चकनाचूर होकर मर ही जावे। प्रह्लाद को उसका पिता पढ़ने के भेजता था, क्या बुरा काम किया था ? और वह प्रह्लाद ऐसा मूर्ख, छोड़ बैरागी होना चाहता था। जो जलते हुए खमे से कीड़ी चढ़ने और प्रह्लाद स्पर्श करने से न जला, इस बात को जो सच्ची माने वो भी खमे के साथ लगा देना चाहिये। जो यह न जले तो जानों भी न जला होगा और नृसिंह भी क्यों न जला ? प्रथम तीसरे जन्म कुण्ड में भाने का वर सनकादिक का था। क्या उसको तुम्हारा नारा-भूल गया ? भागवत की रीति से ब्रह्म, प्रजापति, वश्यप, हिरण्याक्ष, हिरण्यकश्यपु चौथी पीढ़ी में होता है। इफ्तीस पीढ़ी प्रह्लाद की हुई नहीं, पुनः इफ्तीस पुरपे सद्गति को गये कह देना कितना प्रमाद है ? फिर वे ही हिरण्याक्ष, हिरण्यकश्यपु, रावण, कुम्भकरण, पुनः शिशु-दन्तवक्र उत्पन्न हुए तो नृसिंह का घर कहा उठ गया ? ऐसी प्रमाद बातें प्रमादी करते, सुनते और मानते हैं, विद्वान् नहीं।

और अक्रुरजी—

अनघायुवेगेन । [भा० स्कं० १० पृ० । अ० ३९ । श्लोक ३८]
गाम गोकुलं प्रति ॥ [भा० स्कं० १० । पृ० अ० ३८ । श्लोक २४]
अक्रुरजी कस के भेजने से वायु के वेग के समान दौटने वाले घोड़ों पर बैठके सूर्योदय से चले और चार मील गोकुल में सूर्यास्त समय चिं, अथवा छोटे भागवत बनाने वाले की परिक्रमा करते रहे होंगे ? पागं भूलकर भागवत बनाने वाले के घर में छोटे हावने वाले और अक्रुरजी आकर सो गये होंगे ?

पतना का शरीर छ. कोश चौड़ा और द्युतसा लम्बा लिखा है। मथुरा गोकुल के बीच में उसको मारकर श्रीकृष्ण ने टाल दिया। ऐसा होता मथुरा और गोकुल दोनों दयकर इस पोपजी या घर भी दया गया होता। और अजामेल की कथा जटपटाग लिखी है—उसने नारद के बहने से नि पुत्र का नाम “नारायण” रखवा था। मरते समय अपने पुत्र को मारा। बीच में नारायण बृद्ध पड़े। क्या नारायण इसके अन्त वरण के व को नहीं जानते थे कि वह अपने पुत्र को पुकारता है, मुसबो नही। ऐसा ही नाम माराम्य है तो आजबान भी नारायण के स्मरण करनेवालों इस छुटाने को क्यों नहीं आते। यदि यह बात सत्य है तो ऐसी लोग रायण २ करके क्यों नहीं छूट जाते ? ऐसी ही ज्योतिष शास्त्र से विरुद्ध

रथादि चारह स्कंधों का सूचीपत्र इसी प्रकार ब्रह्मदेव पण्डित ने कर हिमाद्रि सचिव को दिया । जो विस्तार देखना चाहे वह ब्रह्मदेव बनाये हिमाद्रि ग्रन्थ में देख लेवे । इसी प्रकार अन्य पुराणों की भी समझनी, परन्तु उन्नीस बीस इक्कीस एक दूसरे से बढ़कर हैं ।

देखो ! श्रीकृष्णजी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है । उनका कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है । जिसमें कोई कर्म का आचरण श्रीकृष्णजी ने जन्म से मरणपर्यन्त बुरा काम कुछ भी न हो ऐसा नहीं लिखा और इस भागवतवाले ने अनुचित मनमाने लिगाये हैं । दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी और कुब्जा दासी से रागम, परखियों से रासमण्डल, क्रीडा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्णजी में लिगाये हैं । इसको पढ़ पढ़ा, सुन सुना के अन्य मतवाले श्रीकृष्णजी की तारीफें निन्दा करते हैं । जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्णजी के महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती ! शिवपुराण में चारह तिलिङ्ग और जिनमें प्रकाश का लेश भी नहीं, रात्रि को बिना दीप तिलिङ्ग भी अन्धेरे में नहीं दिखते, ये सब लीला पोषजी की हैं ।

५८—(प्रश्न) जब वेद पढ़ने का सामर्थ्य नहीं रहा तब स्मृति, जब स्मृति के पढ़ने की बुद्धि नहीं रही तब शास्त्र, जब शास्त्र पढ़ने का सामर्थ्य न रहा तब पुराण बनाये, केवल स्त्री और शूद्रों के लिये, क्योंकि इनको पढ़ने का अधिकार नहीं है ।

(उत्तर) यह बात मिथ्या है क्योंकि सामर्थ्य पढ़ने पढ़ाने ही से होता है । वेद पढ़ने सुनने का अधिकार सबको है । देखो गार्गी आदि खिया छान्दोग्य में जानश्रुति शूद्र ने भी वेद 'ऐक्य मुनि' के पास पढ़ा था यजुर्वेद के २६ वे अध्याय के २ रे मन्त्र में स्पष्ट लिखा है कि ऐदों के और सुनने का अधिकार मनुष्यमात्र को है । पुन जो ऐसे ऐसे मिथ्या बना लोगों को सत्य ग्रन्थों से विमुख जाल में फँसा अपने प्रयोजन साधते हैं वे महापापी क्यों नहीं ? ॥

५९—देखो ग्रहों का चक्र वैसा चलाया है कि जिसने विषाहीन मनुष्य को ग्रस्त लिया है । "आ कृष्णं रजसां" । १। सूर्य का मन्त्र ॥ देवा असपत्नश्च सुवध्वम् ॥ २॥ चन्द्र ॥ "अग्निर्मूर्धा ककुत्पति" ॥ ३॥ मङ्गल । "उद्धृष्यस्वान्ने" ॥ ४॥ शुभ ।

गुमेरु पर्वत का परिमाण लिखा है और प्रियवत राजा के रथ के लीक से समुद्र हुए, उच्चास कोटि योजन पृथिवी है । इत्यादि का गणोक्त भागवत में लिखा है जिसका कुछ पारावार नहीं ॥

५७—और यह भागवत बोधदेव का बनाया है जिसके भाई गीतगोविन्द बनाया है । देवो ! उसने यह श्लोक भागने बनाये । नामक ग्रन्थ में लिखे हैं कि श्रीमद्भागवतपुराण मैंने बनाया है । के तीन पत्र हमारे पास थे । उसमें से एक पत्र खो गया है । उस श्लोक का जो आशय था उस आशय के हमने दो श्लोक बनाये हैं जिसे देवना हो वह हिमाद्रि ग्रन्थ में देग लेये ॥

हिमाद्रिः सचिवस्यार्थं सूचना क्रियतेऽधुना ।

स्कन्धाऽध्यायकथानां च यत्प्रमाणं समागतः ॥ १ ॥

श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं च मयेरितम् ।

विदुषा बोधदेवेन श्रीकृष्णस्य यशोन्वितम् ॥ २ ॥

हरी प्रकाश के नष्ट पत्र में श्लोक ये अर्थात् राजा के रथ के लीक से समुद्र पण्डित ने कहा कि मुझको तुम्हारे बनाये श्रीमद्भागवत के भाग का आशय नहीं है इसलिये तुम संक्षेप से दलों खन गूरीपत्र बनाये । मैं श्रीमद्भागवत की कथा को संक्षेप से जान लें । सो नीचे गूरीपत्र उस बोधदेव ने बनाया । उसमें से हम नष्टपत्र में १० श्लोक ग्याहें जो हमने लिखे हैं, ये नीचे लिखे श्लोक सब बोधदेव के बनाये

बोधन्तीति हि प्रातुः श्रीमद्भागवतं पुनः ।

पञ्च प्रश्नाः शौनकस्य सूनम्याप्रोक्षरं त्रिषु ॥ ११ ॥

प्रश्नावतारयोर्ध्वं व्यासस्य निरुतिः कृतम् ।

नाम्नस्यात्र हेतुक्तिः प्रनीत्यर्थं स्वतन्त्रम् च ॥ १२ ॥

कृष्णं द्वापर्यामिव स्तदग्रान्तागत्या यतम् ।

कीर्णस्य स्वपदप्रतिः कृष्णस्य हासिकागतः ॥ १३ ॥

श्रीकृष्णं परीक्षितो जन्म भूतगात्रस्य निर्गमः ।

कृष्णस्यैवैवात्मानं ततः पार्थमहापथ ॥ १४ ॥

कृष्णकृतदर्शितं पदेरथायायि क्रमान् स्मृतः ।

कृष्णप्रतिबन्धितं स्पर्शं राज्यं तद्देवः कृतः ॥ १५ ॥

श्रीकृष्णं देवः नास्तीतिः प्रोक्ता द्वापितयाय ॥

श्रीकृष्णस्य स्वतन्त्रः ॥ १६ ॥

इत्यादि बारह स्कंधों का सूचीपत्र इसी प्रकार योगदेव पण्डित ने कर हिमाद्रि सचिव को दिया । जो विस्तार देखना चाहे वह योगदेव नामके हिमाद्रि ग्रन्थ में देख लेवे । इसी प्रकार अन्य पुराणों की भी समझनी, परन्तु उन्नीस बीस इक्कीस एक दूसरे से बढ़कर हैं ।

देखो ! श्रीकृष्णजी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है । उनका कर्म, स्वभाव और चरित्र आस पुरुषों के सदृश है । जिसमें कोई भी का आचरण श्रीकृष्णजी ने जन्म से मरणपर्यन्त बुरा काम कुछ भी पा हो ऐसा नहीं लिखा और इस भागवतवाले ने अनुचित मनमाने र लगाये हैं । दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी और कुञ्जा दासी से रागम, परखियों से रासमण्डल, क्रीडा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्णजी में लाये हैं । इसको पढ़ पढ़ा, सुन सुना के अन्य मतवाले श्रीकृष्णजी की तारीफ़ निन्दा करते हैं । जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्णजी के शिष्य महारामाओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती । शिवपुराण में बारह तिलिङ्ग और जिनमें प्रकाश का लेश भी नहीं, रात्रि को बिना दीप के लिङ्ग भी अन्धेरे में नहीं दिखते, ये सब लीला पोषजी की है ।

५८—(प्रश्न) जब वेद पढ़ने का सामर्थ्य नहीं रहा तब स्मृति, जब स्मृति के पढ़ने की बुद्धि नहीं रही तब शास्त्र, जब शास्त्र पढ़ने का सामर्थ्य रहा तब पुराण बनाये, केवल स्त्री और शूद्रों के लिये, क्योंकि इनको वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है ।

(उत्तर) यह बात मिथ्या है क्योंकि सामर्थ्य पढ़ने पढ़ाने ही से होता और वेद पढ़ने सुनने का अधिकार सबको है । देखो गार्गी आदि स्त्रियाँ और छान्दोग्य में जानश्रुति शूद्र ने भी वेद 'रैव्य मुनि' के पास पढ़ा था और यजुर्वेद के २६ वें अध्याय के २३ मन्त्र में स्पष्ट लिखा है कि स्त्रियों के पढ़ने और सुनने का अधिकार मनुष्यमात्र को है । पुनः जो ऐसे ऐसे मिथ्या कथन बना होंगों वो सत्य ग्रन्थों से विमुख जाल में फँसा अपने प्रयोजन के साधते हैं वे महापापी क्यों नहीं ? ॥

५९—देखो ग्रहों का चक्र वैसा चलाया है कि जिसने पिछाहीन मनुष्यों को प्रसन्न किया है । "आ पृष्णेन रजसा०" । १॥ सूर्य का मन्त्र ॥ "सं देवा असपत्नश्च सुपध्वम०" ॥२॥ चन्द्र० । "अग्निर्मूर्ता देवः ककुत्पतिः" ॥३॥ मङ्गल । "उद्दध्व्यस्याग्ने" ॥४॥ शुक्र ।

इत्यादि वारह स्कंधों का सूचीपत्र इसी प्रकार बौबदेव पण्डित ने कर हिमाद्रि सचिव को दिया । जो विस्तार देखना चाहे वह बौबदेव बनाये हिमाद्रि ग्रन्थ में देख लेवे । इसी प्रकार अन्य पुराणों की भी समझनी, परन्तु उन्नीस बीस इक्कीस एक दूसरे से बढ़कर हैं ।

देखो ! श्रीकृष्णजी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है । उनका धर्म, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है । जिसमें कोई धर्म का आचरण श्रीकृष्णजी ने जन्म से मरणपर्यन्त बुरा काम कुछ भी पा हो ऐसा नहीं लिखा और इस भागवतवाले ने अनुचित मनमाने प लगाये हैं । दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी और कुब्जा दासी से मागम, परस्त्रियों से रासमण्डल, क्रीडा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्णजी में पाये हैं । इसको पढ़ पढ़ा, सुन सुना के अन्य मतवाले श्रीकृष्णजी की तूत सी निन्दा करते हैं । जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्णजी के दश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती । शिवपुराण में वारह गेतिर्लिङ्ग और जिनमें प्रकाश का लेश भी नहीं, रात्रि को बिना दीप के लिङ्ग भी अन्धेरे में नहीं दिखते, ये सब लीला पोपजी की है ।

५८—(प्रश्न) जब वेद पढ़ने का सामर्थ्य नहीं रहा तब स्मृति, जब स्मृति के पढ़ने की बुद्धि नहीं रही तब शास्त्र, जब शास्त्र पढ़ने का सामर्थ्य रहा तब पुराण बनाये, केवल स्त्री और शूद्रों के लिये, क्योंकि इनको वे पढ़ने का अधिकार नहीं है ।

(उत्तर) यह घात मिथ्या है क्योंकि सामर्थ्य पढ़ने पढ़ाने ही से होता और वेद पढ़ने सुनने का अधिकार सबको है । देखो गार्गी आदि खिया और छान्दोग्य में जानश्रुति शूद्र ने भी वेद 'रैव्य मुनि' के पास पढ़ा था और यजुर्वेद के २६ वें अध्याय के २ रे मन्त्र में स्पष्ट लिखा है कि वेदों के पढ़ने और सुनने का अधिकार मनुष्यमात्र को है । पुन जो ऐसे ऐसे मिथ्या न्य बना लोगों को सत्य ग्रन्थों से विमुख जाल में फंसा अपने प्रयोजन के साथते हैं वे महापापी क्यों नहीं ? ॥

५९—देखो ग्रहों का चक्र वैसा चलाया है कि जिसने विपरीतान मनुष्यों को ग्रस्त लिया है । "आ पृथ्णेन रजसा०" । १॥ सूर्य का मन्त्र ॥ "इम देवा अस्तपत्नः सुधध्वम्०" ॥२॥ चन्द्र० । "अग्निर्मूर्ता देवः ककुत्पति" ॥३॥ मङ्गल । "उदुपुध्यस्वान्ने" ॥४॥ शुक्र ।

“बृहस्पते अति यदर्यो०” ॥५॥ बृहस्पति । ‘शुक्रमन्त्रम
 शुक्र । ‘शशो देवीरभिष्टयं०’ ॥ ७ ॥ शनि । ‘कषा
 आभुव०’ ॥ ८ ॥ राहु । और ‘केतुं वृगवन्नकेतये ॥९॥
 नेत्र की कण्डिका कहते हैं (भास्वणे०) यह सूर्य और भूमि का
 पैरा । १ । दूसरा राजगुण विधायक । २ । तीसरा अग्नि । ३ । चौथा
 यजमान । ४ । पाँचवाँ विद्वान् । ५ । छठा धीर्य, अन्न । ६ । सातवाँ अन्न
 और परमेश्वर । ७ । आठवाँ मित्र । ८ । नववाँ ज्ञानप्रदण का
 मन्त्र है । ९ । ग्रहों के वाचक नहीं । अर्थ न जानने से प्रमात्ताव है

(प्रश्न) ग्रहों का फल होता है वा नहीं ?

(उत्तर) गीता गोपलीला का है धैर्य नहीं, सिन्धु गीता सूर्य,
 की चिरणद्वारा उगता शीतता अथवा परतुवत् कालनक का सूर्य
 आनी प्रकृति के अनुकूल प्रतिकूल गुण दुःख के निमित्त हो । है ।
 जो गोपलीला वाले कहते हैं सुनो “महाराज सेठजी ! यजमानों
 आर आठवाँ चन्द्र सूर्यादि पूरे घर में आये हैं । आठवाँ घर का
 पग में आया है । सुनो यदा विघ्न होगा । घर द्वार खुला का
 दुःख होगा । परन्तु जो तुम ग्रहों का दान, जप, पाठ, पूजा का
 दान दे सोगे । उनसे बदना चाहिये कि सुनो गोपजी ! ग्रह
 ग्रह का क्या सम्बन्ध है ? ग्रह क्या वस्तु है ?

(गोपजी)—देवार्थान् जगत्सर्वान् मन्त्रार्थानाश्च देवता ।

२ क्यों फिरते हो ? और जिसको तुम कुत्तर मानते हो उसको घश में
 के चाहो जितना धन लिया करो । बिचारे ग़रीबों को क्यों लुटते हो ?
 को दान देने से ग्रह प्रसन्न और न देने से अप्रसन्न होते हों तो हमको
 यदि ग्रहों की प्रसन्नता अप्रसन्नता प्रत्यक्ष दिखलाओ । जिनको ८ वां
 चन्द्र और दूसरे को तीसरा हो उन दोनों को ज्येष्ठ महीने में बिना
 पहिने तपी हुई भूमि पर चलाओ । जिस पर प्रसन्न हैं उनके पग,
 न जलने और जिस पर क्रोधित हैं उनके जल जाने चाहिये तथा
 मास में दोनों को नगे कर पौर्णमासी की रात्रि भर मैदान में रखें ।
 को शीत लगे दूसरे को नहीं तो जानो कि ग्रह क्रूर और सौम्यदृष्टि
 होते हैं । और क्या तुम्हारे ग्रह सम्बन्धी हैं । और तुम्हारी डाक वा
 उनके पास आता जाता है ? अथवा तुम उनके वा वे तुम्हारे पास
 जाते हैं ? जो तुम में मन्त्रशक्ति हो तो तुम स्वयं राजा वा धनाढ्य
 नहीं बन जाओ ? वा शत्रुओं को अपने घश में क्यों नहीं कर लेते
 ? नास्तिक वह होता है जो वेद ईश्वर की आज्ञा वेदविरुद्ध पोपलीला
 लावे । जय तुमको ग्रहदान न देवे जिस पर ग्रह है वही ग्रहदान को भोगे
 क्या चिन्ता है ? जो तुम कहो कि नहीं हम ही को देने से वे प्रसन्न
 हैं, अन्य को देने से नहीं, तो क्या तुमने ग्रहों का ठेका ले लिया है ?
 ठेका लिया हो तो सूर्यादि को अपने घर में उला के जल मरो । सच
 यह है कि सूर्यादि लोक जड़ हैं । वे न किसी को दुःख और न सुख
 देने की चेष्टा कर सकते हैं विन्तु जितने तुम ग्रहदानोपजीवी हो वे सय तुम
 को की मूर्तियाँ हो, क्योंकि ग्रह शब्द का अर्थ भी तुम में ही घटित
 होता है । “ये गृहन्ति ते ग्रहाः” जो ग्रहण करते हैं उनका नाम ‘ग्रह’
 । जब तक तुम्हारे चरण राजा रईस, सेठ, साहूकार और दरिद्रों के पास
 नहीं पहुँचते तबतक किसी को नवग्रह का स्मरण भी, नहीं होता, जब तुम
 साक्षात् सूर्य, शनैश्वरादि मूर्तिमान् क्रूर रूप धर उन पर जा चढ़ते हो तब
 वेना ग्रहण किये उनको कभी नहीं छोड़ते और जो कोई तुम्हारे पास में
 आवे उसकी निन्दा नास्तिकादि शब्दों से भरते फिरते हो ।

६०—(पोपजी) देखो ! ज्योतिष् का प्रत्यक्ष फल । आकाश में रहने
 वाले सूर्य, चन्द्र और राहु, केतु का संयोग रूप ग्रहण की पहिले ही कर देते
 । जैसा यह प्रत्यक्ष होता है वैसा ग्रहों का भी फल प्रत्यक्ष हो जाता है ।
 को । धनाढ्य, दरिद्र, राजा, रक्ष, सुखी, दुखी ग्रहों ही से होते हैं ।

(प्रश्न) जो यमराज राजा, चित्रगुप्त मन्त्री, उसके बड़े भयङ्कर गण कज्जल पर्वत के तुल्य शरीर वाले जीव को पकड़ कर लेजाते हैं पाप पुण्य के अनुसार एक स्वर्ग में डालते हैं। उसके लिये दान, पुण्य, श्रद्धा, तर्पण, गोदानादि वैतरणी नदी तरने के लिये करते हैं। ये सब बातें झूठ क्योंकर हो सकती हैं ?

(उत्तर) ये सब बातें पोपलीला के गपोडे हैं। जो अन्यत्र के जीव वहां जाते हैं उनका धर्मराज चित्रगुप्त आदि न्याय करते हैं तो वे यमलोक के जीव पाप करें तो दूसरा यमलोक मानना चाहिये कि वहां के न्यायाधीश उनका न्याय करें और पर्वत के समान यमगणों के शरीर हों तो दीखते क्यों नहीं ? और मरने वाले जीव को लेने में छोटे द्वार में उनकी एक अंगुली भी नहीं जा सकती और सड़क गली में क्यों नहीं रुक जाते। जो कहें कि वे सूक्ष्म देह भी धारण कर लेते हैं तो पर्वतवत् शरीर के बड़े बड़े पर्वत पोपजी बिना अपने घर के कहां धरेंगे ? जब जङ्गल में आगी लगती है तो एक दम पिपीलिकादि जीवों के शरीर छूटते हैं। उनको पकड़ने के लिये असंख्य यम के गण आवें तो वहां अन्धकार हो जाना चाहिये और वहां आपस में जीवों को पकड़ने की दौड़ेंगे तब कभी उनके शरीर ठोकर टूट जायेंगे तो जैसे पहाड़ के बड़े बड़े शिखर टूट कर पृथ्वी पर गिरते हैं वैसे उनके बड़े बड़े अवयव गरुडपुराण के वाचने सुनने बालों के भागन में पड़ेंगे तो वे दब मरेंगे वा घर का द्वार अथवा सड़क रुक जायगी तो कैसे निकल और चल सकेंगे ? श्राद्ध तर्पण, पिण्डप्रदान उन मरे हुए जीवों को तो नहीं पहुंचता किन्तु मृतको के प्रतिनिधि पोपजी के घर, उदर और हाथ में पहुंचता है। जो वैतरणी के लिये गोदान लेते हैं वह तो पोपजी के घर में अथवा कसाई आदि के घर में पहुंचता है। वैतरणी पर जाय नहीं जाती पुनः किस की पूछ पकड़कर तरंगा ? और हाथ तो यहीं लाया वा गाड़ दिया गया फिर पूछ को कैसे पकड़ेगा ? यहां एक प्लान्त इस बात में उपयुक्त है कि -

एक जाट था उसके घर में एक गाय बहुत अच्छी और बीस सेर दूध देने वाली थी, दूध उसका बड़ा स्वादिष्ट होता था। कभी कभी पोपजी उस घर में भी पड़ता था। उसका पुरोहित यही ध्यान कर रहा था कि जब जाट का पुत्रा बाप मरने लगेगा तब इसी गाय का स्वरूप बराबर रहेगा। कुछ दिनों में देवयोग से उसके बाप का मरण समय आया। जीभ निकल गई और खाट से भूमि पर ले लिया अर्थात् प्राण छोड़ने

(जाटजी) कहो तुमने गाय किसलिये ली थी ?

(पोपजी) तुम्हारे पिता के वैतरणी नदी तरने के लिये ।

(जाटजी) अच्छा तो तुमने वैतरणी नदी के किनारे गाय क्यों पहुँचाई ? हम तो तुम्हारे भरोसे पर रहे और तुम अपने घर बांध । न जाने मेरे बाप ने वैतरणी में कितने गोते खाये होंगे ?

(पोपजी) नहीं नहीं, वहाँ इस दान के पुण्य के प्रभाव से दूसरी बन कर उसको उतार दिया होगा ।

(जाटजी) वैतरणी नदी यहाँ से कितनी दूर और किधर की ओर है ?

(पोपजी) अनुमान से कोई तीस कौठ कोश दूर है क्योंकि उच्चास टि योजन पृथिवी है । और दक्षिण नैऋत्य दिशा में वैतरणी नदी है ।

(जाटजी) इतनी दूर से तुम्हारी चिट्ठी वा तार का समाचार गया उसका उत्तर आया हो कि वहाँ पुण्य की गाय बन गई, अमुक के पिता पार उतार दिया, दिखलाओ ।

(पोपजी) हमारे पास गरुडपुराण के लेख के बिना डाक वा तार-ही दूसरी कोई नहीं ।

(जाटजी) इस गरुडपुराण को हम सच्चा कैसे मानें ?

(पोपजी) जैसे सब मानते हैं ।

(जाटजी) यह पुस्तक तुम्हारे पुरपाओं ने तुम्हारे जीविका के लिये माया है क्योंकि पिता को बिना अपने पुत्रों के कोई प्रिय नहीं । जब मेरा ता मेरे पास चिट्ठी वा तार भेजेगा तभी मैं वैतरणी नदी के किनारे पहुँचा दूँगा और उनको पार उतार पुनः गाय को घर में ले आ दूँगा मैं और मेरे लड़के-बाले पिया करेंगे, लाओ । दूध की भरी टुई बटनीई । य, बट्टा लेकर जाटजी अपने घर की चला ।

(पोपजी) तुम दान देकर लेते हो तुम्हारा सत्यानाश हो जायगा ।

(जाटजी) चुप रहो, नहीं तो तेरा दिन हो दूध के पिना जितना सब हमने पाया है सब कसर निकाल दूँगा । तब पोपजी चुप रहे और जाटजी गाय बट्टा ले अपने घर पहुँचे ।

जब ऐसे ही जाटजी के से पुरप हों तो पोपलीला संसार में न चले । ये लोग कहते हैं कि दशगात्र के पिण्डों से दश धांग सपिण्डी बनने से तिर के साथ जीव का मेल होके अंगुष्ठमात्र शरीर बन के पश्चात् समलोक जाता है तो मरती समय समझनों का आना व्यर्थ होता है । श्रयोदशा

आ पहुँचा । उस समय जाट के इष्ट मित्र और सम्बन्धी भी थे । तब पोपजी ने पुकारा कि यजमान ! अब तू इसके हाथ से फरा । जाट १०) रुपया निकाल पिता के हाथ में रख सकल्प ! पोपजी बोला वाह वाह, क्या बाप बारबार मरता है ! तो साक्षात् गाय को लाओ जो दूध देती हो, बुढ़ी न हो, सब उत्तम हो । ऐसी गौ का दान कराना चाहिये ।

(जाटजी) हमारे पास तो एक ही गाय है, उसके बिना हमारे लड़के का निर्वाह न हो सकेगा इसलिये उसको न दूंगा । (तो २०) हाथे संकल्प पढ़ देओ और इन रुपयों से दूसरी दुधार गाय ले लो ।

(पोपजी) वाहजी वाह ! तुम अपने बाप से भी गाय को छूते हो ? क्या अपने बाप को वैतरणी नदी में डुबा कर दुःख हो । तुम अच्छे सुपुत्र हुए ?

तब तो पोपजीकाँ ओर सब कुटुम्बी हो गये, क्योंकि उन ही पोपजी ने बहका रक्खा था और उस समय भी इशारा कर दिया । मिलकर हठ से उसी गाय का दान उसी पोपजी को दिला दिया । समय जाट कुछ भी न बोला । उसका पिता मर गया और पोपजी सहित गाय और दोहने की बटलोई को ले अपने घर में गौ बाध घर पुनः जाट के घर आया और मृतक के साथ श्मशानभूमि में दाहकर्म कराया । वहाँ भी कुछ कुछ पोपलीला चलाई, पश्चात् सपिंदो कराने आदि में भी उसको मूढ़ा । महाप्राह्मणों ने भी लूट भुक्कों ने भी बहुत सा माल पेट में भरा अर्थात् जब सब किया तब जाट ने जिस किसी के घर से दूध मांगमूग निर्वाह किया । दिन प्रातःकाल पोपजी के घर पहुँचा । देखे तो गाय दुह, बटलोई पोपजी की ठठने की तैयारी थी इतने ही में जाटजी पहुँचे । उस पोपजी बोला आइये ! यजमान बैठिये !

(जाटजी) तुम भी पुरोहितजी इधर आओ ।

(पोपजी) अच्छा दूध धर आऊँ ।

(जाटजी) नहीं नहीं, दूध की बटलोई इधर लाओ । पोपजी बैठे और बटलोई सामने घर दी ।

(जाटजी) तुम बड़े झूठे हो ।

(पोपजी) क्या झूठ किया ?

(जाटजी) कहो तुमने गाय किसलिये ली थी ?

(पोपजी) तुम्हारे पिता के वैतरणी नदी तरने के लिये ।

(जाटजी) अच्छा तो तुमने वैतरणी नदी के किनारे गाय क्यों पहुँचाई ? हम तो तुम्हारे भरोसे पर रहे और तुम अपने घर वाप । न जाने मेरे घाघ ने वैतरणी में कितने गोते खाये होंगे ?

(पोपजी) नहीं नहीं, वहाँ इस दान के पुण्य के प्रभाव से दूसरी बन कर उसको उतार दिया होगा ।

(जाटजी) वैतरणी नदी यहाँ से कितनी दूर और किधर की ओर है ?

(पोपजी) अनुमान से कोई तीस कौड कौश दूर है क्योंकि उच्चास टे योजन पृथिवी है । और दक्षिण नैऋत्य दिशा में वैतरणी नदी है ।

(जाटजी) इतनी दूर से तुम्हारी चिट्ठी वा तार का समाचार गया उसका उत्तर आया हो कि वहाँ पुण्य की गाय बन गई, असुक के पिता पार उतार दिया, दिखलाओ ।

(पोपजी) हमारे पास गरुडपुराण के लेख के बिना डाक वा तार में दूसरी कोई नहीं ।

(जाटजी) इस गरुडपुराण को हम सच्चा कैसे मानें ?

(पोपजी) जैसे सब मानते हैं ।

(जाटजी) यह पुस्तक तुम्हारे पुरुषाओं ने तुम्हारे जीविका के लिये लाया है क्योंकि पिता को बिना अपने पुत्रों के कोई प्रिय नहीं । जब मेरा ता मेरे पास चिट्ठी वा तार भेजेगा तभी मैं वैतरणी नदी के किनारे पहुँचा दूँगा और उनको पार उतार पुनः गाय को घर में ले आ दूँगा मैं और मेरे लड़के बाले पिया करेंगे, लाओ । दूध की भरी हुई बट्टी । य, बट्टा लेकर जाटजी अपने घर को चला ।

(पोपजी) तुम दान देकर लेते हो तुम्हारा सत्यानाश ही जायगा ।

(जाटजी) चुप रहो, नहीं तो तेरह दिन लो दूध के बिना जितना खाने हमने पाया है सब कसर निकाल दूँगा । तब पोपजी चुप रहे और जाटजी गाय बट्टा ले अपने घर पहुँचे ।

जब ऐसे ही जाटजी के से पुरुष हो तो पोपजीला संसार में न चले । जो वे लोग कहते हैं कि एकाग्र के पिण्डों से एकाग्र सपिण्डी बनने से शरीर के साथ जीव का मेल होके अंगुष्ठमात्र शरीर बन के पद्मान्दमलोद में जाता है तो मरती समय समझूँ वा भाना प्यर्थ होता है । यदोदकार

उन्नति रूप परोपकारार्थ देवे । मध्यम वह है जो कीर्ति वा स्थाय्य दान करे । नीच वह है कि अपना वा पराया कुछ उपकार न कर वेश्यागमनादि वा भांड, भाट आदि को देवे, देते समय तिरस्कार नादि भी कुचेष्टा करे, पात्र कुपात्र का कुछ भी भेद न जाने, किं अन्न बारह पसेरी" बेचने वालों के समान विवाद लड़ाई, दूसरे को दुःख देकर सुखी होने के लिये दिया करे वह अधम दाता है । जो परीक्षा पूर्वक विद्वान् धर्मात्माओं का सत्कार करे वह उत्तम और परीक्षा कटे वा न करे परन्तु जिसमे अपनी प्रशंसा हो उसको जो अन्नाधुन्ध परीक्षारहित निष्फल दान दिया करे वह नीच दाता

(प्रश्न) दान के फल यहां होते हैं वा परलोक में ?

(उत्तर) सर्वत्र होते हैं ।

(प्रश्न) स्वयं होते हैं वा कोई फल देनेवाला है ?

(उत्तर) फल देने वाला ईश्वर है । जैसे कोई चोर डाकू स्वयं में जाना नहीं चाहता । राजा उसको अवश्य भेजता है, धर्मात्माओं की रक्षा करता, भुगाता, डाकू आदि से बचाकर उनको सुख में रखता । परमात्मा सब को पाप पुण्य के दुःख और सुखरूप फलों को यथावत्

६४—(प्रश्न) जो ये गरुडपुराणादि ग्रन्थ हैं वेदार्थ वा वेद करने वाले हैं वा नहीं ?

(उत्तर) नहीं, किन्तु वेद के विरोधी और उल्टे चलते हैं । तंत्र भी वैसे ही हैं । जैसे कोई मनुष्य एक का मित्र सब संसार का हो, वैसा ही पुराण और तंत्र का माननेवाला पुरुष होता है, क्योंकि दूसरे से विरोध कराने वाले ये ग्रन्थ हैं । इनका मानना किसी मनुष्य काम नहीं, किन्तु इनको मानना पशुता है । देखो ! शिवपुराण में दशमी, सोमवार, आदित्यपुराण में रवि, चन्द्रखण्ड में सोमग्रह वाले बुध, बृहस्पति, शुक, शनैश्वर, राहु, केतु के वैष्णव एकादशी, वामन द्वादशी, नृसिंह वा अनन्त की चतुर्दशी, चन्द्रमा की पूर्णमासी, की दशमी, दुर्गा की नौमी, वसुओं की अष्टमी, मुनियों की सप्तमी, कामाक्षी की पटी, नाग की पंचमी, गणेश की चतुर्थी, गौरी की की द्वितीया, आद्या देवी की प्रतिपदा और पितरों की पुराणरीति से ये दिन उपवास करने के हैं । और सर्वत्र यही जो मनुष्य इन धार और तिथियों में अन्नपान ग्रहण करता

बाह रे आंख के अन्धे लोगो ! जो यह बात सबी हो तो पान की बीड़ी, जो कि स्वर्ग में नहीं होती, भोजना चाहते हैं। दशी वाले अपना फल देदो। जो एक पानबीड़ा ऊपर को चला पुनः लाखों क्रोड़ों पान वहाँ भेजेंगे और हम भी एकादशी किष्ण और जो ऐसा न होगा तो तुम लोगों को इस भूखे मरनेरूप बचावेंगे। इन चौबीस एकादशियों का नाम पृथक् २ रक्खा है। "धनदा" किसी का "कामदा" किसी का "पुत्रदा" किसीका। बहुतसे दरिद्र बहुतसे कामी और बहुतसे निर्वंशी लोग एकादशी हो गये और मर भी गये परन्तु धन, कामना और पुत्र प्राप्त न हुआ ज्येष्ठ महीने के शुक्लपक्ष में कि जिस समय एक घड़ी भर जल न मनुष्य व्याकुल हो जाता है व्रत करने वालों को महादुःख प्राप्त विशेषकर बंगाले में सब विधवा स्त्रियों की एकादशी के दिन बड़ी होती है। इस निर्दयी कसाई को लिखते समय कुछ भी मन में भाई, नहीं तो निर्जला का नाम सजला और पौष महीने की एकादशी का नाम निर्जला रख देता तो भी कुछ अच्छा होता। इस पौष को दया से क्या काम ! "कोई जीवो या मरो, पौषजी पूरा भरो"। भला गर्भवती वा सद्योविवाहिता स्त्री, लड़के वा पुत्र को तो कभी उपवास न करना चाहिये। परन्तु किसी को करना भी जिस दिन अजीर्ण हो, क्षुधा न लगे उस दिन शर्करावत् शर्बत पीकर रहना चाहिये। जो भूख में नहीं खाते और बिना भूख के करते हैं दोनों रोगसागर में गोते खा दुःख पाते हैं। इन प्रमादियोंके लिखने का प्रमाण कोई भी न करे।

६५—अब गुरु शिष्य मन्त्रोपदेश और मतमतान्तर के चरित्रों का मान कहते हैं। मूर्तिपूजक सम्प्रदायी लोग प्रश्न करते हैं कि वेद ऋग्वेद की २१, यजुर्वेद की १०१, सामवेद की १००० और अथर्ववेद ९ शाखा हैं। इनमें से थोड़ी सी शाखा मिलती है, शेष लोप ठन्टी में मूर्तिपूजा और तीर्थों का प्रमाण होगा। जो न होता तो में कहां से आता ? जब कार्य देखकर कारण का अनुमान होता है पुराणों को देखकर मूर्तिपूजा में क्या शंका है ?

(उत्तर) जैसे शाखा जिस वृक्ष की होती हैं उसके सदृश करती हैं, विरुद्ध नहीं। चाहे शाखा छोटी बड़ी हो परन्तु उनमें

हो सकता। वैसे ही जितनी शाखा मिलती हैं जब इनमें पाषाणादि और जल स्थल विशेष तीर्थों का प्रमाण नहीं मिलता तो उन लुप्त शाखाओं में भी नहीं था। और चार वेद पूरा मिलते हैं उनसे विरुद्ध का कभी नहीं हो सकती और जो विरुद्ध हैं उनको शाखा कोई भी सिद्ध कर सकता। जब यह बात है तो पुराण वेदों की शाखा नहीं किन्तु दायी लोगों ने परस्पर विरुद्धरूप ग्रन्थ बना रखे हैं। वेदों को तुम धरकृत मानते हो तो “आश्वलायनादि” ऋषि मुनियों के नाम से वेद ग्रन्थों को वेद क्यों मानते हो? जैसे ढाली और पत्तों के देखने से उ, बड और आत्र आदि वृक्षों की पहिचान होती है वैसे ही ऋषियों के किये वेदांग, चारों ब्राह्मण, अन्न उपांग और उपवेद आदि से पहिचाना जाता है। इसीलिये इन ग्रन्थों को शाखा माना है। जो वेद विरुद्ध हैं उसका प्रमाण और अनुकूल का अप्रमाण नहीं हो सकता। तुम अष्ट शाखाओं में मूर्त्ति आदि के प्रमाण की कल्पना करोगे तो कोई ऐसा पक्ष करेगा कि लुप्त शाखाओं में वर्णाश्रम व्यवस्था उल्टी थी अर्थात् अन्यज और शूद्र का नाम ब्राह्मणादि और ब्राह्मणादि का नाम शूद्र, अन्यजादि, अगमनीयागमन, अकर्त्तव्य कर्त्तव्य, मिथ्याभाषणादि धर्म, मिथ्याभाषणादि अधर्म आदि लिखा होगा तो तुम उसको वही उत्तर दोगे कि हमने दिया अर्थात् वेद और प्रसिद्ध शाखाओं में जैसा ब्राह्मणादि का नाम ब्राह्मणादि और शूद्रादि का नाम शूद्रादि लिखा है वैसा ही अष्ट शाखाओं में भी मानना चाहिए, नहीं तो वर्णाश्रम व्यवस्था आदि सब अन्यथा जायेंगे। भला जैमिनि, व्यास और पतञ्जलि के समय पर्यन्त तो सब शाखा प्रचलित थी वा नहीं? यदि नहीं थीं तो तुम कभी निषेध न कर सवोगे और जो कहो कि नहीं थे तो फिर शाखाओं के होने का क्या प्रमाण है?

६६—देखो जैमिनि ने मीमांसा में सब कर्मकाण्ड, पतञ्जलि मुनि ने अंगशास्त्र में सब उपासनाकाण्ड और व्यासमुनि ने शारीरक सूत्रों में सब अंगकाण्ड वेदानुसूल लिखा है। उसमें पाषाणादि मूर्त्तिपूजा वा प्रयागादि तीर्थों का नाम निशान भी नहीं लिखा। लिखें कहा से? जो कही घेदों में लिखा तो लिखे बिना कभी नहीं छोटते, इसलिये लुप्त शाखाओं में भी इन मूर्त्तिपूजादि का प्रमाण नहीं था। ये सब शाखा वेद नहीं हैं क्योंकि इनमें धरकृत घेदों की प्रतीक धर के व्याख्यान और ससारी जनों के इतिहासादि लिखे हैं, इसलिये वेद में कभी नहीं हो सकते। घेदों में तो वेदल मनुष्यों

वाह रे आंख के अन्धे लोगो ! जो यह बात सबी हो तो पान की बीड़ी, जो कि स्वर्ग में नहीं होती, भेजना चाहते हैं। दशरी वाले अपना फल देदो। जो एक पानबीड़ा ऊपर को चला पुनः लाखों क्रोड़ों पान वहाँ भेजेंगे और हम भी एकादशी किश और जो ऐसा न होगा तो तुम लोगों को इस भूखे मरनेरूप बचावेंगे। इन चौबीस एकादशियों का नाम पृथक् २ रक्खा है। “धनदा” किसी का “कामदा” किसी का “पुत्रदा” किसी का बहुतसे दरिद्र बहुतसे कामी और बहुतसे निर्वंशी लोग एकादशी हो गये और मर भी गये परन्तु धन, कामना, और पुत्र प्राप्त न ज्येष्ठ महीने के शुक्लपक्ष में कि जिस समय एक घड़ी भर जल न मनुष्य व्याकुल हो जाता है व्रत करने वालों को महादुःख प्राप्त विशेषकर चंगाले में सब विधवा स्त्रियों की एकादशी के दिन बड़ी होती है। इस निर्दयी कसाई को लिखते समय कुछ भी मन में भाई, नहीं तो निर्जला का नाम सजला और पौष महीने की एकादशी का नाम निर्जला रख देता तो भी कुछ अच्छा होता। इस पौष को दया से क्या काम ! “कोई जीवो या मरो, पोपजी पूरा भरो”। भला गर्भवती वा सद्योविवाहिता स्त्री, लड़के वा युवा को तो कभी उपवास न करना चाहिये। परन्तु किसी को करना जिस दिन अजीर्ण हो, क्षुधा न लगे उस दिन शर्करावत् शर्बत पीकर रहना चाहिये। जो भूख में नहीं खाते और बिना भूख के करते हैं दोनों रोगसागर में गोते खा दुःख पाते हैं। इन लिखने का प्रमाण कोई भी न करे।

६५—अब गुरु शिष्य मन्त्रोपदेश और मतमतान्तर के चरित्रों का मान कहते हैं। मूर्तिपूजक सम्प्रदायी लोग प्रश्न करते हैं कि वेद ऋग्वेद की २१, यजुर्वेद की १०१, सामवेद की १००० और अथर्ववेद ९ शाखा हैं। इनमें से थोड़ी सी शाखा मिलती हैं, शेष लोप उन्हीं में मूर्तिपूजा और तीर्थों का प्रमाण होगा। जो न होता तो मैं कहा से आता ? जब कार्य देखकर कारण का अनुमान होता पुराणों को देखकर मूर्तिपूजा में क्या शका है ?

(उत्तर) जैसे शाखा जिस वृक्ष की होती हैं उसके सदृश करती हैं, विरुद्ध नहीं। चाहें शाखा छोटी बड़ी हों परन्तु उनमें

हो सकता। वैसे ही जितनी शाखा मिलती हैं जब इनमें पाषाणादि और जल स्थल विशेष तीर्थों का प्रमाण नहीं मिलता तो उन लुप्त शाखाओं में भी नहीं था। और चार वेद पूरे मिलते हैं उनसे विरुद्ध कभी नहीं हो सकतीं और जो विरुद्ध हैं उनको शाखा कोई भी सिद्ध कर सकता। जब यह बात है तो पुराण वेदों की शाखा नहीं किन्तु दायी लोगों ने परस्पर विरुद्धरूप ग्रन्थ बना रखे हैं। वेदों को तुम धरकृत मानते हो तो “आश्वलायनादि” ऋषि मुनियों के नाम से ग्रन्थों को वेद क्यों मानते हो? जैसे डाली और पत्तों के देखने से पत्त, बड़ और आम्र आदि वृक्षों की पहिचान होती है वैसे ही ऋषियों के किये वेदांग, चारों ब्राह्मण, अङ्ग उपाङ्ग और उपवेद आदि से पहिचाना जाता है। इसीलिये इन ग्रन्थों को शाखा माना है। जो वेद विरुद्ध है उसका प्रमाण और अनुकूल का अप्रमाण नहीं हो सकता। तुम अष्ट शाखाओं में मूर्ति आदि के प्रमाण की कल्पना करोगे तो कोई ऐसा पक्ष करेगा कि लुप्त शाखाओं में वर्णाश्रम व्यवस्था उल्टी है अन्यज और शूद्र का नाम ब्राह्मणादि और ब्राह्मणादि का नाम शूद्र, जाति, अगमनीयागमन, अकर्त्तव्य कर्त्तव्य, मिथ्याभाषणादि धर्म, भाषणादि अधर्म आदि लिखा होगा तो तुम उसको वही उत्तर दोगे कि हमने दिया अर्थात् वेद और प्रसिद्ध शाखाओं में जैसा ब्राह्मणादि नाम ब्राह्मणादि और शूद्रादि का नाम शूद्रादि लिखा है वैसा ही अष्ट शाखाओं में भी मानना चाहिए, नहीं तो वर्णाश्रम व्यवस्था आदि सब अन्यथा आयेंगे। भला जैमिनि, व्यास और पतञ्जलि के समय पर्यन्त तो सब शाखा मान थी या नहीं? यदि नहीं थी तो तुम कभी निषेध न कर सकोगे जो कहो कि नहीं थे तो फिर शाखाओं के होने का क्या प्रमाण है?

६६—देखो जैमिनि ने मीमांसा में सब कर्मकाण्ड, पतञ्जलि मुनि ने शास्त्र में सब उपासनाकाण्ड और व्यासमुनि ने शारीरक सूत्रों में सब काण्ड वेदानुकूल लिखा है। उसमें पाषाणादि मूर्तिपूजा या प्रयागादि का नाम निशान भी नहीं लिखा। लिखें क्या से? जो वही वेदों में तो लिखे बिना कभी नहीं छोटते, इसलिये लुप्त शाखाओं में भी इन पूजादि का प्रमाण नहीं था। ये सब शाखा वेद नहीं हैं क्योंकि इनमें वेदों की प्रतीक धर के व्याख्यान और ससारी जनों के इतिहासादि हैं, इसलिये वेद में कभी नहीं हो सकते। वेदों में तो वेदक मनुष्यों

वाह रे आंख के अन्धे लोगो ! जो यह बात सची हो तो पान की बीड़ी, जो कि स्वर्ग में नहीं होती, भोजना चाहते हैं । दशमी वाले अपना फल देदो । जो एक पानबीड़ा ऊपर को चला पुनः लाखों क्रोड़ों पान वहाँ भेजेंगे और हम भी एकादशी किश और जो ऐसा न होगा तो तुम लोगों को इस भूखे मरनेरूप बचावेंगे । इन चौबीस एकादशियों का नाम पृथक् २ रक्ता है । “धनदा” किसी का “कामदा” किसी का “पुत्रदा” किसीका । बहुतसे दरिद्र बहुतसे कामी और बहुतसे निर्वंशी लोग एकादशी हो गये और मर भी गये परन्तु धन, कामना, और पुत्र प्राप्त न ३ ज्येष्ठ महीने के शुक्लपक्ष में कि जिस समय एक घड़ी भर जल न मनुष्य व्याकुल हो जाता है व्रत करने वालों को महादुःख प्राप्त विशेषकर वंगाले में सब विधवा स्त्रियों की एकादशी के दिन बड़ी होती है । इस निर्दयी कसाई को लिखते समय कुछ भी मन में आई, नहीं तो निर्जला का नाम सजला और पौष महीने की एकादशी का नाम निर्जला रख देता तो भी कुछ अच्छा होता । इस पोष को दया से क्या काम ! “कोई जीवो या मरो, पोषजी पूरा भरो” । भला गर्भवती वा सद्योविवाहिता स्त्री, लडके वा युवा को तो कभी उपवास न करना चाहिये । परन्तु किसी को करना जिस दिन अजीर्ण हो, क्षुधा न लगे उस दिन शर्करावत् शर्बत पीकर रहना चाहिये । जो भूख में नहीं खाते और बिना भूख के करते हैं दोनों रोगसागर में गोते खा दुःख पाते हैं । इन प्रमाणों लिखने का प्रमाण कोई भी न करे ।

६५—अब गुरु शिष्य मन्त्रोपदेश और मतमतान्तर के चरित्रों का मान कहते हैं । मूर्तिपूजक सम्प्रदायी लोग प्रश्न करते हैं कि वेद ऋग्वेद की २१, यजुर्वेद की १०१, सामवेद की १००० और अथर्ववेद ९ शाखा हैं । इनमें से थोड़ी सी शाखा मिलती हैं, शेष लोप उर्द्धा में मूर्तिपूजा और तीर्थों का प्रमाण होगा । जो न होता तो में कहां से आता ? जब कार्य देखकर कारण का अनुमान होता पुराणों को देखकर मूर्तिपूजा में क्या शंका है ?

(उत्तर) जैसे शाखा जिस वृक्ष की होती हैं उसके सदृश करती हैं, विरुद्ध नहीं । चाहें शाखा छोटी बड़ी हों परन्तु उनमें

मार्ग में बैठकर भीख मंगवाते हैं। इत्यादि बातों को आप लोग विचार लें कि कितने बड़े शोक की बात है। भला कष्ट तो सीतारामादि ऐसे ही और भिक्षुक थे ? यह उनका उपहास और निन्दा नहीं तो क्या है ? वे बड़ी अपने माननीय पुरुषों की निन्दा होती है। भला जिस समय वेधमान थे उस समय सीता, रुक्मिणी, लक्ष्मी और पार्वती को सड़क पर किसी मकान में खड़ी कर पूजारी कहते कि आओ इनका दर्शन और कुछ भेंट पूजा धरो तो सीतारामादि इन मुखों के कहने से ऐसा कभी न करते और न करने देते, जो कोई ऐसा उपहास उनका करता उसको बिना दंड दिये कभी छोड़ते ? हां, जब उन्होंने से दंड न पाया तो वे कर्मों ने पूजारियों को बहुतसी मूर्तिविरोधियों से प्रसादी दिला दी और भी मिलती है और जबतक इस कुकर्म को न छोड़ेंगे तबतक मिलेगी। मैं क्या सदेह है कि जो आर्यावर्त की प्रतिदिन महाहामि, पापाणादि पूजकों का पराजय इन्हीं कर्मों से होता है क्योंकि पाप का फल दुःख इन्हीं पापाणादि मूर्तियों के विश्वास से बहुतसी हानि होगई। जो न छोड़ेंगे तो प्रतिदिन अधिक अधिक होती जायगी।

६७—इन में से वाममार्गी बड़े भारी अपराधी हैं। जब वे चेला होते हैं तब साधारण को—

दुर्गायै नमः। भं भैरवाय नमः। ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विष्णवे ॥

इत्यादि मंत्रों का उपदेश कर देते हैं और दगाले में विशेष करके भक्षारी मन्त्रोपदेश करते हैं जैसा—

ह्रीं, श्रीं, क्लीं ॥ [शावर तं० व० प्रवी० प्र० ४४]

इत्यादि और धनाढ्यों का पूर्णाभिषेक करते हैं ऐसी ही दश महा-पापों के मंत्र—

ह्रीं ह्रीं हुं वगलामुख्यै फट् स्वाहा ॥ [शा० प्रकी० प्र० ४१]

ह्रीं फट् स्वाहा ॥ [कामरत्न तत्र बीजमंत्र ४]

और मारण, मोहन, उच्चाटन, पिष्टपेण घशीकरण आदि प्रयोग करते हैं। सो मन्त्र से तो कुछ भी नहीं होता किन्तु श्रिया से सत्य कृत करते हैं। किसी को मारने का प्रयोग करते हैं तब इधर बराने वाले से धन के आटे या ईंटों का पूतला जिस को मारना चाहते हैं उसका घना है। टूटकी छाती, नाभि, कण्ठ में घुरे प्रवेश कर देते हैं।

वर्ग में बैठाकर भीतर मंगवाते हैं। इत्यादि पातों को आप लोग विचार
 कि कितने बड़े शोक की बात है। भला कही तो सीतारामादि ऐसे
 ही और मित्रों थे ? यह उनका उपहास और निन्दा नहीं तो क्या है ?
 उनके भरणे माननीय पुरुषों की निन्दा होती है। भला जिस समय
 विषमन थे उस समय सीता, रुक्मिणी, लक्ष्मी और पार्वती को सड़क
 पर किसी मकान में खड़ी कर पूजारी कहते कि आओ इनका दर्शन
 का और कुछ भेट पूजा धरो तो सीतारामादि इन मूर्तियों के कहने से ऐसा
 करना करते और न करने देते, जो कोई ऐसा उपहास उनका करता
 तो उसे बिना दंड दिये कभी छोड़ते ? हां, जय उन्होंने से दंड न पाया तो
 उनके कर्मों ने पूजारियों को बहुतसी मूर्तिविरोधियों से प्रसादी दिला दी और
 वे भी मिलती हैं और जबतक इस कुकर्म को न छोड़ेंगे तबतक मिलेगी।
 उनके सदा सदेह है कि जो आर्यावर्त की प्रतिदिन महाहानि, पापाणादि
 इनकी पराजय इन्हीं कर्मों से होता है क्योंकि पाप का फल दुःख
 है जो पापाणादि मूर्तियों के विश्वास से बहुतसी हानि होगई। जो न
 करता प्रतिदिन अधिक अधिक होती जायगी।

६४—इन में से वाममार्गी बड़े भारी अपराधी हैं। जब वे चेला
 होते हैं तब साधारण को—

दुर्गायै नमः। भं भैरवाय नमः। ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विद्महे ॥
 इत्यादि मंत्रों का उपदेश कर देते हैं और दगाले में विशेष करके
 अपनी मन्त्रोपदेश करते हैं जैसा—

हो, धीं, क्लीं ॥ [शावर तं० यं० प्रकी० प्र० ४४]
 इत्यादि और धनाद्यों का पूर्णाभिषेक करते हैं ऐसी ही दश महा-
 मन्त्रों के मंत्र —

हो ह्रीं हुं वगलामुख्यै फद स्वाहा ॥ [शा० प्रकी० प्र० ४१]
 को २।

इ फद स्वाहा ॥ [कामरस तत्र बीजमंत्र ४]
 और मारण, मोहन, उच्चाटन, विद्वेषण, घरीकरण आदि प्रयोग करते
 हैं। सो मन्त्र से तो कुछ भी नहीं होता किन्तु क्रिया से सब पुट करतें हैं।
 जो किसी को मारने का प्रयोग करते हैं तब इधर कराने वाले से धन
 के के आटे वा मन्त्रों का पूतला जिस को मारना चाहते हैं उसका दण्ड
 लेते हैं। उसकी छाती, नाभि, कण्ठ में घुरे प्रवेष्ट कर देते हैं, आदि,

हाथ, पग में कीलें ठोकते हैं। उसके ऊपर भैरव वा दुर्गा की मूर्ति बनाकर हाथ में त्रिशूल दे उसके हृदय पर लगाते हैं। एक वेदी बनाकर मांस आदि का होम करने लगते हैं और उधर दूत आदि भेज के उसको बिल आदि से मारने का उपाय करते हैं। जो अपने पुरश्चरण के बीच में उसको मार डाला तो अपने को भैरव देवी की सिद्धि वाले बतलाते हैं। "भैरव भूतनाथश्च" इत्यादि का पाठ करते हैं ॥

मारय २, उच्चाटय २, विद्वेषय २, छिन्धि २, भिन्धि २, वशीकुरु २, खादय २, भक्षय २, चोटय २, नाशय २, [मम] शत्रून् वशीकुरु २, हुं फट् स्वाहा। [कामरत्न तन्त्र उच्चाटन प्रकरण मं० ५-४]

इत्यादि मन्त्र जपते, मद्य मांसादि यथेष्ट खाते पीते, भृकुटी के बीजों में सिन्दूर रेखा देते, कभी २ काली आदि के लिये किसी आदमी को पकड़ कर मार होम कर कुल २ उसका मांस खाते भी हैं। जो कोई भैरवीचक्र का चक्र जावे, मद्य मांस न पीवे न खावे तो उसको मार होम कर देते हैं। उनमें से जो अघोरी होता है वह मृत मनुष्य का भी मांस खाता है। भजरी बजरी करनेवाले विष्ठा मूत्र भी खाते पीते हैं।

एक चोलीमार्ग और दूसरे बीजमार्ग भी होते हैं। चोली मार्ग में एक गुप्त स्थान वा भूमि में एक स्थान बनाते हैं। वहां सब की स्त्रियां पुरुष, लड़का, लड़की, बहिन, माता, पुत्रवधू आदि सब इकट्ठे हो सब लोग मिलमिला कर मांस खाते, मद्य पीते, स्त्री को नंगी कर उसके गुप्त इन्द्रिय की पूजा सब पुरुष करते हैं और उसका नाम दुर्गादेवी धरते हैं। एक पुरुष को नंगा कर उसके गुप्त इन्द्रिय की पूजा सब स्त्रियां करती हैं। जब मद्य पी पी के उन्मत्त हो जाते हैं तब सब स्त्रियों के छाती के घन चोली कहते हैं एक बड़ी मट्टी की नांद में सब सब मिलकर रख के एक पुरुष उसमें हाथ डाल के जिसके हाथ में जिसका बख आवे वह पुरुष, बहिन, कन्या और पुत्रवधू क्यों न हो उस समय के लिये वह उसकी स्त्री होजाती है। आपस में कुर्रम करने और बहुत नशा चढ़ने से जूते आदि बिड़ते हैं। जय प्रातःकाल कुछ अंधेरे अपने अपने घर को चले जाते तब माता माता, कन्या कन्या, बहिन बहिन और पुत्रवधू पुत्रवधू आती हैं। और बीजमार्ग स्त्री पुरुष के समागम कर जल में वीर्य डाल कर पीते हैं। ये पामर पेसे कर्मों को मुक्ति के साधन मानते हैं। विचार, सज्जनतादि रहित होते हैं ?

६४—(प्रश्न) शैव मत वाले तो अच्छे होते हैं ?
 (उत्तर) अच्छे कहां से होते हैं ! “जैसा प्रेतनाथ वैसा भूतनाथ” ।
 वाममार्गी मन्त्रोपदेशादि से उनका धन हरते हैं वैसे शैव भी “ओं
 शिवाय” इत्यादि पञ्चाक्षरादि मन्त्रों का उपदेश करते, रुद्राक्ष, भस्म
 धारण करते, मट्टी के और पापाणादि के लिङ्ग बनाकर पूजते हैं और हर
 व व और वकरे के शब्द के समान बड़ बड़ बड़ मुख से शब्द करते
 हैं । इसका कारण यह कहते हैं कि ताली बजाने और व वं शब्द बोलने
 के पार्वती प्रसन्न और महादेव अप्रसन्न होता है । क्योंकि जब भस्मासुर
 के भागे से महादेव भागे थे तब व व और ठठे की तालियां बजी थीं, और
 बजाने से पार्वती अप्रसन्न और महादेव प्रसन्न होते हैं क्योंकि पार्वती
 के पिता दक्ष प्रजापति का शिर काट आगी में डाल उसके घड़ पर वकरे
 के शिर लगा दिया था । उसी अनुकरण को वकरे के शब्द की तुल्य गाल
 मारा मानते हैं । शिवरात्री प्रदोष का व्रत करते हैं, इत्यादि से मुक्ति
 मानते हैं इसलिये जैसे वाममार्गी भ्रान्त हैं वैसे शैव भी । इन में विशेष
 का वनफटे, नाथ, गिरि, पुरी, घन, आरण्य, पर्वत और सागर तथा गृहस्थ
 की संव होते हैं । कोई कोई “दोनों घोड़ों पर चढ़ते हैं” अर्थात् वाम और
 दाहिने दोनों मतों को मानते हैं और कितने ही वैष्णव भी रहते हैं उनका—
 श्रन्तःशाक्ता वहिःशैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः ।

नानारूपधराः कौला विचरन्ति महीतले ॥

यह तन्त्र का श्लोक है । भीतर शाक्त अर्थात् वाममार्गी, बाहर शैव
 अर्थात् रुद्राक्ष, भस्म धारण करते हैं और सभा में वैष्णव, कहते हैं कि
 हम विष्णु के उपासक हैं, ऐसे नाना प्रकार के रूप धारण करके वाममार्गी
 लोग पृथिवी में विचरते हैं ।

६६—(प्रश्न) वैष्णव तो अच्छे हैं ?

(उत्तर) क्या धूल अच्छे हैं ? जैसे वे वैसे ये हैं । देख लो वैष्णवों
 की हंला, अपने को विष्णु का दास मानते हैं । उनमें से श्रीवैष्णव जो कि
 भक्त होते हैं वे अपने को सर्वोपरि मानते हैं, सो कुछ भी नहीं है !

(प्रश्न) क्यों ! सब कुछ नहीं ? सब कुछ है, देखो ! हलाट में तारा-
 ण के चरणारविन्द के सदृश तिलक और बीच में पीली रेखा श्री होती है,
 इसलिये हम वैष्णव कहाते हैं । एक नारायण की छोड़ दूसरे किसी को
 नहीं मानते । महादेव के लिङ्ग का दर्शन भी नहीं करते क्योंकि हमारे

बनिये ने कहा कि चाहे तुम हजार सुपारी ले लेना । परिकाल ने कहा
 हम अधमी नहीं है जो हम झूठ मूठ लें, हमको तो आधी चाहिये ।
 ने [जो] विचारा भोलाभाला था, लिख दिया । जब अपने देश
 पर जहाज आया और सुपारी उतारने की तैयारी हुई तब परि-
 काल ने कहा हमारी आधी सुपारी दे दो । बनिया वही आधी सुपारी देने
 । तब परिकाल झगड़ने लगा, मेरी तो जहाज में आधी सुपारी है,
 बाट लूंगा । राजपुरुषों तक झगड़ा गया । परिकाल ने बनिये का लेख
 लिखा कि इसने आधी सुपारी देनी लिखी है । बनिया बहुतसा कहता
 पानु उसने न माना, आधी सुपारी लेकर वैष्णवों के अर्पण करदी ।
 तो वैष्णव बड़े प्रसन्न हुए । अतक उस डाकू चोर परिकाल की मूर्ति
 में रखते हैं । यह कथा भक्तमाल में लिखी है । बुद्धिमान देखलें
 वैष्णव, उनके सेवक और नारायण तीनों चोरमण्डली हैं वा नहीं ?
 ममतान्तरों में कोई थोड़ा अच्छा भा होता है तथापि उस मत में
 कर सर्वथा अच्छा नहीं हो सकता । भव जैसा वैष्णवों में फूट दूट,
 मित्र मित्र तिलक कण्ठी धारण करते हैं, रामानन्दी बगल में, गोपीचन्दन बीच
 में, शार नीमावत दोनों पतली रेखा बीच में काला बिन्दु, माधव काली रेखा
 और गौड बगाली कटारी के तुल्य और रामप्रसादवाले दोनों चादला रेखा
 के बीच में एक सफेद गोल टीका इत्यादि इनका कथन विलक्षण २ है ।
 रामानन्दी नारायण के हृदय में लाल रेखा को लक्ष्मी का चिन्ह और गोसाईं
 बाबागण्धजी के हृदय में राधाजी विराजमान हैं, इत्यादि कथन करते हैं ।
 एक कथा भक्तमाल में लिखी है । कोई एक मनुष्य वृक्ष के नीचे
 सोता था । सोता २ ही मर गया । ऊपर से काक ने बिछा करदी । घर
 छ्वाट पर तिलकाकार होगई थी । यहा यम के दूत उसको लेने आये ।
 इनमें में विष्णु के दूत भी पहुंच गये । दोनों विवाद करते थे कि घर
 हमारे स्वामी की आज्ञा है, हम यमलोक में ले जायेंगे । विष्णु के दूतों ने
 कहा कि हमारे स्वामी की आज्ञा है वैकुण्ठ में ले जाने की । देखो इससे
 छ्वाट में वैष्णव का तिलक है । तुम कैसे ले जाओगे । तब तो यम के दूत
 चुप होकर चले गये । विष्णु के दूत सुख से उसको वैकुण्ठ में ले गये ।
 नारायण ने उसको वैकुण्ठ में रखा । देखो जब अबस्मात् तिलक बनजाने
 का ऐसा माहात्म्य है तो जो अपनी प्रीति और हाथ से तिलक करते हैं
 वे बरक से दूट वैकुण्ठ में जावें तो इसमें क्या आश्चर्य है !! हम

कि जब टोट में तिलक के करने से वैकुण्ठ में जावें तो सब मुख के ऊपर लेपन करने वा काला मुख करने वा शरीर पर लेपन करने से वैकुण्ठ से भी आगे सिधार जान ३ वा नहीं ? उसमें ये बातें सब व्यर्थ हैं । अब इनमें बहुत से खाखी लकड़े का लहारा लगा, धूनी तापते, जटा बढ़ाते, मिट्टी का त्रेण कर लेते हैं ? बगुले के समान ध्यानावस्थित होते हैं, गांजा, माग, चरस के दम लगाने, लाल नत्र कर रखते, सब से चुटकी २ अन्न, पित्तान, कौड़ो, पैसे मागते गृहस्थों के लड़कों को बहका कर चेले बना लेते हैं । बहुत करके मजूर लोग उनमें होते हैं । कोई विद्या को पढ़ता हो तो उसको पढ़ने नहीं देने किन्तु कहते हैं कि—

पठितव्य नदपि मत्तव्य दन्तकटाकटेति किं कर्त्तव्यम् ।

सन्तों को विद्या पढ़ने से क्या काम, क्योंकि विद्या पढ़ने वाले भी मर जाते हैं फिर दन्त कटाकट क्यों करना ? साधुओं को चार धाम फिर आना, सन्तों का सेवा करना रामजी का भजन करना ।

७०— जो किसान ने मूत्र भविद्या की मूर्ति न देखी हो तो खाखीजी का दर्शन कर आवे । उनके पास जो कोई जाता है उनको ब्या बही कहते हैं, चाह वे खाखीजी के बाप मा के समान क्यों न हों ? जैसे खाखीजी है वैसे ही खूबड, मूखड, गोदडिये और जमातवाले सुतरेसाई और अकाली, कनफटे, जोगी, औघड आदि सब एक से हैं । एक खाखी का चेला “श्रीगणेशाय नमः” घोषता घोषता कुड़े पर जल भरने को गया । वहा पण्डित बैठा था, वह उसको ‘स्त्रीगनेसाजनमें’ घोखते देगकर बोला, अरे साधू ! असुद्ध घोषता है, “श्रीगणेशाय नमः” ऐसा घोख । उसने झट लोटा भर गुरुजी के पास जा कहा कि एक बम्भन मेरे घोखने को असुद्ध कहता है । ऐसा सुनकर झट खाखीजी उठा, कूप पर गया और पण्डित से कहा, तू मेरे चेले को बहकाता है ? तू गुरु की लण्डी क्या पढ़ा है ? देख तू एक प्रकार का पाठ जानता है, हम तीन प्रकार का जानते हैं । “स्त्रीगनेसाजनमें” “स्त्रीगनेसायलमें” “स्त्रीगनेसायनमें”

(पण्डित) सुनो साधूजी ! विद्या की बात बहुत कठिन है, जिना पड़े नहीं आती ।

(खाखी) चल ये, सब विद्वान् को हमने रगड़ मारे जो भाग में घोट एक दम सब उड़ा दिये । सन्तों का घर बड़ा है । तू बावूड़ा क्या जान ।

(पण्डित) देखो जो तुम ने विद्या पढ़ी होती तो ऐसे अपमान

को कभी हो सकनी है ? राखी रात दिन लपट, छाने [जगली] जगती करते हैं। एक महीने में कई रुपये की लपटी फूट देते हैं। वो एक महीने की लपटी के मूल्य से खम्बलादि घस लेते तो शतांश के आनन्द में रहें। उनको इतनी बुद्धि कहा में आवे ? और कदा नाम उसी धून में तपने ही में तपस्वी धर रखा है। जो इस तपस्वी हो सकें तो जगली मनुष्य इनसे भी अधिक तपस्वी हो जायें। जो जगती बढाने, राख लगाने, निलक करने से तपस्वी हो जाय तो सब कर सके। ये ऊपर के त्यागस्वरूप और भीतर से महासमर्पण होते हैं ॥

७१—(प्रश्न) कबीरपन्थी तो अच्छे हैं ? (उत्तर) नहीं ।

(प्रश्न) क्यों अच्छे नहीं ? पापाणादि मूर्तिपूजा का खण्डन करते हैं, और साहब फूलों से उत्पन्न हुए और अन्त में भी फूल हो गये। प्रह्लाद, कृष्ण, महादेव का जन्म जब नहीं था तब भी कबीर साहब थे। बड़े सिद्ध, वे कि जिस यात को वेद पुराण भी नहीं जान सकता उसको कबीर जानते हैं। सच्चा रास्ता है सो कबीर ही ने दिखलाया है। इनका मन्त्र "नमो नमो कबीर" आदि है।

(उत्तर) पापाणादि वो छोड़ पलज, गद्दी, तबिए, खडाऊ, ज्योति आदि दीप आदि का पूजना पापाणमूर्ति से न्यून नहीं। क्या कबीर भुलुगा था वा कलियां थीं जो फूलों से उत्पन्न हुआ और अन्त में फूल हो गया ? यहा जो यह यात सुनी जाती है वह सच्ची होगी कि जुलाहा काशी में रहता था। उसके लडके बालक नहीं थे। एक समय की सी रात्रि थी। एक गली में चला जाता था तो देखा सड़क के किनारे में एक टोकनी में फूलों के बीच में उसी रात का जन्मा बालक पड़ा। वह उसको उठा ले गया, अपनी खी को दिया, उसने पालन किया। वह बड़ा हुआ तब जुलाहे का काम करता था, किसी पण्डित के पास गुरु पढ़ने के लिये गया उसने उसका भ्रमण किया। कहा, कि हम तुम्हें को नहीं पढ़ाते। इसी प्रकार कई पण्डितों के पास फिरा परन्तु किसी ने न पढ़ाया। तब उटपटाग भाषा बना कर जुलाहे आदि नीच लोगों को समझाने लगा। तबूरे लेकर गाता था, भजन बनाता था। विशेषकर शायर, वेदों की निन्दा किया करता था। कुछ गुरु लोग उसको देखे में फँस गये। जब मर गया तब लोगों ने उसे सिद्ध बना लिया। उसने जीते जी बनाया था उसको उसको चले पढ़ते रहे। बान धो

अपने कहीं २ वेदों के विरुद्ध बोलते थे और कहीं २ वेद के लिये भट्ठा भी कहा
 जाँकि जो कहीं भट्ठा न कहते तो लोग उनको नास्तिक बनाते, जैसे—
 वेद पढत ब्रह्मा मरे चारों वेद कहानि ।
 सन्त (साध) कि महिमा वेद न जाने ॥

[सुखमनी पौड़ी ७ । चो० ८]

नक ब्रह्महानी आप परमेश्वर ॥ सु० पौ० ८ । चो० ६ ॥
 क्या वेद पढनेवाले मर गये और नानकजी आदि अपने को भ्रमर
 मरते थे ! क्या वे नहीं मर गये । वेद तो सब विद्याओं का भंडार है,
 परन्तु जो चारों वेदों को कहानी कहे उसकी सब बातें कहानी हैं । जो
 वेदों का नाम सन्त होता है वे विचारे वेदों की महिमा कभी नहीं जान
 सकते ? जो नानकजी वेदों ही का मान करते तो उनका सम्प्रदाय न
 बनना, न वे गुरु बन सकते थे क्योंकि संस्कृत विद्या तो पढे ही नहीं थे
 तो दूसरे को पढ़ाकर शिष्य कैसे बना सकते थे ? यह सच है कि जिस
 समय नानकजी पंजाब में हुए थे उस समय पंजाब संस्कृतविद्या से
 सर्वथा रहित, मुसलमानों से पीडित था । उस समय उन्होंने कुछ लोगो
 को बचाया । नानकजी के सामने कुछ उनका सम्प्रदाय वा बहुत से शिष्य
 गेही हुए थे, क्योंकि अविद्वानों में यह चाल है कि मरे पीछे उनको सिद्ध
 बना लेते हैं । पश्चात् बहुत सा माहात्म्य करके ईश्वर के समान मान लेते
 हैं । हा ! नानकजी बड़े धनाढ्य और रईस नहीं थे परन्तु उनके चेलों
 ने “नानकचन्द्रोदय” और “जन्मशाखी” आदि में बड़े सिद्ध और बड़े बड़े
 ऐश्वर्यवाले थे, लिखा है । नानकजी ब्रह्मा आदि से मिले, बड़ी यातचीत
 की, सब ने इनका मान्य किया, नानकजी के विद्यार में बहुत से घोड़े, रथ,
 हाथी, सोने, चांदी, मोती, पन्ना आदि रत्नो से जडे हुए और अमूल्य रत्नों का
 पारावार न था, लिखा है । भला ये गपोडे नहीं तो क्या हैं ? इसमें इनके
 चेलों का दोष है, नानकजी का नहीं । दूसरा जो उनके पीछे उनके लटके
 से उदासी चले और रामदास आदि से निर्मले । कितने ही गरीबालों ने
 भाषा बनाकर ग्रन्थ में रक्खी है अर्थात् इनका गुरु गोविन्दसिंहजी दरमा
 हुआ । उनके पीछे उस ग्रन्थ में किसी भी भाषा नहीं मिलाई गई किन्तु
 बहा तक के जितने छोटे छोटे पुस्तक थे उन सबको हड़ते बरके जित्त बधवा
 दी । इन लोगों ने भी नानकजी के पीछे बहुत सी भाषा बनाई । बिननों
 ही ने नाना प्रकार की पुराणों की मिथ्या बधा के तुल्य बना दिये परन्तु

मूढ क जो शब्द सुना जाना है उसको अनहत शब्द सिद्धान्त ठहराया। मन का वृत्ति को "मुरनि" कहते हैं। उसको उस शब्द सुनने में लगाना उसी को मन्त्र और परमेश्वर का यान बनलाने है। वहा काल नहीं पहुँचता। ब्रह्म क समान तिलक और चन्दनादि लकड़े की कड़ी बांधते हैं। भला विचार [क] देना कि उसमें आत्मा की उत्पत्ति और ज्ञान क्या बढ़ सकता है। यह कपल पट्टो क खेल क समान लीला है।

७२—(प्रश्न) पचाव दश में नानकजीने एक मार्ग चलाया है क्योंकि वह भी मूर्ति का खण्डन करन थे, मुसलमान होने से बचाये, वे साधु भी नहीं हुए किन्तु गृहस्थ बने रह। देवो उन्हाने यह मन्त्र उपदेश किया है, इसीमें विदित होता है कि उनका आशय अच्छा था—

ओ सन्ध्यानाम कर्त्ता पुरुष निर्भा निर्बर अकालमूर्ते अजोनि सहभ गुरुप्रसाद जप आदि सच जुगादि सच है भी सब नानक होसी भी सच ॥ [जपना पाडा]

ओ३म' निमका सन्ध्यानाम है वह कर्त्ता पुरुष भय और वैर रहित, अकाल मूर्ति जो काल में और जोनि में नहीं आता प्रकाशमान है, उसी का जप गुरु का रूप स कर वह परमात्मा आदि में सच था, जुगों की आदि में सच उत्तमान में सच और हागा भा सच।

(उत्तर) नानकजी का आशय ना अच्छा था परन्तु विद्याकुठ भी नहीं थी। हा भाषा उस देश का तो क प्रामा का है उसे जानत थे। वेदादि शास्त्र और संस्कृत कुछ भा नहीं जानत थे। जो जानते होते तो "निर्भय" शब्द को "निर्भा" क्या रखत और उसका अर्थान्त उनका बनाया संस्कृती स्तोत्र है। चाहते थे कि मैं संस्कृत में भाषा अडाऊ, परन्तु बिना पढ़े संस्कृत कैसे आ सकता है। हा उन प्रामाणा क सामने कि जिन्होंने संस्कृत कभी सुना भा ना था संस्कृत बनाकर संस्कृत के भी पंडित बन गये होंगे। भला यह बात अपने मान प्रतिष्ठा और अपनी प्रशस्ति की इच्छा के बिना कभी न करत उनका अपना प्राणश का इच्छा अवश्य थी, नहीं तो जैसी भाषा जानत है कहत रहत और यह भी कह देते कि मैं संस्कृत नहीं पढ़ा। जब कुछ अभिमान था तो मान प्रतिष्ठा के लिये कुछ दंभ भी किया होगा। इसलिये उनक प्रन्थ में जहा तथा वेदों की निन्दा और स्तुति भी है क्योंकि जो ऐसा न करते तो उनसे भी कोई वेद का अर्थ पूछता, जब न आता तब प्रतिष्ठा नष्ट होती इसलिये पहले ही अपने दिव्यों

क्योंकि कहीं २ वेदों के विरुद्ध बोलते थे और कहीं २ वेद के लिये अन्धा भी कह
 (क्योंकि जो कहीं अच्छा न कहते तो लोग उनको नास्तिक बनाते, जैसे—
 वेद पढ़त ब्रह्मा मरे चारों वेद कहानि ।
 सन्त [साध) कि महिमा वेद न जाने ॥

[सुखमनी पौड़ी ७ । चो० ८]

नानक ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर ॥ सु० पौ० ८ । चो० ६ ॥

क्या वेद पढ़नेवाले मर गये और नानकजी आदि अपने को अमर
 समझते थे ! क्या वे नहीं मर गये ! वेद तो सब विद्याओं का भंडार है,
 जहाँ जो चारों वेदों की कहानी कहे उसकी सब बातें कहानी हैं । जो
 कबी का नाम सन्त होता है वे विचारे वेदों की महिमा कभी नहीं जान
 सके ? जो नानकजी वेदों ही का मान करते तो उनका सम्प्रदाय न
 ख़त्म, न वे गुरु बन सकते थे क्योंकि संस्कृत विद्या तो पढ़े ही नहीं थे
 ने दूसरे की पढ़ाकर शिष्य कैसे बना सकते थे ? यह सच है कि जिस
 समय नानकजी पंजाब में हुए थे उस समय पंजाब संस्कृतविद्या से
 वर्ध्या रहित, मुसलमानों से पीड़ित था । उस समय उन्होंने कुछ लोगों
 को बचाया । नानकजी के सामने कुछ उनका सम्प्रदाय था बहुत से शिष्य
 नहीं हुए थे, क्योंकि अविद्वानों में यह चाल है कि मरे पीछे उनको सिद्ध
 कहा लेते हैं । पश्चात् बहुत सा माहात्म्य करके ईश्वर के समान मान लेते
 हैं । हा ! नानकजी बड़े धनाढ्य और रईस नहीं थे परन्तु उनके चेलों
 ने "नानकचन्द्रोदय" और "जन्मशास्त्री" आदि में बड़े सिद्ध और बड़े बड़े
 पंथवाले थे, लिखा है । नानकजी ब्रह्मा आदि से मिले, बड़ी घातचीत
 को, सब ने इनका मान्य किया, नानकजी के विवाह में बहुत से घोड़े, रथ,
 हाथी, सोने, चांदी, मोती, पद्मा आदि रत्नों से जड़े हुए और अमूल्य रत्नों का
 पारावार न था, लिखा है । भला ये गपोडे नहीं तो क्या हैं ? इसमें इनके
 चेलों का दोष है, नानकजी का नहीं । दूसरा जो उनके पीछे उनके लटके
 से उदासी चले और रामदास आदि से निर्मले । कितने ही गरीबों ने
 भाषा बनाकर ग्रन्थ में रक्की है अर्थात् इनका गुरु गोविन्दसिंहजी पशमा
 हुआ । उनके पीछे उस ग्रन्थ में किसी भी भाषा नहीं मिलाने गई बिन्तु
 बराबर के जितने छोटे छोटे पुस्तक थे उन सबको हड़ हड़करके जितने बंधन
 दी । इन लोगों ने मी नानकजी के पीछे बहुत सी भाषा बनाई । बिन्तु
 ही ने माना प्रचार भी पुराणों की निष्ठा तथा वे कृत्य बना दिये परन्तु

मूढ के जो शब्द सुना जाता है उसको अनहत शब्द सिद्धान्त ठहराया। मन का वृत्ति का 'सुरति' कहने हैं। उसको उस शब्द सुनने में लगाना, उसी का मन्त और परमेश्वर का यान बनलाने है। वहा काल नहीं पहुँचना। बर्तन के समान तिलक और चन्दनादि लकड़े की कड़ी बांधते हैं। भला विचार [क] देखा कि उसमें आत्मा की उन्नति और ज्ञान क्या बढ़ सकता है। यह स्वयं उसका क खेल क समान लीला है।

७२—(प्रश्न) पचात्र दश में नानकजीन एक मार्ग चलाया है क्योंकि वह भा मूर्ति का पण्डित बन गये, मुसलमान होने से बचाये, वे साधु भी नहीं हुए किन्तु गृहस्थ बन गये। देखा उन्होंने यह मन्त्र उपदेश किया है, इसीसे विदित होता है कि उनका आशय अच्छा था —

श्री सन्त्यनाम कर्त्ता पुरुष निर्भा निर्बर अकालमूते अजोनि सहभ गुरुप्रसाद जप आदि सच जुगादि सच है भी सच नानक होसी भी सच ॥ [तपजा पाडा ।]

'आरम्भ' जिसका सन्त्य नाम है वह कर्त्ता पुरुष भय और धैर रहित, अकाल मूर्ति वा काल में और ज्ञान में नहीं आता, प्रकाशमान है, उसी का जप गुरु की स्तुति से कर वह परमात्मा आदि में सच था, जुगों की आदि में सच, वर्तमान में सच और आगे भी सच।

(उत्तर) नानकजी का आशय तो अच्छा था, परन्तु विद्या कुछ भी नहीं थी। हा भाषा उस देश की थी कि ग्रामा भा है उसे जानने थे। वेदादि शास्त्र और संस्कृत कुछ भा नही जानते थे। जो जानने होते तो "निर्भय" शब्द का "निर्भा" क्या आयेगा और उसका अर्थान्त उनका बनाया संस्कृती स्तोत्र है। चाहते थे कि मैं संस्कृत में भाषा अडाऊ, परन्तु बिना पढ़े संस्कृत कैसे आ सकता है। तो उन प्रामाण्या क सामने कि जिन्होंने संस्कृत कभी सुना भी नहीं था संस्कृत बनाकर संस्कृत के भी पठित बन गये होंगे। भला यह बात अपने मान प्रतिष्ठा और अपनी प्रशस्ति की इच्छा के बिना कभी न करे। उनका अपना प्रतिष्ठा की इच्छा अग्रद्वय थी, नहीं तो जैसा भाषा जाना। कहते रहते और यह भी कह देते कि मैं संस्कृत नहीं पढ़ा। जब कुछ अभिमान था तो मान प्रतिष्ठा के लिये कुछ ठंभ भी किया होगा। इसलिए उनका ग्रन्थ में जहाँ जहाँ घेदों की निन्दा और स्तुति भी है क्योंकि जो ऐसा न करने तो उनसे भी कोई वेद का अर्थ पूछता, जब न आता तब प्रतिष्ठा नष्ट होती इसलिए पहले ही अपने दिव्या

को सुनने और देखने में आवें तो बुद्धिमान् लोग जो कि हठी दुराग्रही नहीं हैं वे सब सम्प्रदाय वाले वेदमत में आजाते हैं। परन्तु इन सब ने भोजन का केश बहुतसा हटा दिया है, जैसे इसको हटाया वैसे विषयासक्ति, दुरभिवन को भी हटाकर वेदमत की उन्नति करें तो अच्छी बात है।

७२—(प्रश्न) दादूपंथी का मार्ग तो अच्छा है !

(उत्तर) अच्छा तो वेदमार्ग है जो पकड़ा जाय तो पकड़ो नहीं तो षड गोता खाते रहोगे ।

इनके मत में दादूजी का जन्म गुजरात में हुआ था । पुनः जयपुर के पास 'आमेर' में रहते थे, तेली का काम करते थे । ईश्वर की सृष्टि की वीक्षण लीला है कि दादूजी भी पुजाने लग गये । अत्र वेदादि शास्त्रों की सब बातें छोड़कर 'दादूराम दादूराम' में ही मुक्ति मानली है । जब सत्योपनिषद् नहीं होता तब ऐसे २ ही बखेड़े चला करते हैं ।

७४—थोड़े दिन हुए कि एक "रामस्नेही" मत शाहपुरा से चला है । यहाँ सब वेदोक्त धर्म की छोड़ के "राम राम" पुकारना अच्छा माना है । सभी में ज्ञान, ध्यान, मुक्ति मानते हैं । परन्तु जब भूख लगती है तब "रामनाम" में से रोटी शाक नहीं निकलता, क्योंकि खानपान आदि तो इन्हीं के घर ही में मिलते हैं । वे भी मूत्तपूजा को धिक्कारते हैं, परन्तु अपने स्वयंमूर्ति बन रहे हैं । स्त्रियों के संग में बहुत रहते हैं क्योंकि रामजी "रामकी" के बिना आनन्द ही नहीं मिल सकता ।

अब थोड़ा सा विशेष रामस्नेही के मत विषय में लिखते हैं —

एक रामचरण नामक साधु हुआ है, जिसका मत मुख्य कर "शाहनामा" स्थान मेवाड़ से चला है । वे "राम राम" कहने ही को परम मंत्र और ईश्वरी को सिद्धान्त मानते हैं । उनका एक ग्रन्थ कि जिसमें सन्तशसजी की की चाणी हैं, ऐसा लिखते हैं —

उनका वचन ॥

राम रोग तब ही मिट्या, रट्या निरञ्जन राह ।

जन्म का कागज फट्या, कट्या फर्म तब जाह ॥ स्याही ॥६॥

अब बुद्धिमान् लोग विचारें कि "राम राम" करने से धर्म जो कि न अथवा किये हुए धर्म कभी पापों में पाताना और

देना

सुनने और देखने में आवें तो बुद्धिमान् लोग जो कि हठी दुराग्रही नहीं हैं वे सब सग्रहाय चाले वेदमत में आजाते हैं। परन्तु इन सब ने भोजन का कोई बहुतसा हटा दिया है, जैसे इसको हटाया वैसे विषयासक्ति, दुरभिमन को भी हटाकर वेदमत की उन्नति करें तो अच्छी बात है।

७२—(प्रश्न) दादूपथी का मार्ग तो अच्छा है !

(उत्तर) अच्छा तो वेदमार्ग है जो पकड़ा जाय तो पकड़ो नहीं तो रागोता खाते रहोगे ।

इनके मत में दादूजी का जन्म गुजरात में हुआ था । पुनः जयपुर शास 'आमेर' में रहते थे, तेली का काम करते थे । ईश्वर की सृष्टि की निरूपण लीला है कि दादूजी भी पुजाने लग गये । अब वेदादि शास्त्रों की सब बातें छोड़कर 'दादूराम दादूराम' में ही मुक्ति मानने ली है । जब सत्योपदेशक नहीं होता तब ऐसे २ ही बखेड़े चला करते हैं ।

७४—थोड़े दिन हुए कि एक "रामस्नेही" मत शाहपुरा से चला है । उन्होंने सब वेदोक्त धर्म को छोड़ के "राम राम" पुकारना अच्छा माना है । इसमें ज्ञान, ध्यान, मुक्ति मानते हैं । परन्तु जब भूख लगती है तब "रामनाम" में से रोटी शाक नहीं निकलता, क्योंकि खानपान आदि तो श्रेष्ठों के घर ही में मिलते हैं । वे भी मूलपूजा को धिक्कारते हैं, परन्तु आप स्वयंमूर्ति बन रहे हैं । स्त्रियों के संग में घटुत रहते हैं क्योंकि रामजी में "रामकी" के बिना आनन्द ही नहीं मिल सकता ।

अब थोड़ा सा विशेष रामस्नेही के मत विषय में लिखते हैं—

एक रामचरण नामक साधु हुआ है, जिसका मत मुख्य कर "शाहपुरा" स्थान मेवाड से चला है । वे "रामराम" कहने ही को परम मंत्र और ईश्वी की सिद्धान्त मानते हैं । उनका एक ग्रन्थ कि जिसमें सन्तशसजी आदि की घाणी हैं, ऐसा लिखते हैं—

उनका वचन ॥

भरम रोग तब ही मिट्या, रट्या निरञ्जन राह ।

तब जम का कागज फट्या, फट्या कर्म तब जाह ॥ सारणी ॥६॥

अब बुद्धिमान् लोग विचार दें कि "राम राम" करने से भ्रम जो कि ज्ञान है या यमराज का पागलपन साधन अथवा विये हुए बर्म वभी हट सकने हैं या नहीं ? यह बंगल मनुष्यों को पापों में फंसाना और नुप्य जन्म को नष्ट कर देना है ॥

मुने और देवने में भावें तो बुद्धिमान् लोग जो कि हठी दुराग्रही नहीं हैं वे सब सम्प्रदाय वाले वेदमत में आजाते हैं। परन्तु इन सब ने भोजन का बहुतसा हटा दिया है, जैसे इसको हटाया वैसे विषयासक्ति, दुरभि-
का को भी हटाकर वेदमत की उन्नति करें तो अच्छी बात है।

४२—(ग्रन्थ) दादूपंथी का मार्ग तो अच्छा है !
(उत्तर) अच्छा तो वेदमार्ग है जो पकड़ा जाय तो पकड़ो नहीं तो छोड़ो तो छोड़ो ।

इनके मत में दादूजी का जन्म गुजरात में हुआ था। पुन. जयपुर में शास 'आमेर' में रहते थे, तेली का काम करते थे। ईश्वर की सृष्टि की प्रशंसा सोला है कि दादूजी भी पुजाने लग गये। अब वेदादि शास्त्रों की बातें छोड़कर 'दादूराम दादूराम' में ही मुक्ति माने ली है। जब सत्योप-
नहीं होता तब ऐसे २ ही बखेडे चला करते हैं।

४३—थोड़े दिन हुए कि एक "रामस्नेही" मत शाहपुरा से चला है।
जो सब वेदोक्त धर्म को छोड़ के "राम राम" पुकारना अच्छा माना है।
में जान, ध्यान, मुक्ति मानते हैं। परन्तु जब भूख लगती है तब
"रामराम" में से रोटी शाक नहीं निकलता, क्योंकि खानपान आदि तो
जो के घर ही में मिलते हैं। वे भी मूत्तपूजा को धिक्कारते हैं, परन्तु
व्ययमूर्ति बन रहे हैं। स्त्रियों के संग में बहुत रहते हैं क्योंकि रामजी
"रामजी" के बिना आनन्द ही नहीं मिल सकता।

अब थोड़ा सा विशेष रामस्नेही के मत विषय में लिखते हैं—
एक रामचरण नामक साधु हुआ है, जिसका मत मुख्य कर "शाह
स्थान मेवाड़ से चला है। वे "राम राम" कहने ही को परम मंत्र और
को सिद्धान्त मानते हैं। उनका एक ग्रन्थ कि जिसमें सन्तशसजी
की वाणी हैं, ऐसा लिखते हैं—

उनका वचन ॥

रोग तब ही मिट्या, रट्या निरञ्जन राह ।
म का कागज फट्या, कट्या कर्म तब जाह ॥ सारंगी ॥६॥
बुद्धिमान् लोग विचार लेंगे कि "राम राम" बरने से भ्रम जो कि
या यमराज का पागनुकूल शासन अथवा बिये हुए बर्म सभी
ते हैं या नहीं ? यह बेबल मनुष्यों को पापों में फँसाना और
जन्म को नष्ट कर देना है ॥

‘गुने और देसने में आवें तो बुद्धिमान् लोग जो कि हठी दुराग्रही नहीं हैं सब सम्प्रदाय वाले वेदमत में आजाते हैं। परन्तु इन सब ने भोजन का बड़ा बहुतसा हटा दिया है, जैसे इसको हटाया वैसे विषयासक्ति, दुरभिनय भी हटाकर वेदमत की उन्नति करें तो अच्छी बात है।

७३—(प्रश्न) दादूपथी का मार्ग तो अच्छा है !
(उत्तर) अच्छा तो वेदमार्ग है जो पकड़ा जाय तो पकड़ो नहीं तो दशा गोना खाते रहोगे।

इनके मत में दादूजी का जन्म गुजरात में हुआ था। पुन. जयपुर के पास ‘आमेर’ में रहते थे, तेली का काम करते थे। ईश्वर की सृष्टि की निम्न लीला है कि दादूजी भी पुजाने लग गये। अब वेदादि शास्त्रों की सरवाँटें छोटकर ‘दादूराम दादूराम’ में ही मुक्ति मानेली है। जब सत्योपनिषद् नहीं होता तब ऐसे २ ही वखेड़े चला करते हैं।

७४—थोड़े दिन हुए कि एक “रामस्नेही” मत शाहपुरा से चला है। इनसे सब वेदोक्त धर्म की छोड़ के “राम राम” पुकारना अच्छा माना है। जो में ज्ञान, ध्यान, मुक्ति मानते हैं। परन्तु जब भूख लगती है तब “रामनाम” ने से रोटी शाक नहीं निकलता, क्योंकि खानपान आदि तो स्वयं के घर ही में मिलते हैं। वे भी भूखपूजा को धिक्कारते हैं, परन्तु स्वयंभूति बन रहे हैं। स्त्रियों के संग में बहुत रहते हैं क्योंकि रामजी “रामकी” के बिना आनन्द ही नहीं मिल सकता।

अब थोड़ा सा विशेष रामस्नेही के मत विषय में लिखते हैं—
एक रामचरण नामक साधु हुआ है, जिसका मत मुख्य कर “शाह स्नान मेवाड़ से चला है। वे “रामराम” कहने ही को परम मंत्र और ही सिद्धान्त मानते हैं। उनका एक ग्रन्थ कि जिसमें सन्तशतजी की वाणी हैं, ऐसा लिखते हैं—

उनका वचन ॥

रोग तब ही मिट्या, रट्या निरञ्जन राइ।

जन्म का कागज फट्या, कट्या कर्म तब जाइ ॥ साखी ॥६॥

नय बुद्धिमान् लोग विचार लेवें कि “रामराम” करने से भ्रम जो कि है या यमराज का पागनुकूल शासन अथवा किये हुए कर्म सभी करते हैं या नहीं ? यह बेशक मनुष्यों को पापों में फँसाने और जन्म को नष्ट कर देना है ॥

ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर बन के उस पर कर्मोपासना छोड़कर इनके झुकने आये, इसने बहुत बिगाड़ कर दिया, नहीं जो नानकजी ने कुछ भक्ति विशेष इश्वर की लीपा थी उसे करते आते तो अच्छा था। अब उदासी रहने है हम बड़े, निमले कहते हैं हम बड़े, अकालिये तथा मृत रहशाई कहते हैं कि सर्वापरि हम हैं। इनमें गोविन्दसिंहजी शूरवीर हुए जो मुसलमानों ने उन के पुण्याओं को बहुतसा दुःख दिया था, उनसे पैर लेना चाहते थे, परन्तु इनके पास कुछ सामग्री न थी और उधर मुसलमानों की यादशाही प्रज्वलित हो रही थी। इन्होंने एक पुरस्करण करवाया। प्रसिद्धि की कि मुसलमानों ने वर और खड्ग दिया है कि तुम मुसलमानों से लड़ा, तुम्हारा विजय होगा। बहुत से लोग उनके साथी हो गये और उन्होंने, जैसे वामभागियों ने 'पंच मकार', चक्राकितों ने "पञ्चसंस्कार" चलाये थे वैसे 'पंच ककार' अर्थात् इनके पंच ककार गुद् के उपयोगी थे। एक "केश" अर्थात् जिसके रखने से लड़ाई में लकड़ी और तलवार से कुछ बचाव हो। दूसरा "कण" जो शिर के ऊपर पगडो में अफाली लोग रखते हैं और हाथ में "कडा" जिसमें हाथ और शिर बच सकें। तीसरा "काष्ठ" अर्थात् जानू के ऊपर एक जाँघिया कि जो दोड़ने और दूड़ने में अच्छा होता है, बहुत काके अघाउमलु और नट भी इसको इसीलिये धारण करते हैं कि जिससे शरीर का मर्मस्थान बचा रहे और अटकाव न हो। चौथा "कगा" कि जिसमें केश सुधरते हैं। पाँचवा काचू [कद] कि जिसमें शत्रु से भेंट भट्ठा होने से लड़ाई में काम आये। इसीलिये यह रीति गोविन्दसिंहजी ने अपनी बुद्धिमत्ता से उस समय के लिये [की] थी, अब इस समय में उनका रखना कुछ उपयोगी नहीं है, परन्तु अब जो गुद् के प्रयोजन के लिये बातें कर्तव्य थी उनको धर्म के साथ मान ली हैं। मूर्ति-पूजा तो नहीं करत किन्तु उसमें विशेष ग्रन्थ की पूजा करत हैं। क्या यह मूर्तिपूजा नहीं है? किमा जट पदार्थ के सामने शिर झुकाना या उसकी पूजा करना मय मूर्तिपूजा है। जैसे मूर्तिपूजकों ने अपनी दुकान जमाकर जाविरा टाटा की है वैसे इन लोग ने भी करली है। वैसे पुजारी लोग मूर्ति का दर्शन कराने, भेंट चढ़वाने हैं वैसे नानकपन्थी लोग ग्रन्थ की पूजा करते कराने, भेंट भी चढ़वाते हैं। अर्थात् मूर्तिपूजा वाले जितना वेद का मान्य करते हैं उतना वे लोग ग्रन्थ मान्य वाले नहीं करते। हाँ यह कहा जा सकता है कि इन्होंने वेदों को न गुना, न देखा, क्या करें ?

क्यों मैं संन्यासी हो गया है। उसके माता पिता और स्त्री काशी में
 हुए जिसने उसको संन्यास दिया था उससे कहा कि हमारे पुत्र को
 काशी क्यों किया, देखो। इसकी यह पुत्र स्त्री है और स्त्री ने कहा
 यदि आप मेरे पति को मेरे साथ न कर तो मुझ को भी संन्यास दे
 दिये। तब तो उसको घुला के कहा कि तू बड़ा मिथ्यावादी है, संन्यास
 का प्रथम कर, क्योंकि तूने झूठ बोलकर संन्यास लिया। उसने पुः
 न्यास छोड़ उसके साथ हो लिया। देखो। इस मत
 को छोड़ कपट से चला। जब तैलङ्ग देश में गये, उसको जाति में
 स्त्री ने न लिया। तब वहाँ से निकल कर घूमने लगे "चरणार्णव" जो
 का के पास है उसके समीप "चंपारण्य" नामक जङ्गल में चले जाते थे।
 कोई एक लडके को जङ्गल में छोड़ चारों ओर दूर दूर भागी जलाकर
 गया था क्योंकि छोड़ने वाले ने यह समझा था कि जो आगी न जलाजंगा
 को भी कोई जीव मार डालेगा। लक्ष्मणभट और उसकी स्त्री ने लडके
 को लक्ष्मणभट पुत्र बना लिया। फिर काशी में जा रहे। जब वह लडका
 हुआ तब उसके मा बाप का शरीर छूट गया। काशी में बाल्यावस्था
 से पुरावस्था तक कुछ पढ़ता भी रहा, फिर और कहीं जा के एक विष्णु स्वामी
 मन्दिर में चेला हो गया। वहाँ से कभी कुछ खटपट होने से काशी को
 चला गया और संन्यास ले लिया। फिर कोई वैसा ही जातिबहिष्कृत
 काशी में रहता था। उसकी लडकी पुत्रती थी। उसने इससे कहा
 संन्यास छोड़ मेरी लडकी से विवाह करले। वैसा ही हुआ। जिसके
 पने जैसी लीला की थी वैसी पुत्र क्यों न करे? उस स्त्री को लेके वहीं
 गया कि जहाँ प्रथम विष्णुस्वामी के मन्दिर में चेला हुआ था। विवाह
 ने से उनको वहाँ से निकाल दिया। फिर प्रजदेश में कि जहाँ अधिष्ठा ने
 कर रक्खा है जाकर अपना प्रपंच अनेक प्रकार की छल युक्तियों से फैलाने
 और मिथ्या बातों की प्रसिद्धि करने लगा कि श्रीकृष्ण मुझको मिले
 कहा कि जो गोलोक से 'देवी जीव' मयलोक में आये हैं उनका दण्ड-
 न्व आदि से पवित्र करके गोलोक में भेजो। इत्यादि मूर्खों की प्रहोभन
 गतों सुना के थोड़े से लोगों को अर्थात् ८४ (चौरासी) वैष्णव बनाये
 निम्नलिखित मन्त्र बना लिए और उनमें भी भेद रक्खा, जैसे —
 शरण मम । श्रीं छण्णाय गोरीजनवल्लभाय स्वाहा ॥
 [गोपाहसारखानाम]

रोगों से पीड़ित रहता है वैसा ही गोलोक में भी होगा। छि! छि!!... ऐसे गोलोक से मर्त्यलोक ही विचारा भला है। देखो जैसे यहां अपने को श्रीकृष्ण मानते हैं और बहुत स्त्रियों के साथ लीला करने से मन्दर तथा प्रमेहादि रोगों से पीड़ित होकर महादुःख भोगते हैं। अब कहिये जिनका स्वरूप गोसाईं पीड़ित होता है तो गोलोक का स्वामी श्रीकृष्ण इन रोगों से पीड़ित क्यों न होगा? और जो नहीं है तो उनका स्वरूप पीड़ित क्यों होते हैं?

(प्रश्न) मर्त्यलोक में लीलावतार धारण करने से रोग दोष होता है गोलोक में नहीं क्योंकि वहां रोग दोष ही नहीं है।

(उत्तर) “भोगे रोगभयम्” [भर्तृ०] जहां भोग है वहां रोग अवश्य होता है। और श्रीकृष्ण के क्रोडान् क्रोड स्त्रियों से सन्तान होते हैं वा नहीं और जो होते हैं तो लड़के लड़के होते हैं वा लड़की लड़की, अथवा दोनों? जो कहो कि लड़कियां ही लड़कियां होती हैं तो उनका विवाह किनके होता होगा? क्योंकि वहां बिना श्रीकृष्ण के दूसरा कोई पुरुष नहीं, जो दूसरा है तो तुम्हारी प्रतिज्ञाहानि हुई। जो कहो लड़के ही लड़के होते हैं तो भी यही दोष आन पड़ेगा कि उनका विवाह कहां और किनके साथ होता है? अथवा घर घर के घर ही में गटपट कर लेते हैं अथवा अन्य किसी की लड़कियां वा लड़के हैं तो भी तुम्हारी प्रतिज्ञा “गोलोक में एक ही श्रीकृष्ण पुरुष” नष्ट हो जायगी। और जो कहो कि सन्तान होते ही नहीं तो श्रीकृष्ण में नपुमस्त्व और स्त्रियों में बन्ध्यापन दोष आवेगा। भगवद् यह गोकुल क्या हुआ? जानो दिल्ली के बादशाह की स्त्रियों की सेना हुई। अब जो गोसाईं लोग शिष्य और शिष्याओं का तन मन तथा धन अपने अपंग कर लेते हैं सो भी ठीक नहीं, क्योंकि तन तो विवाह समय में काँ और पति के समपंग हो जाता है, पुनः मन भी दूसरे के समपंग नहीं हो सकता, क्योंकि मन ही के साथ तन का भी समपंग करना बल सक्ता और जो करें तो व्यभिचारी कहावेंगे। अब रहा धन, उसकी भी यही सीख समझो अर्थात् मन के बिना कुछ भी अपंग नहीं हो सकता। इन गोसाईं का अभिप्राय यह है कि कमायें तो चेला और आनन्द करें हम। जितने बहुत सग्नदायी गोसाईं लोग हैं वे अब छों तैलपत्री जाति में नहीं और जो कोई इनको भूटे मटके लड़की देता है वह भी जातिबाह्य। अष्ट हो जाता है क्योंकि ये जाति से पत्नि किये गये और विवाहीन

प्रसाद में रहते हैं ।

८०— और देखिये ! जब कोई गोसाईंजी की पधरावनी करता है तब उसके घर पर जा चुपचाप काठ की पुतली के समान बैठा रहता है, न कुछ बोलता न चालता । विचारा बोले तो तब जो मूर्ख न होवे । मूर्खाणां बल भौतम्' क्योंकि मूर्खों का बल भौत है । जो बोले तो उसका पोल निकल आए, परन्तु स्त्रियों की ओर खूब ध्यान लगाकर ताकता रहता है और जिस की ओर गोसाईंजी देखें तो जानो बड़े ही भाग्य की बात है और उसका पति, भाई, बन्धु, माता, पिता, बड़े प्रसन्न होते हैं । वहां सब स्त्रियां गोसाईंजी के पग छूती हैं जिसपर गोसाईंजी का मन लगे वा कृपा हो उसकी झुरी पर से दवा देते हैं । वह स्त्री और उसके पति आदि अपना धन्य-भाग्य समझते हैं और उस स्त्री से उसके पति आदि सब कहते भी हैं कि तु गोसाईंजी की चरण सेवा में जा और जहां कहीं उसके पति आदि प्रसन्न नहीं होते वहां दूती और कुटनियों से काम सिद्ध करा लेते हैं । सच क्यों तो ऐसे काम करने वाले उनके मन्दिरों में और उनके समीप बहुतसे रह कर रहे हैं । अब इनकी दक्षिणा की लीला अर्थात् इस प्रकार मांगते हैं—लाओ भेट गोसाईंजी की, बहूजी की, लालजी की, बेटीजी की, सुखि-राजा की, बाहरियाजी की, गवैयाजी की और ठाकुरजी की । इन सात ठाकानों से यथेष्ट माल मारते हैं । जब कोई गोसाईंजी का सेवक मरने लगता है तब उसकी छाती में पग गोसाईंजी धरते हैं और जो कुछ मिलता है उसको गोसाईंजी गड़ब कर जाते हैं । क्या यह काम महाप्राप्ति और कटिया या मुर्दावली के समान नहीं है ? कोई कोई चेला विवाह में गोसाईंजी को बुलाकर उन्हीं से लडके लडकी का पणिग्रहण कराते हैं और कोई कोई सेवक जब केशरिया स्नान अर्थात् गोसाईंजी के शरीर पर स्त्री लोग बेशर का टबटना करके फिर एक बड़े पात्र में पटा रख के गोसाईंजी को स्त्री पुरप मिल के स्नान कराते हैं परन्तु विशेष स्त्रीजन स्नान कराती हैं । पुनः सब गोसाईंजी पीताम्बर पहिर और खज्ज पर चढ़ पाहर निकल आते हैं और धोती उसी में पटक देते हैं । फिर उस जल का आचमन उसके सेवक करते हैं और अच्छे मसाला धरके पान पीपी गोसाईंजी को देते हैं । वह चाब कर कुछ निगल जाते हैं, रोप एवं खादी के बत्तोर में जिसको इनका सेवक मुख के आगे धर देता है, उसमें पीब डगल देते हैं । उसकी भी प्रसादी बटती है, जिसको 'खास' प्रसादी बरते हैं । अब विचारिये कि

शुक्र बार पीडी का वृषा ९० वर्ष का दीवान था। उसको जाकर उसके
कमरे में, जो कि उस समय दीवान था, वह बात सुनाई। तब उस
ने कहा कि वे धूर्त हैं। तू मुझ को राजा के पास ले चल, वह ले गया।
उस समय राजा ने बड़े हर्षित होके उन नाककटों की बातें सुनाई।
राजा ने कहा कि सुनिये महाराज ! ऐसे शीघ्रता न करनी चाहिये, बिना
परीक्षा किये पश्चात्ताप होता है।

(राजा) क्या ये सहस्र पुरुष झूठ बोलते होंगे ?

(दीवान) झूठ बोलो वा सच, बिना परीक्षा के सच झूठ कैसे कह
सकते हैं ?

(राजा) परीक्षा किस प्रकार करनी चाहिये ?

(दीवान) विद्या, सृष्टिक्रम, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से।

(राजा) जो पढ़ा न हो वह परीक्षा कैसे करे ?

(दीवान) विद्वानों के संग से ज्ञान की वृद्धि करके।

(राजा) जो विद्वान न मिले तो ?

(दीवान) पुरुषार्थी को कोई बात दुर्लभ नहीं है।

(राजा) तो आप ही कहिये कैसा किया जाय ?

(दीवान) मैं बुढ़ा और घर में बैठा रहता हूँ और अब थोड़े दिन
जिगा भी। इसलिये प्रथम परीक्षा मैं लेऊ, तत्पश्चात् जैसा उचित
मैं वैसा कीजियेगा।

(राजा) बहुत अच्छी बात है। ज्योतिषीजी दीवानजी के लिये
वर्त देवो।

(ज्योतिषी) जो महाराज की आज्ञा। यही शुक्र पंचमी १० बजे
मुहूर्त अच्छा है।

जब पंचमी आई तब राजाजी के पास आठ बजे छुट्टे दीवानजी ने
राजाजी से कहा कि सहस्र दो सहस्र सेना लेके चलना चाहिये।

(राजा) चला सेना का क्या काम है ?

(दीवान) आपको राज्यव्यवस्था की खबर नहीं है। ऐसा मैं
ता हूँ वैसा कीजिये।

(राजा) अग्रा जाओ भाई सेना की तैयार करो।

साढ़े नौ बजे सजारी घर में राजा सब की खबर गया। इनको देख
वे नाचने और गाने लगे। जाबर दंडे। उनके मरन्त जितने घर

सम्प्रदाय चलाया था जिसकी प्रथम नाक कटी थी उसकी घुटाकर कहा कि आज हमारे दीवानजी को नारायण का दर्शन कराओ। उसने कहा अच्छा, दश बजे का समय जब आया तब एक थाली मनुष्य ने नाक के नीचे पकड़ रखी। उसने पैना चक्कू ले नाक काट थाली में डाल दी और दीवानजी का नाक से रुधिर की धार छूटने लगी। दीवानजी का मुख मलिन पड़ गया। फिर उस धूर्त ने दीवानजी के कान में मन्त्रोपदेश किया कि आप भी हँसकर सब से कहिये कि मुझको नारायण दीव्यता है। अब नाक कटी हुई नहीं आवेगी। जो ऐसा न कहोगे तो तुम्हारा बड़ा ठट्टा होगा, सब लोग हँसी करेंगे। वह इतना कह भला हुआ और दीवानजी ने अंगोछा हाथ में ले नाक की आड़ में लगा दिया। जब दीवानजी से राजा ने पूछा कहिये नारायण दीव्यता वा नहीं? दीवानजी ने राजा के कान में कहा कि कुछ भी नहीं दीव्यता, वृथा इस धूर्त ने सहस्रों मनुष्यों को खराब किया। राजा ने दीवान से कहा सब क्या करना चाहिये? दीवान ने कहा इनको पकड़ के कठिन दण्ड देना चाहिये, जब लो जीवें तब लो बन्दोघर में रखना चाहिये और इस दुष्ट को कि जिसने इन सबको बिगाड़ा है गधे पर चढ़ा, बड़ी दुर्दशा के साथ मारना चाहिये। जब राजा और दीवान कान में बातें कर रहे हों तब उन्हान डरक भागने की नेयारा का, परन्तु चारों ओर फौज ने घेरा दे रखा था, न भाग सक। राजा ने आज्ञा दी कि सब को पकड़ बेधिया डाल दो और इस दुष्ट का काला मुख र गधे पर चढ़ा, इसके कण्ठ में फटे जूता का हार पहना, सत्र उमा, डोररा से भूल राख हमपर उलगा, चौक चौक में जूतों से पिटवा, कुत्ता से कुँचवा, मरवा उल्ला जाने। जो ऐसा न होवे तो पुन दूमरे भी ऐसा काम करना न डरग। जब ऐसा हुआ तब नाककटे का सम्प्रदाय बन्द हुआ। इस प्रकार सब वेदविरोधी दूसरों के वन हरने में बड़े चतुर हैं। यह सम्प्रदाय की लीला है।

८—ये स्वामीनारायण मत वाले धनहर छल कपटयुक्त काम करते हैं। कितने ही मूर्खों के बदकाने के लिये मरते समय कहते हैं कि सफेद घाटे पर बैठ सहजानन्दजी मुक्ति को लेजाने के लिये आये हैं और निम्न इस मन्दिर में एक घार आया करते हैं। जब मेला होता है तब मन्दिर के भीतर पुजारी रहते हैं। और नाथे दुकान लगा रखी है। मन्दिर में से दुकान में जाने का छिद्र रखते हैं। जो क्षिप्ती ने नारियल चढ़ाया

सा दुकान में फेंक दिया अर्थात् इसी प्रकार एक नारियल दिन में
 एक बार बिकता है, ऐसे ही सब पदार्थों को बेचते हैं। जिस जाति का
 हुनु हो उनसे वैसा ही काम कराते हैं। जैसे नापित हो उससे नापित
 का, कुम्हार से कुम्हार का, शिल्पी से शिल्पी का, बनिये से बनिये का
 और गृह से गृहादि का काम लेते हैं। अपने चेलों पर एक कर (टिप्स)
 गार रक्ता है। लाखों कोड़ों रुपये ठग के एकत्र कर लिये हैं और करते
 पाते हैं। जो गृहो पर बैठता है वह गृहस्थ विवाह करता है, आभूषणादि
 दिनता है। जहाँ कहीं पधरावनी होती है वहाँ गोकुलिये के समान
 साईजी, बहूजी आदि के नाम से भेट पूजा लेते हैं। अपने को 'सरसङ्गी'
 और दूसरे मन वालों को 'कुसङ्गी' कहते हैं। अपने सिवाय दूसरा कैसा
 ही उत्तम धार्मिक विद्वान् पुरुष क्यों न हो, परन्तु उसका मान्य और
 सेवा कभी नहीं करते, क्योंकि अन्य मतस्थ की सेवा करने में पार गिनते
 हैं। प्रसिद्धि में उनके साधु स्त्रीजनों का मुख नहीं देखते, परन्तु गुप्त न
 जाने क्या लीला होती होगी? इसकी प्रसिद्धि सर्वत्र न्यून हुई है।
 कहीं कहीं साधुओं की परखं गमनादिलीला प्रसिद्ध हो गई है। और उनमें
 जो जो बड़े बड़े हैं वे जब मरते हैं तब उनको गुप्त कूवे में फेंक देकर प्रसिद्ध
 करते हैं कि अमुक महाराज सदेह वैकुण्ठ में गये। सहजानन्दजी आके
 लाये। हमने बहुत प्रार्थना करी कि महाराज इनको न लेजाइये क्योंकि
 उस महात्मा के यहां रहने से अच्छा है। सहजानन्दजी ने कहा कि नहीं,
 तब उनकी वैकुण्ठ में बहुत आवश्यकता है इसलिये ले जाते हैं। हमने
 अपनी आख से सहजानन्दजी को और विमान को देखा। तथा जो मरने
 वाले थे उनको विमान में बैठा दिया, ऊपर से लेगये और पुण्यों की
 पां करते गये। और जब कोई साधु बीमार पड़ता है और उसके
 चने की आशा नहीं होती तब कहता है कि मैं कल रात को वैकुण्ठ में
 जाऊंगा सुना है कि उस रात में जो उसके प्राण न छूटें और मूर्छित हो
 जा हो तो भी कूबे में फेंक देते हैं क्योंकि जो उस रात को न फेंक दें
 छूटें पड़ें इसलिये ऐसा काम करते होंगे। ऐसे ही जब गोकुलिया
 साईं मरता है तब उनके खेले करते हैं कि 'गुसाईंजी लीला विस्तार
 गये।' जो इन गुसाईं स्वामीनारायणवालों का उपदेश करने का मन्त्र
 पद एक ही है। 'श्रीकृष्ण शरणं मम' इसका अर्थ ऐसा करते हैं
 श्रीकृष्ण मेरा शरण है अर्थात् मैं श्रीकृष्ण के शरणगत हूँ, परन्तु इस

ब्राह्मसमाजियों ने ईसाई मत में मिलने से थोड़े मनुष्यों को अपने और कुछ २ पापाणादि मूर्तिपूजा को हटाया, अन्य जाल ग्रन्थों के जैसे भी कुछ बचाये इत्यादि अच्छी बातें हैं। परन्तु इन लोगों में अंतर्गत बहुत न्यून है। ईसाइयों के आचरण बहुत से लिये हैं। आपन विवाहादि के नियम भी बदल दिये हैं।

२—अपने देश की प्रशंसा वा पूर्वजों की बड़ाई करनी तो दूर तो, उसके बदले पेट भर निन्दा करते हैं। व्याख्यानों में ईसाई आदि लोगों की प्रशंसा भर पेट करते हैं। प्रयादि महर्षियों का नाम भी बोलने, प्रस्तुत ऐसा कहते हैं कि विना अग्नेजों के सृष्टि में आज पर्यन्त कोई भी विद्वान् नहीं हुआ। आर्यावर्त्तों लोग सदा से मूर्ख चले आये हैं। इनकी उन्नति कभी नहीं हुई।

३—वेदादिकों की प्रतिष्ठा तो दूर रही, परन्तु निन्दा करने से भी नहीं रहते। ब्राह्मसमाज के उद्देश के पुस्तक में साधुओं की सख्या में "ईसा", "भूसा", "मुहम्मद", "नानक" और "चैतन्य" लिखे हैं। किसी अपि महर्षि का नाम भी नहीं लिखा। इससे जाना जाता है कि इन लोगों ने जिनका नाम लिखा है उन्हीं के मतानुसारी मत वाले हैं। भला वह आर्यावर्त्त में उत्पन्न हुए हैं और इसी देश का अन्न जल खाया पिया, वह भी खाते पीते हैं, अपने माता, पिता, पितामहादि के मार्ग को छोड़ कर विदेशी मतों पर अधिक झुक जाना, ब्राह्मसमाजी और प्रार्थनासमाजियों को एतद्देशस्थ सस्कृत विद्या से रहित अपने को विद्वान् प्रकाशित करते हैं। इंगलिश भाषा पद के पण्डिताभिमानी होकर स्रष्टि एक मत चलाने में बहुत होना मनुष्यों का स्थिर और वृद्धिकारक काम क्योंकर हो सकता है ?

४—अंगरेज, यवन, अन्त्यजादि से भी खाने पीने का भेद नहीं रक्खा। उन्होंने यही समझा होगा कि खाने पीने और जातिभेद तोटने से हम और हमारा देश सुधर जायगा। परन्तु ऐसी बातों से सुधार तो कहां, बरुदा बिगाड होता है।

५—(प्रश्न) जतिभेद ईश्वरकृत है वा मनुष्यकृत ?

(उत्तर) ईश्वर और मनुष्यकृत भी जातिभेद है।

(प्रश्न) कौन से ईश्वरकृत और कौन से मनुष्यकृत ?

(उत्तर) मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, जलजन्तु आदि जातियां, पर-
मेश्वरकृत हैं। जैसे पशुओं में गौ, अश्व, हत्ती आदि जातियां, वृक्षों में

अर्थ श्रीकृष्ण मेरे शरण को प्राप्त अर्थात् मेरे शरणागत हों, ऐसा कर सकता है। ये सब जितने मत हैं वे विद्याहीन होने से ऊटपटांग विरुद्ध वाक्यरचना करते हैं क्योंकि उनको विद्या के नियमों की खबर नहीं है।

८३—(प्रश्न) माध्व मत तो अच्छा है ?

(उत्तर) जैसे अन्य मतावलम्बी हैं वैसा ही माध्व भी है ये भी चक्रांकित होते हैं। इन में चक्रांकितों से इतना विशेष है कि राम-जुजीय एक बार चक्रांकित होते हैं और माध्व वर्ष वर्ष में फिर फिर कित होते जाते हैं। चक्रांकित कपाल में पीली रेखा और माध्व काली लगाते हैं। एक माध्व पंडित से किसी एक महात्मा का शास्त्रार्थ हुआ

(महात्मा) तुमने यह काली रेखा और चांदला (तिलक) क्यों

(शास्त्री) इसके लगाने से हम वैकुण्ठ को जायेंगे और श्री का भी शरीर श्याम रंग था इसलिये हम काला तिलक करते हैं।

(महात्मा) जो काली रेखा और चांदला लगाने से वैकुण्ठ में हों तो सब मुख काला कर लेओ तो कहां जाओगे ? क्या वैकुण्ठ के पार उतर जाओगे ? और जैसा श्रीकृष्ण का सब शरीर काला था तुम भी सब शरीर काला कर लिया करो। तब श्रीकृष्ण का सारण्य कर सकता है। इसलिये यह भी पूर्वों के सदृश है।

८४—(प्रश्न) लिङ्गाङ्कित का मत कैसा है ?

(उत्तर) जैसा चक्रांकित का, जैसे चक्रांकित चक्र से दागे और नारायण के विना किसी को नहीं मानते वैसे लिङ्गाङ्कित से दागे जाते और विना महादेव के अन्य किसी को नहीं मानते। इनमें विशेष यह है कि लिङ्गाङ्कित पाषाण का एक लिङ्ग सोने चांदी में मढ़वा के गले में डाल रखते हैं। जय पानी भी पीते हैं उसको दिवा के पीते हैं। उनका भी मन्त्र शैव के तुल्य रहता है।

८५—अथ ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज के गुणदोष कथम् ?

(प्रश्न) ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज तो अच्छा है या नहीं ?

(उत्तर) कुछ २ बातें अच्छी और बहुत सी बुरी हैं।

(प्रश्न) ब्राह्मसमाज और प्रार्थना समाज सब से अच्छा है क्योंकि इसके नियम बहुत अच्छे हैं।

(उत्तर) नियम सर्वांश में अच्छे नहीं क्योंकि वेदविद्याहीन लोगों की कल्याण सर्वथा सत्य क्योंकर हो सकती है ? जो कुछ ब्राह्मसमाज

अर्थ श्रीकृष्ण मेरे शरण को प्राप्त अर्थात् मेरे शरणागत हों, ऐसा सकता है। ये सब जितने मत हैं वे विद्याहीन होने से उत्पद्यमान विरुद्ध वाक्यरचना करते हैं क्योंकि उनको विद्या के नियमों की खबर

८३—(प्रश्न) माध्व मत तो अच्छा है ?

(उत्तर) जैसे अन्य मतावलम्बी हैं वैसा ही माध्व भी है ये भी चक्रांकित होते हैं। इन में चक्रांकितों से इतना विशेष है कि तब नुजीय एक बार चक्रांकित होते हैं और माध्व वर्ष वर्ष में फिर फिर कित होते जाते हैं। चक्रांकित कपाल में पीली रेखा और माध्व काली लगाते हैं। एक माध्व पंडित से किसी एक महात्मा का शास्त्रार्थ हुआ

(महात्मा) तुमने यह काली रेखा और चांदला (तिलक) क्यों

(शास्त्री) इसके लगाने से हम वैकुण्ठ को जायेंगे और भी का भी शरीर श्याम रंग था इसलिये हम काला तिलक करते हैं।

(महात्मा) जो काली रेखा और चांदला लगाने से वैकुण्ठ में हों तो सब मुख काला कर लेओ तो कहाँ जाओगे ? क्या वैकुण्ठ के पार उत्तर जाओगे ? और जैसा श्रीकृष्ण का सब शरीर काला था तुम भी सब शरीर काला कर लिया करो। तब श्रीकृष्ण का साक्षात्कार सकता है। इसलिये यह भी पूर्वों के सदृश है।

८४—(प्रश्न) लिङ्गाङ्कित का मत कैसा है ?

(उत्तर) जैसा चक्रांकित का, जैसे चक्रांकित चक्र से दागे और नारायण के विना किसी को नहीं मानते वैसे लिङ्गाङ्कित से दागे जाते और विना महादेव के अन्य किसी को नहीं मानते इनमें विशेष यह है कि लिङ्गाङ्कित पाषाण का एक लिङ्ग सोने चांदी में मढ़वा के गले में ढाल रखते हैं। जब पानी भी पीते हैं उसको दिवा के पीते हैं। उनका भी मन्त्र शैव के तुल्य रहता है।

८५—अथ ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज के गुणदोष कथम् ?

(प्रश्न) ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज तो अच्छा है या नहीं ?

(उत्तर) कुछ २ बातें अच्छी और बहुत सी बुरी हैं।

(प्रश्न) ब्राह्मसमाज और प्रार्थना समाज सत्य से अच्छा है क्योंकि इसके नियम बहुत अच्छे हैं।

(उत्तर) नियम सर्वांश में अच्छे नहीं क्योंकि वेदविद्याहीन लोगों की कल्याण सर्वथा सत्य क्योंकर हो सकती है ? जो कुछ ब्राह्मसमाज

कभी भी उत्पन्न मानते हो, जैसा ईसाई और मुसलमान आदि मानते हैं।
 उत्तर सृष्ट्युत्पत्ति और जीवेश्वर की व्याख्या में देख लीजिये। कारण
 कि कार्य का होना सर्वथा असंभव और उत्पन्न वस्तु का नाश न होना
 ही असंभव है।

४- एक यह भी तुम्हारा दोष है जो पश्चात्ताप और प्रार्थना में पापों
 निवृत्ति मानते हो। इसी बात से जगत् में बहुत से पाप बढ़ गये हैं
 कि पुरानी लोग तीर्थादि यात्रा से, जैनी लोग भी नवकार मन्त्र जप
 तीर्थादि से, ईसाई लोग ईसा के विश्वास से, मुसलमान लोग
 "कफ़र" करने से पाप का छूट जाना बिना भोग के मानते हैं। इससे पापों
 में न होकर पाप में प्रवृत्ति बहुत होगई है, इस बात में ब्राह्म और प्रार्थना-
 र्थी भी पुरानी आदि के समान हैं। जो वेदों को मानते तो बिना भोग
 का पुण्य की निवृत्ति न होने से पापों से डरते और धर्म में सदा प्रवृत्त
 रहते। जो भोग के बिना निवृत्ति मानें तो ईश्वर अन्यायकारी होता है।

५- जो तुम जीव की अनन्त उत्पत्ति मानते हो सो कभी नहीं हो सकती
 क्योंकि ससीम जीव के गुण, कर्म, स्वभाव का फल भी ससीम होना अवश्य है।

(प्रश्न) परमेश्वर दयालु है ससीम कर्मों का फल अनन्त दे देगा।

(उत्तर) ऐसा करे तो परमेश्वर का न्याय नष्ट हो जाय और सत्कर्मों
 का दण्ड भी कोई न करेगा क्योंकि थोड़े से भी सत्कर्म का अनन्त फल
 परमेश्वर दे देगा और पश्चात्ताप वा प्रार्थना से पाप चाहे जितने हो छूट
 जायें, ऐसी बातों से धर्म की हानि और पापकर्मों की वृद्धि होती है।

(प्रश्न) हम स्वाभाविक ज्ञान को वेद से भी बड़ा मानते हैं, नैमित्तिक
 नहीं, क्योंकि जो स्वाभाविक ज्ञान परमेश्वरदत्त हम में न होता तो वेदों
 में भी जैसे पद पढ़ा, समझ समझा सकते। इसलिये हम लोगों का मत
 छूट अच्छा है।

(उत्तर) यह तुम्हारी बात निरर्थक है क्योंकि जो किसी का दिया
 ज्ञान होता है वह स्वाभाविक नहीं होता। जो स्वाभाविक है वह
 हमें ज्ञान होता है और न वह बढ़ घट सबता, इससे दण्ड भी
 हो कर सकता, क्योंकि जड़ही मनुष्यों में भी स्वाभाविक ज्ञान है। क्यों
 अपनी दण्डति नहीं कर सकते ? और जो नैमित्तिक ज्ञान है यही दण्डति
 कारण है। देखो ! तुम हम बाल्यावस्था में वर्तमानवर्तमान और धर्म
 में कुछ भी सीक ठीक नहीं जानते थे। जब हम विद्वानों से पढ़े तभी

जा पातु इतना विशेष कहा कि "जिनधर्म" के बिना सब धर्म खोटा, कर्म का कर्ता अनादि ईश्वर कोई नहीं, जगत् अनादि काल से जैसा था वैसा बना है और बना रहेगा, आ तू हमारा चेला होजा क्योंकि हम समस्तों अर्थात् सब प्रकार से अच्छे हैं, उत्तम बातों को मानते हैं। निमार्ग से भिन्न सब मिथ्यात्वो हैं।

आगे चल के ईसाई से पूछा। उसने वाममार्गी के तुल्य सब जवाब सवाल किये। इतना विशेष बतलाया "सब मनुष्य पापी हैं, अपने कर्मों से पाप नहीं छूटता। बिना ईसा पर विश्वास के पवित्र होकर बुद्धि को नहीं पा सकता। ईसा ने सब के प्रायश्चित्त के लिये अपने प्राण दया प्रकाशित की है। तू हमारा ही चेला हो जा"।

जिज्ञासु सुनकर मौलवी साहब के पास गया। उनसे भी ऐसे ही सवाल हुए। इतना विशेष कहा "लाशरीक खुदा उसके पेगम्बर पर कुरानाशीफ के बिना माने कोई निजात नहीं पा सकता। जो इस कदम को नहीं मानता वह दोजखी और काफिर है, वाजिहुल्कल है"। जिज्ञासु सुनकर वैष्णव के पास गया। वैसे ही सवाद हुआ। इतना बतलाया कि "हमारे तिलक छापे देखकर यमराज डरता है"।

जिज्ञासु ने मन में समझा कि जब मच्छर, मक्खी, पुलिस के सिपाही गोर, दाकू और शत्रु नहीं डरते तो यमराज के गण क्यों डरेंगे? फिर आगे पूछा तो सब मत वालों ने अपने अपने को सच्चा कहा। कोई हमारा कवीर सच्चा, कोई नानक, कोई दादू, कोई बल्लभ, कोई सहजानन्द, कोई माधव आदि को बड़ा और अवतार बतलाते सुना। सहजों से पूछा उनके परस्पर एक दूसरे का विरोध देख, विशेष निश्चय किया कि इनमें कोई गुरु करने योग्य नहीं, क्योंकि एक एक की शूठ में नौसा निन्न्यानवें गवाह होगये। जैसे झूठे दुश्मानदार वा बेदया और भडुवा आदि अपनी अपनी बातों की बढाई दूसरे की बुराई करते हैं वैसे ही ये हैं ऐसा जान —

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् । समित्पाणिः श्रोत्रियं
ब्रह्मनिष्ठम् ॥ १ ॥ तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्त-
चित्ताय शमन्विताय । येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच ता-
न्तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥ २ ॥ [मुण्डक १। ख० २। म० ११, १२]

उस सत्य के विज्ञानार्थं वह समित्पाणि अर्थात् हाथ जोड़ कर
रुत होकर वेदवित्, ब्रह्मनिष्ठ, परमात्मा को जाननेहार गुरु के पास

एकादशसमुदासः

आ पान्त् इतना विशेष कहा कि “जिनधर्म” के बिना सब धर्म खोटा, जगत् बनादि ईश्वर कोई नहीं, जगत् बनादि काल से जैसा जैसा बना है और बना रहेगा, आ तू हमारा चेला होजा क्योंकि हम हमारी अर्थात् सब प्रकार से अच्छे हैं, उत्तम बातों को मानते हैं। निमार्ग से भिन्न सब मिथ्यात्वी हैं।

आगे चल के ईसाई से पूछा। उसने वाममार्गी के तुल्य सब जवाब देना शुरू किये। इतना विशेष बतलाया “सब मनुष्य पापी हैं, अपने कर्मों से पाप नहीं छूटता। बिना ईसा पर विश्वास के पवित्र होकर शक्ति को नहीं पा सकता। ईसा ने सब के प्रायश्चित्त के लिये अपने प्राण दया प्रकाशित की है। तू हमारा ही चेला हो जा”।

जिज्ञासु सुनकर मौलवी साहब के पास गया। उनसे भी ऐसे ही जवाब सवाल हुए। इतना विशेष कहा “लाशरीक खुदा उसके पेंगुम्बर और कुरानशरीफ के बिना माने कोई निजात नहीं पा सकता। जो इस कब्र को नहीं मानता वह दोजखी और काफिर है, वाजिदुलकुल है”। जिज्ञासु सुनकर वैष्णव के पास गया। वैसे ही सवाद हुआ। इतना विशेष कहा कि “हमारे तिलक छापे देखकर यमराज डरता है”।

जिज्ञासु ने मन में समझा कि जब मच्छर, मक्खी, पुलिस के सिपाही गोर, दाकू और शत्रु नहीं डरते तो यमराज के गण क्यों डरेंगे? फिर आगे बढ़ा तो सब मत वालों ने अपने अपने को सच्चा कहा। कोई हमारा कबीर सच्चा, कोई नानक, कोई दादू, कोई बल्लभ, कोई सहजानन्द, कोई माधव आदि को बटा और अवतार बतलाते सुना। सहस्रो से पूछ उनके परस्पर एक दूसरे का विरोध देख, विशेष निश्चय किया कि इनमें कोई गुरु करने योग्य नहीं, क्योंकि एक एक की श्रुति में नौसौ निन्यानबे गवाह होगये। जैसे शूठे दुग्धनदार वा वेश्या और भडुवा जादि अपनी अपनी वस्तु की बुराई दूसरे की बुराई करते हैं वैसे ही ये हैं ऐसा जान —

ताद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् । समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥ १ ॥ तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्त-
चित्ताय शमन्विताय । येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच ता-
मन्तव्यतो ब्रह्मविद्याम् ॥ २ ॥ [मुण्डक १। १० २। म० ११, १२]
उस सत्य के जिज्ञानार्थ यह समित्पाणि अर्थात् शाय जो ४ अक्षरों
हस्त होकर वेदवित्, ब्रह्मनिष्ठ, परमात्मा को जाननेहारे गुरु के पास

परलोक में मिलता है। जितना ये लोग हमको देते हैं और सेवा करते हैं वह सब इन लोगों को परलोक में मिल जाता है।

(जिज्ञासु) इनको तो दिया हुआ मिल जाता है वा नहीं, तुम लेने लो को क्या मिलेगा ? नरक वा अन्य कुछ ?

(मत वाले) हम भजन करा करते हैं। इसका सुख हमको मिलेगा।

(जिज्ञासु) तुम्हारा भजन तो टका ही के लिये है। वे सब टका ही पड़े रहेंगे और जिस मासपिण्ड को यहां पालते तो वह भी भस्म होकर यहीं रह जायगा। जो तुम परमेश्वर का भजन करते होते तो तुम्हारा कर्मा भी पवित्र होता।

(मत वाले) क्या हम भशुद्ध हैं ? (जिज्ञासु) भीतर के बड़े मैले हो।

(मत वाले) तुमने कैसे जाना ?

(जिज्ञासु) तुम्हारी चाल चलन व्यवहार से।

(मत वाले) महात्माओं का व्यवहार हाथी के दात के समान होता है। जैसे हाथी के दात खाने के भिन्न और दिखलाने के भिन्न होते हैं वैसे भीतर से हम पवित्र हैं और बाहर से लीलामात्र करते हैं।

(जिज्ञासु) जो तुम भीतर से शुद्ध होते तो तुम्हारे बाहर के काम भी शुद्ध होते इसलिये भीतर भी मैले हो।

(मत वाले) हम चाहे जैसे हों परन्तु हमारे चेले तो अच्छे हैं।

(जिज्ञासु) जैसे तुम गुरु हो वैसे ही तुम्हारे चेले भी होंगे।

(मत वाले) एक मत कभी नहीं हो सकता क्योंकि मनुष्यों के गुण, स्वभाव भिन्न भिन्न हैं।

(जिज्ञासु) जो बाल्यावस्था में एकसी शिक्षा हो, सत्यभाषणादि धर्म का ग्रहण और मिथ्याभाषणादि अधर्म का त्याग करें तो एवमत बन जाय और दो मत अर्थात् धर्मात्मा और अधर्मात्मा सदा रहते हैं तो रहें। परन्तु धर्मात्मा अधिक होने और अधर्मी न्यून होने से सत्तार सुख बढ़ता है और जब अधर्मी अधिक होते हैं तब दुःख। जब सत्य धर्म एकसा उपदेश करें तो एवमत होने में कुछ भी विघ्न न हो।

(मत वाले) आज कल कलियुग है, सत्ययुग की बात मत चाहो।

(जिज्ञासु) कलियुग नाम काल का है, बाल निमित्त होने से कुछ धर्म के करने में साधक बाधक नहीं, किन्तु तुम ही कलियुग का प्रतिपादन कर रहे हो। जो मनुष्य ही सत्ययुग कलियुग न हो तो परोक्ष

एकादशसमुदासः

११ आर्यावर्त्तनिवासी लोगों के मत विषय में संक्षेप से लिखा । इसके अतिरिक्त थोड़ासा आर्यराजाओं का इतिहास मिला है इसको सब सज्जनों के लिये प्रकाशित किया जाता है ।

१०—अब थोड़ासा आर्यावर्त्तदेशीय राजवंश कि जिसमें श्रीमान् महाराज “युधिष्ठिर” से लेकर महाराज “यशपाल” तक [हुए हैं] का इतिहास लिखते हैं । और श्रीमान् महाराज “न्यायभव” मनु से लेकर महाराज “युधिष्ठिर” तक का इतिहास महाभारतादि में लिखा ही है और इससे सब लोगों को इधर के कुछ इतिहास का वर्त्तमान विदित होगा । यद्यपि विषय विद्यार्थी सम्मिलित “हरिश्चन्द्रचन्द्रिका” और मोहनचन्द्रिका, कि पाक्षिक पत्र श्रीनाथद्वारे से निकलता था (जो राजपूताना देश, मेवाड़ राज, उदयपुर, चित्तौड़गढ़ में सबको विदित है) उससे हमने अनुवाद किया है । यदि ऐसे ही हमारे आर्य सज्जन लोग इतिहास और विद्या-पुस्तकों का खोज कर प्रकाश करेंगे तो देश की बड़ा ही लाभ पहुँचेगा । इस पत्रसम्पादक महाशय ने अपने मित्र से एक प्राचीन पुस्तक जो कि सप्तमिन्न के १७८२ (सत्रहसौ बयासी) का लिखा हुआ था उससे ग्रहण कर अपने सवत् १९३९ मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष १९-२० किरण अर्थात् दो पाक्षिक पत्रों में छपा है सो निम्नलिखे प्रमाणे जानिये ।

आर्यावर्त्तदेशीय राजवंशावली ।

इन्द्रप्रस्थ में आर्य लोगों ने श्रीमन्महाराज “यशपाल” पर्यन्त राज्य किया जिनमें श्रीमन्महाराज “युधिष्ठिर” से महाराज “यशपाल” तक पचास अर्थात् पौढ़ी अनुमान १२४ (एकसौ चौबीस) राजा, वर्ष ४१५७ मास १ दिन १४ समय में हुए हैं इनका व्यौरा.—

राजा	शक	वर्ष	मास	दिन	आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
आर्यराजा	१२४	४१५७	९	१४	३ राजा जनमेजय	८४	७	२३
श्रीमन्महाराज	युधिष्ठिरादि वंश				४ राजा अश्वमेध	८२	८	२२
अनुमान पीढ़ी	३०,	वर्ष	१७७०,		५ द्वितीय राम	८८	२	८
मास	११ दि० १०	इनका विस्तार.—			६ छत्रमल	८९	१९	२७
आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन		७ चित्ररथ	७५	३	१८
१ राजा युधिष्ठिर	३६	८	२५		८ दुष्टशैल्य	७५	१०	२४
२ राजा परीक्षित	६०	०	०		९ राजा उग्रसेन	७८	७	२१

राज्य करने लगे। पीढ़ी
१०० मास ६ दिन २२।

विस्तार—

वर्ष	मास	दिन
जीवनसिंह	१७	१ २६
जीवनसिंह	१४	५ ०
जीवनसिंह	९	८ ११
जीवनसिंह	४०	० १५
जीवनसिंह	१३	२ २९
जीवनसिंह	८	० १

राजा जीवनसिंह ने कुछ कारणों से अपनी सब सेना उत्तर में भेज दी। यह खबर पृथ्वी-वैराट के राजा से सुनकर जीवनसिंह के ऊपर चढ़ाई करके और लड़ाई में जीवनसिंह को इन्द्रप्रस्थ का राज्य किया * ५, वर्ष ८६ मास ० दिन २०।
का विस्तार—

आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ पृथिवीराज	१२	२	१६
२ अभयपाल	१४	५	१७
३ दुर्जनपाल	११	४	१४
४ उदयपाल	११	७	३
५ यशपाल	३६	४	२७

राजा यशपाल के ऊपर सुलतान शहाबुद्दीन गौरी गढ़ गजनी से चढ़ाई करके आया और राजा यशपाल को प्रयाग के किले में सन् १२४९ साल में पकड़कर कैद किया पश्चात् इन्द्रप्रस्थ अर्थात् दिल्ली का राज्य आप (सुलतान शहाबुद्दीन) करने लगा, पीढ़ी ५३, वर्ष ७५४ मास १ दिन १७ इनका विस्तार बहुत इतिहास पुस्तकों में लिखा है इसलिये यहाँ नहीं लिखा। इसके आगे बौद्ध जैनमत विषय में लिखा जायगा।

इति श्रीमहयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मिते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते
आर्यावर्त्तीयमतखण्डनमण्डनविषय एकादश समुदासः
सम्पूर्णः ॥ ११ ॥

* [इसके आगे और इतिहासों में इस प्रकार है कि महाराज पृथ्वीराज के सुलतान शहाबुद्दीन गौरी चढ़कर आया और कई बार बारबार लौट गया * १२४६ में आपस की फूट के कारण महाराज पृथ्वीराज को अपना घर अपने देश को ले गया पश्चात् दिल्ली (इन्द्रप्रस्थ) का राज्य करने लगा, मुसलमानों का राज्य पीढ़ी ४५, वर्ष ६१३ रहा]

को अपने लाभ और बोध करनेवाला होगा क्योंकि ये लोग अपने
 को किसी अन्य मत वाले को देखने पढ़ने वा लिखने को भी
 नहीं देते। बड़े परिश्रम से मेरे और विशेष आर्यसमाज मुबई के मन्त्री
 के सेवक लाल कृष्णदास" के पुरुषार्थ से ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं तथा
 ग्रन्थ "जेनप्रभाकर" यन्त्रालय में छपने और मुबई में "प्रकरणरत्ना-
 " ग्रन्थ के छपने से भी सब लोगों को जैनियों का मत देखना सहज
 है। भला यह किन विद्वानों की बात है कि अपने मत के पुस्तक
 को देवना और दूसरों को न दिखलाना ! इसी से विदित होता है
 इन ग्रन्थों के बनानेवालों को प्रथम ही शका थी कि इन ग्रन्थों में
 सम्भव बातें हैं जो दूसरे मत वाले देखेंगे तो खण्डन करेंगे और हमारे
 मत वाले दूसरों के ग्रन्थ देखेंगे तो इस मत में श्रद्धा न रहेगी। अस्तु,
 हो परन्तु बहुत मनुष्य ऐसे हैं जिनको अपने दोष तो नहीं दीखते
 दूसरों के दोष देखने में अत्युद्युक्त रहते हैं। यह न्याय की बात
 है, क्योंकि प्रथम अपने दोष देख निकाल के पश्चात् दूसरों के दोषों में
 देके निकालें। अब इन बौद्ध जैनियों के मत का विषय सब सज्जनों
 के सम्मुख धरता हूँ, जैसा है वैसा विचारें ॥

किमधिकलेखेन बुद्धिमद्वयैषु ॥

द्वादशसमुदासः

भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुत ॥ ६ ॥

यदि गच्छेत्परं लोकं देहादेः विनिर्गतः ।

कस्माद्भूयो न चायाति बन्धुस्नेहसमाकुलः ॥ ७ ॥

ततश्च जीवनोपायो ब्राह्मणैर्विहितस्त्विह ।

मृतानां प्रेतकार्याणि न त्वन्यद्विद्यते क्वचित् ॥ ८ ॥

त्रयो वेदस्य कर्तारो भण्डधूर्तनिशाचराः ।

जर्फरीतुर्फरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम् ॥ ९ ॥

अश्वस्यात्र हि शिश्रन्तु पत्नीग्राह्यः प्रकीर्तितम् ।

भण्डैस्तद्वत्परं चैव ग्राह्यजातं प्रकीर्तितम् ॥ १० ॥

मांसानां खादनं तद्वन्निशाचरसमीरितम् ॥ ११ ॥

चारवाक, आभाणक, बौद्ध और जैन भी जगत् की उत्पत्ति स्वभाव से मानते हैं, जो जो स्वाभाविक गुण हैं, उस उस से द्रव्यसंगुत होकर सब पदार्थ बनते हैं, कोई जगत् का कर्त्ता नहीं ॥ १ ॥ परन्तु इनमें से चार-वाक ऐसा मानता है किन्तु परलोक और जीवात्मा बौद्ध, जैन मानते हैं, चारवाक नहीं । शेष इन तीनों का मत कोई कोई बात छोड़ के एकसा है । न कोई स्वर्ग, न कोई नरक और न कोई परलोक में जाने वाला आत्मा है और न वर्णाश्रम की क्रिया फलदायक है ॥ २ ॥ जो यज्ञ में पशु को मार होम करने से स्वर्ग को जाता हो तो यजमान अपने पितादि को मार होम करके स्वर्ग को क्योंकि नहीं भेजता ? ॥ ३ ॥ जो मरे हुए जीवों का धाद और तर्पण तृप्तिकारक होता है तो परदेश में जाने वाले मार्ग में निर्वाहार्थ अन्न वस्त्र और धनादि को क्यों ले जाते हैं ? क्योंकि जैसे मृतक के नाम से अर्पण किया हुआ पदार्थ स्वर्ग में पहुँचता है तो परदेश में जाने वालों के लिये उनके सम्बन्धी भी घर में उनके नाम से अर्पण करके देशान्तर में पहुँचा दें, जो यह नहीं पहुँचता तो स्वर्ग में वह क्यों पर पहुँच सकता है ? ॥ ४ ॥ जो मर्त्यलोक में दान करने से स्वर्गवासी तृप्त होते हैं तो नीचे देने से घर के ऊपर स्थित पुरुष तृप्त क्यों नहीं होता ? ॥ ५ ॥ इसलिये जब तक जीवे तब तक सुख से जावे, जो घर में पदार्थ न हो तो ऋण लेके भानन्द करे, ऋण देना नहीं पड़ेगा क्योंकि जिस शरीर में जीव ने खाया पिया है उन दोनों का पुनरागमन न होगा, फिर किससे कौन मागेगा और कौन देवेगा ? ॥ ६ ॥ जो लोग कहते मृत्यु समय जीव बिकल के परलोक को जाता है यह बात मिथ्या है

एक कभी न निकालते, हा भाट धूरा निशाचरघत्त महीवरादि टीकाकार
 हुए हैं, उनकी धूर्तता है, वेदों की नहीं, परन्तु शोक ई चारवाक, आभाणक
 शौच और जेनियों पर कि इन्होंने मूल चार वेदों की संहिताओं को भी
 न सुना, न देखा और न किसी विद्वान् से पढ़ा इसलिये नष्ट भ्रष्टबुद्धि
 शौच कटपदाग वेदों की निन्दा करने लगे, दुष्ट वाममार्गियों की प्रमाण-
 रूप्य, कपोलकल्पित भ्रष्ट टीकाओं को देखकर वेदों से विरोधी होकर अवि-
 पाक्यो अगाध समुद्र में जा गिरे ॥ ९ ॥ भला विचारना चाहिये कि स्त्री
 से अश्व के छिन्न का ग्रहण कराके उससे समागम कराना और यजमान की
 कन्या से हासी ठट्टा आदि करना सिवाय वाममार्गी लोगों से अन्य मनुष्यों
 का काम नहीं है। विना इन महापापी वाममार्गियों के भ्रष्ट, वेदार्थ से
 विपरीत, अशुद्ध व्याख्यान कौन करता ? अत्यन्त शोक तो इन चारवाक
 आदि पर है जो कि विना विचारे वेदों की निन्दा करने पर तत्पर हुए,
 तनिक तो अपनी बुद्धि से काम लेते। क्या करें विचारे, उनमें इतनी विद्या
 ही नहीं थी जो सत्यासत्य का विचार कर सत्य का मण्डन और असत्य का
 खण्डन करते ॥ ११ ॥ और जो मास ग्राना है यह भी उन्हीं वाममार्गी
 टीकाकारों की लीला है इसलिये उनकी राक्षस कहना उचित है परन्तु वेदों
 में कहीं मास का खाना नहीं लिखा इसलिये इत्यादि मिथ्या बातों का
 पाप उन टीकाकारों को और जिन्होंने वेदों के जाने सुने बिना मनमानी
 निन्दा की है निःसन्देह उनको लगेगा। सच तो यह है कि जिन्होंने वेदों
 से विरोध किया और करते हैं और करेंगे वे अचक्षु अविद्यारूपी अन्धवार
 में पड़के सुख के बदले दारुण दुःख जितना पायें उतना ही न्यून है।
 इसलिये मनुष्यमात्र की वेदानुकूल चलना समुचित है ॥ ११ ॥ जो वाम-
 मार्गियों ने मिथ्या कपोलकल्पना करके वेदों के नाम से अपना प्रयोजन
 सिद्ध करना अर्थात् यथेष्ट मद्यपान, मास ग्रान और परस्त्रीगमन करने
 आदि दुष्ट कर्मों की प्रवृत्ति होने के अर्थ वेदों को फलस्र जगाया इन्हीं
 बातों को देखकर चारवाक, बौद्ध तथा जैन लोग वेदों की निन्दा करने लगे
 और पूयकृष्ण वेदविरुद्ध, अनीश्वरवादी अर्थात् नास्तिक मत प्रकाश किया।
 जो चारवाकादि वेदों का मूलार्थ विचारत तो शरीर जीवन्त ही इस प्रकार सत्य
 वेदोक्त मत से क्यों हथ धो बैठत ? क्या करें विचार, "विनाशकाज
 विपरीतबुद्धि." "जब नष्ट भ्रष्ट हो। या समय आता है तब मनुष्य की
 रज्जु बुद्धि हो जाती है।

कष्ट है, जो भीतर ज्ञान न हो तो नहीं कह सकता, ऐसा मानता है। तीसरा "सौत्रान्तिक" जो बाहर अर्थ का अनुमान मानता है क्योंकि कोई पदार्थ सागोपाग प्रत्यक्ष नहीं होता किन्तु एकदेश प्रत्यक्ष होने पर भी अनुमान किया जाता है, इसका ऐसा मत है।

चौथा "वैभाषिक" है उसका मत बाहर पदार्थ प्रत्यक्ष होता है भीतर जैसे अर्थ नीलो घटः" इस प्रतीति में नीलयुक्त घटाकृति बाहर मिलती है, यह ऐसा मानता है।

एकपि इनका आचार्य्य बुद्ध एक है तथापि शिष्यों के बुद्धिभेद से चार प्रकार की शाखा हो गई है। जैसा सूर्यास्त होने में चार पुरुष आगमन और विद्वान् सत्यभाषाणादि श्रेष्ठ कर्म करते हैं। समय एक ही अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार भिन्न भिन्न चेष्टा करते हैं।

अब इन पूर्वोक्त चारों में "माध्यमिक" सब को क्षणिक मानता है और क्षण क्षण में बुद्धि के परिणाम होने से जो पूर्वक्षण में ज्ञात वस्तु था सो ही दूसरे क्षण में नहीं रहता इसलिये सबको क्षणिक मानना चाहिये, ऐसा मानता है। दूसरा "योगाचार", जो प्रवृत्ति है सो सब दुःखरूप है जो कि प्राप्ति में सतुष्ट कोई भी नहीं रहता, एक की प्राप्ति में दूसरे की उत्पत्ति बनी रहती है, इस प्रकार मानता है। तीसरा "सौत्रान्तिक" सब अर्थ अपने २ लक्षणों से लक्षित होते हैं, जैसे गाय के चिन्हों से गाय और घोड़ों के चिन्हों से घोड़ा ज्ञात होता है वैसे लक्षण लक्ष्य में सदा रहते हैं, ऐसा कहता है। चौथा "वैभाषिक" शून्य ही को एक पदार्थ मानता है। परन्तु माध्यमिक सब को शून्य मानता था, उसी का पक्ष वैभाषिक का भी है, इत्यादि चौदों में बहुत से विवाद पक्ष हैं, इस प्रकार चार प्रकार की मानना मानते हैं।

(उत्तर) जो सब शून्य हो तो शून्य का जानने वाला शून्य नहीं हो सकता, और जो सब शून्य होवे तो शून्य को शून्य नहीं जानसके इसलिये शून्य का ज्ञाता और ज्ञेय दो पदार्थ सिद्ध होते हैं और जो योगाचार शून्यत्व मानता है तो पर्यंत इसके भीतर होना चाहिये। जो बड़े कि पर्यंत भीतर है तो उसके हृदय में पर्यंत के समान अवकाश कहा है? इसलिये पर्यंत पर्यंत है और पर्यंतज्ञान आत्मा में रहता है। सौत्रान्तिक विज्ञान पदार्थ को प्रत्यक्ष नहीं मानता तो यह आप स्वयं और उसका वचन ना बुद्धिमें होना चाहिये, प्रत्यक्ष नहीं। जो प्रत्यक्ष न हो तो "अर्थ घट."

द्वादशसमुदासः

जड़ हो जाते, एक ठिकाने पड़े रहते और कुछ भी चेष्टा से तो मुक्ति क्या हुई किन्तु अन्धकार और बन्धन में पड़ गये।
(श्लोक) ईश्वर व्यापक नहीं है, जो व्यापक होता तो सब वस्तु को नहीं होती? और घ्राहण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि की कष्टम, निकृष्ट अवस्था क्यों हुई। क्योंकि सब में ईश्वर एकसा है तो सुदार्ढ बढ़ाई न होनी चाहिये।

(नास्तिक) व्याप्य और व्यापक एक नहीं होते किन्तु व्याप्य एकदेशी क सर्वदेशी होता है, जैसे आकाश सब में व्यापक है और भूगोल आदि सब व्याप्य एकदेशी हैं, जैसे पृथिवी आकाश एक नहीं वैसे ईश्वर व्याप्य एक नहीं, जैसे सब घट पटादि में आकाश व्यापक है और घट-आकाश नहीं वैसे परमेश्वर चेतन सब में है और सब चेतन नहीं होता, विद्वान्, अविद्वान् और धर्मात्मा अधर्मात्मा बराबर नहीं होते, विद्यादि और सत्यभाषणादि कर्म, सुशीलतादि स्वभाव के न्यूनाधिक होने से, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्यज बड़े छोटे माने जाते हैं। वर्णों का क्या वैसी चतुर्थे समुदास में लिख आये हैं वहाँ देख लो।

(शक्ति) जो ईश्वर की रचना से सृष्टि होती तो माता पितादि का क्या काम? (आस्तिक) ऐश्वरी सृष्टि का ईश्वर कर्त्ता है, जैसी सृष्टि का नहीं, जो कोई कर्त्तव्य कर्म है उनको ईश्वर नहीं करता किन्तु जाव हो करता है जैसे भ्रू, कृक, ओषधि, अन्नादि ईश्वर ने उत्पन्न किया है उसको लेकर मनुष्य (पशु, न कूट, न रोटी आदि पदार्थ बनावे और न खावे तो क्या ईश्वर का बदल इन कामों को कभी करेगा? और जो न करे तो जीव का जीवन कैसे हो सके इसलिये आदिसृष्टि में जीव के शरीरों और साचे को बनाना ईश्वरीय पश्चात् उनसे पुत्रादि की उत्पत्ति करना जीव का कर्त्तव्य काम है।

(नास्तिक) जब परमात्मा शाश्वत, अनादि, विद्वानन्द, ज्ञानस्वरूप है तो ब्रह्म के प्रपञ्च और दुख में क्यों पड़ा? आनन्द छोड़ दुख का ग्रहण करना काम कोई साधारण मनुष्य भी नहीं करता, ईश्वर ने क्यों किया।

(आस्तिक) परमात्मा किसी प्रपञ्च और दुख में नहीं गिरता, न अपने आनन्द को छोड़ता है क्योंकि प्रपञ्च और दुख में गिरना जो एक कष्ट हो उसका हो सकता है सर्वदेशी का नहीं। जो अनादि, विद्वानन्द, ज्ञानस्वरूप परमात्मा जगत् को न बनावे तो अन्य कौन बना सके? जगत् के जीव में सामर्थ्य नहीं और जड़ में स्वयं बनने का भी स

विस्तृतगीत इसको कहते हैं कि एक चार कोश का चौरस और गणना कुभा खोद कर उसको जुगुलिये मनुष्य के शरीर के निम्न भागों के टुकड़ों से भरना अर्थात् वर्तमान मनुष्य के गाल से जगलिये चार बाल चार हजार छानवें भाग सूक्ष्म होता है, जब जगलिय मनुष्य चार सहस्र छानवें बालों को इकट्ठा करें तो इस समय के मनुष्यों का बाल होता है, ऐसे जुगुलिये मनुष्य के एक बाल के एक अगुल भाग के बार आठ आठ टुकड़े करने से २०९७१५० अर्थात् बीस लाख सत्ता-सत्ता एकसौ बावन टुकड़े होते हैं, ऐसे टुकड़ों से पूर्वोक्त कुभा को भरे, उसमें से सौ वर्ष के अन्तरे एक एक टुकड़ा निकालना। जब सब निकल जावें और कुभा खाली हो जाय तो भी वह सख्यात काल है। जब उनमें से एक एक टुकड़े के असख्यात टुकड़े करके उन टुकड़ों से एक को ऐसा ठस के भरना कि उसके ऊपर से चक्रवर्ती राजा की गंगा जाय तो भी न दवे, उन टुकड़ों में से सौ वर्ष के अन्तरे एक एक निकले, जब वह कुभा रीता हो जाय तब उस में असख्यात पूर्व पड़े एक एक 'पल्योपम' काल होता है। वह पल्योपम काल कुभा के दृष्टान्त से होता है, जब दश क्रोड़ान् क्रोड़ पल्योपम काल बीतें तब एक "सागरोपम" काल होता है, जब दश क्रोड़ान् क्रोड़ सागरोपम काल बीत जाय तब एक "उत्सर्पणी" काल होता है और जब एक उत्सर्पणी और एक अवसर्पणी बीत जाय तब एक "कालचक्र" होता है, जब अनन्त कालचक्र बीत जाय तब एक "पुद्गलपरावृत्त" होता है। अब अनन्तकाल किसको कहेंगे? जो सिद्धान्त पुस्तकों में नव दृष्टान्तों से काल की संख्या की है, तब उपरान्त "अनन्तकाल" कहाता है, वैसे अनन्तपुद्गलपरावृत्त काल को त्रयते हुए बीते हैं इत्यादि।

[समीक्षक] सुनो भाई गणितविद्यावाले लोगो। जैनियों के ग्रन्थों में कालनिर्या कर सवोगे वा नहीं? और तुम इसको सच भी मान सवोगे वा नहीं? देवो? इन तीर्थंकरों ने ऐसी गणितविद्या पकी थी, ऐसे ऐसे तो एक मत में गुरु और शिष्य हैं जिनकी अविद्या का कुछ पारावार नहा।

१४—और भी इनका अन्धेर सुनो। रत्नसार भाग पृ० १३३ से ले-
कर कुछ घटाबोल अर्थात् जैनियों के सिद्धान्त ग्रन्थ जो कि उनके य-
हाँ कृष्णदेव से लेके मदावीर पर्यन्त चौबीस हुए हैं उनके य-
हाँ है। ऐसा रत्नसारभाग पृ० १३८ में लिखा है कि एक

जो देवों का देव शोभायमान अरिहन्त देव ज्ञान क्रियावान्, शरीरशुद्ध, शुद्ध कपाय, मलरहित सम्यक्त्व विनय दयामूल श्री ११ जो धर्म है वही दुर्गति में पड़ने वाले प्राणियों का उद्धार करने और अन्य हरिहरादि का धर्म ससार से उद्धार करने वाला नहीं है अरिहन्तादिक परमेष्ठी तत्सम्बन्धी उनको नमस्कार, ये चार पदार्थ हैं अर्थात् श्रेष्ठ हैं अर्थात् दया, क्षमा, सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन और यही वह जनों का धर्म है।

(समीक्षक) जब मनुष्यमात्र पर दया नहीं वह दया न क्षमा, ज्ञान अज्ञान, दर्शन अधर और चारित्र्य के बदले भूखा मरना कौनसो की बात है ?

२५—जैनमत के धर्म की प्रशंसाः—

अरनकुणसि तव चरणं न पढसि न गुणोसि देसि नो दाणम्
ता इत्तिथं न सक्किसि जं देवो इक्का अरिहन्तो ॥
प्रकरण० भा० । पृष्ठी ६० । सू० २ ॥

हे मनुष्य ! जो तू तप चारित्र्य नहीं कर सकता, न सूत्र पढ़ सकता, न प्रकरणादि का विचार कर सकता और सुपात्रादि को दान नहीं दे सकता, तो भी जो तू देवता एक अरिहन्त ही हमारे आराधना के योग्य मानता, तो भी जो तू देवता एक अरिहन्त ही हमारे उद्धार का कारण है ॥

(समीक्षक) यद्यपि दया और क्षमा अच्छी वस्तु है तथापि पक्षपात के कारण से दया अदया और क्षमा अक्षमा होजाती है इसका प्रयोजन यह कि किसी जीव को दुःख न देना यह बात सर्वथा संभव नहीं हो सकती क्योंकि दुष्टों को दंड देना भी दया में गणनीय है, जो एक दुष्ट को दंड न दिया जाय तो सहस्रो मनुष्यों का दुःख प्राप्त हो इसलिये वह दया अदया और क्षमा अक्षमा होजाय । यह तो ठीक है कि सब प्राणियों के दुःखनाश और सुख की प्राप्ति का उपाय करना दया कहलाती है । केवल जल छान के पीना, धुँध धनुओं को चवाना ही दया नहीं कहलाती, किन्तु इस प्रकार की दया जैनियों के कथनमात्र ही है क्योंकि ऐसा चरित नहीं । क्या मनुष्यादि पर चाहे किसी मत में क्यों न हो, दया करके उसको अप्रधानादि से सम्भार करना और दूसरे मत के विद्वानों का मान्य और सेवा करना दया नहीं है ? जो इनकी सच्ची दया होती तो “विवेकसार” के पृष्ठ २२१ में देखो

(समीक्षक) वाह रे ! वाह !! विद्या के शत्रुओ ! तुमने यही बि
होगा कि हमारे मिथ्या वचनों का कोई खण्डन न करे इसीलिये यह
झर वचन लिखा है सो असम्भव है । अब कहाँ तक तुमको समझावें, तु
तो शूठ, निन्दा और अन्य मतों से वैर विरोध करने पर ही कटिबद्ध हो
अपना प्रयोजन सिद्ध करना मोहनभोग समझ लिया है ।

४६-मूल-दूरे करण दूरमि सादृण तद् पभावणा दूरे ।

जिणधम्मसद्दहाण वि तिक्क दुक्खाइ निठवइ ॥

प्रक० भा० २ । पृष्ठी० सू० १२७

जिस मनुष्य से जैनधर्म का कुछ भी अनुष्ठान न हो सके तो भी
जैनधर्म सच्चा है अन्य कोई नहीं, इतनी श्रद्धामात्र ही से दुःख से तर जाता

(समीक्षक) भला इससे अधिक मूर्खों को अपने मतजाल में फँस
की दूसरी कौनसी बात होगी ? क्योंकि कुछ कर्म करना न पड़े और मु
हो ही जाय ऐसा भूढ़ मत कौनसा होगा ?

५०-मूल-कइया होही दिवसो जइया सुगुरुण पायमूलमि

एसुत्तलेसविसलवरदिलेओनि सुणे सुजिणधम्म ।

प्रक० भा० २ । पृष्ठी० सू० १२८

जो मनुष्य हू तो जिनागम अर्थात् जैनों के शास्त्रों को सुनूंगा, उस
अर्थात् अन्य मत के ग्रन्थों को कभी न सुनूंगा, इतनी इच्छा करे वह इत
इच्छामात्र ही से दुःखसागर से तर जाता है ।

(समीक्षक) यह भी बात भोले मनुष्यों को फँसाने के लिये
क्योंकि इस पूर्वोक्त की इच्छा से यहां के दुःखसागर से भी तरता औ
पूर्वजन्म के भी संचित पापों के दुःखरूपी फल भोगे बिना नहीं बूट सकता
जो ऐसी ऐसी शूठ अर्थात् विरुद्ध बात न लिखते तो इनके अप्रियारु
ग्रन्थों को वेदादि शास्त्र देख सुन सत्यासत्य जानकर इनके पोरछल ग्रन्थों
को छोड़ देने परन्तु ऐसा न करके इन अविद्वानों को बाधा है कि इस
जाल से कोई एक बुद्धिमान् सासगी जादे बूट सके तो सम्भव है, परन्तु
अन्य जड़बुद्धियों का बूटना तो अति कठिन है ।

५१-मूल-जल्ल जेणदि भणियं सुयववहार विसोदियंनस्स ।

जायइ विसुद्ध बोही जिणभारादगत्ताओ ॥

प्रक० भा० २ । पृष्ठी० सू० १२८

जो जिनाचार्यों ने दहे सूत्र, निरुक्ति, वृत्ति, भाष्य, चर्चा मानने हैं वे ही



अनुभूमिका (३)

जो यह बाइबल का मत है वह केवल ईसाइयों का है सो नहीं, न हमसे यहूदी आदि भी ग्रहीत होते हैं। जो यहां १३ (तेरहवें) मुलास में ईसाई मत के विषय में लिखा है इसका यही अभिप्राय है कि आजकल बाइबल के मत के ईसाई मुख्य हो रहे हैं और यहूदी आदि गौण हैं। मुख्य के ग्रहण से गौण का ग्रहण होजाता है इससे यहूदियों का भी ग्रहण समझ लीजिये। इनका जो विषय यहां लिखा है सो केवल बाइबल में से कि जिसको ईसाई और यहूदी आदि सब मानते हैं और इसी पुस्तक को अपने धर्म का मूलकारण समझते हैं। इस पुस्तक के भाषान्तर बहुत से हुए हैं जो इनके मत में बड़े २ पादरी हैं उन्होंने किये हैं, उनमें से देवनागरी वा संस्कृत भाषान्तर देखकर मुझको बाइबल में बहुतसी शंका हुई है। उनमें से कुछ थोड़ी सी इस १३ (तेरहवें) समुलास में सब के विचारार्थ लिखी हैं। यह लेख केवल सत्य का वृद्धि और असत्य के ह्रास होने के लिये है, न कि किसी को दुःख देने वा हानि करने अथवा मिथ्या दोष लगाने के अर्थ। इसका अभिप्राय उत्तर लेख में सब कोई समझ लेंगे कि वह पुस्तक केसा है और इनका मत भी कैसा है। इस लेख से यही प्रयोजन है कि सब मनुष्यमात्र को देखना, सुनना, लिखना आदि करना सहज होगा और पक्षी प्रतिपक्षी होके विचार कर ईसाई मत का आन्दोलन सब कोई कर सकेंगे। इससे एक यह प्रयोजन सिद्ध होगा कि मनुष्यों को धर्मविषयक ज्ञान बढ़कर यथायोग्य सत्यासत्य मत और कर्तव्या-कर्तव्य कर्मसम्बन्धी विषय विदित होकर सत्य और कर्तव्यकर्म का स्वीकार असत्य और अकर्तव्य कर्म का परित्याग करना सहजता से हो सकेगा। सब मनुष्यों को उचित है कि सब के मत विषयक पुस्तकों को देख समझ कर कुछ सम्मति वा असम्मति देवे वा लिखें, नहीं तो सुना बरे, क्योंकि जैसे पढ़ने से 'पण्डित' होता है वैसे सुनने से 'बुद्धुत' होता है। यदि जाता दूसरे वा नहीं समझा सके तथापि आप स्वयं तो समझ ही जाता है। जो कोई पक्षपात रूप यानाखुद होके देखते हैं उनको न अपन और न परायण पुन दोष विदित हो सकते हैं। मनुष्य का आत्मा यथायोग्य सत्यासत्य के निर्देश

विनाग किया और ऐसा हो गया । और ईश्वर ने आकाश को स्वर्ग कहा और ताँत और विहान दूमरा दिन हुआ ॥ पर्व १ । आ० ६, ७, ८, ॥
 (समीक्षक) क्या आकाश और जल ने भी ईश्वर की बात सुन ली ? और जो जल के बीच में आकाश न होता तो जल रहता ही कहां ? अथवा जल में आकाश को सृजा था, पुनः आकाश का बनाना व्यर्थ हुआ । जो आकाश को स्वर्ग कहा तो वह सर्व व्यापक है इसलिये सर्वत्र सृज हुआ फिर ऊपर को स्वर्ग है यह कहना व्यर्थ है । जब सूर्य उत्पन्न हो नहीं हुआ था तो पुन दिन और रात कहां से हो गई । ऐसी असम्भव बातें भागों की आयतों में भरी हैं ॥ ३ ॥

४—तब ईश्वर ने कहा कि हम आदम को अपने स्वरूप में अपने समान बनावें ॥ तब ईश्वर ने आदम को अपने स्वरूप में उत्पन्न किया उसने उसे ईश्वर के स्वरूप में उत्पन्न किया, उसने उन्हे नर और नारी बनाया । और ईश्वर ने इन्हें आशीर्ष दिया ॥ पर्व १ । आ० १६, २७, २८ ॥

(समीक्षक) यदि आदम को ईश्वर ने अपने स्वरूप में बनाया तो ईश्वर का स्वरूप पवित्र, ज्ञानस्वरूप, आनन्दमय आदि लक्षणयुक्त है उसके समान आदम क्यों नहीं हुआ ? जो नहीं हुआ तो उसके स्वरूप में नहीं बना और आदम को उत्पन्न किया तो ईश्वर ने अपने स्वरूप ही को उत्पत्तिवाला किया, पुनः वह अनित्य क्यों नहीं ? और आदम को उत्पन्न कहां से किया ?

(ईसाई) मट्टो से बनाया ।

(समीक्षक) मट्टो कहा से बनाई ?

(ईसाई) अपनी कुदरत अर्थात् सामर्थ्य से ।

(समीक्षक) ईश्वर का सामर्थ्य अनादि है या नहीं ?

(ईसाई) अनादि है ।

(समीक्षक) जब अनादि है तो जगत् का कारण सनातन हुआ फिर अभाव से भाव क्यों मानते हो ?

(ईसाई) सृष्टि के पूर्व ईश्वर के बिना कोई पस्तु नहीं था ।

(समीक्षक) जो कहाँ था तो वह जगत् कहा से बना ? और ईश्वर का सामर्थ्य द्रव्य है या गुण ? जो द्रव्य है तो ईश्वर से निज दूसरा पदार्थ और जो गुण है तो गुण से द्रव्य बना नहीं जा सकता, जैसे स्वयं प्रकाश और रस से जल नहीं बन सकता और जो ईश्वर से जगत् बना होता है ईश्वर के स्वयं गुण, कर्म, स्वभाववाला होता, उसके गुण, कर्म, स्वभाव

मैं हममें से एक की नाईं हुआ और अब ऐसा न होवे कि वह अपना हाथ ठेके और जीवन के पेड़ में से भी लेकर खावे और अमर हो जाय सो अपने आदम को निकाल दिया और अदन की चारी की पूव ओर करो तम चमकते हुए सड़ग जो चारों ओर घूमते थे, लिये हुए ठहराये जिनसे तम के पेड़ के मार्ग की रखवाली करें। पर्व ० ३ । आ० २२, २४ ॥

(समीक्षक) भला ! ईश्वर को ऐसी ईर्ष्या और भ्रम क्यों हुआ कि ज्ञान में हमारे तुल्य हुआ ? क्या यह बुरी बात हुई ! यह शङ्का हा क्यों पनी ? क्योंकि ईश्वर के तुल्य कभी कोई नहीं हो सकता, परन्तु इस लेख से यह भी सिद्ध हो सकता है कि वह ईश्वर नहीं था किन्तु मनुष्य विशेष था, बाइबल में जहा कहीं ईश्वर की बात आती है वहां मनुष्य के तुल्य ही लिखी जाती है, अब देखो ! आदम के ज्ञान की बढ़ती में ईश्वर कितना दुःख हुआ और फिर अमर वृक्ष के फल खाने में कितनी ईर्ष्या की, और प्रथम जब उसको चारी में रखवा तब उसको भविष्यत् का ज्ञान नहीं था कि इससे पुनः बिछालना पड़ेगा इसलिये ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ नहीं था और चमकते सड़ग का पहिरा रखवा, यह भी मनुष्य का काम है, ईश्वर का नहीं ॥ १ ॥

६—और कितने दिनों के पीछे यों हुआ कि काइन भूमि के फलों में से परमेश्वर के लिये भेंट लाया ॥ और हाबिल भी अपनी गुच्छ * में से पहिलौठी और मोटी २ भेंट लाया और परमेश्वर ने हाबिल और उसकी भेंट का आदर किया परन्तु काइन का, उसकी भेंट का आदर न किया इसलिये काइन अति कुपित हुआ और अपना गुह फुलाया ॥ तब परमेश्वर ने काइन से कहा कि तू क्या क्रुद्ध है और तब मुँह क्यों फूल गया ॥ तौ० पर्व ४ आ० ३ ४, ५, ६ ॥

(समीक्षक) यदि ईश्वर मासाहारी न होता तो भेंट की भेंट और हाबिल का स्तकार और काइन का तथा उसकी भेंट का तरस्कार क्यों करता ? और ऐसा झगड़ा लगान और हाबिल के गुप्पु का कारण ना ईश्वर ही हुआ और जैसे आपस में मनुष्य लग एक दूसरे से घर्ते करते हैं वेन ही इसाइया ६ ईश्वर की बातें हैं । बगावत में जाना जाना उपका बनाना भी मनुष्यों का धर्म है, इसमें विवाद होता है कि यह साइनल मनुष्यों का बनाई है ईश्वर की नहीं ॥ ९ ॥

१०—जब परमेश्वर ने काइन से कहा तब नाद हाबिल कहा ६

* नट बनाया के अर्थ ।

कुछ दया नहीं और मांस के खाने में आतुर रहे वह बिना हिंसक
 और के ईश्वर कभी हो सकता है ? और ईश्वर के साथ दो मनुष्य न
 होने कौन थे ? इससे विदित होता है कि जगली मनुष्यों की एक मडली
 उनका जो प्रधान मनुष्य था उसका नाम बाइबल में ईश्वर रक्खा होगा
 जो बातों से बुद्धिमान् लोग इनके पुस्तक को ईश्वरकृत नहीं मान सकते
 और न ऐसे को ईश्वर समझते हैं ॥२०॥

२१—और परमेश्वर ने अबिरहाम से कहा कि सर, क्यों यह कहके
 दुखलाई कि जो मैं बुद्धिया हूँ, सचमुच बालक जन्मी क्या परमेश्वर के
 लिये कोई बात असाध्य है ॥ तौ० पर्व १८ । आ० १३। १४ ॥

(समीक्षक) अब देखिये ! कि क्या ईसाइयों के ईश्वर की लीला कि
 जो बड़े वा छियों के समान चिड़ता और ताना मारता है । । । ॥२१॥

२२—तब परमेश्वर ने सद्ममूरा पर गन्धक और आग परमेश्वर की
 ओर से वर्षाया । और उन नगरों को और सारे चौगान को और नगरों के
 सारे निवासियों को और जो कुछ भूमि पर उगता था उलटा दिया ॥
 तौ० उत्तर० पर्व० १९ । आ० २४, २५ ॥

(समीक्षक) अब यह भी लीला बाइबल के ईश्वर की देखिये ! कि जिस
 को गालक आदि पर भी कुछ दया न आई । क्या वे सब ही अपराधी थे जो
 सब भी भूमि उलटा के दवा मारा ? यह बात न्याय, दया और विवेक से
 विरुद्ध है । जिनका ईश्वर ऐसा काम करे ठनक उपासक क्यों न करें ? ॥२२॥

२३—आजो हम अपने पिता का दाख रस पिलावें और हम उसके
 साथ शयन करें कि हम अपने पिता से वश चलावे । तब उन्होंने उस
 रात अपने पिता को दाख रस पिलाया और पहिलोटी गई और अपने
 पिता के साथ शयन किया । हम उसे आज रात भी दाख रस पिलावे
 जाके शयन कर । सोलह वीं दोनों बैठिया अपने पिता से गनिणी हुई ।
 तौ० उत्तर० पर्व १९ आ० ॥ ३२, ३३, ३४, ३६ ॥

(समीक्षक) देखिये ! पिता पुत्री ना जिस मद्य पान के नरो ने
 दुर्म करने से न बच सके ऐसे दुष्ट मद्य को जा ईसाई आदि पान ह
 उनकी बुराई वा क्या पारावार है ? देखिये सन्तान लाना को नध क
 निने का नाम भी न लेना चाहिये ॥२३॥

२४—आज अपने बहने के समान परमेश्वर ने सर से नेट किया
 और अपने घबन के समान परमेश्वर ने सरा क विषय ने किया । और

देखिये और मेरे अंदर के मांस में से खाइये जिसने आपका प्राण मुझे
 वापस दे ॥ तो० उत्प० पर्व २७ । आ० ९, १०, १५, १६, १९ ॥

(समीक्षक) देखिये ! ऐसे झूठ कपट से आशीर्वाद ले के पश्चात् सिद्ध
 और पैगम्बर बनते हैं क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है ? और ऐसे ईसाइयों
 का गुवा हुए हैं पुनः इनके मत की गढ़बढ़ में क्या न्यूनता हो ? ॥ ३० ॥

३१—और यभकूब विहान को तड़के उठा और उस पत्थर को जिसे
 अपने अपना उसीसा किया था खम्भा खड़ा किया और उस पर तेल
 ला । और उस स्थान का नाम बैतएल रक्खा ॥ और यह पत्थर जो मैंने
 रक्खा खड़ा किया ईश्वर का घर होगा ॥ तो० उत्प० पर्व० २८ । आ०
 ५, १९, २२ ॥

(समीक्षक) अब देखिये ! जद्गलियों के काम, इन्होंने पत्थर पूजे और
 पाये और इसको मुसलमान लोग “बयतलमुकद्दस” कहते हैं । क्या
 पत्थर ईश्वर का घर और उसी पत्थरमात्र में ईश्वर रहता था ? वाह !
 वाह ! वाह जी क्या कहना है, ईसाई लोगो ! महाबुत्परस्त तो तुम्हीं हो ॥ ३१ ॥

३२—और ईश्वर ने राखिल को स्मरण किया और ईश्वर ने उसकी
 सुनी और उसकी कोख को खोला और वह गर्भिणी हुई और बेटा जनी और
 बोली कि ईश्वर मेरी निन्दा कर किई ॥ तो० उत्प० पर्व ३० । आ० २२, २३ ॥

(समीक्षक) वाह ईसाइयों के ईश्वर ! क्या बड़ा डाक्टर है, रिय्यों
 की कोख खोलने को कौन से शस्त्र व औपध थे जिनसे खोली, ये सब घातों
 अधाधुन्य की हैं ॥ ३२ ॥

३३—परन्तु ईश्वर आरामी लावनक ने स्वप्न में रात को आया और
 उसे कहा कि चौकस रह, तू ईश्वर यभकूब को भला पुरा मत कह, क्योंकि
 अपने पिता के घर जा निपट अभिलाषी है, तुने किसलिय मेरे देवों को
 पुराया है ॥ तो० उत्प० पर्व ३१ । आ० २४, ३० ॥

(समीक्षक) यह हम नमूना लिखते हैं । हजारों मनुष्यों को स्वप्न में
 आया, घातें किई, जागृत साक्षात् मिला, खाया, पिया, आया, गया आदि
 हाइपल में लिखा है परन्तु अब न जाने यह ए वा नहीं ? क्योंकि जब
 किसी को स्वप्न व जागृत में भी ईश्वर नहीं मिलता और वह भी विदित
 है कि ये जद्गल लोग पापाणादि भूतिया वी दय मानपर पूजत थे,
 परन्तु ईसाइयों का ईश्वर भी पत्थर ही को देव मानता है, नहीं तो देवों
 को पुराना कैसे पटे ? ॥ ३३ ॥

बन होगया ? नहीं तो समुद्र के बीच में से चारों ओर के रेलगाड़ियों की बरक बनवा लेते जिससे सब ससार का उपकार होता और नाव आदि बनाने का धर्म छूट जाता । परन्तु क्या किया जाय, ईसाइयों का ईश्वर न जाने कहां छिप रहा है ? इत्यादि बहुत सी मूसा के साथ असम्भव लीला गढ़वठ के ईश्वर ने की हैं परन्तु यह विदित हुआ कि जैसा ईसाइयों का धर्म है वैसे ही उसके सेवक और ऐसी ही उसकी बनाई पुस्तक है । ऐसी पुस्तक और ऐसा ईश्वर हम लोगों से दूर रहे तभी अच्छा है ॥ ४० ॥

४१—क्योंकि मैं परमेश्वर तेरा ईश्वर ज्वलित, सर्वशक्तिमान् हूँ, तबों के अपराध का दण्ड उनके पुत्रों को जो मेरा वैर रखते हैं उनकी पत्नी और चौथी पीढ़ी लों देवैया हूँ ॥ तौ० या० प० २० आ० ५ ॥

(समीक्षक) भला यह किस घर का न्याय है कि जो पिता के साथ से ४ पीढ़ी तक दण्ड देना अच्छा समझना । क्या अच्छे पिता के दुष्ट और दुष्ट के अच्छे सन्तान नहीं होते ? जो ऐसा है तो चौथी पीढ़ी तक दण्ड कैसे दे सकेगा ? और जो पाचवों पीढ़ी से आगे दुष्ट होगा उसको दण्ड न दे सकेगा, विना अपराध किसी को दण्ड देना अन्यायकारी माना जाता है ॥ ४१ ॥

४२—विश्राम के दिन को उसे पवित्र रखने के लिये स्मरण कर ॥ छ दिन लों तू परिश्रम कर ॥ ओर सातवा दिन परमेश्वर तेरे ईश्वर का विश्राम है । परमेश्वर ने विश्राम दिन को आशीर्वाद दी ॥ तौ० या० प० १० । आ० ८, ९, १०, ११ ॥

(समीक्षक) क्या रविवार एक ही पवित्र और ६ दिन अपवित्र है ? और क्या परमेश्वर ने छ दिन तक बड़ा परिश्रम किया था कि जिससे एक के सातवें दिन सो गया ? और जो रविवार को आशीर्वाद दिया तो सोमवार आदि छ दिनों को क्या दिया ? अर्थात् शाप दिया होगा । ऐसा विद्वान् का भी नहीं तो ईश्वर का क्योंकर हो सकता है ? नला रवि-वार में क्या गुण और सोमवार आदि ने क्या दोष किया था कि जिससे एक पवित्र तथा पर दिया और अन्यो को ऐसे ही अपवित्र कर दिने ? ॥ ४२ ॥

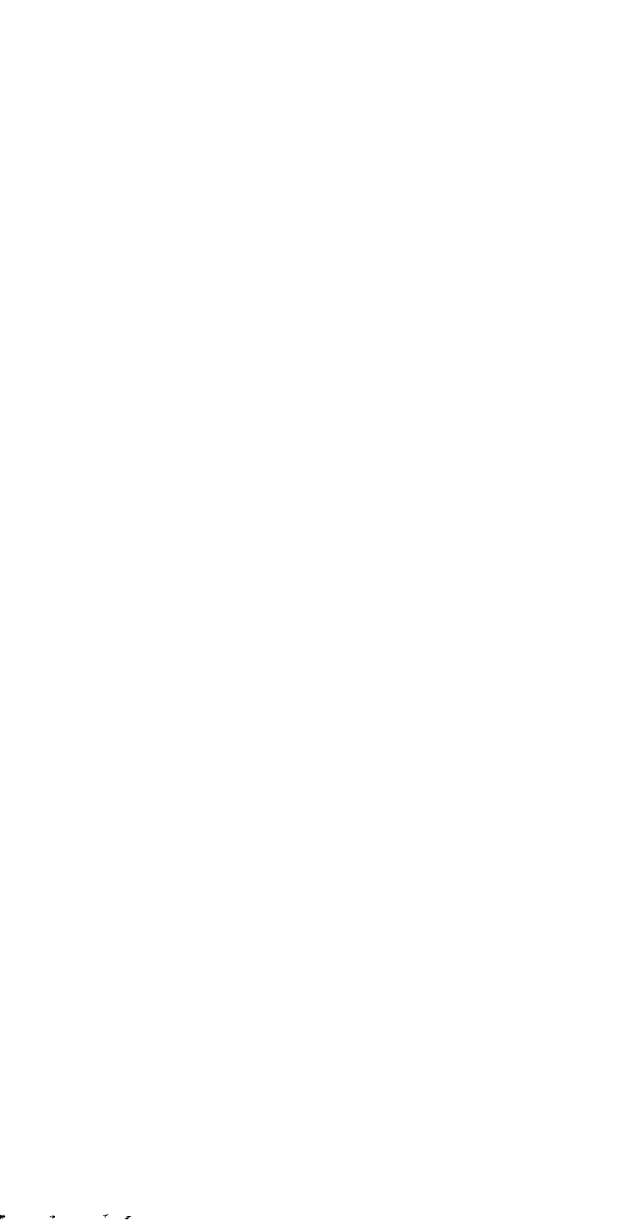
४३—अपने परोसी पर शर्ती साक्षी मत दे ॥ अपन परोसा परी और उसके दास, उसकी दासी और उसके बेटे और उसके भ्रातृहो और किसी पस्तु का जो तेरे परोसी की है एलख मन पर ॥ तौ० या० २० । आ० १६, १७ ॥

(समीक्षक) वाहजी ! वाह !! यदि ऐसा है तो इनके अभ्यक्ष अर्थात् आयाधीश तथा सेनापति आदि पाप करने से क्यों डरते होंगे ? आप तो यथेष्ट पाप करें और प्रायश्चित्त के बड़े में गाय, बछिया, बकरे आदि के प्राण लेवें वही तो ईसाई लोग किसी पशु वा पक्षी के प्राण लेने में शक्ति नहीं होते। सुनो ईसाई लोगो ! अब तो इस जङ्गली मत को छोड़ के सुसभ्य धर्ममय वेदमत को स्वीकार करो कि जिससे तुम्हारा कल्याण हो ॥ ५१ ॥

५२—और यदि उसे भेड़ लाने की पूंजी न हो तो वह अपने किये हुए अपराध के लिये दो पिंडुकियां और कपोत के दो बच्चे परमेश्वर के लिये लावे ॥ और उसका शिर उसके गले के पास से मरोड़ डाले परन्तु बलग न करे। उसके किये हुए पाप का प्रायश्चित्त करे और उसके लिये क्षमा कर दिया जायगा पर यदि उसे पिंडुकिया और कपोत के दो बच्चे लाने की पूंजी न हो तो सेर भर चोखा पिसान का दशवां हिस्सा पाप की नोट के लिये लावे उस पर तेल न डाले ॥ और वह क्षमा किया जायगा ॥ गी० ले० प० ५। आ० ७, ८, १०, ११, १२, १३ ॥

(समीक्षक) अब सुनिये। ईसाइयों में पाप करने से कोई धनाढ्य भी न डरता होगा और न दरिद्र, क्योंकि इनके ईश्वर ने पापों का प्रायश्चित्त करना सहज कर रक्खा है, एक यह बात ईसाइयों की बाइबल में

इस ईश्वर का धन्य है कि जिसने बछड़ा, भेड़ी और बकरी का बच्चा, कपोत और पिसान [आटे] तक लेन का नियम किया। अद्भुत बात तो यह है कि कपोत के बच्चे “गरदन मरोटवा के” लेता था अर्थात् गर्दन तोड़ने का परिश्रम न करना पड़े। इन सब बातों का देखने से विदित होगा है कि जंगलियों में कोई चतुर पुरुष या बड़े पहाड़ पर जा बैठा और अपने को ईश्वर प्रसिद्ध किया, जो जङ्गला अशानी थे उन्होंने उसी को ईश्वर स्वीकार कर लिया। अपनी युक्तियों से बड़े पहाड़ पर ही खाने के लिये पशु, पक्षी और अर्थात् भोजन लिया करता था और भोजन करता था। उसके दूत प्रद्विष्ट काम किया करते थे। सज्जन लोग बिचार कि कहाँ ता बाइबल में बछड़ा, भेड़ी, बकरी का बच्चा, कपोत और ‘अच्छे’ पिसान का खाने वाला ईश्वर और बड़ा सन्तानपति, सर्वज्ञ, अजन्मा, निराकार, सर्वशक्तिमान् और न्यायकारी ईश्वर आदि उक्त उक्त वेदोक्त ईश्वर ?



मारा है। तब शैतान ने उत्तर देकर परमेश्वर से कहा कि चाम के लिए हाथ जो मनुष्य का है सो अपने प्राण के लिये देगा। परन्तु अब तब हाथ बढ़ा और उसके हाड मांस को छू तब वह निःसन्देह तुझे तेरे प्राणने त्यागेगा, तब परमेश्वर ने शैतान से कहा कि देख वह तेरे हाथ में केवल उसके प्राण को बचा। तब शैतान परमेश्वर के आगे से चला और ऐयूब को शिर से तलवे लों बुरे फोड़ों से मारा ॥ ज़बूर ऐयू० १॥ आ० १, २, ३, ४, ५, ६, ७ ॥

(समीक्षक) अब देखिये ! ईसाइयो के ईश्वर का सामर्थ्य कि शैतान उसके सामने उसके भक्तों को दुःख देता है, न शैतान को दण्ड न अपने भक्तों को बचा सकता है। और न दूतों में से कोई उसका सामना कर सकता है। एक शैतान ने सबको भयभीत कर रक्खा है और ईसाइयों का ईश्वर भी सर्वज्ञ नहीं है जो सर्वज्ञ होता तो ऐयूब की परीक्षा शैतान से क्यों कराता ? ॥ ५८ ॥

उपदेश की पुस्तक ।

५९—हा मेरे अन्तःकरण ने बुद्धि और ज्ञान बहुत देखा है और मैंने बुद्धि और बौद्धान और मूढ़ता जानने को मन लगाया, मैंने जान लिया कि यह भी मन का शंखट है। क्योंकि अधिक बुद्धि में बड़ा शोक है और जो ज्ञान में बढ़ता है सो दुःख में बढ़ता है ॥ ज० उ० प० १, आ० ६, १७, १८ ॥

(समीक्षक) अब देखिये ! जो बुद्धि और ज्ञान पर्यायवाची हैं उनको मानते हैं और बुद्धि-वृद्धि में शोक और दुःख मानना बिना अविद्वानों ऐसा लेख कौन कर सकता है ? इसलिये यह बाइबल ईश्वर की बनाई क्या किसी विद्वान् की भी बनाई नहीं है ॥ ५९ ॥

यह थोड़ासा तौरत ज़बूर के विषय में लिखा, इसके आगे कुछ मत्तीरचित आदि इज़ील के विषय में लिखा जाता है कि जिसको ईसाई बहुत प्रमाणभूत मानते हैं जिसका नाम इज़ील रक्खा है उसकी शिक्षा थोड़ीसी लिखते हैं कि यह कैसी है।

मत्तीरचित इज़ील ।

६०—यीशु खीष्ट का जन्म इस रीति से हुआ। उसकी माता मरियम यूसुफ से मंगनी हुई थी, पर उनके इच्छा होने के पहिले हाथ

जाता है। तब शैतान ने उत्तर देकर परमेश्वर से कहा कि चाम के लिए हाथ जो मनुष्य का है सो अपने प्राण के लिये देगा। परन्तु भयाना हाथ बढ़ा और उसके हाड मांस को छु तब वह निःसन्देह तुझे तेरे जलने त्यागेगा, तब परमेश्वर ने शैतान से कहा कि देख वह तेरे हाथ में केवल उसके प्राण को बचा। तब शैतान परमेश्वर के आगे से चला और ऐयूब को शिर से तलवे लों बुरे फोड़ों से मारा ॥ जबूर ऐयू० २॥ आ० १, २, ३, ४, ५, ६, ७ ॥

(समीक्षक) अब देखिये ! ईसाइयो के ईश्वर का सामर्थ्य किान उसके सामने उसके भक्तों को दुःख देता है, न शैतान को दण्ड अपने भक्तों को बचा सकता है। और न दूतों में से कोई उसका सामना कर सकता है। एक शैतान ने सबको भयभीत कर रक्खा है और ईसाइयों ईश्वर भी सर्वज्ञ नहीं है जो सर्वज्ञ होता तो ऐयूब की परीक्षा शैतान क्यों कराता ? ॥ ५८ ॥

उपदेश का पुस्तक ।

५९—हा मेरे अन्तःकरण ने बुद्धि और ज्ञान बहुत देखा है और मैंने दे और बौहापन और मूढ़ता जानने को मन लगाया, मैंने जान लिया यह भी मन का झंझट है। क्योंकि अधिक बुद्धि में बड़ा शोक है और जो ज्ञान में बढ़ता है सो दुःख में बढ़ता है ॥ ज० उ० प० १, आ० १६, १७, १८ ॥

(समीक्षक) अब देखिये ! जो बुद्धि और ज्ञान पर्यायवाची हैं उनको जो मानते हैं और बुद्धि-बुद्धि में शोक और दुःख मानना बिना भविष्यज्ञों के ऐसा लेख कौन कर सकता है ? इसलिये यह बाइबल ईश्वर की बनाई की क्या किसी विद्वान् की भी बनाई नहीं है ॥ ५९ ॥

यह थोड़ासा तौरत ज़बूर के विषय में लिखा, इसके आगे पुज मत्तीरचित आदि इज़ील के विषय में लिखा जाता है कि जिसकी ईसाई लोग बहुत प्रमाणभूत मानते हैं जिसका नाम इज़ील रक्खा है उसकी परीक्षा थोड़ीसी लिखते हैं कि यह कैसी है।

मत्तीरचित इज़ील ।

६०—यीशु खीष्ट का जन्म इस रीति से हुआ। उसकी माता मरि यूसुफ़ से मंगनी हुई थी, पर उनके इच्छा होने के पहिले ही य

निम को उल्टा नहीं कर सकता क्योंकि वह सर्वत्र और उसके काम
निग भूल चूक के हैं ॥ ६१ ॥

६२—उसने उन से कहा मेरे पीछे आओ मैं तुमको मनुष्यों के मनुष्ये
बान्गा, वे तुरन्त जालों की छोड़के उसके पीछे होलिये ॥ इ० प० ४ ।
भा० १९, २०, २१ ॥

(समीक्षक) विदित होता है कि इसी पाप अर्थात् जो तीरेत में
एत आशाओं में लिखा है कि (सन्तान लोग अपने माता पिता की सेवा
और माभ्य करें जिससे उनकी उमर बढ़े सो) ईसा ने न अपने माता
पिता की सेवा की और दूसरे को भी माता पिता की सेवा से छुड़ाये, इसी
अपराध से चिरंजीवी न रहा और यह भी विदिन हुआ कि ईसा ने मनुष्यों
के फसाने के लिए एक मत चलाया है कि जाल में मच्छी के समान मनुष्यों
को स्वमत में फंसाकर अपना प्रयोजन साधें । जब ईसा ही ऐसा था तो
आजकल के पादरी लोग अपने जाल में मनुष्यों को फसावें तो क्या आश्चर्य
है । क्योंकि जैसी बड़ी बड़ी और बहुत मच्छियों को जाल में फंसाने वाले
की प्रतिष्ठा और जीविका अच्छी होती है ऐसे ही जो बहुतों को अपने
मत में फंसा ले उसकी अधिक प्रतिष्ठा और जीविका होती है । इसी से ये
लोग जिन्होंने वेद और शास्त्रों को न पढ़ा न सुना उन विचारे भोले मनु-
ष्यों को अपने जाल में फसा के उसके मा बाप, कुटुम्ब आदि से पूयक
कर देते हैं इससे सब विद्वान् आर्य्यों को उचित है कि स्वयं इनके भ्रम-
जाल से बचकर अन्य अपने भोले भाइयों के बचाने में तत्पर रहें ॥ ६३ ॥

६३—तब यीशु सारे गालील देश में उनकी सभाओं में उपदेश
कता हुआ और राज्य का सुसमाचार प्रचार करता हुआ और लोगों में
हर एक रोग और हर व्याधि को चला करता हुआ फिरा किया । सब
रोगियों को जो नाना प्रकार के रोगों और पीड़ाओं से दुःखी थे और भूत-
प्रत्तों और सृगीवाले और अर्द्धाङ्गियों को उस पास छाये और उसने चला
किया ॥ इ० म० प० ४ । आ० २३, २४, २५ ॥

(समीक्षक) जैसे आजकल पोपलीला निकालने, मन्त्र, पुरश्चरण
आशोर्वाद बीज और भस्म की चुटुकी देने से भूतों को निष्काटना रोगों को
छुड़ाना सच्चा हो तो वह इसील की बात भी सच्ची होवे । इस कारण भोले
मनुष्यों को भ्रम में फंसाने के लिये ये बातें हैं । जो ईसाई लोग ईसा की
बातों को मानते हैं वो यहाँ के देवी ओषों की बातें क्यों नहीं मानते







क ही बाप होता है । अनुमान है कि मुसलमानों ने जो एक को
 अर्थात् बहिषत में मिलती है लिखा है सो यहीं से लिया होगा ॥७०॥
 ७०—भोर को जब यह घर को फिर जाता था तब उसको भूख लगी
 मार्ग में एक गूलर का वृक्ष देख के वह उसके पास आया परन्तु उसमें
 कुछ न पाया केवल पत्ते और उसको कहा तुझ में फिर कभी फल न
 इसपर गूलर का पेड़ तुरन्त सूख गया । इ० म० प० २१। आ० १८, १९०
 (समीक्षक) सय पादरी लोग ईसाई कहते हैं कि वह बड़ा शान्त शमा-
 और क्रोधादि दोषरहित था, परन्तु इस बात को देखने से ज्ञात होता
 कि ईसा क्रोधी और क्रतु के ज्ञानरहित था और वह जगली मनुष्यपन
 लभावुक्त वर्त्तता था । भला जो वृक्ष जड़ पदार्थ है उसका क्या अपराध
 कि उसको शाप दिया और वह सूख गया ? इसके शाप से तो न सूखा
 किन्तु कोई ऐसी औषधि डालने से सूख गया हो तो आश्चर्य नहीं ॥७०॥
 ७१—उन दिनों क्लेश के पीछे तुरन्त सूर्य अधियारा हो जायगा और
 अपनी ज्योति न देगा तारे आकाश से गिर पड़ेंगे और आकाश की
 ना डिग जायगी ॥ इ० म० प० २४ । आ० २६ ॥

(समीक्षक) वाहजी ईसा ! तारों को किस विद्या से गिर पड़ना अपने
 आकाश और आकाश की सेना कौनसी है जो डिग जायेगी ? जो कभी ईसा
 बोदी भी विद्या पढ़ता तो अवश्य जान लेता कि तारे सब भूगोल हैं
 क्योंकि गिरेंगे इससे विदित होता है कि ईसा बड़ई के कुल में उत्पन्न हुआ
 था, सदा लकड़े चीरने, छीलना, काटना और जोड़ना करता रहा होगा ।
 जब तरङ्ग उठी कि मैं भी इस जंगली देश में पैगम्बर हो सकूंगा, बातें करने
 लगा, कितनी बातें उसके मुख से अच्छी भी निकलीं और बहुत सी घुरी,
 बहा के लोग जङ्गली थे, मान बैठे । जैसा आजकल यूरोप देश उन्नतिगुप्त है
 वैसे पूर्व होता तो इसकी सिद्धाई कुछ भी न चलती । अब कुछ विद्या हुए
 पश्चात् भी व्यवहार के पेच और हठ से इस पोलमत को न छोड़ कर सर्वथा
 सत्य वेदमार्ग की ओर नहीं झुकते, यही इनमें न्यूनता है ॥७१॥

७२—आकाश और पृथिवी टल जायेंगे परन्तु मेरी बातें कभी न
 टूटेंगी ॥ इ० म० प० २४ । आ० ३५ ॥

(समीक्षक) यह भी बात अविद्या और मूर्खता की है भला आकाश
 टिलकर कहां जायगा । जब आकाश अतिसूक्ष्म होने से नेत्र से दीखता नहीं तो
 इसका टिलना कौन देख सकता है ? और अपने मुख से अपनी बड़ाई

करेगा यह कहना केवल अविद्या की बात है और इससे यह भी कि जितने ईसाई धनाढ्य हैं क्या वे सब नरक ही में जावेंगे ? सब स्वर्ग में जावेंगे ? भला तनिक सा विचार तो ईसामसीह करते जितनी सामग्री धनाढ्य के पास होती है उतनी दरिद्रों के पास यदि धनाढ्य लोग विवेक से धर्ममार्ग में व्यय करें तो दरिद्र नाश में पड़े रहें और धनाढ्य उत्तम गति को प्राप्त हो सकते हैं ॥ ७६ ॥

७७—यीशु ने उनसे कहा मैं तुमसे सच कहता हूँ कि नई सृष्टि जब मनुष्य का पुत्र अपने ऐश्वर्य के सिंहासन पर बैठेगा तब तुम भी मेरे पीछे होलिये हो बारह सिंहासनों पर बैठा के इस्रायेल के बारह कुल का न्याय करोगे । जिस किसी ने मेरे नाम के लिये घरों वा भाइयों बहिनों वा पिता माता वा स्त्री वा लड़कों वा भूमि को त्यागा है सो सौ गुना पावेगा और अनन्त जीवन का अधिकारी होगा ॥ इ०म०प० १९।आ०२६,

(समीक्षक) अब देखिये ! ईसा के भीतर की लीला कि मेरे जा मेरे पीछे भी लोग न निकल जायँ और जिसने (३०) रुपये के लोभ से गुरु को पकड़ मरवाया वैसे पापी भी इसके पास सिंहासन पर बैठेंगे इस्रायेल के कुल का पक्षपात से न्याय ही न किया जायगा किन्तु सब गुणः माफ और अन्य कुलों का न्याय करेंगे । अनुमान होता है इसी ईसाई लोग ईसाइयों का बहुत पक्षपात कर किसी गोरे ने काले को मर दिया हो तो भी बहुधा पक्षपात से निरपराधी कर छोड़ देते हैं । ऐसा ईसा के स्वर्ग का भी न्याय होगा और इससे बड़ा दोष आता है, क्योंकि एक सृष्टि की आदि में मरा और एक क़यामत की रात के निकट मर एक तो आदि से अन्त तक आशा ही में पड़ा रहा कि कब न्याय होगा दूसरे का उसी समय न्याय होगया यह कितना बड़ा अन्याय है । और नरक में जायगा सो अनन्त कालतक नरक भोगे और जो स्वर्ग में जायगा वह सदा स्वर्ग भोगेगा यह भी बड़ा अन्याय है, क्योंकि अन्तवाले साध और कर्मों का फल अन्तवाला होना चाहिये और तुल्य पाप वा पुण्य जीवों का भी नहीं हो सकता इसलिये तारतम्य से अधिक न्यून सुख दुःख वाले अनेक स्वर्ग और नरक हों तभी सुख दुःख भोग सकते हैं, सो ईसाइयों के पुस्तक में कहीं व्यवस्था नहीं, इसलिये यह पुस्तक ईश्वरकृत ईसा ईश्वर का वेदा कभी नहीं हो सकता । यह बड़े अनर्थ की बात है कि कदापि किसी के मा बाप सौ सौ नहीं हो सकते किन्तु एक की एक म

एक ही बाप होता है । अनुमान है कि मुसलमानों ने जो एक को
११ बियां बहिमत में मिलती हैं लिया है सो यहीं से लिया होगा ॥००॥

७८—भोर को जब वहम घर को फिर जाता था तब उसको भूख लगी
और मार्ग में एक गूलर का वृक्ष देख के वह उसके पास आया परन्तु उसमें
कौन कुछ न पाया केवल पत्ते और उसको कहा तुझ में फिर कभी फल न
होगे, इसपर गूलर का पे : तुरन्त सूख गया । इ० म० प० २१ । आ० १८, १९॥

(समीक्षक) सब पादरी लोग ईसाई कहते हैं कि वह बड़ा शान्त शमा-
न्त और क्रोधादि दोषरहित था, परन्तु इस बात को देखने से ज्ञात होता
है कि ईसा क्रोधी और ऋतु के ज्ञानरहित था और वह जंगली मनुष्यपन
के स्वभावयुक्त वृत्तता था । भला जो वृक्ष जड़ पदार्थ है उसका क्या अपराध
था कि उसको शाप दिया और वह सूख गया ? इसके शाप से तो न सूखा
होगा किन्तु कोई ऐसी औषधि डालने से सूख गया हो तो आश्चर्य नहीं ॥७८॥

७९—उन दिनों क्लेश के पीछे तुरन्त सूर्य अधियारा हो जायगा और
गद अपनी ज्योति न देगा तारे आकाश से गिर पड़ेंगे और आकाश की
भा डिग जायगी ॥ इ० म० प० २४ । आ० २६ ॥

(समीक्षक) वाहजी ईसा ! तारों को किस विद्या से गिर पड़ना आपने
माना और आकाश की सेना कौनसी है जो डिग जायेगी ? जो कभी ईसा
तोही भी विद्या पढ़ता तो अवश्य जान लेता कि तारे सब भूगोल हैं
बाँकर गिरेंगे इससे विदित होता है कि ईसा बढ़ई के कुल में उत्पन्न हुआ
।, सदा लकड़े चीरने, छीलना, काटना और जोड़ना करता रहा होगा ।
जब तरह उठी कि मैं भी इस जंगली देश में पैगम्बर हो सकूंगा, बातें करने
होगा, कितनी बातें उसके मुख से अच्छी भी निकलीं और बहुत सी पुरी,
बाह के लोग जङ्गली थे, मान बैठे । जैसा आजकल यूरोप देश उन्नतिगुप्त है
वैसा पूर्व होता तो इसकी सिद्धाई कुछ भी न चलती । अब कुछ विद्या हुए
पश्चात् भी व्यवहार के पेच और हठ से इस पोल मत को न छोड़ कर सर्वथा
सत्य वेदमार्ग की ओर नहीं झुकते, यही इनमें न्यूनता है ॥७९॥

८०—आकाश और पृथिवी टल जायेंगे परन्तु मेरी बातें कभी न
टकेंगी ॥ इ० म० प० २४ । आ० ३५ ॥

(समीक्षक) यह भी बात अविद्या और मूर्खता की है भला आकाश
टलकर कहाँ जायगा । जब आकाश अतिसूक्ष्म होने से नेत्र से दीखता नहीं तो
इसका टिलना कौन देख सकता है ? और अपने मुख से अपनी पढ़ाई

करना अच्छे मनुष्यों का काम नहीं ॥८०॥

८१—तब वह उनसे जो बाईं ओर है कहेगा हे स्नापित लोग ! मे पास से उस अनन्त भाग में जाओ जो शैतान और उसके दूतों के लिए तैयार की गई है । इ० म० प० २५ । आ० ४१ ॥

(समीक्षक) भला यह कितनी बड़ी पक्षपात की बात है जो भ्रष्ट शिष्य हैं उनको स्वर्ग और जो दूसरे हैं उनको अनन्त भाग में गिराना परन्तु जब आकाश ही न रहेगा तो अनन्त भाग नरक बहिश्त कहां रहेगी जो शैतान और उसके दूतों को ईश्वर न बनाता तो इतनी नरक की तैयारी क्यों करनी पड़ती ? और एक शैतान ही ईश्वर के भय से न डरा तो वह ईश्वर ही क्या है । क्योंकि उसी का दूत होकर वागी हो गया और ईसा उसको प्रथम ही पकड़कर बन्दीगृह में न डाल सका, न मार सका, पुन उसकी ईश्वरता क्या जिसने ईसा को भी चालीस दिन दुःख दिया ? ईसा ने उसका कुछ न कर सका तो ईश्वर का वेटा होना व्यर्थ हुआ, इसलिये ईसा ईश्वर का न वेटा और न बाइबल का ईश्वर, ईश्वर हो सकता है ॥ ८१ ॥

८२—तब बारह शिष्यों में से एक यहूदाह इसकरियोती नाम एक शिष्य प्रधान याजकों के पास गया और कहा जो मैं यीशु को आप लोगों के हाथ पकड़वाऊं तो आप लोग मुझे क्या देंगे । उन्होंने उसे तीस रुपये देने को ठहराया ॥ इ० म० प० २६ । आ० १४, १५ ॥

(समीक्षक) अब देखिए ! ईसा की सब करामात और ईश्वरता यहां खुल गई, क्योंकि जो उसका प्रधान शिष्य था वह भी उसके साक्षात् संग से पवित्रात्मा न हुआ तो औरों को वह मरे पीछे पवित्रात्मा क्या कर सकेगा ? और उसके विश्वासी लोग उसके भरोसे में कितने ठगाये जाते हैं क्योंकि जिसने साक्षात् सम्बन्ध में शिष्य का कुछ कल्याण न किया वह मरे पीछे किसी का कल्याण क्या कर सकेगा ? । ८२ ॥

८३—जब वे खाते थे तब यीशु ने रोटी लेकर धन्यवाद किया और उसे तोड़ के शिष्यों को दिया और कहा लेओ, खाओ यह मेरा देह है और उसने कटोरा लेके धन्यवाद माना और उनको देके कहा तुम सब इससे पियो क्योंकि यह मेरा लोहू अर्थात् नये नियम का है ॥ इ० म० प० २६ । आ० २६, २७, २८ ॥

(समीक्षक) भला यह ऐसी बात कोई भी सम्य करेगा बिना अविद्वान् जंगली मनुष्य के, शिष्यों से खाने की चीज़ को अपने मांस और पीने की चीज़ों को लोहू नहीं कह सकता और इसी बात को आज

औरों ने थपेड़े मार के कहा हे सीष्ट ! हमसे भविष्यत्वाणी बोल किसे
तुझे मारा । पितरस बाहर अंगने में बैठा था और एक दासी उस पा
आके बोली तू भी यीशु गालीली के सङ्ग था उसने सभी के सामने मु
के कहा, मैं नहीं जानता तू क्या कहती । जब वह बाहर डेवड़ी में गया त
दूसरी दासी ने उसे देख के जो लोग वहां थे उनसे कहा यह भी यी
नासरी के सङ्ग था । उसने क्रिया खाके फिर मुकरा कि मैं उस मनु
को नहीं जानता हूँ । तब वह धिक्कार देने और क्रिया खाने लगा कि मैं उ
मनुष्य को नहीं जानता हूँ ॥ इ० म० प० २६ । आ० ४७, ४८, ४९,
५०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७४।

(समीक्षक) अब देख लीजिये कि जिसका इतना भी सामर्थ्य था
प्रताप नहीं था कि अपने चेले को दृढ़ विश्वास करा सके और वे चे
चाहे प्राण भी क्यों न जाते तो भी अपने गुरु को लोभ से न पकड़ाते, न
मुकरते, न मिथ्याभाषण करते, न झूठी क्रिया खाते और ईसा भी कुछ का
माती नहीं था, जैसा तौरेत में लिखा है कि लूत के घर पर पादुनों को बहुत
से मारने को चढ़ आये थे, वहां ईश्वर के दो दूत थे उन्होंने उन्हीं को अ
कर दिया । यद्यपि यह भी बात असम्भव है तथापि ईसा में तो इतना म
सामर्थ्य न था और आजकल कितना बढ़ावा उसके नाम पर ईसाइयों ने
बढ़ा रखा है, भला ऐसी दुर्दशा से मरने से आप स्वयं जूझ वा समाधि
चढ़ा अथवा किसी प्रकार से प्राण छोड़ता तो अच्छा था परन्तु वह युद्धिनि
विद्या के कहां से उपस्थित हो । वह ईसा यह भी कहता है कि ॥८५॥

८६—मैं अभी अपने पिता से विनती नहीं करता हूँ और वह मेरे पास
स्वर्गदूतों की बारह सेनाओं से अधिक पहुंचा न देगा ॥ इ० म० प० २६ आ० ५३

(समीक्षक) धमकाता भी जाता अपनी और अपने पिता की बढ़ाई भी
करता जाता पर कुछ भी नहीं कर सकता, देखो आश्चर्य की बात । जब महा
याजक ने पूछा था कि ये लोग तेरे विरुद्ध साक्षी देते हैं इसका उत्तर दे तो
ईसा चुप रहा, यह भी ईसा ने अच्छा न किया, क्योंकि जो सच था वह वहाँ
अवश्य कह देता तो भी अच्छा होता । ऐसी बहुत सी अपने घमण्ड की बाँध
करनी उचित न थीं और जिन्होंने ईसा पर झूठा दोष लगाकर मारा उनको
भी उचित न था क्योंकि ईसा का उस प्रकार का अपराध नहीं था जैसा
उसके विषय में उन्होंने किया, परन्तु वे भी तो ज़ग़ली थे, न्याय की बातों
को क्या समझें ? यदि ईसा झूठ मूढ़ ईश्वर का चेष्टा न बनता और वे ठह

क्या ऐसी उराई न घटते तो दोनों के लिये उत्तम काम था, परन्तु
हनी विद्या धर्मात्मता और न्यायशीलता कहा से लावें ? ॥ ८६ ॥

८७—यीशु अभ्यक्ष आगे खड़ा हुआ और अभ्यक्ष ने उससे पूछा
तू यहूदियों का राजा है, यीशु ने उससे कहा आप ही तो कहते हैं ।
प्रधान याजक और प्राचीन लोग उस पर दोष लगाते थे तब उसने
उत्तर नहीं दिया तब पिलात ने उससे कहा क्या तू नहीं सुनता कि वे
लोग तेरे विरुद्ध कितनी साक्षी देते हैं । परन्तु उसने एक बात का भी
उत्तर न दिया वहा लों कि अभ्यक्ष ने बहुत अचम्भा किया, पिलात
ने उनसे कहा तो मैं यीशु से जा स्वीष्ट कहावता है क्या करू, सभी ने
उससे कहा वह क्रूस पर चढ़ाया जावे और यीशु को कोड़े मार के क्रूस
पर चढ़ा जाने को सौंप दिया । तब अभ्यक्ष के योधायों ने यीशु को
अभ्यक्ष भवन में लेजाके सारी पलटन उस पास इकट्ठी की और उन्होंने
उसका वस्त्र उतार के उसे लाल बागा पहिराया और काटों का मुकुट गूँथ
के उसके शिर पर रक्त्ता और उसके दाहिने हाथ पर नर्कट दिया और
उसके आगे घुटने टेक के यह कहके उसे ठठा किया हे यहूदियों के राजा
प्रणाम और उन्होंने उस पर थूँका और उस नर्कट को ले उसके शिर पर
मारा । जब वे उससे ठठा कर चुके तब उससे वह बागा उतार के मसी
का वस्त्र पहिरा के उसे क्रूस पर चढ़ाने को ले गये । जब वे एक स्थान
पर जो 'गलगथा' अर्थात् खोपड़ी का स्थान कहाता है पहुँचे तब उन्होंने
सिरके में पित्त मिला के उसे पीने को दिया परन्तु उसने चीख के पीना
न चाहा, तब उन्होंने उसे क्रूस पर चढ़ाया और उन्होंने उसका दोपपत्र
उसके शिर के ऊपर लगाया तब दो डाकू एक दाहिनी ओर और दूसरा
बाई ओर उसके संग क्रुशों पर चढ़ाये गये । जो लोग उधर से आते जाते
थे उन्होंने अपने शिर हिला के और यह कह के उसकी निन्दा की हे मंदिर
के दाहिने द्वारे अपने को बचा, जो तू ईश्वर का पुत्र है तो क्रूस पर से
उतर आ । इसी रीति से प्रधान याजकों ने भी अभ्यापकों और प्राचीनों
के संगियों ने ठठा कर कहा उसने औरों को बचाया अपने को बचा नहीं
सकता है । जो यह इज्जयायेल का राजा है तो क्रूस पर से अब उतर जावे
और हम उसका विश्वास करेंगे । यह ईश्वर पर भरोसा रखता है यदि
ईश्वर उसको चाहता है तो उसको अब बचावे क्योंकि उसने कहा मैं
ईश्वर का पुत्र हूँ । जो डाकू उसके संग चढ़ाये गये उन्होंने भी इसी रीति

से उसकी निन्दा की । दो प्रहर से तीसरे प्रहर लॉ सारे देश में अन्धकार हो गया, तीसरे प्रहर के निकट यीशु ने बड़े शब्द से पुकार के कहा "ऐली एलीलामा सबकनी" अर्थात् हे मेरे ईश्वर, हे मेरे ईश्वर नूने क्यों मुझे त्यागा है । जो लोग वहां खड़े थे उनमें से कितनों ने यह सुनके कहा वह एलियाह को बुलाता है, उनमें से एक ने तुरन्त दौड़ के इसपंज लेके सिर्के में भिगोया और नल पर रख के उसे पीने को दिया तब यीशु ने फिर बड़े शब्द से पुकार के प्राण त्यागा ॥ इ० म० प० २७ । आ० ११, १२, १३, १४, १२, २३, २४, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ३३, ३४, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५० ॥

(समीक्षक) सर्वथा यीशु के साथ उन दुष्टों ने बुरा काम किया । परन्तु यीशु का भी दोष है, क्योंकि ईश्वर का न कोई पुत्र न वह किसी का बाप है, क्योंकि जो वह किसी का बाप होवे तो किसी का श्वसुर, दयाला, सम्बन्धी आदि भी होवे, और जब अध्यक्ष ने पूछा था तब जैसा सच था उत्तर देना था और यह ठीक है कि जो २ आश्चर्य कर्म प्रथम किये हुए सच होते तो अब भी क्रूश पर से उतर कर सबको अपने शिष्य बना लेता और जो वह ईश्वर का पुत्र होता तो ईश्वर भी उसको बचा लेता जो वह त्रिकालदर्शी होता तो सिर्के में पित्त मिले हुए को चील के क्यों छोड़ता वह पहिले ही से जानता होता और जो वह करामाती होता तो पुकार पुकार के प्राण क्यों त्यागता ? इससे जानना चाहिये कि चाहे कोई कितनी ही चतुराई करे परन्तु अन्त में सच सच और झूठ झूठ हो जाता है, इससे यह भी सिद्ध हुआ कि यीशु उस समय के जद्गली मनुष्यों में कुछ अच्छा था, न वह करामाती, न ईश्वर का पुत्र और न विद्वान् था क्योंकि जो ऐसा होता तो ऐसा वह दुःख क्यों भोगता ? ॥८७॥

८८—और देखो बड़ा भूदंडोल हुआ कि परमेश्वर का एक दूत उतरा और आके ऋवर के द्वार पर से पत्थर लुढ़का के उस पर बैठा । वह यहां नहीं है जैसे उसने कहा वैसे जी उठा है । जब वे उसके शिष्यों को सदेन देने को जाती थीं देखो यीशु उनसे आमिला, कहा कल्याण हो और उन्होंने निकट आ उसके प्रांज पकड़ के उसको प्रणाम किया, तब यीशु ने कहा मत डरो, जाके मेरे भाइयों से कहदो कि वे गालील को जावें और वहां वे मुझे देखेंगे, ग्यारह शिष्य गालील को उस परबत पर गये जो यीशु ने उन्हें बताया था । और उन्होंने उसे देव के उसको प्रणाम किया

(समीक्षक) यह बात मचीरचित में नहीं है इसलिये ये सार्क्ष विगड़ गये । क्योंकि साक्षी एक से होने चाहियें और ईसा चतुर और करामती होता तो (हेरोद को) उत्तर देता और करामात भी दिखलाता इससे विदित होता है कि ईसा में विद्या और करामात कुछ भी न थी ॥९॥

योदनरचित सुसमाचार ।

६२—आदि में वचन था और वचन ईश्वर के संग था और वचन ईश्वर था । वह आदि में ईश्वर के संग था । सब कुछ उसके द्वारा सृजा गया और जो सृजा गया है कुछ भी उस विना नहीं सृजा गया । उसमें जीवन था और वह जीवन मनुष्यों का उजियाला था ॥ प० १। आ० १, २, ३, ४

(समीक्षक) आदि में वचन विना वक्ता के नहीं हो सकता और जो वचन ईश्वर के संग था तो कहना व्यर्थ हुआ और वचन ईश्वर कभी नहीं हो सकता क्योंकि जब वह आदि में ईश्वर के संग था तो पूर्व वचन वा ईश्वर था यह नहीं घट सकता, वचन के द्वारा सृष्टि कभी नहीं हो सकती, जबतक उसका कारण न हो और वचन के विना भी चुपचाप रह कर कर्त्तासृष्टि कर सकता है, जीवन किस में था क्या था इस वचन से जीव अनादि मानोगे, जो अनादि है तो आदम के नथुनों में श्वास फूटना श्रुत हुआ और क्या जीवन मनुष्यों हो का उजियाला है पशवादि का नहीं ॥९॥

६३—और बियारी के समय में जब शैतान शिमोन के पुत्र यिहुदा इस्करियोती के मन में उसे पकड़वाने का मत डाल चुका था ॥ यो० १३ । आ० २ ॥

(समीक्षक) यह बात सच नहीं क्योंकि जब कोई ईसाईयों से पूछेगा कि शैतान सत्र को बहकाता है तो शैतान को कौन बहकाता है, जो कहो शैतान आप से आप बहकाता है तो मनुष्य भी आप से आप बहक सकते हैं पुनः शैतान का क्या काम और यदि शैतान का बनाने और बहकाने वाला परमेश्वर है तो वही शैतान का शैतान ईसाईयों का ठहरा, परमेश्वर ही ने सबको उसके द्वारा बहकाया, भला ऐसे काम के हो सकते हैं ? सच तो यही है कि यह पुस्तक ईसाईयों का और ईसा ईश्वर का बेटा जिन्होंने बनाये वे शैतान हों तो हों किन्तु न यह ईश्वर-कृत पुस्तक, न इनमें कहा ईश्वर और न ईसा ईश्वर का बेटा हो सकता है । ९३ ॥

९४—तुम्हारा मन व्याकुल न होवे, ईश्वर पर विश्वास करो और सुख पर विश्वास करो । मेरे पिता के घर में बहुत से रहने के स्थान हैं

में कुछ भी देर न होगी । ईसाइयों से पूछना चाहिये क्या ईश्वर की आजकल वन्द है ? और न्याय का काम भी नहीं होता, न्यायाधीश निकल बैठे हैं ? तो कुछ भी ठीक २ उत्तर न दे सकेंगे और इनका ईश्वर बहक जाता है, क्योंकि इनके कहने से झट इनके शत्रु से पलटा लेने लगता है । दंशिले स्वभाववाले हैं कि मरे पीछे स्ववैर लिया करते हैं, शान्ति कुछ भी न और जहां शान्ति नहीं वहां दुःख का क्या पारावार होगा ॥ १०२ ॥

१०३—और जैसे बड़ी बयार से हिलाये जाने पर गूलर के बूझ उसके कच्चे गूलर झड़ते हैं तैसे आकाश के तारे पृथिवी पर गिर पड़े और आकाश पत्र की नाई जो लपेटा जाता है अलग हो गया ॥ यो० ३ प्र० २१ आ० १३, १४ ॥

(समीक्षक) अब देखिये योहन भविष्यद्वक्ता ने जब विद्या नहीं है तभी ऐसी अण्डबण्ड कथा गाई, भला तारे सब भूगोल हैं, एक पृथिवी पर कैसे बिखर सकते हैं ? और सूर्यादि का आकर्षण उनको इधर उधर क्यों आने जाने दे और क्या आकाश को चटाई के समान समझता है ? यह आकाश सा पदार्थ नहीं है जिसको कोई लपेटे वा इकट्ठा कर सके, इसलिये योहन भाग्य सब जङ्गली मनुष्य थे, उनको इन बातों की क्या खबर ? ॥ १०३ ॥

१०४—मैंने उनकी संख्या सुनी, इस्त्राएल के सन्तानों के समस्त कुल में से एक लाख चवालीस सहस्र पर छाप दी गई, यहूदा के कुल में बारह सहस्र पर छाप दी गई ॥ यो० ३ प्र० ७ । आ० ४, ५ ॥

(समीक्षक) क्या जो बाइबल में ईश्वर लिखा है वह इस्त्राएल आदि कुल का स्वामी है वा सब संसार का ? ऐसा न होता तो उन्हीं जङ्गलियों का सा क्यों देता ? और उन्हीं का सहाय करता था, दूसरे का नाम निशान भी नहीं लेता, इससे वह ईश्वर नहीं और इस्त्राएल कुलादि के मनुष्यों पर छाप लगाना अल्पज्ञता अथवा योहन की मिथ्या कल्पना है ॥ १०४ ॥

१०५—इस कारण वे ईश्वर के सिंहासन के आगे हैं और उसके मन्दिर में रात दिन उसकी सेवा करते हैं ॥ यो० ३ प्र० ५० ७ । आ० १५ ॥

(समीक्षक) क्या यह महाबुद्धिहीन नहीं है ? अथवा उनका ईश्वर देहधारी मनुष्य तुल्य एकदेशी नहीं है ? और ईसाइयों का ईश्वर रात में सोता भी नहीं है, यदि सोता है तो रात में पूजा क्यों कर करते होंगे ? तथा उसकी नोंद भी उठजाती होगी और जो रात दिन जागता हो तो विक्षिप्त वा अतिरोगी होगा ॥ १०५ ॥

(समीक्षक) भला इतने घोड़े स्वर्ग में कहां ठहरते, कहां चरते कहां रहते और कितनी लीढ़ करते थे ? और उसका दुर्गन्ध भी स्व कितना हुआ होगा ? बस ऐसे स्वर्ग, ऐसे ईश्वर और ऐसे मत के लिए सब आर्य्यों ने तिलाञ्जलि दे दी है । ऐसा बखेडा ईसाइयों के शिर भी सर्वशक्तिमान् की कृपा से दूर हो जाय तो बहुत अच्छा हो ॥ १०

११०—और मैंने दूसरे पराक्रमी दूत को स्वर्ग से उतरते देखा मेघ को ओढ़े था और उसके शिर पर मेघ, धनुष था और उसका सूर्य की नाई और उसके पांव आग के खम्भों के ऐसे थे । और अपना दाहिना पांव समुद्र पर और बायां पृथिवी पर रखता ॥ यो० पा० १० । आ० १, २, ३ ॥

(समीक्षक) अब देखिये इन दूतों की कथा जो पुराणों वा की कथाओं से भी बढ़कर है ॥ ११० ॥

१११—और लग्नी के समान एक नकट मुझे दिया गया और बताया गया कि उठ ईश्वर के मन्दिर को और वेदी और उसमें के भजन का शारों को नाप ॥ यो० प्र० प० ११ । आ० १ ॥

(समीक्षक) यहां तो क्या परन्तु ईसाइयों के तो स्वर्ग में भी ममि बनाये और नापे जाते हैं । अच्छा है उनका जैसा स्वर्ग है वैसी ही है, इसलिये यहां प्रभुभोजन में ईसा के शरीरावयव मांस लोडू की भाँव करके खाते पीते हैं और गिर्जा में भी क्रूश आदि का आकार बनाना भी कुपरस्ती है ॥ १११ ॥

११२—और स्वर्ग में ईश्वर का मन्दिर खोला गया और उसके निच का संदूक उसके मंदिर में दिखाई दिया ॥ यो० प्र० प० ११ । आ० ११

(समीक्षक) स्वर्ग में जो मन्दिर है सो हर समय बन्द रहता हो कभी २ खोला जाता होगा, क्या परमेश्वर का भी कोई मन्दिर हो सकता है ? जो वेदोक्त परमात्मा सर्वव्यापक है उसका कोई भी मन्दिर नहीं सकता । हां ईसाइयों का जो परमेश्वर आकारवाला है उसका चाहे स्वर्ग हो, चाहे भूमि में हो और जैसी लीला टटन पू पू की यदा होती है वही ईसाइयों के स्वर्ग में भी । और नियम का संदूक भी कभी कभी ईसा लोग देतते होंगे, उससे न जाने क्या प्रयोजन सिद्ध करते होंगे, सब यह है कि ये सब बातें मनुष्यों को लुभाने की है ॥ ११२ ॥

११३—और एक बड़ा आश्चर्य स्वर्ग में दिखाई दिया अर्थात् एक

जगत् में शैतान का जितना राज्य है उसके सामने सहस्रांश भी ईसाइयों के ईश्वर का राज्य नहीं, इसीलिये ईसाइयों का ईश्वर उसे हटा नहीं सकता होगा, इससे यह सिद्ध हुआ कि जैसा इस समय के राज्याधिकारी ईसाइयों डाकू चोर आदि को शीघ्र दण्ड देते हैं वैसा भी ईसाइयों का ईश्वर नही पुनः कौन ऐसा निर्बुद्धि मनुष्य है जो वैदिकमत को छोड़ कपोलकल्पित ईसाइयों का मत स्वीकार करे ? ॥ ११५ ॥

११६—हाय पृथिवी और समुद्र के निवासियो ! क्योंकि शैतान तुम पास उतरा है ॥ यो० प्र० प० १२ । आ० १२ ॥

(समीक्षक) क्या वह ईश्वर वहीं का रक्षक और स्वामी है ? पृथिवी मनुष्यादि प्राणियों का रक्षक और स्वामी नहीं है ? यदि भूमि का भी राजा तो शैतान को क्यों न मार सका ? ईश्वर देखता रहता और शैतान बहकता फिरता है तो भी उसको वर्जित नहीं, विदित तो यह होता है कि एक अच्छा ईश्वर और एक समर्थ दुष्ट दूसरा ईश्वर हो रहा है ॥ ११६ ॥

११७—और ययालीस मास लों युद्ध करने का अधिकार उसे मिल गया । और उसने ईश्वर के विरुद्ध निन्दा करने का अपना मुंह खोला । उसके नाम का ओर उसके तंबू की ओर स्वर्ग में वास करनेहारों की निन्दा करे । और उसको यह दिया गया कि पवित्र लोगों से युद्ध करे और गैरों पर जय करे और हर एक कुल और भाषा और देश पर उसको अधिकार दिया गया ॥ यो० प्र० प० १३ । आ० ५, ६, ७ ॥

(समीक्षक) भला जो पृथिवी के लोगों को बहकाने के लिये शैतान और पशु आदि को भेजे और पवित्र मनुष्यों से युद्ध करावे वह का ब्राह्मणों के सदाँर के समान है वा नहीं ? ऐसा काम ईश्वर के भक्तों को नहीं हो सकता ॥ ११७ ॥

११८—और मैंने दृष्टि की और देखो मेझा सियोन पर्वत पर सत्ता । और उसके संग एक लाख चवालीस सहस्र जन थे जिनके माथे पर उसका नाम और उसके पिता का नाम लिखा है ॥ यो० प्र० प० १४ । आ० ११ ॥

(समीक्षक) अब देखिये जहां ईसा का बाप रहता था वहीं उस सियोन पहाड़ पर उसका लड़का भी रहता था परन्तु एक लाख चवालीस सहस्र मनुष्यों की गणना क्योंकर की ? एक लाख चवालीस सहस्र स्वर्ग के वासी हुए । दोष करोड़ों ईसाइयों के शिर पर न मोहर लगी । क्या ये सब नरक में गये ? ईसाइयों को चाहिये कि सियोन पर्वत पर

वह ईश्वरता का क्या काम कर सकता है ? नहीं नहीं नहीं, और इसी प्रकरण में दूतों की बड़ी २ असंभव बातें लिखी हैं, उनको सत्य कोई नहीं मान सकता, कहाँ तक लिखें इस प्रकरण में सर्वथा ऐसी ही बातें भरी हैं ॥ १२१ ॥

१२२—और ईश्वर ने उसके कुकर्मों को स्मरण किया है । जैसा तुम्हें उसने दिया है तैसा उसको भर देखो और उसके कर्मों के अनुसार दूना उसे दे देओ ॥ यो० प्र० प० १८ । आ० ५, ६ ॥

(समीक्षक) देखो प्रत्यक्ष ईसाइयों का ईश्वर अन्यायकारी है क्योंकि 'न्याय' उसी को कहते हैं कि जिसने जैसा वा जितना कर्म किया उसको वैसा और उतना ही फल देना, उससे अधिक न्यून देना 'अन्याय' है । जो अन्यायकारी की उपासना करते हैं वे अन्यायकारी क्यों न हों ॥ १२२ ॥

१२३—क्योंकि मेझे का विवाह आपहुंवा है और उसकी स्त्री ने अपने को तैयार किया है ॥ यो० प्र० प० १९ । आ० ७ ॥

(समीक्षक) अब सुनिये ! ईसाइयों के स्वर्ग में विवाह भी होते हैं । क्योंकि ईसा का विवाह ईश्वर ने वही किया, पूछना चाहिये कि उसके श्वसुर, सासु, शालादि कौन थे और लडके वाले कितने हुए ? और बीयों के नाश होने से बल, बुद्धि, पराक्रम, आगु आदि के भी न्यून होने से अब तक ईसा ने वहाँ शरीर त्याग किया होगा क्योंकि संयोगजन्य पदार्थ का वियोग अवश्य होता है, अवतक ईसाइयों ने उसके विश्वास में धोखा खाया और न जाने कबतक धोखे में रहेंगे ॥ १२३ ॥

१२४—और उसने अजगर को अर्थात् प्राचीन साँप को जो दियाबल और शैतान है पकड़ के उसे सहस्र वर्षलों बांध रक्खा । और उसको अथाह कुण्ड में डाला और बन्द करके उसे छापदी जिससे वह जबलों सहस्र वर्ष पूरे न हों तबलों फिर देशों के लोगों को न भरमावे ॥ यो० प्र० प० २० । आ० २, ३ ॥

(समीक्षक) देखो मरुं मरुं करके शैतान को पकड़ा और सहस्र वर्ष तक बन्द किया फिर भी छूटेगा, क्या फिर न भरमावेगा ? ऐसे दुष्ट तो बन्दोगृह में ही रखना वा मारे बिना छोड़ना ही नहीं । परन्तु यह शैतान का होना ईसाइयों का भ्रममात्र है, वास्तव में कुछ भी नहीं, केवल लोगों को उरा के अपने जाल में लाने का उपाय रचा है । जैसे किसी भूत ने किसी भोले मनुष्यों से कहा कि चलो तुमको देवता का दर्शन कराऊ, किसी एकान्त देश में लेजा के एक मनुष्य को चतुर्भुज बनाकर रक्खा, साक्षी में खड़ा करके कहा कि आँख मीच लो, जय मैं कहूँ तब खोलना और फिर

कान्त की थी, दूसरी नीलमणि की, तीसरी लालड़ी की, चौथी मरकत की, पांचवी गोमेदरु की, छठवी माणिक्य की, सातवीं पीतमणि की, आठवीं पेरोज की, नवीं पुखराज की, दसवीं लहसनिये की, एग्यारहवीं धूम्रकान्त की, बारहवीं मर्दोप की और बारह फाटक बारह मोती थे, एक एक मोती से एक एक फाटक बना था और नगर की सड़क स्वच्छ काच के ऐसे निर्मल साने की थी ॥ यो० प्र० प० २१ । आ० १६, १७, १८, १९, २०, २१॥

(समीक्षक) सुनो ईसाइयों के स्वर्ग का वर्णन ! यदि ईसाई मरते जाते और जन्मते जाते हैं तो इतने बड़े शहर में कैसे समा सकेंगे ? क्योंकि उसमें मनुष्यों का आगम होता है और उससे निकलते नहीं और जो यह बहुमूल्य रत्नों की बनी हुई नगरी मानी है और सर्व सोने की है इत्यादि लेख केवल भोले भोले मनुष्यों को बहकाकर फँसाने की लीला है । भला लम्बाई चौड़ाई तो उस नगर की लिखी सो हो सकती परन्तु ऊंचाई साढ़े सातसौ कोश क्योंकर हो सकती है ? यह सर्वथा मिथ्या कपोल-कल्पना की बात है और इतने बड़े मोती कहां से आये होंगे ? इस लेख के लिखने वाले के घर के घड़े में से, यह गपोड़ा पुराण का भी बाप है ॥ १२७॥

१२८—और कोई अपवित्र वस्तु अथवा घिनित कर्म करनेहारा अथवा झूठ पर चलने हारा इसमें किसी रीति से प्रवेश न करेगा ॥ यो० प्र० प० २० । आ० २७ ॥

(समीक्षक) जो ऐसी बात है तो ईसाई लोग क्यों कहते हैं कि पापी लोग भी स्वर्ग में ईसाई होने से जा सकते हैं ? यह ठीक बात नहीं है । यदि ऐसा है तो योहन्ना स्वप्ने की मिथ्या बातों का करने हारा स्वर्ग में प्रवेश कभी न करसका होगा और ईसा भी स्वर्ग में न गया होगा क्योंकि जब अकेला पापी स्वर्ग को प्राप्त नहीं हो सकता तो जो अनेक पापियों के पाप के भार से युक्त है वह क्योंकर स्वर्गवासी हो सकता है ? ॥ १२८ ॥

१२९—और अब कोई श्राप न होगा और ईश्वर का और मेम्ने का सिंहासन उसमें होगा और उसके दास उसकी सेवा करेंगे और ईश्वर का देखेंगे और उसका नाम उनके माथे पर होगा और वहां रात न होगी और उन्हें दीपक का अथवा सूर्य की ज्योति का प्रयोजन नहीं क्योंकि परमेश्वर ईश्वर उन्हें ज्योति देगा, वे सदा सर्वदा राज्य करेंगे । यो० प्र० प० २२ । आ० ३, ४, ५ ॥

(समीक्षक) देखिये यही ईसाइयों का स्वर्गवास ! क्या ईश्वर और

अनुभूमिका (४)

जो यह १४ चवदहवां समुदास मुसलमानों के मतविषय में लिखा है सो केवल कुरान के अभिप्राय से, अन्य ग्रन्थ के मत से नहीं, क्योंकि मुसलमान कुरान पर ही पूरा पूरा विश्वास रखते हैं। यद्यपि फिरकेशने के कारण किसी शब्द अथ आदि विषय में विरुद्ध बात है तथापि कुरान पर सब ऐकमत्य है। जो कुरान अर्वा भाषा में है उस पर मौलवियों ने उर्दू में अर्थ लिखा है, उस अर्थ का देवनागरी अक्षर और आख्यभाषान्तर कराके पश्चात् अर्वा के बड़े बड़े विद्वानों से शुद्ध करवाके लिखा गया है यदि कोई कहे कि यह अर्थ ठीक नहीं है तो उसको उचित है कि मौलवी साहबों के तर्जुमों का पहिले खण्डन करे पश्चात् इस विषय पर लिखे। क्योंकि यह लेख केवल मनुष्यों की उन्नति और सत्यासत्य के निर्णय के लिये सब मतों के विषयों का थोड़ा थोड़ा ज्ञान होवे इससे मनुष्यों को परस्पर विचार करने का समय मिले और एक दूसरे के दोषों का खण्डन कर गुणों का ग्रहण करें, न किसी अन्य मत पर, न इस मत पर झूठ मूठ बुराई वा भलाई लगाने का प्रयोजन है किन्तु जो जो भलाई है वही भलाई और जो बुराई है वही बुराई सब को विदित होवे, न कोई किसी पर झूठ चला सके और न सत्य को रोक सके और सत्यासत्य विषय प्रकाशित किये पर भी जिसकी इच्छा हो वह न माने वा माने, किसी पर बलात्कार नहीं किया जाता और यही सज्जनों की रीति है कि अपने वा पराये दोषों को दोष और गुणों का गुण जान कर गुणों को ग्रहण और दोषों का त्याग करें और दृष्टियों का दृष्ट दुराग्रह न्यून करें करावें क्योंकि पक्षपात से क्या क्या अनर्थ जगत् में न हुए और न होते हैं। सच तो यह है कि इस अनिष्ट क्षणभङ्ग जीवन में पराई हानि कर के लाभ से स्वयं रिक्त रहना और अन्य को रखना मनुष्यपन से बहिः है। इस में जो कुछ विरुद्ध लिखा गया हो उसको सज्जन लोग विदित कर देंगे, तत्पश्चात् जो उचित होगा तो माना जायगा क्योंकि यह लेख दृष्ट, दुराग्रह, द्वेष, वादविवाद विरोध घटाने के लिये किया गया है न कि इनको बढ़ाने के अर्थ, कि एक दूसरे की हानि करने से पृथक् रह परस्पर को लाभ पहुंचाना। मुख्य काम है। अब यह चौदहवें समुदास में मुसलमानों का मत-विषय सब सज्जनों के सामने निवेदन करता हूँ विचार कर दृष्ट का ग्रहण अनिष्ट का परित्याग कीजिये ॥

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वय्येषु ॥ इत्यनुभूमिका ॥

तो क्या पापियों पर भी क्षमा करेगा ? और जो वैसा है तो आगे लिखेंगे कि “काफिर को फ़तल करो” अर्थात् जो कुरान और पैगम्बर को न मानें वे काफिर हैं ऐसा क्यों कहता ? इसलिये कुरान ईश्वरकृत नहीं दीखता ॥२॥

३—मालिक दिन न्याय का ॥ तुझ ही को हम भक्ति करते हैं और तुझ ही में सहाय चाहते हैं ॥ दिखा हमको सीधा रास्ता ॥ मं० १ । सि० १ । सू० १ आ० ३, ४, ५ ॥

(समीक्षक) क्या खुदा नित्य न्याय नहीं करता ? किसी एक दिन न्याय करता है ? इससे तो अन्धेर विदित होता है ! उसी की भक्ति करना और उसीसे सहाय चाहना तो ठीक, परन्तु क्या बुरी बात का भी सहाय चाहना ? और सूधा मार्ग एक मुसलमानों ही का है वा दूसरे का भी ? सूधे मार्ग को मुसलमान क्यों नहीं ग्रहण करते ? क्या सूधा रास्ता बुराई की ओर का तो नहीं चाहते ? यदि भलाई सब की एक है तो फिर मुसलमानों ही में विशेष कुछ न रहा और जो दूसरों की भलाई नहीं मानते तो पक्षपाती हैं ॥ ३ ॥

४—उन लोगों का रास्ता कि जिन पर तूने निआमत की और उनका मार्ग मत दिखा कि जिनके ऊपर तूने गज़ब अर्थात् अत्यन्त क्रोध की दृष्टि की और न गुमराहों का मार्ग हमको दिखा ॥ मं० १ । सि० १ । सू० १ । आ० ६, ७ ॥

(समीक्षक) जब मुसलमान लोग पूर्वजन्म और पूर्वकृत पाप पुण्य नहीं मानते तो कहीं पर निआमत अर्थात् फ़जल वा दया करना और किन्हीं पर न करने से खुदा पक्षपाती हो जायेगा, क्योंकि विना पाप पुण्य सुख दुःख देना केवल अन्याय की बात है और विना कारण किसी पर दया और किसी पर क्रोधदृष्टि करना भी स्वभाव से बहिः है । वह दया अथवा क्रोध नहीं कर सकता और जब उनके पूर्व संचित पुण्य पाप ही हैं तो किसी पर दया और किसी पर क्रोध करना नहीं हो सकता ।

इस सूरत की टिप्पन “यह सूरः अल्लाह साहेब ने मनुष्यों के मुख कहलाई कि सदा इस प्रकार से कहा करें” जो यह बात है तो “अल्लिफ़ आदि अक्षर खुदा ही ने पढ़ाये होंगे, जो कहो कि विना अक्षर ज्ञान के इस सूर को कैसे पढ़ सके क्या कंठ ही से बुलाए और बोलते गये ? जो ऐसा है तो सब कुरान ही कंठ से पढ़ाया होगा, इससे ऐसा सम्भव चाहिये कि जिस पुस्तक में पक्षपात की बातें पाई जायें वह पुस्तक ईश्वर-

क्या ईसाई और मुसलमान ही खुदा की शिक्षा पर हैं उनमें कोई भी पापी नहीं है ? क्या ईसाई और मुसलमान अधर्मी हैं, वे भी खुदका पाप और दूसरे धर्मात्मा भी न पावें तो बड़े अन्याय और अन्धे की बात नहीं है ? ॥ ४ ॥ और क्या जो लोग मुसलमानी मत को न मानें उन्हों को काफिर कहना यह एकतरफा डिगरी नहीं है ? ॥ जो परमेश्वर ही ने उनके भन्तःकरण और कानों पर मोहर लगाई और उसीसे वे पाप करते हैं तो उनका कुछ भी दोष नहीं, यह दोष खुदा ही का है फिर उन पर सुख दुःख वा पाप पुण्य नहीं हो सकता, उनको सज़ा क्यों करता है ? क्योंकि उन्होंने पाप वा पुण्य स्वतन्त्रता से नहीं किया ॥ ५ ॥

६—उनके दिलों में रोग है अल्लाह ने उनका रोग बढ़ा दिया ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ९ ॥

(समीक्षक) भला बिना अपराध खुदा ने उनका रोग बढ़ाया, क्या न आई, उन विचारों को बढ़ा दुःख हुआ होगा ! क्या यह शैतान से बढ़ कर शैतानपन का काम नहीं है ? किसी के मन पर मोहर लगाना, किसी का रोग बढ़ाना खुदा का काम नहीं हो सकता, क्योंकि रोग का बढ़ाना अपने पापों से है ॥ ६ ॥

७—जिसने तुम्हारे वास्ते पृथिवी बिछौना और आसमान की छत को बनाया ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० २१ ॥

(समीक्षक) भला आसमान छत किसी की हो सकती है ? यह अविद्या की बात है आकाश को छत के समान मानना हंसी की बात है यदि किसी प्रकार की पृथिवी को आसमान मानते हो तो उनके घर की बात है ॥ ७ ॥

८—जो तुम उस वस्तु से सन्देह में हो जो हमने अपने पैगम्बर के ऊपर उतारी तो उस कैसी एक सूरत ले आओ और अपने साक्षी लोगों को पुकारो अल्लाह के बिना तुम सच्चे हो जो तुम ॥ और कभी न कोगे तो हम आग से डरो कि जिसका इन्धन मनुष्य है और काफिरों के वास्ते तैयार किये गये हैं ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० २२, २३ ॥

(समीक्षक) भला यह कोई बात है कि उसके सदृश कोई सूरत न बने ? क्या अकरर बादशाह के समय में मौलवी फ़ैजी ने बिना मुक़द्दमे का कुरान नहीं बना लिया था ! वह कौनसी दोषपूर्ण की भाग है ? क्या हम आग से न डरना चाहिये ? इसका भी इन्धन जो कुछ पड़े सब है । जैवे कुरान में लिखा है कि काफिरों के वास्ते पत्थर तैयार किये गये हैं

विद्वान् नहा मान सकता और न ऐसा अभिमान करता । क्या ऐसी बात से हा खुदा अपनी सिद्धाई जमाना चाहता है ? हा, जंगली लोगों में कैंसा ही पाखण्ड चला लेवे चल सकता है, सभ्यजनों में नहीं ॥ १०

११—जब हमने फरिश्तों से कहा कि घावा आदम को दण्डवत् क देवा सभों ने दण्डवत् किया परन्तु शैतान ने न माना और अभिमान कि क्योंकि वो भी एक काफिर था ॥ म० १ । सि० १ । सू २ । आ० ३२

(समीक्षक) इससे खुदा सर्वज्ञ नहीं अर्थात् भूत, भविष्यत् और वर्तमान की पूरी बातें नहीं जानता जो जानता, हो तो शैतान को पैदा । क्यों किया और खुदा में कुछ तज नहीं है क्योंकि शैतान ने खुदा का हुक्म ही न माना और खुदा उसका कुछ भी न कर सका ! और देखिए एक शैतान काफिर ने खुदा का भी छुफा छुड़ा दिया तो मुसलमानों कथनानुसार भिन्न जहा क्रोधों काफिर है वहां मुसलमानों के खुदा और मुसलमानों की क्या चल सकती है ? कभी कभी खुदा भी किसी का रोयदा देता, किसी को गुमगाह कर देता है, खुदा ने ये बातें शैतान सीखी होगी और शैतान ने खुदा से, क्योंकि बिना खुदा के शैतान क उस्ताद और कोई नहीं हो सकता ॥ ११ ॥

१२—हमने कहा कि जो आदम तू और तेरी जोरु बहिश्त में रा कर आनन्द में जहा चाहो खाओ परन्तु मत समीप जाओ उस वृक्ष के कि पापी हो जाओगे । शैतान ने उनको डिगाया कि और उनको बहिश्त के आनन्द से खोदिया तब हमने कहा कि उतरो तुम्हारे में कोई परस्पर शत्रु है, तुम्हारा ठिकाना पृथिवी है और एक समय तक लाभ है, आदम अपने मालिक की कुछ बातें सीख कर पृथिवी पर आगया ॥ म० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ३३, ३४, ३५ ॥

(समीक्षक) अब देखिये खुदा की अल्पज्ञता, अभी तो स्वर्ग में रहने का आशीर्वाद दिया और पुन थोड़ी देर में कहा कि निकलो । जो भविष्यत् बातों को जानता होता तो वर ही क्यों देता ? और बहकानेवाले शैतान को दण्ड देने में असमर्थ भी दीव्य पड़ता है और वह वृक्ष किसके लिये उत्पन्न किया था ? क्या अपने लिये या दूसरे के लिये ? जो दूसरे के लिये तो क्यों रोका ? इसलिये ऐसी बातें न खुदा की और न उसके बनाये पुस्तक में हो सकती हैं । आदम साइये खुदा से मिलनी बातें सीख आये ? और जब पृथिवी पर आदम साइये आये तब किस प्रकार आये ? क्या यह बहिश्त पहाक

कैसे बा आकाश पर ? उससे कैसे उतर आये ? अथवा पक्षी के तुल्य भये अथवा जैसे ऊपर से पत्थर गिर पड़े । इसमें यह विदित होता है कि जब आदम सादेव मट्टी से बनाये गये तो इनके स्वर्ग में भी मट्टी होगी । और जितने वहा और हैं वे भी वैसे ही फरिश्ते आदि होंगे क्योंकि मट्टी के शरीर बिना इन्द्रिय भोग नहीं हो सकता । जब पार्थिव शरीर है तो मृत्यु भी अवश्य होनी चाहिये, यदि मृत्यु होता है तो वे वहां से कहां जाते हैं ? और मृत्यु नहीं होता तो उनका जन्म ही नहीं हुआ । जब जन्म है तो मृत्यु अवश्य ही है । यदि ऐसा ही है तो कुरान में लिखा है कि बीबिया सदैव बहिस्त में रहती हैं तो झूठा हो जायगा क्योंकि उनका भी मृत्यु अवश्य होगा । जब ऐसा है तो बहिस्त में जानेवालों का भी अवश्य मृत्यु होगा ॥ १२ ॥

१३—उस दिन से डरो कि जब कोई जीव किसी जीव से भरोसा न रखेगा, न उसकी सिफारिश स्वीकार की जावेगी, न उससे बदला लिया जावेगा और न वे सहाय पावेंगे ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ४६ ॥

(समीक्षक) क्या वर्तमान दिनों में न डरें ? बुराई करने में सब दिन रतना चाहिये, जब सिफारिश न मानी जावेगी तो फिर पेगम्बर की गवाही न सिफारिश से खुदा स्वर्ग देगा यह बात क्योंकर सच हो सकेगी ? क्या इस बहिस्तवालों ही का सहायक है, दोऊखवालों का नहीं । यदि ऐसा है तो खुदा पक्षपाती है ॥ १३ ॥

१४—हमने मूसा को किताब और मोजिजे दिये ॥ हमने उनको बताया कि तुम निन्दित वन्दर हो जाओ, यह एक भय दिया जो उनके सामने और फाँटे थे उनको और शिक्षा ईमानदारों को ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ५०, ६१ ॥

(समीक्षक) जो मूसा को किताब दी तो कुरान का होना निरर्थक है और उसको आश्चर्यशक्ति दी यह वाइयल और कुरान में भी लिखा है, परन्तु यह बात मानने योग्य नहीं क्योंकि जो ऐसा होता तो अब भी होता, जो अब नहीं तो पहिले भी न था, जैसे स्वार्थी लोग आजकल भी विद्वानों के सामने विद्वान बन जाते हैं जैसे उस समय भी कपट किया होगा, क्योंकि खुदा और उसके सेवक अब भी पिछमान हैं, पुनः इस समय भी आश्चर्यशक्ति क्यों नहीं देता ? और नहीं पर सकते जो मूसा को किताब दी थी तो पुनः कुरान का देना क्या आवश्यक था क्योंकि जो बुराई बुराई करने न करे चतुर्दशसमुदास एकसा हो तो पुन निज निज पुस्तक

करने से पुनरुक्त दोष होता है । क्या मूसाजी आदि को दी हुई पुस्तकों .खुदा भूल गया था ? जो .खुदा ने निन्दित बन्दर हो जाना केवल भय देने लिये कहा था तो उसका कहना मिथ्या हुआ वा छल किया, जो ऐसी ना करता है और जिसमें ऐसी बातें हैं वह न .खुदा और न यह पुस्तक .खुदा का बनाया हो सकता है ॥ १४ ॥

१५—इस तरह .खुदा मुर्दों को जिलाता है और तुम को ॥ अपने निशानियां दिखलाता है कि तुम समझो ॥ मं० १ । सि० १, सू० २। आ० ६७ ।

(समीक्षक) क्या मुर्दों को .खुदा जिलाता था तो अब क्यों नहीं जिलाता क्या क़्यामत की रात तक क़ब्रों में पड़े रहेंगे ? आजकल दौरासुपुर्द हैं ? क्या इतनी ही ईश्वर की निशानियां हैं ? पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि निशानियां नहीं हैं ? क्या संसार में जो विविध रचनाविशेष प्रत्यक्ष दीखती हैं ये निशानियां कम हैं ! ॥ १५ ॥

१६—वे सदैव काल बहिश्त अर्थात् वैकुण्ठ में वास करनेवाले हैं । मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ७५ ॥

(समीक्षक) कोई भी जीव अनन्त [पुण्य वा] पाप करने का सामर्थ्य नहीं रखता इसलिये सदैव स्वर्ग नरक में नहीं रह सकते और जो .खुदा ऐसा करे तो वह अन्यायकारी और अविद्वान् होजावे । क़्यामत की रात न्याय होगा तो मनुष्यों के पाप पुण्य बराबर होना उचित है । जो कर्म अनन्त नहीं है उसका फल अनन्त कैसे हो सकता है ? और सृष्टि हुए सात आठ हजार वर्षों से इधर ही बतलाते हैं, क्या इसके पूर्व .खुदा निकम्मा बैठा ! और क़्यामत के पीछे भी निकम्मा रहेगा ? ये बातें सब लड़कों के समान हैं क्योंकि परमेश्वर के काम सदैव वर्तमान रहते हैं और जितने जिसके पाप पुण्य हैं उतना ही उसको फल देता है इसलिये .कुरान की यह बात सच्ची नहीं ॥ १६ ॥

१७—जब हमने तुम से प्रतिज्ञा कराई न बहाना लोहू अपने आपस के और किसी अपने आपस के घरों से न निकलना फिर प्रतिज्ञा की तुम्हें इसके तुम ही साक्षी हो । फिर तुम वे लोग हो कि अपने आपस के मार डालते हो एक-दूसरे को आप में से घरों उनके से निकाल देते हो । मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ७७, ७८ ॥

(समीक्षक) भला प्रतिज्ञा करानी और करनी अल्पशों की बात है वा परमात्मा की ! जब परमेश्वर सर्वज्ञ है तो ऐसी कदाकूट संसारी मनुष्य

की बातें सब अन्यथा हैं, भोले भाले मनुष्यों को वहकाने के लिये झूठ मू चलाती हैं, क्योंकि सृष्टिक्रम और विद्या से विरुद्ध सब बातें झूठी ही होती हैं। जो उस समय “मौजिजे” थे तो इस समय क्यों नहीं? जो इस समय नहीं तो उस समय भी न थे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥१९॥

२०—और इससे पहिले काफिरों पर विजय चाहते थे जो कुछ पति जाना था जब उनके पास वह आया झूठ काफिर हो गए काफिरों प लानत है अल्लाह की ॥ म० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ८२ ॥

(समीक्षक) क्या जैसा तुम अन्य मत वालों को काफिर कहते हैं वैसे वे तुमको काफिर नहीं कहते हैं? और उनके मत के ईश्वर की ओर से धिक्कार देत हैं फिर कहो कौन सच्चा और कौन झूठा? जो विचार करके देखते हैं तो सब मत वालों में झूठ पाया जाता है और जो सब सो सब में एकसा, ये सब लडाइयां मूर्खता की हैं ॥ २० ॥

२१—आनन्द का सन्देशा ईमानदारों को अल्लाह, फ़रिश्तों, पैगम्बरों जिवरईल और मीकाइल का जो शत्रु है अल्लाह भी ऐसे काफिरों का शत्रु है ॥ म० १ । सि० २ । आ० ९० ॥

(समीक्षक) जब मुसलमान कहते हैं कि खुदा लाशरीक है फिर यह फौज की फौज शरीक कहा से करदी? क्या जो औरों का शत्रु वा खुदा का भी शत्रु है? यदि ऐसा है तो ठीक नहीं, क्योंकि ईश्वर किस का शत्रु नहीं हो सकता ॥२१॥

२२—और कहो कि क्षमा मागतें हैं, हम क्षमा करेंगे तुम्हारे पाप और अधिक भलाई करनेवालों के ॥ म० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ५४ ॥

(समीक्षक) भला यह खुदा का उपदेश सबको पापी बनानेवाला है वा नहीं? क्योंकि जब पाप क्षमा होने का आश्रय मनुष्यों को मिलता है तब पापों से कोई भी नहीं डरता इसलिये ऐसा कहनेवाला खुदा और यह खुदा का बनाया हुआ पुस्तक नहीं हो सकता क्योंकि वह अन्यायकारी है अन्याय कभी नहीं करता और पाप क्षमा करने में अन्यायकारी हो सकता है ॥२२॥

२३—जब मूसा ने अपनी कौम के लिये पानी मांगा हमने कहा कि अपना अमा (दंड) पत्थर पर मार उसमें से बारह चद्रमे बह निकले ॥ म० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ५६ ॥

(समीक्षक) अब देखिये इन असम्भव बातों के तुल्य दूसरा भी क्या होगा? एक पत्थर की शिला में दंडा मारने से बारह छत्रों का

यह बात केवल लडकूपन की है ।

(पूर्वपक्षी) नहीं २ खुदा की इच्छा से ।

(उत्तरपक्षी) क्या तुम्हारी इच्छा से एक मक्खी की टांग भी बन जा सकती है ? जो कहत हो कि खुदा की इच्छा से यह सब कुछ जगत् बन गया

(पूर्वपक्षी) खुदा सर्वशक्तिमान् है इसलिये जो चाहे सो कर लेता है

(उत्तरपक्षी) सर्वशक्तिमान् का क्या अर्थ है ?

(पूर्वपक्षी) जो चाहे सो कर सके ।

(उत्तरपक्षी) क्या खुदा दूसरा खुदा भी बना सकता है ? अपने आप मर सकता है ? मूर्ख रागी और अजानी भी बनसकता है !

(पूर्वपक्षी) ऐसा कभी नहीं बन सकता ।

(उत्तरपक्षी) इसलिये परमेश्वर अपने और दूसरों के गुण, कर्म स्वभाव के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकता । जैसे ससार में किसी वस्तु के बनने बनाने में तीन पदार्थ प्रथम अवश्य होते हैं — एक बनाने वाला जैसे कुम्हार दूसरा घड़ा बनने वाली मिट्टी और तीसरा उसका साधन जिससे घड़ा बनाया जाता है । जैसे कुम्हार, मिट्टी और साधन से घड़ा बनता है और बनने वाले घड़े के पूर्व कुम्हार, मिट्टी और साधन होते हैं वैसे ही जगत् के बनने से पूर्व जगत् का कारण प्रकृति और उनके, गुण, कर्म, स्वभाव अनादि हैं इसलिये यह कुरान की बात सर्वथा असम्भव है ॥२७॥

२८—जब हमन लोगों के लिये कावे को पवित्र स्थान सुख देनेवाला बनाया तुम नमाज के लिये इबराहीम के स्थान को पकड़ो ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ११७ ॥

(समीक्षक) क्या कावे के पहिले पवित्र स्थान खुदा ने कोई भी न बनाया था ? जो बनाया था तो कावे के बनाने की कुछ आवश्यकता न थी, जो नहीं बनाया था तो विचार पूर्वोपन्नों को पवित्र स्थान के बिना ही खड़ा था ? पहिले ईश्वर को पवित्र स्थान बनाने का स्मरण न रहा होगा ॥२८॥

२९—वे कौन मनुष्य हैं जो इबराहीम के दीन से फिर जावें परन्तु जिसने अपना जान को मूर्ख बनाया और निश्चय हमने दुनिया में उसी को पसन्द किया और निश्चय आपरत में वो ही नेक हैं ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० १२० ॥

(समीक्षक) यह कैसे सम्भव है कि इबराहीम के दीन को नहीं मानते वे सब मूर्ख हैं ? इबराहीम को ही खुदा ने पसन्द किया इसका

कहो कि ये मृतक हैं किन्तु वे जीवित हैं ॥ म० १। सि० २। सि० २। आ० ११॥

(समीक्षक) भला ईश्वर के मार्ग में मरने मारने की क्या आवश्यकता है ? यह क्यों नहीं कहते हों कि यह बात अपने मतलब सिद्ध करने के लिये है कि यह लोभ दंगे तो लोग खूब लड़ेंगे, अपना विजय होगा, मारने से न डरेंगे, लूट मार कराने से ऐश्वर्य प्राप्त होगा, पश्चात् विषयानन्द करेंगे, इत्यादि स्वप्रयोजन के लिये यह विपरीत व्यवहार किया है ॥३१॥

३२—और यह कि अल्लाह कठोर दुःख देनेवाला है । शैतान के पीछे मत चलो निश्चय वो तुम्हारा प्रत्यक्ष शत्रु है उसके बिना और कुछ नहीं कि बुराई और निर्लज्जता की आज्ञा दे और यह कि तुम कहो अल्लाह पर जो नहीं जानते ॥ य० १। सि० २। सू० २। आ० १५१, १५४, १५५॥

(समीक्षक) क्या कठोर दुःख देनेवाला दयालु 'खुदा पापियों, पुण्यात्माओं पर है अथवा मुसलमानों पर दयालु और अन्य पर दयाहीन है । जो ऐसा है तो वह ईश्वर ही नहीं हो सकता । और पक्षपाती नहीं है तो जो मनुष्य कहीं धर्म करेगा उस पर ईश्वर दयालु और जो अधर्म करेगा उसपर दण्डदाता होगा तो फिर बीच में मुहम्मद साहेब और कुतब को मानना आवश्यक न रहा । और जो जबको बुराई कराने वाला मनुष्यमात्र का शत्रु शैतान है उसको खुदा ने उत्पन्न ही क्यों किया ? क्या यह भविष्यत् की बात नहीं जानता था ? जो कहो कि जानता था परन्तु परीक्षा के लिये बनाया तो भी नहीं बन सकता, क्योंकि परीक्षा करना अल्पज्ञ का काम है । सर्वज्ञ तो सब जीवों के अच्छे बुरे कर्मों को सदा से ठीक ठीक जानता है और शैतान सबको बहकाता है तो शैतान को किसने बहकाया ? जो कहो कि शैतान आप बहकता है तो अन्य भी आप से आप बहक सकते हैं, बीच में शैतान का क्या काम ? और जो खुदा ही ने शैतान को बहकाया तो खुदा शैतान का भी शैतान ठहरेगा । ऐसी बात ईश्वर की नहीं हो सकती और जो कोई बहकता है वह कुसंग तथा अविद्या से भ्रान्त होता है ॥३२॥

३३—तुम पर सुद्दार, लोहू और गोदत सूअर का हराम है और अल्लाह के बिना जिस पर कुछ पुकारा जावे ॥ म० १। सि० २। सू० २। आ० १५९॥

(समीक्षक) यहां विचारना चाहिये कि सुद्दा चाहे आप से आप मरे वा किसी के मारने से दोनों बराबर हैं, हां इनमें कुछ भेद भी है तथापि मृतकपन में कुछ भेद नहीं और जब एक सूअर का निषेध किया तो क्या मनुष्य का मांस खाना उचित है ! क्या यह बात अच्छी हो सकती

लोग इतना बड़ा अपराध जो कि अन्य मत वालों पर किया है न करे और बिना अपराधियों को मारना उन पर बड़ा पाप है। जो मुसलमान के मत का ग्रहण न करना है उसको कुफ़्र कहते हैं अर्थात् कुफ़्र से क़त्ल को मुसलमान लोग अच्छा मानते हैं अर्थात् जो हमारे दोन को न माने उसका हम क़त्ल करेंगे, सो करते ही आये। मज़हब पर लड़ते लड़ते आप ही राज्य आदि से नष्ट होगये और उनका मत अन्य मत वालों पर अतिकठोर रहता है, क्या चोरी का बदला चोरी है? कि जितना अपराध हमारा चोर आदि करें क्या हम भी चोरी करें? यह सर्वथा अन्याय की बात है, क्या कोई अज्ञानी हमको गालिये दे क्या हम भी उसको गाली दें? वह बात न ईश्वर की और न ईश्वर के भक्त विद्वान की और न ईश्वरोक्त पुराण की हो सकती है, यह तो केवल स्वार्थी ज्ञानरहित मनुष्य की है ॥ ३५ ॥

३६—अल्लाह झगड़े को मित्र नहीं रखता ॥ ऐ लोगो जो ईमान लाये हो इसलाम में प्रवेश करो ॥ मं० १ । सि० २। सू० २। आ० १९०, १९३ ॥

(समीक्षक) जो झगड़ा करने को खुदा मित्र नहीं समझता तो क्यों आप ही मुसलमानों को झगड़ा करने में प्रेरणा करता? और झगड़ा लू मुसलमानों से मित्रता क्यों करता है? क्या मुसलमानों के मत में मिलने ही से खुदा राजी है तो वह मुसलमानों ही का पक्षपाती है, सब संसार का ईश्वर नहीं, इससे यहां यह विदित होता है कि न क़ुरान ईश्वरकृत और न इसमें कहा हुआ ईश्वर हो सकता है ॥ ३६ ॥

३७—खुदा जिसको चाहे अनन्त रिज़क देवे ॥ मं० १ । सि० २। सू० २ । आ० १९७ ॥

(समीक्षक) क्या बिना पाप पुण्य के खुदा ऐसे ही रिज़क देता है? फिर भलाई बुराई का करना एकसा ही हुआ क्योंकि सुख दुःख प्राप्त होना उसकी इच्छा पर है, इससे धर्म से विमुख होकर मुसलमान लोग यथेष्टाचार करते हैं और कोई कोई इस क़ुरानोक्त पर विश्वास न करके धर्मात्मा भी होते हैं ॥ ३७ ॥

३८—प्रश्न करते हैं तुझ से रजस्वला को कह वो अपवित्र है, पृथक् रहो ऋतु समय में, उनके समीप मत आओ जबतक कि पवित्र न हो जब नहा लेवें उनके पास उस स्थान से जाओ खुदा ने आज्ञा दी ॥ तुम्हारी बोनियां तुम्हारे लिये खेतियां हैं बंस जाओ जिस तरह चाहो अपने खेत में। तुमको अल्लाह लगव (बेकार, व्यर्थ) शपथ में नहीं

पकड़ता ॥ म० १ । सि० २ । सू० २ । आ० २०५, २०६, २०८ ॥

(समीक्षक) जो यह रजस्वला का स्पर्श सङ्ग न करना लिखा है वह अच्छी बात है परन्तु यह स्त्रियों को खेती के तुल्य लिखा और बैसा जिस तरह से चाहो जाओ यह मनुष्यों को विपयी करने का कारण है । जो खुदा बेकारो शपथ पर नहीं पकड़ता तो सब झूठ बोलेंगे शपथ बोलेंगे । इससे खुदा झूठ का प्रवर्त्तक होगा ॥ ३८ ॥

३९—वो कौन मनुष्य है जो अल्लाह को उधार देवे अच्छा बस अल्लाह द्विगुण करे उसको उसके वास्ते ॥ म० १ । सि० २ । सू० २ । आ० २२७ ॥

(समीक्षक) भला खुदा को कर्ज (उधार) * लेने से क्या प्रयोजन ? जिसने सारे संसार को बनाया वह मनुष्य से कर्ज लेता है ? कदापि नहीं । ऐसा तो विना समझे कहा जा सकता है । क्या उसका ज्ञान खाली हो गया था ? क्या वह हुदी पुडिया व्यापार आदि में मग्न होने से टोटे में फँस गया था जो उधार लेने लगा ? और एक का दो दो देना स्वीकार करता है क्या यह सहूकारों का काम है ? किन्तु ऐसा काम तो दिवालियों वा खर्च अधिक करनेवाले और आय न्यून होनेवालों को करना पड़ता है ईश्वर को नहीं ॥ ३९ ॥

४०—उनमें से कोई ईमान न लाया और कोई काफ़िर हुआ जो अल्लाह चाहता न लटके जो चाहता है अल्लाह करता है ॥ म० १ । सि० ३ । सू० २ । आ० २३५ ॥

(समीक्षक) क्या जितनी लटवाई होती हैं वह ईश्वर ही की इच्छा से ? क्या वह अधर्म करना चाहे तो कर सकता है ? जो ऐसी बात है तो वह खुदा ही नहीं क्योंकि भले मनुष्यों का यह कर्म नहीं कि शान्ति भग करके लटवाई करावें इससे विदित होता है कि यह पुरान न ईश्वर का बनाया और न किसी धार्मिक विद्वान् का रचित है ॥ ४० ॥

४१—जो कुछ आसमान और पृथिवी पर है सब उसी के लिये है ॥ चाहे उसकी कुरसी ने आसमान और पृथिवी का समा लिया है ।

* इमी आयत के माध्य में तपस्वीरहनेनी म लिखा है कि एक मनुष्य मुहम्मद सादेब के पास आया उसने कहा कि ऐ रसूलल्लाह खुदा क्या क्यों मागता है ? उ होने उत्तर दिया कि तुमको याद है मैं ल जाने के लिये, तलने कहा जो आप जमानत ल तो मे दू, मुहम्मद सादेब ने उसको आश्चर्य ली, खुदा का नरोसा न हुआ, उसके दूत थे हुआ ।

मं० १ । सि० ३ । सू० २ । आ० २३७ ॥

(समीक्षक) जो आकाश भूमि में पदार्थ हैं वे सब जीवों के लिये परमात्मा ने उत्पन्न किये हैं अपने लिये नहीं क्योंकि वह पूर्णकाम है । उसकी किसी पदार्थ की अपेक्षा नहीं, जब उसकी कुर्मी है तो वह एकदेशी है जो एकदेशी होता है वह ईश्वर नहीं कहाता क्योंकि ईश्वर तो व्यापक है ॥४१॥

४२—अल्हाह सूर्य को पूर्व से लाता है बस तू पश्चिम से लेआ, वह जो कालिह डेरान हुआ था निश्चय अल्हाह पापियों को मार्ग नहीं दिखलाता ॥ मं० १ । सि० ३ । सू० १ । आ० २४० ॥

(समीक्षक) देखिये यह अविद्या की बात ! सूर्य न पूर्व से पश्चिम और न पश्चिम से पूर्व कभी आता जाता है वह तो अपनी परिधि में घूमता रहता है इससे निश्चित जाना जाता है कि कुरान के कर्त्ता को न खगोल और न भूगोल विद्या आती थी । जो पापियों को मार्ग नहीं बतलाता तो पुण्यात्माओं के लिये भी मुसलमानों के खुदा की आवश्यकता नहीं, क्योंकि धर्मात्मा तो धर्ममार्ग में ही होते हैं, मार्ग तो धर्म से भूले हुए मनुष्यों को बतलाना होता है सो कर्त्तव्य के न करने से कुरान के कर्त्ता की बड़ी भूल है ॥४२॥

४३—कहा चार जानवरों से ले उनकी सूरत पहिचान रख फिर हर पहाड़ पर उनमें से एक एक टुकड़ा रख दे फिर उनको बुला दौड़ते तो पास चले आवेंगे ॥ मं० १ । सि० ३ । सू० २ । आ० २४२ ॥

(समीक्षक) वाह वाह देखो जो मुसलमानों का खुदा भानमती के समान खेल कर रहा है ! क्या ऐसी ही बातों से खुदा को खुदाई है ? बुद्धिमान लोग ऐसे खुदा को तिलाञ्जलि देकर दूर रहेंगे और मूर्ख लोग फँसेंगे, इससे खुदा की बड़ाई के बदले बुराई उसके पल्ले पड़ेगी ॥ ४३ ॥

४४—जिसको चाहे नीति देता है ॥ मं० १ । सि० ३ । सू० २ । आ० २४१ ॥

(समीक्षक) जब जिसको चाहता है उसको नीति देता है तो जिसको नहीं चाहता है उसको अनिति देता होगा, यह बात ईश्वरता की नहीं । किन्तु जो पक्षपात छोड़ सबको नीति का उपदेश करता है वही ईश्वर और अस्त हो सकता है, अन्य नहीं ॥ ४ ॥

४५—वह कि जिसको चाहेगा क्षमा करेगा जिसको चाहे दण्ड देगा क्योंकि वह सब वस्तु पर चलवान् है ॥ मं० १ । सि० ३ । सू० २ । आ० २६६ ॥

(समीक्षक) क्या क्षमा के योग्य पर, क्षमा न करना अयोग्य पर,

हम करना गवरगंड राजा के तुल्य यह कर्म नहीं है ? यदि ईश्वर जिसको चाहता पापी वा पुण्यात्मा बनाता तो जीव वो पाप पुण्य न लगाना चाहिये जब ईश्वर ने उसको वैसा ही किया तो जीव को दुःख सुख भी देना न चाहिये, जैसे सेनापति की आज्ञा से किसी नृत्य ने किसी को मारा वा रक्षा की उसका फलभागी वह नहीं होता वैसे वे भी नहीं ॥४५॥

४६—कह इससे अच्छी और क्या परहेजगारों को खबर दूं कि अल्लाह की ओर से बहिश्त हैं जिनमें नहरे चलती हैं उन्हीं ने सदैव रहनेवाली शुद्ध बीबिया हैं अल्लाह की प्रसन्नता से अल्लाह उनको देखने आया है साथ बन्दों ॥ गं० १ । सि० ३ । सू० ३ ॥ आ० ११ ॥

(समीक्षक) भला यह स्वर्ग है किवा वेश्यावन ? इसको ईश्वर बना वा स्रष्टा ? कोई भी बुद्धिमान ऐसी बातें जिसमें हों उसको परमेश्वर क्या किया पुस्तक मान सकता है ? यह पक्षपात क्यों करता है ? जो बीबिया बहिश्त में सदा रहती हैं वे यहाँ जन्म पाके बहाँ गई हैं वा वहाँ मर गई हैं ? यदि यहाँ जन्म पाकर वहाँ गई हैं और जो क़यामत की रात से पहले ही वहाँ बीबियाँ को बुला लिया तो उनके खाबिन्दों को क्यों न बुला लिया ? और क़यामत की रात में सबका न्याय होगा इस नियम से क्यों तोड़ा ? यदि वहाँ जन्मी है तो क़यामत तक वे क्योंकर निर्वाह करती हैं ? जो इनके लिये पुरुष भी हैं तो यहाँ से बहिश्त में जानेवाले मुसलमानों को खुदा बीबियां कहां से देगा ? और जैसे बीबियां बहिश्त में सदा रहने वाली बनाईं वैसे पुरुषों को वहाँ सदा रहनेवाले क्यों नहीं बनाया ? इसलिये मुसलमानों का खुदा भन्दायकारी, बेसमझ है ॥ ४६ ॥

४७—निश्चय अल्लाह की ओर से दीन इसलाम है ॥ नं० १ । सि० ३ । सू० ३ । आ० ११ ॥

(समीक्षक) क्या अल्लाह मुसलमानों ही का है औरों का नहीं ? क्या तेरहसौ वर्षों के पूर्व ईश्वरीय मत था ही नह ? इसी से यह कुरान ईश्वर का बनाया तो नहीं बिन्दु किसी पक्षपाती का बनाया है ॥ ४७ ॥

४८—प्रत्येक जीव को पूरा दिया जायेगा जो कुछ उसने बनाया और वे न अन्याय किये जायेंगे ॥ कह या अल्लाह तू ही मुल्क का मालिक है जिसको चाहे देता है जिसकी चाहे जीनता है, जिसको चाहे प्रतिज देता है जिसको चाहे अप्रतिष्ठा देता है, सब कुछ तेरे ही हाथ में है प्रत्येक शय पर तू ही बलवान् है ॥ रात को दिन में और दिन को रात में पता

है और मृतक को जीवित से जीवित को मृतक से निकालता है और जिसको चाहे अनन्त अन्न देता है ॥ मुसलमानों को उचित है कि काफ़िरो को मित्र न बनावें सिवाय मुसलमानों के जो कोई यह करे वस वह भलाह की ओर से नहीं । कह जो तुम चाहते हो भलाह को तो पक्ष करो मेरा भलाह चाहेगा तुमको और तुम्हारे पाप को क्षमा करेगा निश्चय करणाम है ॥ म० १ । सि० ३ । सू० ३ । आ० २१, २२, २३, २४, २७ ॥

(समीक्षक) जब प्रत्येक जीव को कर्मों का पूरा पूरा फल दिया जावेगा तो क्षमा नहीं किया जायगा और जो क्षमा किया जायगा तो पूरा फल नहीं दिया जायगा और अन्याय होगा, जब त्रिना उत्तम कर्मों के राज्य देगा तो भी अन्यायकारी होजायगा, भला जीवित से मृतक और मृतक से जीवित कमी हो सकता है ? क्योंकि ईश्वर की व्यवस्था अछेद्य, अभेद्य है, कमी बढ़द बढ़द नहीं हो सकती । अब देखिये पक्षपातकी बातें कि जो मुसलमान के मज़हब में नहीं है उनको काफ़िर ठहराना, उनमें श्रेष्ठों से भी मित्रता न रखने और मुसलमानों में दुष्टों से भी मित्रता रखने के लिये उपदेश करना ईश्वर को ईश्वरता से बहिः कर देता है । इससे यह कुरान, कुरान का खुदा और मुसलमान लोग केवल पक्षपात अविद्या के भरो हुए हैं, इसीलिये मुसलमान लोग अन्दर में हैं और देखिये मुहम्मद साहेब की लीला कि जो तुम मेरा पक्ष करोगे तो खुदा तुम्हारा पक्ष करेगा और जो तुम पक्षपातरूप पाप करोगे उसको क्षमा भी करेगा इससे सिद्ध होता है कि मुहम्मद साहेब का अन्तःकरण शुद्ध नहीं था इसीलिये अपने मत-छव सिद्ध करने के लिये मुहम्मद साहेब ने कुरान बनाया वा बनवाया ऐसा विदित होता है ॥ ४८ ॥

४९—जिस समय कहा फ़रिश्तों ने कि ऐ मर्यम तुझको भलाह ने पसन्द किया और पवित्र किया उपर जगत् को स्त्रियों के ॥ म० १ । सि० ३ । सू० ३ । आ० ३५ ॥

(समीक्षक) भला जब आजकल खुदा के फ़रिश्ते और खुदा किसी बातें करने को नहीं आते तो प्रथम कैसे आये होंगे ? जो कहो कि पहिले के मनुष्य पुण्यात्मा थे अब के नहीं तो यः बात मिथ्या है किन्तु जिस समय ईसाई और मुसलमानों का मत चला था उस समय उन देशों में जद्दल और विद्यादीन मनुष्य अधिक थे इसी लिये ऐसे विद्याविरुद्धमत चल गये, अब विद्वान् अधिक हैं इसीलिये नहीं चल सकता किन्तु जो जो ऐसे पौष्ट

कहा है वे भी अस्त होते जाते हैं वृद्धि की तो कथा ही क्या है ॥ ४९ ॥

५०—उसको कहता है कि हो बस हो जाता है । काफ़िरो ने धोका
 लिा, ईश्वर ने धोका दिया, ईश्वर बहुत मकर करने वाला है ॥ मं० १ ।
 सि० ३ । सू० ३ । आ० ३९ । ४९ ॥

(समीक्षक) जब मुसलमान लोग खुदा के सिवाय दूसरी चीज़
 मानते तो खुदा ने किससे कहा ? और उसके कहने से कौन होगया ?
 उसका उत्तर मुसलमान सात जन्म में भी नहीं दे सकेंगे क्योंकि विना
 वादान कारण के कार्य कभी नहीं हो सकता, विना कारण के कार्य
 करना जानो अपने मा बाप के विना मेरा शरीर हो गया ऐसी बात है ।
 जो बोला खाता अर्थात् छल और दम्भ करता है वह ईश्वर तो कभी नहीं
 हो सकता किन्तु उत्तम मनुष्य भी ऐसा काम नहीं करता ॥ ५० ॥

५१—क्या तुमको यह बहुत न होगा कि अल्लाह तुम को तीन हजार
 फरिश्तों के साथ सहाय देवे ॥ मं० १ । सि० ४ । सू० ३ । आ० ११० ।

(समीक्षक) जो मुसलमानों को तीन हजार फरिश्तों के साथ
 सहाय देता था तो अब मुसलमानों की बादशाही बहुत सी नष्ट हो गई
 और होती जाती है, क्यों सहाय नहीं देता ? इसलिये यह बात केवल
 मोम देके मुखों को फसाने के लिये महा अन्याय की बात है ॥ ५१ ॥

५२—और काफ़िरो पर हमको सहाय कर । अल्लाह तुम्हारा उत्तम सहा-
 य और कारसाज़ है जो तुम अल्लाह के माग में मारे जाओ वा मरजाओ
 अल्लाह की दया बहुत अच्छी है ॥ मं० १ । सि० ४ । सू० ३ । आ० १३०, १३३ । १४० ॥

(समीक्षक) अब देखिये मुसलमानों की भूल कि जो अपने मत से भिन्न
 हैं उनके मारने के लिये खुदा की प्रार्थना करते हैं । क्या परमेश्वर भोला है
 जो इनकी बात मान लेवे ? यदि मुसलमानों का कारसाज अल्लाह ही है
 तो फिर मुसलमानों के कार्य नष्ट क्यों होते हैं ? और खुदा भी मुसल-
 मानों के साथ मोह से फँसा हुआ दोख पड़ता है । जो ऐसा पक्षपाती खुदा
 है तो धर्मात्मा पुरुषों का उपासनीय कभी नहीं हो सकता ॥ ५२ ॥

५३—और अल्लाह तुमको परीक्षज्ञ नहीं करता परन्तु अपने पैगम्बरों
 जिसको चाहे पसन्द करे बस अल्लाह और उसके रसूल के साथ ईमान
 लाओ ॥ मं० १ । सि० ४ । सू० ३ । आ० १५९ ॥

(समीक्षक) जब मुसलमान लोग सिवाय खुदा के किसी के साथ
 ईमान नहीं लाते और न किसी को खुदा का साक्षी मानते हैं तो पैगम्बर

साहेब को क्यों ईमान में खुदा के साथ शरीक किया ? अल्लाह ने पैगम्बर के साथ ईमान लाना लिखा इसी से पैगम्बर भी शरीक होगया, पुनः लाशरी कहना ठीक न हुआ । यदि इसका अर्थ यह समझा जाय कि मुहम्मद साहेब के पैगम्बर होने पर विश्वास लाना चाहिये तो यह प्रश्न होता है कि मोहम्म साहेब के होने की क्या आवश्यकता है ? यदि खुदा उसको पैगम्बर कि बिना अपना अभीष्ट कार्य नहीं कर सकता तो अवश्य असमर्थ हुआ ॥ ५

५४—ऐ ईमान वालो ! संतोष करो, परस्पर थामे रखो और एक में लगे रहो अल्लाह से डरो कि तुम छुटकारा पाओ ॥ मं० १। सि० १ सू० ३ आ० १७८ ॥

(समीक्षक) यह कुरान का खुदा और पैगम्बर दोनों लड़ाई है, जो लड़ाई की आज्ञा देता है वह शान्तिभंग करने वाला होता है । नाममात्र खुदा से डरने से छुटकारा पाया जाता है ? वा अधर्मयुक्त लड़ा आदि से डरने से ? जो प्रथम पक्ष है तो डरना न डरना बराबर और द्वितीय पक्ष है तो ठीक है । ५४॥

५५—ये अल्लाह को हर्ष हैं जो अल्लाह और उसके रसूल का कहा माने वह बहिश्त में पहुंचेगा जिनमें नहरें चलती हैं और यही बड़ा प्रयोजन है जो अल्लाह की और उसके रसूल की आज्ञा भंग करेगा और उसकी हर्ष बाहर हो जायगा वह सदैव रहने वाली भाग में जलाया जायगा और के लिये स्राव करने वाला दुःख है ॥ मं० १। सि० ४। सू० ४। आ० १३, १४

(समीक्षक) खुदा ही ने मुहम्मद साहेब पैगम्बर को अपना शरीक लिया है और खुदा कुरान ही में लिखा है और देखो खुदा पैगम्बर साहेब के साथ कैसा फंसा है जिसने बहिश्त में रसूल का साक्षात्कार किया है । किसी एक बात में भी मुसलमानों का खुदा स्वतन्त्र नहीं तो लाशरी कहना व्यर्थ है । ऐसी २ बातें ईश्वरोक्त पुस्तक में नहीं हो सकती ॥ ५५॥

५६—और एक ग्रसरेणु की बराबर भी अल्लाह अन्याय नहीं करता और जो मलाई होवे उसका दुगुण करेगा उसको ॥ मं० १। सि० ५ सू० ४। आ० ३० ॥

(समीक्षक) जो एक ग्रसरेणु भी खुदा अन्याय नहीं करता तो पुण्य द्विगुण क्यों देता ? और मुसलमानों का पक्षपात क्यों करता है ? वास्तव द्विगुण वा न्यून फल कर्मों का देने तो खुदा अन्यायी हो जावे ॥ ५६॥

५७—जब तरे पास से बाहर निकलते हैं तो तरे कहने के सिवाय (वि

५६—और शिक्षा प्रकट होने के पीछे जिसने रसूल से विरोध किया और मुसलमानों से विरुद्ध पक्ष किया अवश्य हम उसको दोज़बल में भेजेंगे ॥ मं० १ । सि० ५ । सू० ४ । आ० ११३ ॥

(समीक्षक) अब देखिये खुदा और रसूल की पक्षपात की बातें मुहम्मद साहेब आदि समझते थे कि जो खुदा के नाम से ऐसी हम बलिखंगे तो अपना मज़हब न बढेगा और पदार्थ न मिलेंगे, आनन्द भोग न होगा, इसी से विदित होता है कि वे अपने मतलब करने में पूरे थे और अन्य के प्रयोजन विगाढ़ने में, इससे ये अनास थे इनकी बात का प्रमाण आस विद्वानों के सामने कभी नहीं हो सकता ॥ ५९ ॥

६०—जो अल्लाह फ़रिदतों किताबों रसूल और क़यामत के साथ कुफ़्र करे निश्चय वह गुमराह है ॥ निश्चय जो लोग ईमान लाये फिर काफ़िर हुए फिर फिर ईमान लाये पुनः फिर गये और कुफ़्र में अधिक की अल्लाह उनको कभी क्षमा न करेगा और न मार्ग दिखलावेगा ॥ मं० १ । सि० ५ । सू० ४ । आ० १३४, १३५ ।

(समीक्षक) क्या अब भी खुदा लाशरीक रह सकता है ? क्या लाशरीक कहते जाना और उसके साथ बहुत से शरीक भी मानते जाना यह परस्पर विरुद्ध बात नहीं है ? क्या तीन बार क्षमा के पश्चात् कुफ़्र क्षमा नहीं करता ? और तीन बार कुफ़्र करने पर रास्ता दिखलाता है ? वा चौथी बार से आगे नहीं दिखलाता, यदि चार चार बार भी कुफ़्र सब लोग करें तो कुफ़्र बहुत ही बढ़ जाये ॥ ६० ॥

६१—निश्चय अल्लाह बुरे लोगों और काफ़िरों को जमा करेगा दोज़बल में ॥ निश्चय बुरे लोग धोखा देते हैं अल्लाह को और उनको वह धोखा देता है । ये ईमानवालों मुसलमानों को छोड़ काफ़िरों को मित्र मत बनाओ ॥ मं० १ । सि० ५ । सू० ४ । आ० १३८, १४१, १४३ ॥

(समीक्षक) मुसलमानों के बहिश्त और अन्य लोगों के दोज़बल जाने का क्या प्रमाण ? वादज़ी चाह ! जो बुरे लोगों के धोखे में आता और अन्य को धोखा देता है ऐसा खुदा हम से अलग रहे किन्तु जो धोखेवाज़ है उनसे जाकर मेल करे और वे उससे मेल करें क्योंकि—

यादृशा शीतला देवी तादृशः खरवाहनः ।

जैसे की तैसा मिले तभी निर्वाह होता है । जिसका खुदा धोखेवाज़ है उसके उपासक लोग धोखेवाज़ क्यों न हों ? क्या दुष्ट मुसलमान हो

(समीक्षक) देखिये यह बात खुदा के शरीक होने की है, फिर खुदा को "लाशरीक" मानना व्यर्थ है ॥ ६६ ॥

६७—अल्लाह ने माफ़ किया जो हो चुका और जो कोई फिर करेगा अल्लाह उससे बदला लेगा ॥ मं० २ । सि० ७ । सू० ५ । आ० ९२ ॥

(समीक्षक) किये हुए पापों का क्षमा करना जानों पापों को करने की आज्ञा देके बढ़ाना है । पाप क्षमा करने की बात जिस पुस्तक में हो वह न ईश्वर और न किसी विद्वान् का बनाया है किन्तु पापचर्दक है, हाँ आगामी पाप छुड़ाने के लिए किसी से प्रार्थना और स्वयं छोड़ने के लिये पुरुषार्थ पश्चात्ताप करना उचित है परन्तु केवल पश्चात्ताप करता रहे ओढ़े नहीं तो भी कुछ नहीं हो सकता ॥ ६७ ॥

६८—और उस मनुष्य से अधिक पापी कौन है जो अल्लाह पर झूठ बाध लेता है और कहता है कि मेरी ओर बही की गई परन्तु बही उसकी ओर नहीं की गई और जो कहता है कि मैं भी उतारूंगा कि जैसे अल्लाह उतारता है ॥ मं० २ । सि० ७ । सू० ६ । आ० ९४ ॥

(समीक्षक) इस बात से सिद्ध होता है कि जब मुहम्मद साहेब कहते थे कि मेरे पास खुदा की ओर से आयतें आती हैं तब किसी तूरे ने भी मुहम्मद साहेब के तुल्य लीला रची होगी कि मेरे पास भी आयतें उतरती हैं मुझको भी पैगम्बर मानो । इसको हटाने और अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये मुहम्मद साहेब ने यह ठपाय किया होगा ॥ ६८ ॥

६९—अवश्य हमने तुमको उत्पन्न किया फिर तुम्हारी सूरतें बनाई फिर हमने फ़रिदतों से कहा कि आदम को सिज़्ज़दा करो, वस उम्होंने सिज़्ज़दा किया परन्तु शैतान सिज़्ज़दा करने वालों में से न हुआ ॥ कहा जब मैंने तुझे आज्ञा दी फिर किसने रोका कि तूने सिज़्ज़दा न किया, कहा मैं उससे अच्छा हूँ तूने मुझको आग से और उसको मिट्टी से उत्पन्न किया । कहा वस उसमें से दतर यह तेरे योग्य नहीं है कि तू उसमें अभिमान करे । कहा उस दिन तक ढील दे कि करारों में से उठाये जावें ॥ कहा निश्चय तू ढील दिये गयीं से है ॥ कहा वस इसकी कृमम है कि तूने मुझको गुमराह किया अवश्य मैं उनके लिये तेरे सीधे मार्ग पर बँटूंगा ॥ और प्रायः तू उनको वन्यवाद करनेवाला न पावेगा कहा उसमें दुर्दशा के साथ निकल अवश्य जो कोई उनमें तेरा पक्ष करेगा तुम सब से श्रेष्ठ को भरूंगा ॥ मं० २ । सि० ८ । सू० ७ ॥ आ० १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७ ॥

(समीक्षक) अब इसके लिखने से विदित होता है कि ऐसी झूठी बातों को खुदा और मुहम्मद साहेब भी मानते थे। जो ऐसा है तो ये दोनों विद्वान् नहीं थे क्योंकि जैसे आँख से देखने को और कान से सुनने को अन्यथा कोई नहीं कर सकता इसीसे ये इन्द्रजाल की बातें हैं ॥ ७२ ॥

७३—बस हमने उस पर मेह का तूफ़ान भेजा, टीढ़ी, चिचड़ी और मेंढक और लोहू ॥ बस उनसे हमने बदला लिया और उनको डुबो दिया दरियाव में ॥ और हमने बनी इसराईल को दरियाव से पार उतार दिया ॥ निश्चय वह दीन झूठा है कि जिसमें है और उनका कार्य भी झूठा है। म० २। सि० ९। सू० ७। आ० १३०, १३३, १३७, १३८ ॥

(समीक्षक) अब देखिये जैसा कोई पाखंडी किसी को डरपावे कि हम तुझ पर सपों को मारने के लिये भेजेंगे ऐसी यह भी बात है। भला जो ऐसा पक्षपाती कि एक जाति को डुबा दे और दूसरे को पार उतारे वह अधर्मी खुदा क्यों नहीं? जो दूसरे मतों को कि जिसमें हजारों क्रांति मनुष्य हों झूठा बतलावे और अपने को सच्चा, उससे परे झूठा दूसरा मत कौन हो सकता है? क्योंकि किसी मत में सब मनुष्य बुरे और भले नहीं हो सकते। यह इकतफ़ी डिगरी करना महामूर्खों का मत है। क्या तौरित, ख़वूर का दीन, जो कि उनका था, झूठा हो गया? वा उनका कोई अन्य मज़हब था कि जिसको झूठा कहा और जो वह अन्य मज़हब था तो कौनसा था, कहो जिसका नाम कुरान में हो ॥ ७३ ॥

७४—बस तुझ को अलवत्ता देल सकेगा जब प्रकाश किया, उसके मालिक ने पहाड़की ओर उसको परमाणु परमाणु किया गिर पड़ा मूस बेहोश ॥ म० २। सि० ९। सू० ७। आ० १४२ ॥

(समीक्षक) जो देखने में आता है वह व्यापक नहीं हो सकता और ऐसे चमत्कार करता फिरता था तो खुदा इस समय ऐसा चमत्कार किसी को क्यों नहीं दिखलाता? सर्वथा विरुद्ध होने से यह बात मानने योग्य नहीं ॥ ७४ ॥

७५—और अपने मालिक को दीनता डर से मन में याद कर भीम आवाज़ से सुबह को और शाम को ॥ म० २। सि० ९। सू० ७। आ० २०४ ॥

(समीक्षक) कहीं कहीं कुरान में लिखा है कि बड़ी आवाज़ से अपने मालिक को पुकार और कहीं कहीं धीरे धीरे ईश्वर का स्मरण कर, अब कविने कौनसी बात सच्ची? और कौनसी बात झूठी? जो एक दूसरी बात से विरोध करती है यह बात प्रमत्त गीत के समान होती है, यदि कोई कवि

का बनाया हुआ नहीं है किसी कपटी, छली का बनाया होगा, नहीं ऐसी अन्यथा बातें लिखित क्यों होतीं ॥ ७८ ॥

७९—और लड़ो उनसे यहां तक कि न रहे फ़ितना अर्थात् काफ़िरों का और होवे दीन तमाम वास्ते अल्लाह के ॥ और जानो तुम यह जो कुछ तुम लड़ो किसी वस्तु से निश्चय वास्ते अल्लाह के है पाचवा हिस्सा उसका और वास्ते रसूल के ॥ मं० २ । सि० ८ । आ० ३९, ४१

(समीक्षक) ऐसे अन्याय से लड़ने लड़ाने वाला मुसलमान के खुदा से भिन्न शान्तिभङ्गकर्त्ता दूसरा कौन होगा ? अब देखिए मज़हब कि अल्लाह और रसूल के वास्ते सब जगत् को लूटना लुटवाने लुटेरों का काम नहीं है ? और लूट के माल में खुदा का हिस्सेदार बन जानों डाकू बनना है और ऐसे लुटेरों का पक्षपाती बनना खुदा अपराधी खुदाई में बढ़ा लगाता है । बड़े आश्चर्य की बात है कि ऐसा पुस्तक, ऐसा खुदा और ऐसा पैगम्बर संसार में ऐसी उपाधि और शान्तिभङ्ग करने मनुष्यों को दुःख देने के लिये कहां से आया ? जो ऐसे २ मत जगत् प्रचलित न होते तो सब जगत् आनन्द में बना रहता ॥ ७९ ॥

८०—और कभी देखे जब काफ़िरों को फ़रिश्ते कब्ज़ करते हैं मारते हैं मुख उनके और पीछे उनकी और कहते चलो अजाब चलने का ॥ हम उनके पाप से उनके मारा और हमन फिराआन की कौम को दुबो दिया और तैयार करो वास्ते उनके जो कुछ तुम कर सको ॥ मं० २ । सि० ९ । सू० ८ । आ० ५०, ५४, ५९ ॥

(समीक्षक) क्योंकि आजकल रुस ने रुस आदि और इङ्ग्लैण्ड ने मित्र की दुश्मना कर डाली, फ़रिश्ते कहां सो गये ! और अपने सेवकों के शत्रुओं को खुदा पूर्व मारता दुवाता था यह बात सच ही तो आजकल भी ऐसा करे, जिससे ऐसा नहीं होता इसलिये यह बात मानने योग्य नहीं । अब देखिये यह कैसी बुरी आज्ञा है कि जो कुछ तुम कर सको वह भिन्नमनवाओं के लिये दुःखदायक कर्म करो । ऐसी आज्ञा विद्वान् और धार्मिक दयालु की नहीं हो सकती, फिर लिखते हैं कि खुदा दयालु और न्यायकारी है । ऐसी बातों से मुसलमानों के खुदा से न्याय और दयादि मद्गुण दूर बसते हैं ॥ ८० ॥

८१—ये नहीं किफ़ायत है तुम्हें को अल्लाह और उनकी जिम्मेदारियों मुसलमानों से तेरा पक्ष दिया । नहीं रग़वत अर्थात् चाह अल्लाह के मुसलमानों को डार छड़ाई के, जो हों तुम मे से २० आदमी सन्तो

अपने हाथ वा मुसलमानों के हाथ से अन्य किसी मत वालों को पकड़ा देता है ? क्या दूसरे क़ोडों मनुष्य ईश्वर को अप्रिय हैं ! मुसलमानों में पापी भी प्रिय हैं ? यदि ऐसा है तो 'अन्धेर नगरी गवरगण्ड' राजा की सी व्यवस्था दीखती है । आश्चर्य है कि जो बुद्धिमान् मुसलमान हैं वे भी इस निर्मूल अयुक्त मत को मानते हैं ॥८३॥

८४—प्रतिज्ञा की है अल्लाह ने ईमानवालों और ईमानवालों से बहिश्तें चलती हैं नीचे उनके से नहरें सदैव रहनेवाली बीच उसके और घर पवित्र बीच बहिश्तों अदन के और प्रसन्नता अल्लाह की ओर बड़ी है और यह कि वह है मुराद पाना बड़ा ॥ बस ठठा करते हैं उसने ठठा किया अल्लाह ने उनसे ॥ मं० २। सि० १० । सू० ६। आ० ७२, ८० ॥

(समीक्षक) यह खुदा के नाम से स्त्री पुरुषों को अपने मतलब के लिये लोभ देना है क्योंकि जो ऐसा प्रलोभन न देते तो कोई मुहम्मद साहेब के जाल में न फसता, ऐसे ही अन्य मत वाले भी किया करते हैं । मनुष्य लोग तो आपस में ठठा किया ही करते हैं, परन्तु खुदा को किसी से ठठा करना उचित नहीं है । यह कुरान क्या है बड़ा खेल है ॥८४॥

८५—परन्तु रसूल और जो लोग कि साथ उसके ईमान लाये जिहाद किया उन्होंने साथ धन अपने के तथा जान अपनी के और इन्हीं लोगों के लिये भलाई है ॥ और मोहर रक्की अल्लाह ने ऊपर दिलों उनके के वस वे नहीं जानते ॥ मं० २। सि० १० । सू० ९ । आ० ८९, ९२ ॥

(समीक्षक) अब देखिये मतलबसिन्धु की बात कि वे हो भले हैं जो मुहम्मद साहेब के साथ ईमान लाये और जो नहीं लाये वे बुरे हैं ! क्या यह बात पक्षपात और अविद्या से भरी हुई नहीं है ? जब खुदा ने मोहर ही लगादी तो उनका अपराध पाप करने में कोई भी नहीं किन्तु खुदा ही का अपराध है क्योंकि उन विचारों को भलाई से दिलों पर मोहर लगा कर रोक दिये, यह कितना बड़ा अन्याय है ! ! ! ॥ ८५ ॥

८६—ले माल उनके से खैरात कि पवित्र करे तू उनको अर्थात् बाहरी और शुद्ध कर तू उनको साथ उसके अर्थात् गुप्त में ॥ निश्चय अल्लाह ने मोल ली है मुसलमानों से जानें उनकी और माल उनके बढ़ले कि वास्ते उनके बहिश्त है लड़ेंगे बीच मार्ग अल्लाह के वस मारेंगे और मर जावेंगे । मं० २। सि० ११ । सू० ९ । आ० १०२, ११० ॥

(समीक्षक) बाहजी बाह ! मुहम्मद साहेब आपने तो गोखिले

गुसाइयों को बराबरी करली क्योंकि उनका माल लेना और उनको पवित्र करना यही बात तो गुसाइयों की है। वाह खुदाजी ! आपने अच्छा सौदागरी लगाई कि मुसलमानों के हाथ से अन्य गरीबों के प्राण लेना ही लाभ समझा और उन अनाथों को मरवाकर उन निर्दयी मनुष्यों को स्वर्ग देने से दया और न्याय से मुसलमानों का खुदा हाथ धो बैठा और अपनी खुदाई में बट्टा लगा के बुद्धिमान धार्मिकों से घृणित हो गया ॥ ८६ ॥

८७—ऐ लोगो जो इमान लाये हो लडो उन लोगों से कि पास तुम्हारे हैं काफ़िरों से और चाहिये कि पावें बीच तुम्हारे दबता ॥ क्या नहीं देखते यह कि वे बलाओ में डाले जाते हैं हरवर्ष के एक बार या दो बार फिर वे नहीं तोबा करते और न वे शिक्षा पकड़ते हैं ॥ म० २ । सि० ११ । सू० ९ । आ० १२१, १२५ ॥

(समीक्षक) देखिये ये भी एक विश्वासघात की बातें खुदा मुसलमानों को सिखलाता है कि चाहे पड़ोसी हों या किसी के नौकर हों जब अवसर पावें तभी लड़ाई वा घात करें। ऐसी बातें मुसलमानों से बहुत बन गई हैं इसी कुरान के लेख से। अब तो मुसलमान समझ के कुरानोक्त बराइयों को छोड़ दें तो बहुत अच्छा है ॥ ८७ ॥

८८—निश्चय परवरदिगार तुम्हारा अल्लाह है जिसने पैदा किया आसमानों और पृथिवी को बीच छ दिन के फिर करार पकड़ा ऊपर अर्श के तदवीर करता है काम की ॥ म० ३ । सि० ११ । सू० १० । आ० ३॥

(समीक्षक) आसमान आकाश एक और बिना बना अनादि है उसका बनाना लिखने से निश्चय हुआ कि वह कुरानकर्त्ता पदार्थविद्या को नहीं जानता था। क्या परमेश्वर के सामने छ दिनत क बनाना पड़ता है ? तो जो “हो मेरे हुक्म से और होगया” जब कुरान में ऐसा लिखा है फिर छ दिन कभी नहीं लग सकते, इससे छ दिन लगना शक है, जो वह व्यापक होता तो ऊपर आकाश के पयो ठहरता ! और जब काम की तदवीर करता है तो ठीक तुम्हारा खुदा मनुष्य के समान है, क्योंकि जो सवेश है वह बेटा बेटा क्या तदवीर करेगा ? इससे विदित होता है कि ईश्वर को न जाननेवाले जद्गली लोगों ने यह पुस्तक बनाया होगा ॥ ८८ ॥

८९—शिक्षा और दया वास्ते मुसलमानों के ॥ म० ३ । सि ११ सू० १ । आ० ५५ ॥

(समीक्षक) क्या यह खुदा मुसलमानों की वा है ! दूसरा

नहीं और पक्षपाती है। जा समलमानों पर ही दया करे अन्य मनुष्यों पर नहीं, यदि मुसलमान ईमानदारों को कहत हैं तो उनके लिए शिक्षा की आवश्यकता ही नहीं और मुसलमानों से भिक्षुओं को उपदेश नहीं करता तो खुदा की विद्या व्यर्थ है ॥ ८९ ॥

६० — पराक्षा जब तुमको कौन तुम में स अच्छा है कर्मों में जो कहे तु अथवा उदाय जा आग तुम पीठ मृगु क ॥ म० ३ मि० ११ सू० ११ आ० ७१

(समीक्षक) जब कर्मों की परीक्षा करता है तो सर्वज्ञ ही नहीं और जा स यु पाठ उठाना है ना दांडा सुपुर्न रखता है और अपने नियम जो कि मर दुर न जावे उसको ताड़ता यह खुदा को बड़ा लगाना है ॥ ९० ॥

६१ — और कहा गया ७ पृथिवी अपना पानी निगल जा और ऐ आसमान तम कर आर पानी सूख गया ॥ और ऐ कौम यह है निसानी ऊटनी अल्लाह की यास्त तुम्हार बस ओड दो उसको बीच पृथिवी अल्लाह क थाता फिर ॥ म० ३ । मि० ११ । सू० ११ । आ० ४३, ६३ ॥

(समीक्षक) क्या लटकपन की बात है ? पृथिवी और आकाश कभी बाहर सुन सकत है ? पादजा बाह ! खुदा क ऊटनी भी है तो ऊट भी हागा ? ना हाया, घाट, गव आदि भी हागे ! और खुदा का ऊटनी से धन बिलाना क्या अच्छा बात है ! क्या ऊटनी पर चढ़ता भी है ! जो ऐसी बात है ना नवाया की सा धमड फमड खुदा के घर में भी हुई ॥ ९१ ॥

६२ — और सदैव रहने वाले बीच उसक जब तक कि रहें आसमान और पृथिवी और जो लाग सुभागा दूण तम बहिदत क सदा रहने वाले हैं चवनकरह आसमान और पृथिवी ॥ म० ३ । मि० १२ । सू० ११ । आ० १०५, १०

(समीक्षक) जब शत्रु और बहिदत में क्यामत के पश्चात् सय लाग जायग फिर आसमान और पृथिवी हिमलिय रहेंगी ! और जब शत्रु और बहिदत रहने की आसमान पृथिवी क रहने तक अवधि हुई ना सदा रहेंग बहिदत वा लाग में, यह बात झूठा हुई, ऐसा कथन अविद्वानों का हाता है, दूधर वा विद्वानों का नहीं ॥ ९२ ॥

६३ — जब यूसुफ न अरब वाप स कहा कि ऐ वाप मेरे, मैंने एक स्वप्न में देखा ॥ म० ३ । मि० १२ । म० १२ । आ० ४ में ५९ तक ॥

(समीक्षक) उस प्रकरण में पिता पुत्र का सवादरूप हिस्सा कहानी भग द, हिमलिय कुगन उधर का बनाया नहीं, हिस्सा मनुष्य ने मनुष्यों का इतिहास लिख दिया है ॥ ९३ ॥

भलपुत्र मनुष्य का बनाया कुरान है ॥ ८६ ॥

६७—और किया सूर्य चन्द्र को सदैव फिरनेवाले॥ निश्चय आदमी भवश्य
अन्याय और पाप करने वाला है ॥ म० ३।सि० १३।सू० १४।आ० ३३, ३४॥

(समाश्रुत) क्या चन्द्रसूर्य सदा फिरते और पृथिवी नहीं फिरती ?
जो पृथ्वी नही फिरती तो कड़ उपा का दिन रात होवे । और जो मनुष्य
निश्चय अन्याय और पाप करने वाला है तो कुरान से शिक्षा करना व्यर्थ
है क्योंकि जिनका स्वभाव पाप है करने का है तो उनमें पुण्यात्मा कभी
न होगा और सत्कार में पुण्यात्मा और पापात्मा सदा दीखते हैं इसलिये
जसा ज्ञान उद्धारक पुस्तक की नहीं हो सकती ॥ ९७ ॥

९८—बस ठीक करूँ मैं उसकी और फूट दूँ बीच उसके रुह अपनी से
बस गिरावड़ा मानूँ उसकी मित्रता करत हूँ ॥ कहाये सब मेरे इस कारण कि
गुमराह किया जन मुज्जहा अवश्य जीनेत दूँगा मैं वास्ते उनके बीच पृथिवी के
और गुमराह करूँगा ॥ म० ३।सि० १४॥सू० १४।आ० ३९ से ४६ तक ॥

(समाश्रुत) जो खुदा ने अपनी रूह आदम साहब में डाली तो
वह भा खुदा हुआ और जो वह खुदा न था तो सिजदा अर्थात् नम-
स्कारादि भाक्त करने में अपना शराफ़ क्या किया ? जब शेतान को गुम-
राह करने वाला खुदा हो है तो वह ज़नान का भा शेतान, बड़ा भाई गुह
क्या नहीं ? क्या कहें तुम लोग वह खानदान का ज़नान मानते हो तो खुदा
ने भा शेतान को बड़ा साया और प्रसन्न ज़नान न कहा कि मैं बड़ा ऊँगा फिर
भा उसका टण्ड दहर है क्या न किया ? और मार क्यों न डाला ? ॥ ६८ ॥

९९—और निश्चय जन हमन था । हर उम्मत के पैगम्बर ॥ जब
चहत है हम उसकी यह कहना है हम उसका हा बस हो जाती है ॥
म० ३।सि० १३।सू० १२।आ० ३०, ३१ ॥

(समाश्रुत) जो सब कौना पर पैगम्बर भजे हैं तो सब लोग जो कि
पैगम्बर की राय पर चलते हैं वे काफिर क्या ? क्या दूसरे पैगम्बर का
मान्य नही मानाय मुझारे पैगम्बर कहें यह सच या पक्षपात की बात है । जो
सब देश में पैगम्बर नही तो आपयाइत में कौन सा भजा ? इसलिये यह बात
मानने योग्य नहीं । नव खुदा चाहता है और कहता है कि पृथिवी हो जा, यह
जब कभी नही पुन सकती, खुदा का दूसरा त्याकर जनसंख्या और सिनाय
खुदा के दूसरी चीज नहीं मानने ना मुना। हमन ? और हो कौनमा गया ? यह
अर्थ अविद्या की बात है, जसा बाता की अनजान लोग मान लेंते हैं ॥ ९९ ॥

१००—और नियत करते हैं वास्ते अल्लाह के वेदिया पवित्रता है उसको और वास्ते उनके हैं जो कुछ चाहें ॥ कसम अल्लाह की अवश्य भेजे हमने पैगम्बर ॥ म० ३ । सि० १४ । सू० १६ । आ० ५६, ९२ ॥

(समीक्षक) अल्लाह वेदियों से क्या करेगा ? वेदिया तो किसी मनुष्य को चाहियें, क्यों वेटे नियत नहीं किये जाते और वेदिया नियत की जाती है ? इसका क्या कारण है ? बताइये ? कसम खाना झूठों का काम । खुदा की बात नहीं, क्योंकि बहुधा ससार में ऐसा देखने में आता है कि जो झूठा होता वे वही कसम खाता है, सच्चा सौगन्द क्यों खावे ॥ १०० ॥

१०१—ये लोग वे हैं कि मोहर रखी अल्लाह ने ऊपर दिलों उनके और कानों उनके और आँखों उनकी के और ये लोग वे हैं बेखबर ॥ और पूरा दिया जावेगा हर जीव को जो कुछ किया है और वे अन्याय न किये जायेंगे ॥ म० ३ । सि० १४ । सू० १६ आ० ११५, ११८ ॥

(समीक्षक) जब खुदा ही ने मोहर लगा दी तो वे बिचारे बिना अपराध मारे गये क्योंकि उनको पराधीन कर दिया, यह कितना बड़ा अपराध है ? और फिर कहते हैं कि जिसने जितना किया है उतना ही उसको दिया जायगा, न्युनाधिक नहीं । भला उन्होंने स्वतन्त्रता से पाप किये ही नहीं किन्तु खुदा के कराने से किये, पुन उनका अपराध ही न हुआ उनको छल न मिलना चाहिये, इस का फल खुदा को मिलना उचित है और जो (रा दिया जाता है तो क्षमा किस बातकी की जाती है और जो क्षमा की जाती है तो न्याय उठ जाता है । ऐसा गडबडाभ्याय ईश्वर का कभी नहीं हो सकता किन्तु निबुद्धि छोकरों का होता है ॥ १०१ ॥

१०२—और किया हमने दोजख को वास्ते काफिरों के घेरने वाला स्थान ॥ और हर आदमी को लगा दिया हमने उसको जमलनामा उसका बीच गर्दन उसकी के और निकालेंगे हम वास्ते उसके दिन क्यामत के एक किताब कि देखेगा उसको खुला हुआ ॥ और बहुत मारे हमने तुर-नून से पीछे नूह के ॥ म० ४ । सि० १५ । सू० १७ आ० ७, १९ १९ ॥

(समीक्षक) यदि काफिर वे ही हैं जो कुरान, पैगम्बर और कुरान के कहे खुदा, सातवें आसमान और नमाज आदि को न मानें और उनको के लिये दोजख होवे तो यह बात केवल पक्षपात की तरह क्योंकि कुरान ही के मानने वाले सब अच्छे और अन्य के माननेवाले सब बुरे कहे जाते हैं ? यह बड़ी लड़कपन की बात है कि प्रत्येक की गर्दन ने कर्मपुराव,

हम तो किसी एक की भी गर्दन में नहीं देखते । यदि इसका प्रयोजन का फल देना है तो फिर मनुष्यों के दिलों, नेत्रों आदि पर मोहर रख और पापों का क्षमा करना क्या खेल मचाया है ! कृत्यामत की रात किताब निकालेगा, खुदा तो आज कल वह किताब कहाँ है ! क्या साहूकार की वही समान लिखता रहता है ? यहां यह विचारना चाहिये कि जो जन्म नहीं तो जीवों के कर्म ही नहीं हो सकते फिर कर्म की रेखा कौन लिखी ? और जो बिना कर्म के लिखा तो उनपर अन्याय किया क्यों बिना अच्छे घुरे कर्मों के उनको दुःख सुख क्यों दिया ? जो कहो कि खुदा की मरणी, तो भी उसने अन्याय किया, 'अन्याय' उसको कहते हैं कि बिना घुरे भले कर्म किये दुःख सुख रूप फल न्यूनाधिक देना और उसी समय खुदा ही किताब बाचेगा वा कोई सरिस्तेदार सुनावेगा ! जो खुदा ही दीर्घकाल सम्यधी जीवों को बिना अपराध मारा तो वह अन्यायकारी हो गया । जो अन्यायकारी होता है वह खुदा नहीं हो सकता ॥ १०२ ॥

१०३—और दिया हमने समुद्र को ऊटनी प्रमाण ॥ और वह जिसको वहका सके ॥ जिस दिन बुलावेंगे हम सब लोगों को साथ पैदावाओं उनके के बस जो कोई दिया गया अमलनामा उसका बीच दायाँ हाथ उसके के ॥ म० ४ । सि० १५ । सू० १७ । आ० ५७, ६२, ६९।

(समीक्षक) वाइजी, जितनी खुदा की साक्ष्य निशानी हैं उनमें एक ऊटनी भी खुदा के होने में प्रमाण अथवा परीक्षा में साधक है । बिना खुदा ने शैतान को वहकाने का हुक्म दिया तो खुदा ही शैतान का सरफ और सब पाप कराने वाला ठहरा, ऐसे को खुदा कहना केवल कम समझ की बात है । जब कृत्यामत को अर्थात् प्रलय ही में न्याय करने कराने के लिये पैगम्बर और उपदेश माननेवालों को खुदा बुलावेगा तो तब तक प्रलय न होगा तबतक सब दौरा सुपुर्द रहेंगे और दौरा सुपुर्द सबको दुःखदायक है जबतक न्याय न किया जाय । इसलिये शीघ्र न्याय करना न्यायाधीश का उत्तम काम है । यह तो पोपांवाई का न्याय ठहरा, जैसे कोई न्यायाधीश कहे कि जबतक पचास वर्ष तक के चोर और साहूकार इकट्ठे न हों तबतक उनको दंड वा प्रतिष्ठा न करनी चाहिये, वैसा ही यह हुक्म कि एक तो पचास वर्ष तक दौरासुपुर्द रहा और एक आज ही पकड़ा गया ऐसा न्याय का काम नहीं हो सकता, न्याय तो वेद और मनुस्मृति के विषयमें क्षणमात्र भी बिलम्ब नहीं होता और अपने अपने कर्मानुसार दंड

प्रतिष्ठा सदा पाते रहते हैं। दूसरा पेगम्बरों की गवाही के तुल्य रखने से ईश्वर की सर्वज्ञता की हानि है, भला ऐसा पुस्तक ईश्वरकृत और ऐसे पुस्तक का उपदेश करनेवाला ईश्वर कभी हो सकता है? कभी नहीं ॥ १०३ ॥

१०५—ये लोग वास्ते उनके हैं बाग हमेशा रहने के, चलती हैं नीचे उनके से नहरें गहिना पहिराये जावेंगे बीच उसके कगन सोने के से और पोशाक पहिनेंगे वस्त्र हरित लाही की से और ताफ़ते की से तकिये किये हुए बीच उसके ऊपर तख्तों के अच्छा है पुण्य और अच्छी है बहिश्त शम उठाने की ॥ म० ४ । सि० १५ । १८ ॥ आ० ३० ॥

(समीक्षक) वाहजी वाह! क्या कुरान का स्वर्ग है जिसमें बाग, गहने फ़रदे, गद्दी, तकिये आनन्द के लिये हैं भला कोई बुद्धिमान् यहा विचार करे तो यहां से वहां मुसलमानों के बहिश्त में अधिक कुछ भी नहीं है सिवाय अन्याय के, वह यह है कि कर्म उनके अन्तवाले और फल उनके अनन्त और जो नीचा नित्य खावे तो थोड़े दिन में विष के समान प्रतीत होता है, जब सदा सुख भोगेंगे तो उनको सुख ही दुःखरूप होजायगा, इसलिये महाकल्पपर्यन्त कि सुख भोग के पुनर्जन्म पाना ही सत्य सिद्धान्त है ॥ १०४ ॥

१०५—और यह वस्तिया हैं कि मारा हमने उनको जब अन्याय किया उन्होंने और हमने उनके मारने की प्रतिज्ञा स्थापन की ॥ म० ४ । १० १५ । सू० १८ । आ० ५७ ॥

(समीक्षक) भला सब वस्तीभर पापी भी होसकती है? और पीछे से तेज़ा करने से ईश्वर सर्वज्ञ नहीं रहा क्योंकि जब उनका अन्याय देखा प्रतिज्ञा की, पहिले नहीं जानता था इससे दयाहीन भी ठहरा ॥ १०५ ॥

१०६—और वह जो लटका बस थे मा बाप उसके ईमान वाले बस थे हम यह कि पकड़ उनको सरकशी में और कुफ़्र में ॥ यहा तक कि पहुँचा जगह हूबने सूर्य की पाया उसको हूबता था बीच धरमे कीचड़ के ॥ कहा उनने एज़ुलकरनैन निज़य याज़ूज माज़ूज फ़िस्ताद करनेवाले है बीच पृथिवी के ॥ म० ४ । सि० १६ । सू० १८ । आ० ७८, ८४, ९२ ॥

(समीक्षक) भला यह सुझा की वितर्नी पेतमश है? शक़ा से उरा कि लटकों के मा बाप वही नेरे मार्ग से बरका कर उलटे न दर दिय जावें, यह कभी ईश्वर की बात नहीं हो सपनी। अब जाने वा बदिधा वा बात देखिये कि इस किताब का बनानेवाला सूर्य जो एक साल में रात्रि को दूरा जानता है, फिर प्रातः काल निकलता है। भला सूर्य तो पृथिवी से

पहिरनेको मिलें यह बहिस्त यहां के राजाओं के घर से अधिक दीख पड़ता । और जब परमेश्वर का घर है तो वह उसी घर में रहता होगा फिर बुत्परस्ती क्यों न हुई ? और दूसरे बुत्परस्तों का खंडन करते हैं ? जब खुदा भेट लेता अपने घर की परिक्रमा करने की आज्ञा दे और पशुओं को मरवा के खिलाता है तो यह खुदा मन्दिर वाले भैरव, दुर्गा के सदृश हुआ और महाबुत्परस्ती का चलाने वाला क्योंकि मूर्तियों से मस्जिद बड़ा बुत् है इससे खुदा और मुसलमान बुत्परस्त और पुरानी तथा जैनी छोटे बुत्परस्त हैं ॥ ११२ ॥

११३—फिर निश्चय तुम दिन क़यामत के उठाये जाओगे ॥ मं० सि० १८ । सू० २३ । आ० १६ ॥

(समीक्षक) क़यामत तक मुर्दे क़बर में रहेंगे वा किसी अन्य जगह जो उन्हीं में रहेंगे तो सड़े हुए दुर्गन्धरूप शरीर में रह कर पुण्यात्मा दुःख भोग करेंगे ? यह न्याय अन्याय है और दुर्गन्ध अधिक होकर रोष उत्पत्ति करने से खुदा और मुसलमान पापमागी होंगे ॥ ११३ ॥

११४—उस दिन की गवाही देंगे ऊपर उनके ज़बानें उनकी हाथ उनके और पांव उनके साथ उस वस्तु के कि थे करते ॥ अल्लाह नूर है आसमानों का और पृथिवी का नूर उसके कि मानिन्द ताक दे बीच उसके दीप हो और दीप बीच कंदील शीशों के हैं वह कंदील मानो कि तारा है चमकता रोशन किया जाता है दीपक वृक्ष मुबारक जैतून के से न पूर्व की ओर है न पश्चिम की समीप है तेल उसका रोशन हो जावे जो न लगे ऊपर रोशनी के मार्ग दिखाता है अल्लाह नूर अपने के जिसको चाहता है ॥ मं० ४ । सि० १८ । सू० २४ । आ० २३, २४ ॥

(समीक्षक) हाथ पग आदि जड़ होने से गवाही कभी नहीं दे सकते । यह बात सृष्टिक्रमसे विरुद्ध होने से मिया है क्या खुदा जान बिनुली दे ? जैसा कि दृष्टान्त देते हैं ऐसा दृष्टान्त ईश्वर में नहीं बट सकता, हां किसी साधार वस्तु में बट सकता है ॥ ११४ ॥

११५—और अल्लाह ने उत्पन्न किया हर जानवर को पानी से वह कोई उनमें से बट दे कि जो चलता है पेट अपने के ॥ और जो कोई जानवर पालन करे अल्लाह की रसूल उसके की ॥ कह आज्ञा पालन कर, खुदा की रसूल उसके की ॥ और आज्ञा पालन करो रसूल की ताकि क्या फल जाओ ॥ मं० ३ । सि० १८ । सू० २४ । आ० ४४, ५१, ५३, ५५ ॥

मनुष्यादि प्राणियों को खिलाता पिलाता है तो किसी को रोग होना न चाहिये और सबको तुल्य भोजन देना चाहिए, पक्षपात से एक को उत्तम और दूसरे को निकृष्ट जैसा कि राजा और कंगले को श्रेष्ठ निकृष्ट भोजन मिलता है न होना चाहिए। जब परमेश्वर ही खिलाने पिलाने और पथ्य कराने वाला है तो रोग ही न होना चाहिये परन्तु मुसलमान आदि को भी रोग होवे है, यदि खुदा ही रोग छुड़ाकर आराम करने वाला है तो मुसलमानों के शरीर में रोग न रहना चाहिये। यदि रहता है तो खुदा पूरा वैद्य नहीं हैं। यदि पूरा वैद्य है तो मुसलमानों के शरीर में रोग क्यों रहते हैं। वही मारता और जिलाता है तो उसी खुदा को पाप पुण्य लगता होगा। यदि जन्म जन्मान्तर के कर्मानुसार व्यवस्था करता है तो उसका कुछ भी अपराध नहीं। यदि वह पाप क्षमा और न्याय कृपायुक्त की रीत में करता है तो खुदा पाप बढ़ाने वाला होकर पापयुक्त होगा, यदि क्षमा नहीं करता तो कुरान की बात झूठ होने से बच नहीं सकती है ॥ ११७ ॥

११८—नहीं तू आदमी मानिन्द हमारी बस ले आ कुछ निशानी जो है तू सचों से ॥ कहा यह ऊटनी है वास्ते उसके पानी पीना है एक पार ॥ मं० ५। सि० १९। सू० २६। आ० १५०, १५१ ॥

(समीक्षक) भला इस बात को कोई मान सकता है कि परधर से ऊटनी निकले, वे लोग जंगली थे कि जिन्होंने इस बात को मान लिया और ऊटनी की निशानी देनी केवल जंगली व्यवहार है, ईश्वरकृत नहीं, यदि यह कित्ताव ईश्वरकृत होती तो ऐसी व्यर्थ बातें इसमें न होती ॥ ११८ ॥

११९—ऐ मूसा बात यह है कि निश्चय मैं अल्लाह हूँ गालिब। और डाल दे असा अपना बस जब कि देखा उसको हिलता था मानों कि वह सांप है ऐ मूसा डर निश्चय नहीं डरते समीप मेरे पेगम्बर ॥ अल्लाह नहीं कोई मावूद परन्तु वह मालिक अर्श बड़े का। यह कि मर सरकशी करो ऊपर मेरे और चले आओ मेरे पास मुसलमान होकर ॥ मं० ५। सि० १९। सू० २७। आ० ६, १०, २६, ३१ ॥

(समीक्षक) और भी देखिये अपने मुल आप अल्लाह बड़ा जबरदस्त बनता है, अपने मुल से अपनी प्रशाना करना श्रेष्ठ का भी काम नहीं तो खुदा का भी क्योंकर हो सकता है? तभी तो इन्द्रजाल का लटक दिखाना जंगली मनुष्यों को बड़ाकर आप जंगलस्थ खुदा बन बैठा। ऐसी बात ईश्वर के पुस्तक में कभी नहीं हो सकती यदि वह बड़े अर्श अर्थात् सातवें आकाश

१३२—फिराया जावेगा उसके ऊपर पियाला शराब शुद्ध का ॥ सपैद मज़ा देने वाली वास्ते पीने वालों के ॥ समीप उनके बैठी होंगी नीचे आँख रखने वालियाँ सुन्दर आँखों वालियाँ । मानो कि ये अण्डे हैं छिपाये हुए ॥ क्या बस हम नहीं मरेंगे ॥ और अवश्य लूत निश्चय पैगम्बरों से था ॥ अब कि मुक्ति दी हमने उसको और लोगों उसके को सबको ॥ परन्तु एक बुद्धिया पीछे रहने वालों में है ॥ फिर मारा हमने औरों को ॥ म० १ । सि० २३ । सू० ३७ । आ० ४३, ४४, ४६, ४७, ५६, १२६, १२७, १२८, १२९ ॥

(समीक्षक) क्योंकि यहाँ तो मुसलमान लोग शराब को बुरा बतलाते हैं परन्तु इनके स्वर्ग में तो नदियाँ की नदिया बहती हैं ॥ इतना अच्छा है कि यहाँ तो किसी प्रकार मद्य पीना खुदाया, परन्तु यहाँ के बदले वहाँ उनके स्वर्ग में बड़ी सराबी है ! मारे स्त्रियों के वहाँ किसी का चित्त स्थिर नहीं रहता होगा ! और बड़े २ रोग भी होते होंगे ! यदि शरीरवाले होते होंगे तो अवश्य मरेंगे और जो शरीरवाले न होंगे तो भोग विलास ही न कर सकेंगे, फिर उनका स्वर्ग में जाना व्यर्थ है ॥ यदि लूत को पैगम्बर मानते हो तो जो बाइबल में लिखा है कि उससे उसकी लड़कियों ने समागम करके दो लड़के पैदा किये इस बात को भी मानते हो वा नहीं ? जो मानते हो तो ऐसे को पैगम्बर मानना व्यर्थ है और जो ऐसे और ऐसों के सन्तियों को खुदा मुक्ति देता है तो वह खुदा भी वैसा ही है, क्योंकि बुद्धिया की कहानी कहनेवाला और पक्षपात से दूसरों को मारने वाला खुदा कभी नहीं हो सकता, ऐसा खुदा मुसलमानों ही के घर में रह सकता है, अन्यत्र नहीं ॥ १३२ ॥

१३३—बहिश्त में सदा रहने की खुले हुए हैं दर उनके वास्ते उनके नकिये दिये हुए बीच उनके मगावेंगे बीच इसके मेवे और पीने की वस्तु ॥ और समीप होंगी उनके नीचे रखनेवाल्या दृष्टि और दूसरों के समायु ॥ बस सिद्धा द्रिया फ़रिश्तों ने सबने ॥ परन्तु शैतान ने न माना अभिमान द्रिया और था काफ़िरों से ॥ ऐ शैतान किस वस्तु ने रोका तुझ को यह कि सिद्धा करे वास्ते उस वस्तु के कि बनाया मैंने साथ दोनों हाथ अपने के क्या अभिमान द्रिया तूने वा था वदे अधिकार वालों के ॥ कहा कि मैं अच्छा हूँ उम वस्तु से उत्पन्न द्रिया तूने मुझको आग के उस ओर मर्दा मे ॥ कहा बस निकल इन आसमानों में से बस निश्चय चलाया गया है ॥ निश्चय ऊपर तैरे छानत है मेरी दिन ज़ात ॥

कहा पे मालिक मेरे ढील दे उस दिन तक कि उठाये जावेंगे मुर्दे। कहा कि बस निश्चय तू ढील दिये गयो से है ॥ उस दिन समय ज्ञात तक ॥ कहा कि बस कसम है प्रतिष्ठा तेरी कि अवश्य गुमराह करूंगा उनको मैं इकट्ठे ॥ म० ६१ सि० २३। सु० ३८। आ० ४३, ४४, ४५ ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२ ॥

(समोक्षक) यदि वहा जैसे कि कुरान में बाग बगीचे नहरें मकानादि लिखे हैं वैसे हैं तो वे न सदा से थे, न सदा रह सकते हैं, क्योंकि जो सयोग से पदार्थ होता है वह सयोग के पूर्व न था, अवश्य भावी वियोग के अन्त में न रहेगा, जब वह बहिश्त ही न रहेगी तो उसमें रहने वाले सदा क्योंकर रह सकते हैं ? क्योंकि लिखा है कि गादी, तकिये, मेवे, और पीने के पदार्थ वहा मिलेंगे इससे यह सिद्ध होता है कि जिस समय मुसलमानों का मज़हब चला उस समय अरब देश विशेष धनाढ्य न था, इसलिये मुहम्मद साहेब ने तकिये आदि की कथा सुनाकर गरीबों को अपने मत में फसा लिया और जहा छियां हैं वहा निरन्तर सुख कहा ? ये छिया वहां कहा से आई हैं ? अथवा बहिश्त की रहने वाली हैं, यदि आई हैं तो जावेंगी और जो वहीं की रहने वाली हैं तो क़यामत के पूर्व क्या करती थीं ? क्या निकम्मी अपनी उमर को वहा रही थीं ? अब देखिये खुदा का तेज कि जिसका दुस्म अन्य सब फरिश्तों ने माना और आदम साहेब को नमस्कार किया और शैतान ने न माना, खुदा ने शैतान से पूछा कहा कि मैंने उसको अपने दोनों हाथों से बनाया, तू अभिमान मत कर, इससे सिद्ध होता है कि कुरान का खुदा दो हाथ वाला मनुष्य था. इसलिये वह व्यापक वा सर्वशक्तिमान् कभी नहीं हो सकता और शैतान ने सत्य कहा कि मैं आदम से उत्तम हूँ, इस पर खुदा ने गुस्सा क्यों किया ? क्या आसमान ही में खुदा का घर है, पृथिवी में नहीं ? तो काबे को खुदा का घर प्रथम क्यों लिखा ? भला परमेश्वर अपने में से वा सृष्टि में से अलग कैसे निकाल सकता है ? और वह सृष्टि सब परमेश्वर की है इससे विदित हुआ कि कुरान का खुदा बहिश्त का भिन्नेदार था । खुदा ने उसको लानत बिछार दिया और फेंक कर लिया और शैतान ने कहा कि हे मालिक ! मुझको क़यामत तक छोड़ दे, खुदा ने कुरानन्द से क़यामत के दिन तक छोड़ दिया, जब शैतान पूछा तो खुदा से कहता है कि अब मैं तू बहकाऊंगा और गदर नचाऊंगा । तब खुदा ने कहा कि जितने को तू बहकावेगा मैं उनको दोबारा मैं जाऊ दूंगा और दुखी करूँगा ।

कि वह भरवदेश से भी बड़कर दीखती है । । और जो मद्य मास पी खा के रूमत होते हैं इसलिये अच्छी अच्छी स्त्रिया और लौंडे भी वहा अवश्य रहने चाहिये नहीं तो ऐसे नशेबाजो के शिर में गरमी चढ़ने प्रमत्त होजावें । अवश्य बहुत स्त्री पुरुषो के बैठने सोने के लिये बिटोने बडे बडे चाहिये । जब खुदा कुमारियों को वहिश्त मे उत्पन्न करता है तभी तो कुमारे लडको को भी उत्पन्न करता है । भला कुमारियों का तो विवाह जो यहा से उम्मेदवार होकर गये हैं उनके साथ खुदा ने लिखा, पर उन सदा रहनेवाले लडकों का किन्हीं कुमारियों के साथ विवाह न लिखा, तो क्या वे भी उन्हीं उम्मेदवारों के साथ कुमारीवत् दे दिये जायगे । इसकी व्यवस्था कुछ भी न लिखी, यह खुदा में वही भूल क्यों हुई । यदि बराबर अवस्था वाली सुहागिन स्त्रिया पतियों को पाके वहिश्त में रहती हैं तो ठीक नहीं हुआ क्योंकि स्त्रियों से पुरुष का आयु दूना दार्दगुना चाहिये यह तो मुसलमानों के वहिश्त की कथा है और नरकवाले सिहोड अर्थात् थोर के वृक्षों को खाके पेट भरेगे तो कण्टक वृक्ष भी दोजख में होंगे तो काटे भी लगते होंगे और गर्म पानी पीयेंगे इत्यादि दुःख दोजख में पावेंगे । कसम का खाना प्राय झूठों का काम है सबों का नहीं, यदि खुदा ही कसम खाता है जो वह भी झूठ से अलग नहीं हो सकता ॥ १४१ ॥

१४२—निश्चय अल्लाह मिश्र रखता है उन लोगों को कि लडते हैं बीच मार्ग उसके के ॥ म० ७ । सि० २८ । सू० ५९ । आ० ४॥

(समीक्षक) वाह ठीक है, ऐसी ऐसी बातों का उपदेश करके विचारें भरव देशवासियों को सबसे लटाके शत्रु बनाकर परस्पर दुःख दिलाया और मजहब का झंडा खडा करके लडाई फैलावे ऐसे को कोई खुदिमान् ईश्वर कभी नहीं मान सकते, जो जाति में विरोध बढ़ावे वही सबसे दुःखदाता होता है ॥ १४२ ॥

१४३—ऐ नबी क्यों हराम करता है उस वस्तु को कि हलाल किया है खुदा ने तेरे लिये चाहता है व प्रसन्नता दीवियों अपनी पी और अल्लाह क्षमा करनेवाला दयालु है ॥ जल्दी है मालिक उसरा जो यह तुमको लाज दे तो, यह कि उसको तुमसे अच्छी मुसलमान और ईमान वालिया दीविया बदल दे सेवा करने वालियां, तोबा करने वालिया, नफि करने वालियां रोजा रखने वालिया पुरुष देखी हुई और बिना देखी हुई ॥ म० ७ । सि० २८ । सू० ६१ । आ० १, ५ ॥

(समीक्षक) ध्यान देकर देखना चाहिये कि खुदा क्या हुआ है-

१५५—निश्चय वे मकर करते हैं एक मकर ॥ और मैं भी मकर करता हूँ एक मकर ॥ मं० ७। सि० ३०। सू० ८६। आ० १५, १६ ॥

(समीक्षक) मकर कहते हैं ठगपन को। क्या खुदा भी ठग है? और क्या चोरी का जवाब चोरी और झूठ का जवाब झूठ है? क्या कोई चोर भले आदमी के घर में चोरी करे तो क्या भले आदमी को चाहिये कि उसके घर में जाके चोरी करे? वाह! वाहजी ॥ कुरान के बनाने वाले ॥ १५५ ॥

१५६—और जब आवेगा मालिक तेरा और फ़रिश्ते पक्ति बाधके ॥ और लाया जावेगा उस दिन दोजख को ॥ मं० ७। सि० ३०। सू० ८९। आ० २१, २२ ॥

(समीक्षक) कहो जी जैसे कोटपालजी सेनाध्यक्ष अपनी सेना को लेकर पक्ति बाध फिरा करे वैसे ही इनका खुदा है? क्या दोजख को घदासा समझा है कि जिसको उठा के जहा चाहे वहां लेजावे, यदि इतना छोटा है तो असंख्य कैदी उसमें कैसे समा सकेंगे ॥ १५६ ॥

१५७—बस कहा था घास्ते उनके पैगम्बर खुदा के ने रक्षा करो ऊटनी खुदा की को और पानी पिलाना उसके को ॥ बस छुठलाया उसको बस पाव काटे उसके बस मरी डाली ऊपर उनके रव उनके ने ॥ मं० ७। सि० ३०। सू० ९१। आ० १३, १४ ॥

(समीक्षक) क्या खुदा भी ऊटनी पर चढ़के सैल किया करता है? नहीं तो किसलिये रक्खी और विना क़यामत के अपना नियम तोड़ उन पर मरी रोग क्यो डाला? यदि डाला तो उनको दण्ड किया फिर क़यामत की रात में न्याय और उस रात का होना झूठ समझा जायगा? इस ऊटनी के लेख से यह अनुमान होता है कि अरब देश में ऊट, ऊटनी के सिवाय दूसरी सवारी कम होती है इससे सिद्ध होता है कि किसी अरब-देशी ने कुरान बनाया है ॥ १५७ ॥

१५८—यों जो न रुकेगा अपश्य पसीदेंगे उसको हम साथवालों माये के ॥ वह माथा कि झूठा है और अपराधी ॥ हम बुलायेंगे फ़रिश्ते दोजख के को ॥ मं० ७। सि० ३०। सू० ९६। आ० १५, १६, १८ ॥

(समीक्षक) इस नीच खपरासियों के काम घसीटने से नीच खुदा न बचा। नला माथा भी कभी झूठा और अपराधी हो सकता है? सिवाय जीव के, भला यह कभी खुदा हो सकता है कि उसे जेलखाने के दरवाजा को बुलाया भेजे? ॥ १५८ ॥

१५९—निश्चय उतारा हमने कुरान को बीच रात नदर के ॥ और

सर का विरोध छूट मेल होकर आनन्द में एकमत होके सत्य की प्राप्ति हो। यह थोडासा कुरान के विषय में लिखा, इसको बुद्धिमान् मिक लोग ग्रन्थकार के अभिप्राय को समझ लाभ लेवें। यदि कही भ्रम अन्यथा लिखा गया हो तो उसको शुद्ध कर लेवे ॥

अब एक बात यह शेष है कि बहुतसे मुसलमान ऐसा कहा करते और कहा वा छपवाया करते हैं कि हमारे मजहब की बात अथर्ववेद में लिखी। इसका यह उत्तर है कि अथर्ववेद में इस बात का नाम निशान भी नहीं है।

(प्रश्न) क्या तुमने सब अथर्ववेद देखा है? यदि देखा है तो छोपनिषद् देखो, यह साक्षात् उसमें लिखी, फिर क्यों कहते हो कि अथर्ववेद में मुसलमान का नाम निशान भी नहीं ॥

अथाऽल्लोपनिषद् व्याख्यासंग्रामः ॥

आस्माल्लां इल्ले मित्रावरुणा दिव्यानि घत्ते ॥ इल्लल्लेवरुणो राजापुनर्दुः ॥ हया मित्रो इल्लां इल्लल्ले इल्ला वरुणा मित्र-
ल्लेजस्कामः ॥ १ ॥ होतारमिन्द्रो होतारमिन्द्र महासुरिन्द्रः ॥
अल्लो ज्येष्ठं श्रेष्ठं परमं पूर्णं ब्रह्माण अल्लाम् ॥ २ ॥ अल्लोरसुल
महामदरकवरस्य अल्लो अल्लाम् ॥ ३ ॥ आदल्लावकमकम् ।
अल्लावक निखातकम् ॥ १ ॥ अल्लो यज्ञेन हुतहु-वा ॥ अल्ला-
सूर्य चन्द्र सर्व नक्षत्राः ॥ ५ ॥ अल्ला ऋषीणा सर्वदिव्यां
इन्द्राय पूर्व माया परमन्तरिक्षाः ॥ ८ ॥ अल्ल पृथिव्या अन्त-
रिक्षं विश्वरूपम् ॥ ७ ॥ इल्ला कवर इल्ला कवर इल्ला इल्लल्लनि
इल्लल्लाः ॥ ८ ॥ ओम् अल्ला इल्लल्लला अनादिस्वरूपाय अधर्ष-
णाश्यामा हु ह्रीं जनानपशून्सिद्धान् जलवरान् अष्टं कुरु
कुरु फद् ॥ ६ ॥ असुर संहारिणी हुं ह्रीं अल्लोरसुल महामदर-
कवरस्य अल्लो अल्लाम इल्लल्लेति इल्लल्लला ॥ १० ॥

इत्यल्लोपनिषत् समाप्ता ।

जो इसमें प्रत्यक्ष मुहम्मदसाहब रसूल लिखा है इससे तिर होता है कि मुसलमानों का मत वेदमूलक है ॥

(उत्तर) यदि तुमने अथर्ववेद न देखा हो तो हमारे पास जानो, भादि मे पुरित्तक देखो अथवा जिस किसी अथर्ववेदी के पास बीत बाण्ड-
पुफ मन्त्रसंहिता अथर्ववेद भी देख हो, कही तुम्हारे पण्डित सारथ या
काम व मत या निशान न देखो और जो यह अलोपनिषद् है यह न

स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः

सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक धर्म जिसको सदा से सब मानते आये, मानते हैं और मानेंगे भी इसीलिए उसको सनातन नित्यधर्म कहते हैं कि जिसका विरोधी कोई भी न होसके, यदि भविष्यायुक्त जन अथवा किसी मत वाले के भ्रमाये हुए जन जिसको अन्यथा जानें वा मानें उसका स्वीकार कोई भी बुद्धिमान् नहीं करते, किन्तु जिसको आप्त अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, परोपकारक पक्षपातरहित विद्वान् मानते हैं वही सबको मन्तव्य और जिसको नहीं मानते वह अमन्तव्य होने से प्रमाण के योग्य नहीं होता । अब जो वेदादि सत्यशास्त्र और मन्त्रा से लेकर जैमिनिमुनि पर्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ हैं जिनको कि मैं भी मानता हूँ, सब सज्जन महाशयों के सामने प्रकाशित करता हूँ । मैं अपना मन्तव्य उसीको जानता हूँ कि जो तीन काल में सबको एक सा मानने योग्य है । मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है, किन्तु जो सत्य है उसको मानना मनवाना और जो असत्य है उसका छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है । यदि मैं पक्षपात करता तो आर्य्यावर्त्त में प्रचरित मतों में से किसी एक मत का अप्रही होता, किन्तु जो जो आर्य्यावर्त्त वा अन्य देशों में अधर्मयुक्त चाल चलन है उनका स्वीकार और जो धर्मयुक्त बातें हैं उनका त्याग नहीं करता न करना चाहता हूँ क्योंकि ऐसा करना मनुष्य धर्म से बहिः है । मनुष्य उसीको कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यो के सुख दुःख और हानि लाभ को समझे, अन्यायकारी बलवान् से भी न उरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे, इतना ही नहीं, किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वे महा अनाथ, निर्बल और गुणरहित क्यों न हों, उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चमत्कर्त्ता, सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहाँतक होसके वहाँतक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे, स्वयं काम में चाहे उसको भितना ही कारण हुआ प्राप्त हो, चाहे मान

अपने स्वरूप के स्वतःप्रकाशक और पृथिव्यादि के भी प्रकाशक होते हैं वेसे चारों वेद हैं और चारों वेदों के ब्राह्मण, छः भङ्ग, छः उपाङ्ग चार उपवेद और ११२७ (ग्यारह सौ सत्ताईस) वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्याख्यानरूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ हैं उनको परत. प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इनमें वेदविरुद्ध वचन हैं उनका अप्रमाण करता हू ॥

३—जो पक्षपातरहित न्यायाचरण, सत्य भाषणादियुक्त ईश्वराज्ञा वेदों से अविरुद्ध है उसको “धर्म” और जो पक्षपातसहित अन्यायाचरण मिथ्या-भाषणादि ईश्वराज्ञाभंग वेदविरुद्ध है उसको “अधर्म” मानता हू ॥

४—जो इच्छा, द्वेष, सुख दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त, अल्पज्ञ, नित्य है उसी को “जीव” मानता हू

५—जीव और ईश्वर स्वरूप और वेधर्म्य से भिन्न और व्याप्य व्यापक और साधर्म्य से अभिन्न हैं अर्थात् जैसे आकाश से मूर्तिमान् द्रव्य कभी भिन्न न था, न है, न होगा और न कभी एक था, न है, न होगा इसी प्रकार परमेश्वर और जीव को व्याप्य व्यापक, उपास्य उपासक और पिता पुत्र आदि सम्बन्धयुक्त मानता हू ॥

६—“अनादि पदार्थ” तीन हैं एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति अर्थात् जगत् का कारण इन्हीं को नित्य भी कहते हैं, जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण, कर्म स्वभाव भी नित्य हैं ॥

७—“प्रवाह से अनादि” जो सयोग से द्रव्य, गुण, कर्म उत्पन्न होते हैं वे वियोग के पश्चात् नहीं रहते परन्तु जिस से प्रथम सयोग होता है वह सामर्थ्य उनमें अनादि है और उससे पुनरपि सयोग होगा तथा वियोग भी, इन तीनों को प्रवाह से अनादि मानता हू ॥

८—“सृष्टि” उसको कहते हैं जो पृथक् द्रव्यों वा ज्ञान तुल्यपदक मेल होकर नानारूप बनना ॥

९—“सृष्टि का प्रयोजन” यही है कि जिसमें ईश्वर के सृष्टिनिमित्त गुण, कर्म, स्वभाव वा साफल्य होना । जैसे पिता न किसी से पूछा कि नम्र किसलिये है ? उसने कहा देखने के लिये । वैसे ही सृष्टि करने के ईश्वर के सामर्थ्य की सफलता सृष्टि करने में है और जीवों के कर्मों का प्रयासत् भोग करना आदि भी ॥

१०—“सृष्टि सकर्तृक” है, इसका कर्ता पृथक् ईश्वर है, अर्थात् सृष्टि

अपने स्वरूप के स्वतःप्रकाशक और पृथिव्यादि के भी प्रकाशक होते हैं वैसे चारों वेद हैं और चारों वेदों के ब्राह्मण, छः अङ्ग, छ. उपाङ्ग चार उपवेद और ११२७ (ग्यारह सौ सत्ताईस) वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्याख्यानरूप ब्राह्मणादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ हैं उनको परत. प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इनमें वेदविरुद्ध वचन हैं उनका अप्रमाण करता हू ॥

३—जो पक्षपातरहित न्यायाचरण, सत्य भाषणादियुक्त ईश्वराज्ञा वेदों से अविरुद्ध है उसको “धर्म” और जो पक्षपातसहित अन्यायाचरण मिथ्या-भाषणादि ईश्वराज्ञाभंग वेदविरुद्ध है उसको “अधर्म” मानता हूँ ॥

४—जो इच्छा, द्वेष, सुख दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त, अल्पज्ञ, नित्य है उसी को “जीव” मानता हूँ

५—जीव और ईश्वर स्वरूप और वेधर्म्य से भिन्न और व्याप्य व्यापक और साधर्म्य से अभिन्न हैं अर्थात् जेमे आकाश से मूर्तिमान् द्रव्य कभी भिन्न न था, न है, न होगा और न कभी एक था, न है, न होगा इसी प्रकार परमेश्वर और जीव को व्याप्य व्यापक, उपास्य उपासक और पिता पुत्र आदि सम्यन्धयुक्त मानता हूँ ॥

६—“अनादि पदार्थ” तीन हैं एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति अर्थात् जगत् का कारण इन्हीं को नित्य भी कहते हैं, जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण, कर्म स्वभाव भी नित्य हैं ॥

७—“प्रवाह से अनादि” जो सयोग से द्रव्य, गुण, कर्म उत्पन्न होते हैं वे वियोग के पश्चात् नहीं रहते परन्तु जिस से प्रथम सयोग होता है वह सामर्थ्य उनमें अनादि है और उससे पुनरपि सयोग होगा तथा वियोग भी, इन तीनों को प्रवाह से अनादि मानता हूँ ॥

८—“सृष्टि” उसको कहते हैं जो पृथक् द्रव्यों वा ज्ञान गुणपूर्वक मेल होकर नानारूप बनना ॥

९—“सृष्टि का प्रयोजन” यही है कि जिसमें ईश्वर के सृष्टिनिमित्त गुण, कर्म, स्वभाव वा साफल्य होना । जैसे पिसा न किसी से पूजा कि नेत्र किसलिये हैं ? उसने कहा देखने के लिये । वैसे ही सृष्टि करने के ईश्वर के सामर्थ्य की सफलता सृष्टि करने में है और जायों के कर्मों का यथापत् भोग करना आदि भी ॥

१०—“सृष्टि सार्वभौम” है, इसका अर्थ पूर्वोक्त ईश्वर है, क्योंकि सृष्टि

की जाती होवे और अविद्यादि दोष छूटें उसको 'शिक्षा' ५

२३—“पुराण” जो ब्रह्मादि के बनाये ऐतरेयादि ब्राह्मण
इन्हीं को पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशसी नाम से
कहते हैं, अन्य भागवतादि को नहीं ॥

२४—“तीर्थ” जिससे दुःखसागर से पार उतरें कि जो सत्यभाष
वेद्या, सत्सङ्ग, यमादि योगाभ्यास, पुरुषार्थ, विद्यादानादि शुभ कर्म हैं
इन्हीं को तीर्थ समझता हूँ इतर जल स्थलादि को नहीं ॥

२५—“पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा” इसलिये है कि जिससे सचित
प्रारब्ध बनते, जिसके सुधरने से सब सुधरते और जिसके बिगड़ने से सब
बिगड़ते हैं इसीसे प्रारब्ध की अपेक्षा पुरुषार्थ बड़ा है ॥

२६—“मनुष्य” को सब से यथायोग्य स्वात्मवत् सुख, दुःख, हानि,
छात्र में वर्तना ध्येष्ठ, अन्यथा वर्तना बुरा समझता हूँ ॥

२७—“सत्कार” उसको कहते हैं कि जिससे शरीर, मन और आत्मा
वृत्त होवें, वह निषेकादि श्मशानान्त सोलह प्रकार का है इसको कर्तव्य
समझता हूँ और दाह के पश्चात् मृतक के लिये कुछ भी न करना चाहिये ।

२८—“यज्ञ” उसको कहते हैं कि जिसमें विद्वानों का सत्कार यथा-
योग्य शिल्प अर्थात् रसायन जो कि पदार्थविद्या उससे उपयोग और विद्यादि
शुभगुणों का दान, अग्निहोत्रादि जिनसे वायु घृष्टि, जल, ओषधि की परिग्रहा
करके सब जीवों को सुख पहुँचाना है, उसको उत्तम समझता हूँ ॥

२९—जैसे “आर्य” ध्येष्ठ और “दस्यु” दुष्ट मनुष्यों को कहते हैं
वैसे ही मैं भी मानता हूँ ॥

३०—“आर्यावर्त” देश इस भूमि का नाम इसलिये है कि इसमें
आदि सृष्टि से आर्य लोग निवास करते हैं, परन्तु इसकी अवधि उत्तर में
हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पश्चिम में अटक और पूर्व में मल्लप्रभा
नदी है, इन चारों के बीच में जितना देश है उसको “आर्यावर्त” कहते
हैं और जो इनमें सदा रहते हैं उनको भी ‘आर्य’ कहते हैं ।

३१—जो साम्रोपाग वेदविद्याओं का अध्यापक सत्वाचार का
ग्रहण और मिथ्याचार का त्याग करावे वह “आचार्य” कहा जाता है ॥

३२—“शिष्य” उसको कहते हैं कि जो सत्य शिक्षा और विद्या को
ग्रहण करने योग्य धर्मात्मा, विद्याग्रहण की इच्छा और आचार्य का शिष्य
करनेवाला है ॥

वा अपने से उत्तम वर्णस्थ स्त्री वा पुरुष के साथ सन्तानोत्पत्ति करना ॥

४८—“स्तुति” गुणकीर्तन, श्रवण और ज्ञान होना इसका फल प्रीति आदि होते हैं ॥

४९—“प्रार्थना” अपने सामर्थ्य के उपरान्त ईश्वर के सम्बन्ध से जो विज्ञान आदि प्राप्त होते हैं उनके लिये ईश्वर से याचना करना और इसका फल निरभिमान आदि होता है ॥

५०—“उपासना” जैसे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं वैसे अपने करना, ईश्वर को सर्वव्यापक अपने को व्याप्य जान के ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है ऐसा निश्चय योगाभ्यास से साक्षात् करना ‘उपासना’ कहाती है, इसका फल ज्ञान की उन्नति आदि है ॥

५१—“सगुणनिर्गुणस्तुतिप्रार्थनोपासना” जो जो गुण परमेश्वर में हैं उनसे युक्त और जो जो नहीं हैं उनसे पृथक् मानकर प्रशंसा करना सगुणनिर्गुणस्तुति, शुभ गुणों के ग्रहण की इच्छा और दोष छुटाने के लिये परमात्मा का सहाय चाहना, सगुणनिर्गुण प्रार्थना, और सब गुणों से सहित सब दोषों से रहित परमेश्वर को मानकर अपने आत्मा को उसके और उसकी आज्ञा के अर्पण कर देना ‘सगुणनिर्गुणोपासना’ होती है ॥

ये सक्षेप से स्वसिद्धान्त दिखला दिये हैं। इनकी विशेष व्याख्या इसी “सत्यार्थप्रकाश” के प्रकरण प्रकरण में है तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि ग्रन्थों में भी लिखी है अर्थात् जो जो बात सब के सामने माननीय है उनको मानता अर्थात् जैसे सत्य बोलना सब के सामने अच्छा और मिथ्या बोलना बुरा है ऐसे सिद्धान्तों को स्वीकार करता है और जो मतमतान्तर के परस्पर विरुद्ध लगते हैं उनको मैं प्रसन्न नहीं करता क्योंकि इन्हीं मत वालों ने अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फसा के परस्पर शत्रु बना दिये हैं। इस बातको काट सर्व सत्य का प्रचार कर, सब को ऐक्यमत में करा, छुटा परस्पर में दृढ़ प्रीतिवृत्त कराके सब से सबको सुख लाभ पहुँचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा, सहाय और आसजनों की सहायभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूलने से दूर प्रवृत्त हो जावे जिससे सब लोग सहज से धर्मार्थ ज्ञान मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें यही मेरा मुख्य प्रयोजन है ॥

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वयेषु ॥

